अध्ययन बोर्ड समिति

डॉ. गिरिजा प्रसाद पाण्डे, प्रोफेसर इतिहास एवं निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी — अध्यक्ष

प्रोफेसर रविन्द्र कुमार, इतिहास विभाग, समाज विज्ञान विद्याशाखा,इग्नू, नई दिल्ली — सदस्य

डॉ.लाल बहादुर वर्मा, रि. प्रोफेसर, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद — सदस्य

डॉ.रामेश्वर प्रसाद बहुगुणा,इतिहास विभाग,जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली — सदस्य

डॉ. मदन मोहन जोशी, सहायक प्रोफेसर एवं समन्वयक इतिहास, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी — सदस्य

पाठ्यक्रम संयोजन एंव संपादन

डॉ. मदन मोहन जोशी, सहायक प्रोफेसर एवं समन्वयक, इतिहास,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्विद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

ईकाई लेखन

ब्लाक एक- भारत में राष्ट्रवाद का उद्भव:कारण ,प्रकृति एवंविकास:जी.एम. जैसवाल. अवकाश प्राप्त आचार्य ,कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल

ब्लाक दो-भारत में राष्ट्रवाद का विकास: आरंभिक चरण:सुबीर डे, सेण्टर फॉर हिस्टोरिकल स्ट्डीज़, जवाहरलाल नेहरुविश्वविद्यालय,दिल्ली.

ब्लाक तीन-राष्ट्रवाद का गॉधी युग: एक: जी.एम. जैसवाल. अवकाश प्राप्त आचार्य ,कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल

ब्लाक चार: राष्ट्रवाद का गॉधी युग: दो : डॉ. आनन्द कुमार शर्मा

ब्लाक पॉच- राष्ट्रीय आन्दोलन का अन्तिम चरण

इकाई एक- डॉ. हबीब मनज़र, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग , भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.

इकाई दो- डॉ. हबीब मनज़र, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.

इकाई तीन- डॉ. मिथिलेश मिश्रा, जामिया मिल्लिया इसलामिया, नई दिल्ली.

इकाई चार- इलियास हुसैन, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, मोतीलाल नेहरु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.

ब्लाक छह- राष्ट्रवाद एवं सामाजिक वर्ग

इकाई एक- इलियास हुसैन, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, मोतीलाल नेहरु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.डॉ. मिथिलेश मिश्रा, जामिया मिल्लिया इसलामिया, नई दिल्ली.

इकाई दो- डॉ. जिबरील, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.

इकाई तीन- डॉ. जिबरील, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.

इकाई चार- डॉ. मिथिलेश मिश्रा, जामिया मिल्लिया इसलामिया, नई दिल्ली.

ब्लाक सात- संकल्पनाएं, विचार तथा शब्दावली: डॉ. मनोज शर्मा, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, किरोड़ीमल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली.प्रकाशन वर्ष: मई 2013

कापी राइट:/ उत्तराखण्ड मुक्त विश्विद्यालय

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: कुल सचिव उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल, उत्तराखण्ड।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

		पृष्ठ संख्या
ब्लाक एक-	**भारत में राष्ट्रवाद का उद्भव: कारण, प्रकृति एवं विकास**	**7-77**
इकाई एक-	भारतीय राष्ट्रवाद का जन्मः कारण एवं कॉग्रेस केप्रथम अधिवेशन में बताये गये उद्देश्य	8-27
इकाई दो-	प्रारंभिक दिनों में कांग्रेस की मांगें तथा उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन	28-40
इकाई तीन-	उग्रवादी आन्दोलन के उदय के कारण	41-59
इकाई चार-	बंगाल में उग्रराष्ट्रवाद और बंगाल का विभाजन	60-77
ब्लाक दो-	**भारत में राष्ट्रवाद का विकास: आरंभिक चरण**	**78-125**
इकाई एक-	क्रान्तिकारी आन्दोलन	79-90
इकाई दो-	विदेशों में क्रान्तिकारी कार्य और क्रान्तिकारी आन्दोलनका मूल्यॉकन	91-102
इकाई तीन-	साम्प्रदायिकता का उदय तथा विकास	103-114
इकाई चार-	लखनऊ समझौता एवं मूल्यांकन, होमरूल लीग आन्दोलन	115-125
ब्लाक तीन-	**राष्ट्रवाद का गॉधी युग: एक**	**126-189**
इकाई एक-	गांधी जी का प्रारंभिक राजनीतिक जीवन	127-142
इकाई दो-	असहयोग आन्दोलन: कारण , कार्यक्रम रोलेट एक्टएवं उसका विरोध जलिंयावाला बाग हत्याकाण्ड,चोरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति।	143-158
इकाई तीन-	साइमन कमीशन, सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट	159-174
इकाई चार-	सविनय अवज्ञा आंदोलन	175-189
ब्लाक चार:	**राष्ट्रवाद का गॉधी युग: दो**	**190-260**
इकाई एक:	1935 का भारत सरकार अधिनियम	191-208
इकाई दो:	भारत छोड़ो आन्दोलन	209-224
इकाई तीन:	देशी राज्यों में राष्ट्रीय आन्दोलन	225-242
इकाई चारः	वेवल योजना और शिमला सम्मेलन	243-260
ब्लाक पॉच-	**राष्ट्रीय आन्दोलन का अन्तिम चरण**	**261-315**
इकाई एक-	1945-47 के जन-आन्दोलन	262-271

इकाई दो-	1945-47 के बीच राजनीतिक गतिविधियां	272-287
इकाई तीन-	राष्ट्रीय आन्दोलन और समाजवादी विचारधारा	288-302
इकाई चार-	देश का विभाजन और स्वतन्त्र भारत की चुनौतियां	303-315
ब्लाक छह-	**राष्ट्रवाद एवं सामाजिक वर्ग**	**316-373**
इकाई एक-	भू-स्वामी, पेशेवर और मध्य वर्ग	317-327
इकाई दो-	किसान एवं श्रमिक वर्ग	328-349
इकाई तीन-	जनजातियां एवं जनजातीय विद्रोह	350-362
इकाई चार-	भारत में दलित आंदोलन	363-373
ब्लाक सात-	**संकल्पनाएं, विचार तथा शब्दावली**	**374-442**
इकाई एक-	वॉयसराय, गदर परतन्त्रता, उदारवादी,गरमपन्थी, स्वराज्य,धन कानिष्कासन, अग्रगामी नीति, हण्टर कमीशन	375-392
इकाई दो-	स्वदेशी, निहिलिस्ट, अनुशीलन समिति, चरमपन्थी	393-409
इकाई तीन-	असहयोग, सविनय अवज्ञा, रामराज्य, सूती, स्वावलम्बन, राष्ट्रीय एकता	410-424
इकाई चार-	साम्प्रदायिकता, संविधान, विभाजन, रैडक्लिफ रेखा, गणतन्त्र, प्रजातन्त्र	425-442

पुस्तक परिचय

प्रिय छात्र / छात्रा

आपको बी.ए. प्रथम वर्ष की पुस्तंकों द्वारा भारत के प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास की जानकारी दी गयी थी । आशा है, आपने प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत से संबंधित तथ्यों को भली प्रकार आत्मतसात कर लिया होगा । भारत का आधुनिक इतिहास भी बड़ा रोचक है ।आपको द्वितीय वर्ष की पहली पुस्तक में इससे संबंधित जानकारी मिली होगी। आपको जानकारी है कि आधुनिक काल के प्रारंभ में देश अंग्रेजों का गुलाम था। इस गुलामी से भारत ने कैसे मुक्ति पायी , यही आपको इस पुस्तक में बताया जा रहा है। इस पुस्तक के द्वारा आपको भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का परिचय दिया जा रहा है ।

यूरोपीय पुनर्जागरण ने विश्व को और भारतीय पुनर्जागरण ने भारत को आधुनिक युग की प्रगतिशील धारा में प्रविष्ट कराया। अंधविश्वास का मूल कारण मनुष्य का अज्ञान है। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय सुधारकों ने धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त अंधविश्वासों के उन्मूलन हेतु सार्थक प्रयास किए। पुनर्जागरण का शाब्दिक अर्थ है फिर से जागना। ऐतिहासिक सन्दर्भ में 14 वीं शताब्दी से 17 वीं शताब्दी के दौरान यूरोप में विकसित सांस्कृतिक आन्दोलन को हम पुनर्जागरण कहते हैं। यूरोपीय पुर्जागरण का सूत्रधार पेटार्क माना जाता है। पुनर्जागरण में विज्ञान, कला, शिक्षा तथा राजनीति के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। सन् 1453 में कुस्तुनतुनिया (कॉस्टिंटोनोपल) के पतन के बाद ग्रीक विद्वानों ने प्राचीन ग्रीक तथा लैटिन ग्रंथों से शेष यूरोपवासियों को परिचित कराया और इसके फलस्वरूप यूरोप ने मध्यकाल की पिछड़ी परम्परावादी मानसिकता व अकर्मण्यता से उबर कर एक बौद्धिक युग में प्रवेश किया। विज्ञान,तकनीक, साहित्य,कला आदि सभी क्षेत्रों में अभिनव प्रयोग करने की प्रवृत्ति अब प्रबल हो गई थी। राजनीतिक क्षेत्र में राष्ट्रवादी विचारधारा के विकास के साथ राष्ट्रीय राज्यों का उदय हुआ और लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना का शुभारम्भ हुआ। इस प्रकार पुनर्जागरण ने यूरोप को आधुनिक युग में प्रविष्ट कराया। भारतीय इतिहास में पुनर्जागरण अथवा नवजागरण 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुई धार्मिक,सामाजिक,शैक्षिक,साहित्यिक,आर्थिक तथा राजनीतिक जागृति के रूप में अभिव्यक्त हुआ। भारतीय पुनर्जागरण अथवा नवजागरण का अग्रदूत हम राजा राममोहन राय को मान सकते हैं।

राजा राममोहन राय ने परम्परा के नाम पर अंधविश्वास, धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक, सामाजिक व लैगिक असमानता, अनुपयोगी शिक्षा-पद्धति तथा शासन के दमनकारी व शोषक स्वरूप को अस्वीकार किया। उन्होंने आर्थिक क्षेत्र में कृषि,उद्योग व व्यापार में हुई प्रगति को भारत में अपनाए जाने पर बल दिया। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की महत्ता और जन-जागृति में प्रेस की सृजनात्मक भूमिका समझने वाले वह पहले भारतीय थे। थियोसोफ़िस्ट रहस्यवादी विचारधारा में आस्था रखता है। श्रीमती एनीबीसेन्ट ने थियोसोफ़िकल सोसायटी के माध्यम से भारतीय पुनरुत्थानवादी आन्दोलन को सशक्त बनाया। हिन्दू पुनरुत्थान के पक्षधर आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन द्वारा धर्मपरिवर्तन करने वालों की हिन्दू समाज में प्रविष्टि को सम्भव बनाया। प्राचीन काल से चली आ रही देवदासी प्रथा धार्मिक विकृति और नारी के शोषण का उदाहरण थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से सुधारकों द्वारा इस कुप्रथा के

उन्मूलन हेतु प्रयास किए गए। भारत में ब्रिटिश शिक्षा नीति का दूसरा महत्वपूर्ण चरण वुड्स डिस्पैच था। इसमें निस्युन्दन सिद्धान्त के स्थान पर जन-साधारण में शिक्षा प्रसार की नीति अपनाई गई थी।

ईश्वर चन्द्र विद्यासागर भारतीय स्त्रियों के उद्धारक थे। उन्होंने स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया। विधवा विवाह को मान्यता दिलाने में उन्हें सफलता मिली। नवजागरण काल में बी0 एम0 माल्बरी तथा पण्डिता रमा बाई ने स्त्री-समाज से जुड़ी सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन के प्रयास किए। दलित समाज के उत्थान के लिए आर्य समाज जैसा पुनरुत्थानवादी आन्दोलन अत्यन्त सजग था। जोतिबा फुले नवजागरण काल में दलित चेतना के अग्रदूत थे। सर सैयद अहमद तथा उनके सहयोगी अल्ताफ़ हुसेन हाली ने मुसलमानों को नवजागरण की प्रगतिशील विचारधारा को अपनाने की प्रेरणा दी। दादा भाई नौरोजी तथा उनके साथियों ने रहनुमाई मजदेआसन सभा के माध्यम से पारसी समाज में जागृति के प्रयास किए। नामधारी व निरंकारी आन्दोलनों ने सिक्ख समाज में फैली धार्मिक,सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन पर बल दिया।

नवजागरण काल में परम्परागत धार्मिक शिक्षा के स्थान पर धर्म-निर्पेक्ष आधुनिक शिक्षा को महत्ता दी गई। साहित्य,भाषा,कला,अर्थ शास्त्र,इतिहास,कानून की शिक्षा के साथ तकनीकी और वैज्ञानिक शिक्षा को भी महत्व दिया गया।नवजागरण काल में साहित्य को दरबार से निकाल कर जन-साधारण तक पहुंचाया गया। भारतीय भाषाओं का विकास कर उनमें उपयोगी मौलिक एवं अनुवादित ग्रंथों की रचना की गई। इस काल में सामाजिक परिष्कार, आर्थिक व राजनीतिक जागृति के प्रति समर्पित पत्रकारिता का विकास हुआ। नवजागरण काल में दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व में आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास ने जहां एक ओर औपनिवेशिक शासन की शोषक नीतियों का पर्दाफ़ाश किया वहीं दूसरी ओर इसने भारतीयों को आर्थिक आत्म-निर्भरता व स्वदेशी की महत्ता का पाठ पढ़ाया।

नवजागरण काल में भारतीयों ने अपनी हीन भावना का परित्याग कर आत्म-गौरव तथा आत्म-विश्वास का विकास किया। नवजागरण ने भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार किया। नागरिक अधिकार,लोक-कल्याणकारी शासन,शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी, मताधिकार और अन्ततः उत्तरदायी सरकार की स्थापना की मांगों ने भारतीयों को पहले सरकार का सलाहकार, फिर आलोचक और बाद में विरोधी बना दिया ।भारतीय नवजागरण ने भारत को सर्वतोमुखी प्रगति की ओर अग्रसर किया। । आर्थिक राष्ट्रवाद के उदय ने भारत में आर्थिक स्वदेशी की भावना का विकास किया। आगे चलकर भारत में राजनीतिक,सांस्कृतिक एवं शैक्षिक आत्मनिर्भरता की भावना के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय एकता का भी विकास हुआ और अंतत भारत गुलामी से मुक्ति हुआ ।

प्रिय छात्र / छात्रा इस पुस्तक का आप पूरे मनोयोग से अध्ययन करें और अपनी जानकारी को बढ़ायें । आपके सफल भविष्य के लिए समस्त शुभकामनाओं सहित

दिनाकं:30/06/2013 मदन मोहन जोशी

ब्लाक एक- भारत में राष्ट्रवाद का उद्भव: कारण ,प्रकृति एवं विकास

इकाई एक- **भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण एवं कॉग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताये गये उद्देश्य।**

इकाई दो- **प्रारंभिक दिनों में कांग्रेस की मांगें तथा उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन।**

इकाई तीन- **उग्रवादी आन्दोलन के उदय के कारण**

इकाई चार- **बंगाल में उग्रराष्ट्रवाद और बंगाल का विभाजन**

इकाई एक

भारतीय राष्ट्रवाद का जन्मः कारण एवं कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 भारतीय राष्ट्रवाद का जन्मः कारण

1.3.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.1.2 मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.2 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण

1.3.2.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना

1.3.2.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास

1.3.2.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास

1.3.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

1.3.2.4 भारत में स्वदेशी और स्वशासन की मांग का पहला चरण

1.3.2.5 लॉर्ड लिटन का दमनकारी तथा लॉर्ड रिपन का उदार शासन

1.4 कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

1.4.1 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन

1.4.1.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन

1.4.1.2 बॉम्बे एसोसियेशन

1.4.1.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन

1.4.1.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन

1.4.1.5 हिन्दू मेला

1.4.1.6 पूना सार्वजनिक सभा

1.4.1.7 इण्डियन लीग

1.4.1.8 इण्डियन एसोसियेशन

1.4.1.9 महाजन सभा

1.4.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

1.4.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा उसका प्रथम अधिवेशन

1.4.2.1 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां

1.4.2.2 भारत में एक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल की आवश्यकता

1.4.2.3 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

आदि काल से ही हमारे भारत में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। चारो वेदों में, पुराणों तथा महाकाव्यों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको चन्द बरदाई और अमीर खुसरो की रचनाओं में तथा अकबर की प्रशासनिक, आर्थिक व धार्मिक नीति में मिलते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए भारतीय नवजागरण में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना का भी विकास हुआ था। राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का अग्रदूत कह सकते हैं। दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, दिनशा वाचा, रमेश चन्द्र दत्त आदि ने आर्थिक राष्ट्रवाद का विकास किया उन्होंने ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति की आलोचना की तथा भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास करने का आवाहन किया।

शहरी मध्यवर्गीय भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने-अपने राजनीतिक संगठन बनाए। धीरे-धीरे भारत में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा और 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः

- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।

- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्श कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में सरकार से संगभेदी व जातिभेदी नीति का परित्याग करने की अपील किए जाने के अतिरिक्त भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रथम चरण के रूप में भारतीयों को भारतीय प्रशासन, विधि-निर्माण तथा आर्थिक नीति-निर्धारण में हिस्सेदारी दिए जाने की मांग रखी गई।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

ए0 ओ0 ह्यूम

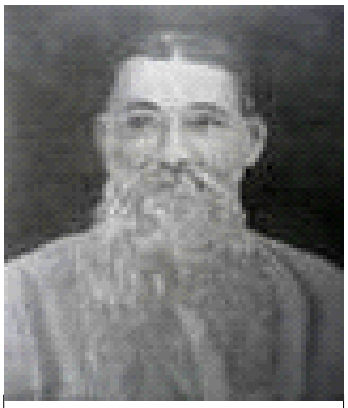

डब्लू0 सी0 बनर्जी

एम0 जी0 रानाडे

दादा भाई नौरोजी

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको आधुनिक भारत में राजनीतिक चेतना के उद्भव तथा उसके विकास के प्रथम चरण से अवगत कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1- प्राचीन काल तथा मध्य काल में भारत में राष्ट्रीयता की भावना का विकास।

2- उन्नीसवीं शताब्दी में भारत में राजनीतिक चेतना का विकास।

3- भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय।

4- भारत में क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों की स्थापना।

5- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना।

6- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन रखी गई मांगे।

1.3 भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म: कारण

1.3.1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

1.3.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

ब्रिटिश शासकों का यह दावा था कि उन्होंने ही भारतीयों को राष्ट्रीयता और स्वदेश प्रेम का पाठ पढ़ाया है। इस दावे में कुछ न कुछ सत्यता अवश्य थी परन्तु यह कहना सर्वथा अनुचित होगा कि भारतीयों में ब्रिटिश शासन से पूर्व राष्ट्रीयता और स्वदेशी की भावना का नितान्त अभाव था। प्राचीन काल में भारतीयो में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। वेदों में राष्ट्र की रक्षा और सुरक्षा, एकता और संगठन पर अनेकों बार प्रकाश डाला गया है। इनमें अपने नगरों, नदियों, वनों और पर्वतों के प्रति अपार प्रेम दर्शाया गया है और अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। 'स्वराज्य' शब्द वैदिक साहित्य की ही देन है। ऋग्वेद (ऋग्वेद 8/45/21 तथा (ऋग्वेद 5/66/6) में कहा गया है कि-

स्वराज्य के योग-क्षेम के लिए सतत जागरूक रहना चाहिए। स्वराज्य के विस्तार एवं प्रजातान्त्रिक शासन-हेतु हम सभी देशवासी प्रयत्नशील रहें।

ऋग्वेद में अपने राज्य को स्वराज्य बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया गया है -

यतेमहि स्वराज्ये

(हम स्वराज्य के लिए सतत प्रयत्न करते रहें।)

ऋग्वेद की ही भाँति अथर्ववेद में भी देशप्रेम की भावना अनेक स्थानों पर मुखरित हुई है। अनेकता में एकता को बनाए हुए देशवासियों को राष्ट्रोत्थान में सतत संलग्न रहना चाहिए -

जिस प्रकार एक घर के लोग भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन करके तथा अपनी-अपनी व्यक्तिगत धार्मिक आस्थाओं वाले होकर भी अपने घर की मिलजुल कर देखभाल करते हैं तथा उसे सुख-सुविधा सम्पन्न बनाकर स्वयं भी सुखी होते हैं, ठीक उसी प्रकार भारतवासियों को भी अपने भाव-विषयक एवं धर्म-विषयक भेदभाव की उपेक्षा करके अपने समग्र राष्ट्र का कल्याण आत्मीयतापूर्ण समवेत भावना से करना चाहिए।

ऋग्वेद के सूक्त 10/25 तथा अथर्ववेद के सूक्त 4/30 में समग्र भारत राष्ट्र की एक राष्ट्रदेवी के रूप में परिकल्पना की गई है। ऋषियों का दृष्टिकोण है कि यह राष्ट्रदेवी राष्ट्र के चारो ही वर्णों में ओतप्रोत रहती है; सौहार्द, सद्व्रत, शौर्य, ज्ञान तथा आरोग्य का विस्तार करती है;राष्ट्र की आर्थिक दशा में सन्तुलन करती है; विविध ज्ञान की वृद्धि कराती है; अनेक प्रसंगों में स्थिर प्रतिष्ठा पाती है। जो राष्ट्र इस राष्ट्रदेवी की उपेक्षा करते हैं, वे विनष्ट हो जाते हैं।

हमारे पुराण भारत महिमा से भरे हुए हैं। इनमें भारतवासियों को एकसूत्र में बंधने की प्रेरणा दी गई है। भारतभूमि को कर्मभूमि कहा गया है; जहाँ जन्म पाने के लिए देवताओं को भी तरसता हुआ बताया गया है। भारत के पर्वतों, वनों, समुद्रों, नदियों, सरोवरों, नगरों तथा तीर्थों का गर्व के साथ वर्णन किया गया है।

विष्णु पुराण में कहा गया है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरुत्वात्।।

(इस देश की महिमा का देवता भी गान करते हैं । उनकी दृष्टि में वे लोग धन्य हैं, कृतार्थ हैं और कृतकृत्य हैं जो इस पवित्र भारतभूमि में जन्म पाते हैं। देवत्व की समाप्ति पर यहाँ मानव-जाति में जन्म पाने के लिए देवगण भी लालसा करते हैं।)

हमारे महाकाव्यों - रामायण और महाभारत में, भी स्वदेश-प्रेम और स्वदेशी की भावना मुखरित हुई है। रामायण में कहा गया है -

जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

महाभारत के भीष्मपर्व में स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्युगति को प्राप्त करने को परधर्म का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करने से श्रेष्ठ बताया गया है -

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ।

कालिदास की कृतियों में भारत और भारतीयता के प्रति असीम अनुराग है और अपरिमित भक्ति है। उनकी रचनाओं में भारतीय इतिहास के गौरवशाली अध्याय का चित्रण मिलता है। उनका हिमालय वर्णन भारतीय साहित्य की अनुपम धरोहर है।

1.3.1.2 मध्यकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

मध्यकाल में हमारे देश में प्रान्तीयता तथा क्षेत्रवाद के भाव ने हमारी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। देशप्रेम अब अपने राज्य अथवा अपने क्षेत्र तक सिमट कर रह गया। भारत पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिन्दुओं की दृष्टि में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ उठाया जाने वाला हर प्रयास देशभक्ति माना जाने लगा। चन्दबरदाई की रचना पृथ्वीराज रासो में बार-बार यह दर्शाया गया है कि राजपूत जातीय अभिमान की रक्षा के लिए अपने प्राणों की परवाह नहीं करते करते थे। पृथ्वीराज रासो के ही काल की रचना आल्हाखण्ड में वीरों का बखान करते हुए कहा गया है कि जो वीर युद्ध में वीरगति को प्राप्त होते हैं उन्हें सीधे मोक्ष मिलता है। हमारे देश की वीरांगनाएँ सदैव ही वीर पति की कामना करती थीं।

मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको अमीर खुसरो की रचनाओं में मिलते हैं । अमीर खुसरो तुर्क थे परन्तु उनका जन्म हिन्दुस्तान में हुआ था । उन्हें अपनी जन्मभूमि ' हिन्द ' से अत्यन्त प्रेम था । उन्हें अपनी भारतीयता पर गर्व था। नूहे सिपहर में वह लिखते हैं -

हिन्द मेरी जन्मभूमि है। यह मेरा वतन है। अपने वतन से प्यार करना हर एक के लिए उसके ईमान का हिस्सा है। हिन्द जन्नत की तरह है। इसकी मिट्टी उपजाऊ है और इसकी आबोहवा दिलकश है।

महाराष्ट्र में वाराकरी पंथ के सन्तों ने महाराष्ट्र धर्म का विकास किया। उन्होंने धर्म, संस्कृति और भाषा को आधार बनाकर मराठा जाति को एकसूत्र में बांधने का सफल प्रयास किया। अकबर के अधीन भारत में राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के सफल प्रयास हुए । अकबर ने भारत को प्रशासनिक, राजनीतिक व आर्थिक दृष्टि से एकसूत्र में बांधा और दीन-ए-इलाही अथवा तौहीद-ए-इलाही के माध्यम से उसने भारतीयों को भावनात्मक रूप से बांधने का प्रयास किया। साहित्य, संगीत, चित्रकला, स्थापत्य कला, मुद्रा प्रणाली, खान-पान, वेशभूषा, शिष्टाचार, भाषा आदि सभी क्षेत्रों में समन्वय के प्रयास हुए। अमीर खुसरो की ही भाँति अकबर को भी अपनी भारतीयता पर गर्व था। अकबर के नवरत्न अबुल फ़ज़्ल के विचार भी स्वदेश प्रेम की भावना से ओतप्रोत थे।

1.3.2 भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में राष्ट्रवाद के विकास के कारण

1.3.2.1 भारतीय नवजागरण में राजनीतिक चेतना

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में ही सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक चेतना का विकास प्रारम्भ हो गया था। सरकार की रंगभेदी, जातिभेदी व आर्थिक शोषण नीति की निर्भीक आलोचना करने वाले भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। भारतीय नवजागरण ने धार्मिक,सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक और राजनीतिक जागृति की अलख जगाई। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि ने अंग्रेज़ों के जातीय श्रेष्ठता के दावे को एक सिरे से नकार दिया। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

1.3.2.2 1857 के विद्रोह में राजनीतिक चेतना का विकास

सन् 1857 में ब्रिटिश हुकूमत का तख्ता पलटने के लिए भारत में व्यापक स्तर पर विद्रोह हुआ। फिरंगी शासन से देश को मुक्त कराने के लिए बादशाह, राजे-महाराजे, नवाब, जागीरदार, सैनिक, किसान और मज़दूर एकजुट हुए। 1857 के विद्रोह का विस्तार समस्त भारत में नहीं हो सका और न ही इसमें उत्तर भारत के एक सीमित क्षेत्र को छोड़कर आम जनता की भागीदारी हुई किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस काल में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई और अपने धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों पर आघात करने वाले के विरुद्ध सशस्त्र क्रान्ति करने के लिए लाखों लोग एकजुट हुए। अंग्रेज़ों ने इस विद्रोह को कुचल दिया और इसे मात्र एक सैनिक विद्रोह का जामा पहनाने का प्रचार किया। प्रबुद्ध भारतीय प्रायः इस विद्रोह से विलग रहे किन्तु परवर्ती काल में उनमें से अनेक ने इस विद्रोह को भारतीय इतिहास का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम माना। 1857 के विद्रोह से भारतीय युवाओं ने औपनिवेशिक शासन के अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा प्राप्त की। 1857 के विद्रोह में सादिकुल अख़बार,देहली उर्दू अख़बार, दूरबीन तथा सुल्तानुल अख़बार ने विद्रोह की भावना का प्रचार करने का साहसिक अभियान छेड़ा। बादशाह बहादुर शाह ज़फ़र के पौत्र बेदार बख़्त के संचालन में प्रकाशित उर्दू अखबार पयामे आज़ादी में अज़ीमुल्ला खां रचित बाग़ी सैनिकों का क़ौमी गीत प्रकाशित हुआ था। इस कौमी तराने में भारत की महिमा का गुणगान किया गया है और भारत में ब्रिटिश शासकों की आर्थिक दोहन की निन्दा की गई है और आज़ादी के झण्डे के तले सभी धर्मावलम्बी भारतवासियों को एकजुट होकर भारत को स्वतन्त्र कराने के लिए आगे बढ़ने की अपील की गई है-

हम हैं इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा,

पाक वतन है क़ौम का, जन्नत से भी प्यारा।

ये है हमारी मिल्कियत, हिन्दुस्तान हमारा,

इसकी रूहानी से, रौशन है जग सारा।

कितना क़दीम कितना नईम, सब दुनिया से न्यारा,

करती है ज़रखेज़ जिसे, गंग-जमन की धारा।

ऊपर बर्फ़ीला पर्वत, पहरेदार हमारा,

नीचे साहिल पर बजता, सागर का नक्कारा।

इसकी खानें उगल रहीं, सोना, हीरा, पारा,

इसकी शान-शौकत का, दुनिया में जयकारा।

आया फिरंगी दूर से, ऐसा मन्तर मारा,

लूटा दोनों हाथ से, प्यारा वतन हमारा।

आज शहीदों ने है तुमको, अहले-वतन ललकारा,

तोड़ो गुलामी की ज़न्जीरें, बरसाओ अंगारा।

हिन्दु-मुसल्मां, सिक्ख हमारा, भाई प्यारा-प्यारा,

यह है आज़ादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।।

1.3.2.3 भारतीय पत्रों में राजनीतिक चेतना का विकास

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। 1857 के विद्रोह से लेकर भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आन्दोलन के हर चरण में भारतीय पत्रकारिता ने राजनीतिक चेतना के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। आधुनिक भारतीय पत्रकारिता के जनक राजा राममोहन राय की सम्बाद कौमुदी तथा अक्षय कुमार दत्त की तत्व बोधिनी पत्रिका, लोकहितवादी के पत्र हितवादी में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना की गई थी। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र बैंगाल हरकारा के 1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए 1830 की फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई थी। गिरीश चन्द्र घोष के पत्र हिन्दू पैट्रिएट (सम्पादक हरीश चन्द्र मुकर्जी) में 1861 में दीन बन्धु मित्र का नाटक नील दर्पण प्रकाशित किया। बाद में इस पत्र पर ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का नियन्त्रण हो गया। इस पत्र ने सरकार की ज़्यादतियों की कटु आलोचना की और

भारतीयों को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किए जाने की मांग की। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का एक अन्य पत्र सोमप्रकाश भी एक राष्ट्रवादी पत्र था। इस पत्र ने किसानो को उनके अधिकार दिलाने के लिए अभियान छेड़ा था। मोती लाल घोष के पत्र अमृत बाज़ार पत्रिका को सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करने के कारण उसके कोप का भाजन होना पड़ा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पत्र कवि वचन सुधा में तन-मन-धन से स्वदेशी अपनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। कवि वचन सुधा के नवम्बर, 1872 के अंक में भारतेन्दु ने इस बात पर ज़ोर दिया कि भारतीय वाणिज्य का पुनरोद्धार करने के लिए भारतवासियों को व्यापक स्तर पर तकनीकी शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता थी। 23 मार्च, 1874 की कविवचन सुधा में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अध्यक्षता में स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग के सम्बन्ध में बनारस वासियों द्वारा अंगीकार किया गया एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित हुआ था-

हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान और नित्य सत्य-परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिनेंगे और जो कपड़ा पहिले मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास है उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे।

1873 में एक बंगला त्रैमासिक मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन में भोलानाथ चन्द्र ने भारत में बिटिश आर्थिक नीति पर कठोर प्रहार किए। एम0 जी0 रानाडे के मराठी पत्र ज्ञान प्रकाश तथा इन्दु प्रकाश दोनों ही पत्रों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया जाता था।

लोकमान्य तिलक ने मराठी भाषा के पत्र केसरी तथा अंग्रेज़ी पत्र मराठा में औपनिवेशिक शासन के शोषक एवं दमनकारी स्वरूप का निर्भीक चित्रण किया। लोकमान्य ने मराठा में ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा समाज सुधार के नाम पर भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोध किया। उन्होंने 1891 के 'एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल' का इसीलिए विरोध किया। हिन्दू, नेटिव ओपीनियन, संजीवनी, ज्ञान प्रकाश, अम्बाला गज़ट, हिन्दी प्रदीप, ब्राह्मण, नजमुल अखबार, भारत जीवन आदि पत्रों में सरकार की आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया था। भारतीय पत्रों में अब राजनीतिक दलों के गठन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा था। अपने पत्र बैंगाली के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा -

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नहीं तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

1.3.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

दादा भाई नौरोजी भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक थे। उन्होंने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की निरन्तर बढ़ती हुई दरिद्रता पर प्रकाश डाला वहीं उन्होंने भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास करने का आवाहन किया। उनके ग्रंथ पॉवर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया को भारतीय आर्थिक राष्ट्रवाद की आधार पुस्तक कहा जा सकता है। राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्य सभी नेताओं ने तथा भारतीय समाचार पत्रों ने भी सरकार के हर शोषक पहलू को उभारा तथा भारत के आर्थिक पुनरुद्धार हेतु सृजनात्मक सुझाव दिए। भारत में स्वदेशी की भावना जागृत करने में और आधुनिक उद्योग का विकास तथा कुटीर उद्योग का पुनरुत्थान करने में आर्थिक राष्ट्रवाद का अभूतपूर्व योगदान रहा। उर्दू के पहले प्रगतिशील शायर अल्ताफ़ हुसेन हाली ने भारत के आर्थिक पुनरुत्थान के लिए भारतीय उद्योग और वाणिज्य को आधुनिक तकनीक से विकसित किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। 1874 में प्रकाशित अपनी नज़्म हुब्बे वतन में उन्होंने भारतीयों को इस बात पर फटकार लगाई कि वे अब भी अपने मिथ्या जातीय गौरव की शान बघारने से बाज़ नहीं आ रहे हैं और इस बात को अनदेखा कर रहे हैं कि वे गुलामी और गरीबी में अपने दिन काट रहे हैं -

इज़्ज़तो-क़ौम चाहते हो अगर, जाके लाओ उनमें इल्मो-हुनर,

जात का फ़ख्र और नसल का गुरूर, उठ गए जहाँ से ये दस्तूर।

क़ौम की इज़्ज़त अब हुनर से है, इल्म से याकि सीमोज़र से है,

एक दिन में वो दौर आएगा, बे-हुनर भीख तक न पाएगा।।

दयानन्द सरस्वती ने भारत के आर्थिक पुनरुत्थान को महत्व दिया था और इसके लिए स्वदेशी का प्रचार करना उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया था। अपने ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने यूरोपियनों के स्वदेश प्रेम और उनके अध्यवसाय की प्रशंसा की थी -

यूरोपियन अपनी स्वजाति की उन्नति के लिए तन-मन-धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो! अपने देश के बने हुए जूते को कार्यालय और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं।

दीनबन्धु मित्र के नाटक नील दर्पण ने नील के बागानों के गोरे मालिकों के अत्याचारों का मार्मिक चित्रण कर देशवासियों को अन्याय का प्रतिकार करने की प्रेरणा दी। मनमोहन बोस के उपन्यास बंगाधिप पराजय में यह दर्शाया गया कि पराधीनता का परिणाम प्रजा की घोर दरिद्रता होता है।

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासों दुगेशनन्दिनी तथा आनन्दमठ में अन्यायी का निर्भीक होकर प्रतिकार करने का संदेश दिया गया था। 'वन्देमातरम्' गीत आनन्दमठ उपन्यास का ही अंग है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में भारत दुर्दशा तथा अंधेर नगरी में कुशासन की विभीषिकाओं पर प्रकाश डाला।

1.3.2.4 भारत में स्वदेशी और स्वशासन की मांग का पहला चरण

1867 में लन्दन में डब्लू0 सी0 बनर्जी ने 'भारत की प्रतिनिधि तथा उत्तरदायी सरकार' विषय पर दिए गए अपने भाषण में भारत में एक प्रतिनिधि सभा तथा सीनेट की स्थापना का सुझाव दिया। 1873 में आनन्दमोहन बोस ने ब्राइटन में दिए गए भाषण में क्रमिक चरणों में भारत में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना का प्रस्ताव रखा। सन् 1874 में कृष्णदास पाल ने सन् 1874 में हिन्दू पैट्रिएट में प्रकाशित अपने एक लेख में भारत में होमरूल की स्थापना की मांग रखी। दयानन्द सरस्वती ने स्वदेशी और स्वशासन को आत्मनिर्भरता तथा आत्म-गौरव से जोड़ कर देखा। उन्होंने राष्ट्रीय एकता की भावना का प्रसार करने के लिए हिन्दी को राष्ट्रभाषा तथा देवनागरी लिपि को देश-व्यापी लिपि के रूप में स्थापित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया।

1.3.2.5 लॉर्ड लिटन का दमनकारी तथा लॉर्ड रिपन का उदार शासन

1877 में महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की साम्राज्ञी का पद ग्रहण करने की खुशी में दिल्ली दरबार का आयोजन किया गया। लॉर्ड लिटन के शासनकाल में दुर्भिक्ष की स्थिति में भी आंग्ल-अफ़गान युद्ध में अपव्यय तथा समारोहों का आयोजन करने की प्रवृत्ति भारतीयों को सहन नहीं हुई। अगले वर्ष लॉर्ड लिटन के दमनकारी -'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट', 'इण्डियन आर्म्स एक्ट' तथा 'लाइसेन्स एक्ट' ने स्थिति और भी विस्फोटक कर दी और भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया।

गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880-84) में अनेक सुधार किए गए तथा भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार दिए गए। 1883 में भारतीय न्यायधीशों को गोरों का मुकदमा सुनने तथा उन्हें दण्ड देने के अधिकार विषयक इल्बर्ट बिल न्यायपालिका में रंगभेदी व्यवस्था को समाप्त करने के उद्देश्य से रखा गया था किन्तु इसका एंग्लो इण्डियन समुदाय तथा प्रेस ने प्रबल विरोध किया। भारतीयों ने इस बिल के समर्थन में अपना आन्दोलन किया। इस विषय में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर एंग्लो इण्डियन समुदाय पर आक्षेप करने पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें सज़ा देकर कारावास भेजा गया। जेल से रिहा होने के बाद सुरेन्द्रनाथ बनर्जी देश के सबसे लोकप्रिय राजनीतिक नेता के रूप में वह प्रतिष्ठित हुए।

इल्बर्ट बिल अपने मूल रूप में पारित नहीं हो सका। एंग्लो-इण्डियन समुदाय की मांगों को देखते हुए सरकार ने इसमें किंचित परिवर्तन किए। इससे भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली।

1.4 कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में बताए गए उद्देश्य

1.4.1 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठन

1.4.1.1 ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन

'लैण्ड होल्डर्स सोसायटी' तथा 'बैंगाल ब्रिटिश इण्डियन सोसायटी' ने संगठित होकर भारतीय हितों की रक्षार्थ संघर्ष करने का निश्चय किया। 1853 में चार्टर एक्ट द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारत पर अधिकार के नवीनीकरण से पूर्व इन दोनों संगठनों ने एक साथ मिलकर 1851 में 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियशन' की स्थापना की। इस एसोसियेशन का उद्देश्य चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व देश की कानून व्यवस्था तथा नागरिक प्रशासन में विद्यमान दोषों को दूर करना तथा भारतवासियों के कल्याण को प्रोत्साहित करना था। इसके लिए ब्रिटिश भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश संसद में अपनी बात रखना भी संगठन के कार्यक्रम में शामिल था। इस संगठन का स्वरूप अखिल भारतीय था। 1853 में चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व ही इस संगठन ने कार्यपालिका तथा विधायिका को पृथक करने तथा विधान परिषदों में भारतीय सदस्यों को शामिल किए जाने की मांग की थी।

1.4.1.2 बॉम्बे एसोसियेशन

अगस्त, 1852 में बम्बई के नागरिकों ने 'बॉम्बे एसोसियेशन' की स्थापना की। इस सभा की अध्यक्षता जगन्नाथ शंकरशेथ ने की।

इस संगठन के एक प्रस्ताव में कहा गया -

यह संगठन आवश्यकता पड़ने पर समय-समय पर भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की सरकार को विद्यमान खराबियों के उन्मूलन तथा भविष्य में नुक्सान पहुंचाने वाले निर्णयों पर रोक लगाए जाने के लिए आगाह करता रहेगा।

1.4.1.3 मैड्रास नेटिव एसोसियेशन

कलकत्ता के 'ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' की मद्रास में स्थापित की गई शाखा बाद में 'मैड्रास नेटिव एसोसियेशन' के नाम से फ़रवरी, 1852 में स्थापित हुई। इस संगठन ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण से पूर्व उसके प्रशासन में सुधार के सुझाव हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट को एक याचिका भेजी।

1.4.1.4 ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन

लन्दन में 1866 में दादा भाई नौरोजी ने ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की थी। भारत के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाएं स्थापित की गईं।

1.4.1.5 हिन्दू मेला

राजनारायण बोस के 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' से प्रेरणा लेकर 1867 में नबगोपाल मित्र ने 'हिन्दू मेला' की स्थापना की। इसका उद्देश्य देश की प्रगति हेतु भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य निर्माण आदि का विकास करना था। मेले द्वारा भारतीय उत्पादों की प्रदर्शनी का नियमित आयोजन सराहनीय प्रयास था।

1.4.1.6 पूना सार्वजनिक सभा

1870 में पूना में 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना का उद्देश्य जनता का प्रतिनिधित्व कर उसकी आकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं को सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना था। इस सभा के मार्गदर्शक व संस्थापक एम0 जी0 रानाडे थे। इसके द्वारा महारानी विक्टोरिया को एक याचिका प्रेषित की गई जिसमें भारतीयों को वही राजनीतिक अधिकार दिए जाने की बात कही गई जो कि ब्रिटिश नागरिकों को प्राप्त थे। 1875 में सभा द्वारा ब्रिटिश संसद में भारतीयों को ी प्रतिनिधित्व दिए जाने रखी गई।

1.4.1.7 इण्डियन लीग

बंगाल के प्रगतिषील राजनीतिक चिन्तकों ने 1875 में 'इण्डियन लीग' की स्थापना की। इसका उद्देश्य जनता में राजनीतिक चेतना तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना था।

1.4.1.8 इण्डियन एसोसियेशन

1876 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने आनन्दमोहन बोस, शिवनाथ शास्त्री आदि के साथ मिलकर 'इण्डियन एसोसियेशन' की स्थापना की। कृष्णमोहन बनर्जी इसके प्रथम अध्यक्ष थे। इसके मुख्य उद्देश्य थे -

- देश में जनमत का प्रतिनिधित्व करने वाली एक संस्था का निर्माण करना।
- सामान्य राजनीतिक हितों के आधार पर भारतीय जातियों को एकबद्ध करना।
- हिन्दू-मुस्लिम सद्भाव को बढ़ावा देना।
- राजनीतिक आन्दोलनों में जनता की भागीदारी को बढ़ाना तथा उसमें राजनीतिक जागृति का विकास करना।
- युवाओं को लोकतान्त्रिक प्रणाली की महत्ता से अवगत कराना।

इसके द्वारा आयोजित जनसभाओं में प्रेस की स्वतन्त्रता, ज्यूरी प्रणाली को लागू करना, जातिभेद तथा रंगभेद की भावना का उन्मूलन, नमक कर में कमी, रेलों में थर्ड क्लास के यात्रियों को अधिक सुविधाएं दिया जाना, उच्च प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की अधिक हिस्सेदारी आदि विषयों को उठाया जाता था। 1877 में इस संगठन ने आई0 सी0 एस0 परीक्षा में अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु 21 वर्ष से घटा कर 19 वर्ष किए जाने के विरोध में देश-व्यापी आन्दोलन किया। इस संगठन ने लॉर्ड लिटन द्वारा लागू किए गए 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट', 'इण्डियन आर्म्स एक्ट' तथा 'लाइसेन्स एक्ट' जैसे जातिभेदी व रंगभेदी कानूनों का प्रबल विरोध किया। इस संगठन के प्रयासों से 'इण्डियन स्टेट्यूटरी सर्विस' की स्थापना हुई जिसके कारण मझले स्तर तक के प्रशासनिक पदों पर भारतीयों की नियुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया। 1879 में आयोजित एक जन-सभा में 'इण्डियन एसोसियेशन' ने अफ़गान युद्ध पर हो रहे खर्च से भारत की अर्थ-व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव की चर्चा की तथा ब्रिरटिश कपड़ा मिल मालिकों को लाभ पहुंचाने व भारतीय कपड़ा मिलों के विकास में बाधा पहुंचाने के उद्देश्य से विदेशी कपड़े पर आयात कर हटाने का विरोध किया। 1879 से इस संगठन ने राष्ट्रीय स्तर पर स्वशासन की मांग करना भी प्रारम्भ कर दिया। इस संगठन ने 1879 के विदेशी कपड़ों पर लगाए जाने वाले आयात कर को हटाए जाने का विरोध किया।

1.4.1.9 महाजन सभा

मद्रास में जन-जागृति हेतु 1878 में 'हिन्दू' की स्थापना हुई। इसके समर्थकों ने 1884 में एक राजनीतिक संगठन 'महाजन सभा' का गठन किया। दिसम्बर, 1884 में इस संगठन ने मद्रास प्रेसीडेन्सी के बड़े शहरों के प्रतिनिधियों ने विधान परिषदों में सुधार, न्यायपालिका को राजस्व सम्बन्धी दायित्व से मुक्ति दिलाने तथा नागरिक एवं सैन्य प्रशासन में कमी किए जाने पर चर्चा की और इस विषय में सरकार को एक स्मरणपत्र दिया।

1.4.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

अपने पत्र बैंगाली के 27 मई, 1882 के अंक में नेशनल कान्फ्रेन्स के गठन की आवश्यकता पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा -

क्यों नहीं हमको एक राष्ट्रीय और नहीं तो कम से कम एक प्रान्तीय कांग्रेस का गठन कर लेना चाहिए, जिसमें कि देश के विभिन्न भागों से सार्वजनिक संस्थाओं के प्रतिनिधि अपने विचार रख सकें?

1883 में 28 से 30 दिसम्बर तक कलकत्ता में नेशनल कॉन्फ्रेन्स की प्रथम बैठक हुई। इसमें उठाए गए मुद्दों में मुख्य थे - प्रतिनिधि सभाएं, सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा, न्यायपालिका का कार्यपालिका से अलगाव, फ़ौजदारी न्याय प्रशासन तथा प्रशासनिक सेवाओं में भारतीयों की

नियुक्ति। दिसम्बर, 1885 में कलकत्ते में नेशनल कॉन्फ्रेन्स की दूसरी बैठक हुई जिसमें विधान परिषदों में सुधार किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

1.4.2 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना तथा उसका प्रथम अधिवेशन

1.4.2.1 कांग्रेस की स्थापना की परिस्थितियां

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। लॉर्ड हेस्टिंग्स, एलफ़िन्सटन, टॉमस मुनरो, लॉर्ड मैकॉले और मैटकाफ़ जैसे अधिकारियों ने राजनीतिक एवं संवैधानिक सुधारों के लिए भारतीयों को शासन में हिस्सेदारी दिए जाने की सिफ़ारिश की थी। इण्डियन सिविल सर्विस के सर ए0 ओ0 ह्यूम का मानना था कि भारत का शासन, शासक और प्रजा दोनों के हितों को ध्यान में रखकर चलाना चाहिए। उनका यह भी कहना था कि सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। लॉर्ड लिटन के बदनाम शासन में भारतीय असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया था। इस स्थिति में एक विप्लव की प्रबल सम्भावना बन रही थी।

1.4.2.2 भारत में एक राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक दल की आवश्यकता

सर ए0 ओ0 ह्यूम की दृष्टि में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी जन-विद्रोह के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन जिसके तीन लक्ष्य हों-

पहला, भारत के विभिन्न क्षेत्रों तथा जनसमूहों का सम्मिश्रण।

दूसरा, राष्ट्र का आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उत्थान।

तीसरा, अन्यायपूर्ण व हानिकारक तत्वों को दूर कर भारत तथा इंग्लैण्ड के मध्य सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित करना।

ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। ए0 ओ0 ह्यूम ब्रिटिश भारतीय शासन के लिए एक सेफ्टी वॉल्व के रूप में कांग्रेस की स्थापना करना चाहते थे। उन्हें आशा थी कि प्रबुद्ध भारतीयों की प्रतिनिधि संस्था कांग्रेस की मांगों और उसके सृजनात्मक सुझावों को मानकर सरकार भारतीय प्रजा की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं को एक सीमा तक पूरा कर उनके किसी भी सम्भावित आक्रोश पर नियन्त्रण लगा सकेगी और भारत पर रूस के हमले की स्थिति में रूसी आक्रमणकारी सेना के विरुद्ध

भारतीयों के सहयोग की अपेक्षा कर सकेगी। ग्रेट ब्रिटेन के उदार राजनीतिज्ञ, वहां की उदारवादी दल की सरकार और तत्कालीन भारतीय प्रशासकों ने भी ए0 ओ0 ह्यूम के प्रस्तावों का स्वागत किया। बम्बई में दिसम्बर, 1885 में सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

1.4.2.3 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज परिसर में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। ए0 ओ0 ह्यूम इसके महासचिव थे और इसमें भाग लेने वाले सदस्यों की कुल संख्या 72 थी जिनमें कि अधिकांश बॉम्बे तथा मैड्रास प्रेसीडेन्सी के शहरी मध्यवर्गीय हिन्दू थे। इसके विदेशी सदस्यों में वैडरबर्न और जस्टिस जॉन जॉर्डिन सम्मिलित थे। इस अधिवेशन में सदस्यों ने ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त की और ब्रिटिश भारतीय सरकार की ओर से भी इसे संरक्षण प्रदान किया गया।

- कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः
- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।
- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्श कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।
- इस अधिवेशन में कुल 9 प्रस्ताव पारित किए गए जिनमें कि मुख्य थे -
- भारतीय प्रशासन की कार्यप्रणाली की जांच करने के लिए रॉयल कमीशन की नियुक्ति की जाए।
- भारत सचिव की इण्डियन काउंसिल भंग की जाए।
- पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध और पंजाब में विधान परिषदों का गठन किया जाए।
- उच्चतम तथा स्थानीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों को पर्याप्त संख्या में प्रवेश दिया जाए तथा उन्हें बजट पर बहस करने का अधिकार दिया जाए।

- हाउस ऑफ़ कॉमन्स में एक स्टैण्डिंग काउंसिल का गठन किया जाए जो कि विधान परिषदों में बहुमत से उठाए गए विरोधों पर विचार करे।
- सैनिक व्यय में कमी की जाए तथा इसका बोझ भारत और इंग्लैण्ड मिलकर उठाएं।
- इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों में ही एकसाथ इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन किया जाए तथा अभ्यार्थियों की आयु की अधिकतम सीमा बढ़ाई जाए।

अभ्यास प्रश्न

1. वेदों में व्यक्त राष्ट्रीयता की भावना पर प्रकाश डालिए।
2. दादा भाई नौरोजी को भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का जनक क्यों कहा जाता है?
3. नेशनल कॉन्फ्रेन्स की प्रमुख मांगे क्या थीं?

1.5 सारांश

आदि काल से ही हमारे भारत में देशदेश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। चारो वेदों में, पुराणों तथा महाकाव्यों में राष्ट्रीयता की भावना सर्वत्र व्यक्त हुई है। मध्यकाल में राष्ट्रीयता की भावना के दर्शन हमको चन्द बरदाई और अमीर खुसरो की रचनाओं में महाराष्ट्र के वाराकरी पंथ के सन्तों के उपदेशों में तथा अकबर की प्रशासनिक, आर्थिक व धार्मिक नीति में मिलते हैं।

भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजा राममोहन राय को हम भारतीय राजनीतिक चेतना का भी अग्रदूत कह सकते हैं। 1857 के विद्रोह में देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना प्रबल हुई। भारतीय नवजागरण में धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षिक चेतना के साथ-साथ राजनीतिक चेतना भी विकास हुआ। आर्थिक राष्ट्रवाद के अन्तर्गत दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, दिनशा वाचा, रमेश चन्द्र दत्त, केशब चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अल्ताफ़ हुसेन हाली आदि ने एक ओर जहां ब्रिटिश शासन की आर्थिक दोहन की नीति के कारण भारत की दुर्दशा पर प्रकाश डाला तो दूसरी ओर उन्होंने भारतीयों को आर्थिक स्वावलम्बन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए प्रयास करने का आवाहन किया। शहरी मध्यवर्गीय भारतीय बुद्धिजीवियों ने उदार पाश्चात्य राजनीतिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर भारतीयों के राजनीतिक तथा आर्थिक हितों की रक्षा के लिए अपने-अपने राजनीतिक संगठन बनाए। धीरे-धीरे भारत में राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक संगठन की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा।

अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के पत्रों तथा अनेक भारतीय भाषाओं रचित देशभक्तिपूर्ण साहित्यिक रचनाओं ने भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रसार-प्रचार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। सम्बाद कौमुदी, तत्व बोधिनी पत्रिका, हितवादी, बैंगाल हरकारा, पयामें आज़ादी, हिन्दू पैट्रिएट, सोमप्रकाश, कवि वचन सुधा, मुकर्जीज़ मैग्ज़ीन, ज्ञान प्रकाश, इन्दु प्रकाश, केसरी तथा बैंगाली में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना का प्रचार-प्रसार किया गया।

लॉर्ड लिटन की दमनकारी एवं शोषक नीतियों के कारण भारतीयों का असन्तोष अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया। गवर्नर जनरल लार्ड रिपन के शासन काल (1880-84) में भारतीयों को पहले से अधिक अधिकार दिए गए किन्तु इल्बर्ट बिल विवाद से भारतीयों को संगठित विरोध तथा आन्दोलन की शक्ति का पता चल गया और उन्हें देश में संगठित राजनीतिक आन्दोलन करने की प्रेरणा मिली। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कांग्रेस की स्थापना से पूर्व के राजनीतिक संगठनों में ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन, बॉम्बे एसोसियेशन, मैड्रास नेटिव एसोसियेशन, ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन, हिन्दू मेला, पूना सार्वजनिक सभा, इण्डियन लीग, इण्डियन एसोसियेशन, महाजन सभा तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की नेशनल कान्फ्रेन्स प्रमुख थे।

लोकतन्त्र की जननी इंग्लैण्ड के उदार राजनीतिक वातावरण को भारत में भी स्थापित करने की कामना करने वाले अनेक उदार अंग्रेज़ विचारक तथा अधिकारी भारतीयों को राजनीतिक व संवैधानिक सुधार दिए जाने के पक्ष में थे। इण्डियन सिविल सर्विस के अवकाश प्राप्त अधिकारी सर ए0 ओ0 ह्यूम का मानना था कि सरकार व जनता के मध्य सम्पर्क के किसी संवैधानिक साधन के अभाव के कारण सरकार को भारतीयों की समस्याओं की बहुत कम जानकारी मिल पाती है। उनकी दृष्टि में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी जन-विद्रोह के खतरे को रोकने के लिए सरकार की ओर से कुछ ठोस सुधार किए जाने आवश्यक थे और इन सुधारों में सबसे आवश्यक था राष्ट्रीय आन्दोलन का एक संगठन। ए0 ओ0 ह्यूम भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना कर उसकी वैसी ही भूमिका चाहते थे जैसी कि इंग्लैण्ड में विरोधी दल की होती थी। ग्रेट ब्रिटेन के उदार राजनीतिज्ञ, वहां की उदारवादी दल की सरकार और तत्कालीन भारतीय प्रशासकों ने भी ए0 ओ0 ह्यूम के प्रस्तावों का स्वागत किया। बम्बई में दिसम्बर, 1885 में सर ए0 ओ0 ह्यूम ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई।

28-31 दिसम्बर, 1885 को बम्बई में डब्लू0 सी0 बनर्जी की अध्यक्षता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन सम्पन्न हुआ। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में घोषित उद्देश्य थेः

- भारत के हितैषियों के मध्य सम्पर्क व सद्भाव बढ़ाना।
- धर्म, सम्प्रदाय, जाति, क्षेत्र की संकीर्ण भावना दूर कर राष्ट्रीय एकीकरण के प्रयास करना।

- शिक्षित समुदाय से विचार-विमर्ष कर सामाजिक विषयों पर चर्चा करना।
- भारतीयों के कल्याण हेतु भावी कार्यक्रम की दिशा निर्धारित करना।

इस अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में सरकार से संगभेदी व जातिभेदी नीति का परित्याग करने की अपील किए जाने के अतिरिक्त भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के प्रथम चरण के रूप में भारतीयों को भारतीय प्रशासन, विधि-निर्माण तथा आर्थिक नीति-निर्धारण में हिस्सेदारी दिए जाने की मांग रखी गई।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

आई0 सी0 एस0 : इण्डियन सिविल सर्विस (भारतीय प्रशासनिक सेवा)

वर्नाक्युलरः भारतीय भाषाएं।

पाकः पवित्र

मिल्कियतः सम्पत्ति

रूहानीः आत्मिक प्रकाश

कदीमः पुरातन

नईमः नव्योपहार

ज़रखेज़ः सिंचित

साहिलः किनारा

अहलेवतनः देशवासी

आज के मिती तकः आज के दिन तक

इज़्ज़तो-कौमः देशवासियों का सम्मान

इल्मो-हुनरः ज्ञान व दक्षता

ज़ात का फ़ख्र और नसल का गुरूरः अपनी जाति व अपने वंश का घमण्ड

सीमोज़रः सोना-चांदी

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.1.1 प्राचीनकालीन भारत में राष्ट्रीयता की भावना

2. देखिए 1.3.2.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय

3. देखिए 1.4.1.10 नेशनल कान्फ्रेन्स

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, दो भागों मे, बम्बई, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

चन्द्रा, बिपन - दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेशनलिज़्म इन इण्डिया

नई दिल्ली, 1965

बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

नौरोजी, दादाभाई - पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1902

दत्त, रमेश चन्द्र - दि इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1965

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बम्बई, 1969

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व भारत में स्थापित राजनीतिक संगठनों की भूमिका पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के उद्देश्यों और उसमें पारित प्रस्तावों की समीक्षा कीजिए।

इकाई दो

प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें तथा उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

2.1 प्रस्तावना

2.2. इकाई के प्राप्ति उद्देश्य

2..3 प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें

2..3.1 प्रथम चरण में कांग्रेस का संगठन

2..3.2 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

2.3.3 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

2..3.4 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

2.3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

2.3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

2.3.7 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

2.4 उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

2.4.1 कांग्रेस के प्रथम चरण की सीमाएं

2.4.2 सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में बदलाव लाने में कांग्रेस की असफलता

2.4.3 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपलब्धियां

2.5 सारांश

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2. 8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के प्रारम्भिक राजनीतिक संगठनों के उदय से लेकर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और उसके प्रथम अधिवेशन के उद्देश्य तथा उसमें पारित प्रस्तावों की चर्चा कर चुके हैं। कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम 20 वर्ष की अवधि को नरमपंथियों के राजनीतिक प्रभुत्व का काल माना जाता है। नरमपंथियों ने आर्थिक राष्ट्रवाद का पोषण किया और सरकार की शोषक एवं दमनकारी नीतियों की आलोचना करते हुए उनमें सुधार लाने हेतु सृजनात्मक सुझाव रखे। नरमपंथियों ने भारत और ब्रिटेन के हितों को परस्पर विरोधी होने के स्थान पर एक दूसरे का सहयोगी माना। उनको विश्वास था कि ब्रिटिश सरकार 1858 के महारानी के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों का निष्ठापूर्वक क्रियान्वयन करेगी। उनका विचार था कि सरकार की नीतियों में जो भी दोष हैं उनके लिए स्थानीय सरकार तथा नौकरशाही ज़िम्मेदार है न कि गृह सरकार, ब्रिटिश पार्लियामेन्ट और न ही ब्रिटिश जनता। इसलिए उन तक अपनी बात पहुंचाने के लिए इस काल में सक्रिय राजनीतिक विरोध के स्थान पर कानून की सीमाओं का पालन करते हुए अपनी शिकायतें और मांगे रखी गईं। उनके द्वारा प्रायः अनुनय-विनय के माध्यम से अपने अधिकारों के लिए याचना करने की नीति को अपनाया गया। औपनिवेशिक सरकार कांग्रेस को मुट्ठी भर

शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय हिन्दुओं का राजनीतिक दल मानकर उसकी मांगों पर ध्यान दिए बगैर अपनी शोषक, दमनकारी, जातिभेदी, रंगभेदी व 'फूट डालो और शासन करो' की नीतियों का पूर्ववत पालन करती रही। कांग्रेस ने भारत के सभी धार्मिक, सामाजिक व आर्थिक वर्गों का हितैषी होने का दावा किया किन्तु इसे शहरी मध्यवर्गीय हिन्दुओं का राजनीतिक दल मानकर मुसलमान आमतौर पर इससे अलग रहे। सरकार के प्रति अनावश्यक सहयोग व विनम्रता का रुख अपनाने के लिए कांग्रेस के नरमपंथी नेताओं को उग्रवादियों की कटु आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत में राजनीतिक चेतना के प्रसार में कांग्रेस के इस प्रथम चरण महत्वपूर्ण प्रगति हुई।

2.2. इकाई के प्राप्ति उद्देश्य

इस इकाई में कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसके कार्यों का विवरण तथा उनकी समीक्षा भी की जाएगी तथा उसकी कमियों तथा उसकी उपलब्धियों का आकलन भी किया जाएगा। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके प्रथम बीस वर्षों में किए गए प्रमुख कार्य तथा उसकी नीतियां।

इस अवधि में सरकार के कार्य तथा उसकी नीतियां और कांग्रेस के प्रति उसका रवैया अधिकांश मुसलमानों का स्वयं को कांग्रेस की गतिविधियों से अलग रखना कांग्रेस के भीतर ही उग्रवादियों

द्वारा नरमपंथी नीतियों की आलोचना कांग्रेस की स्थापना के प्रथम चरण में उसकी उपलब्धियां तथा उसकी असफलताएं।

बदरुद्दीन तैयबजी

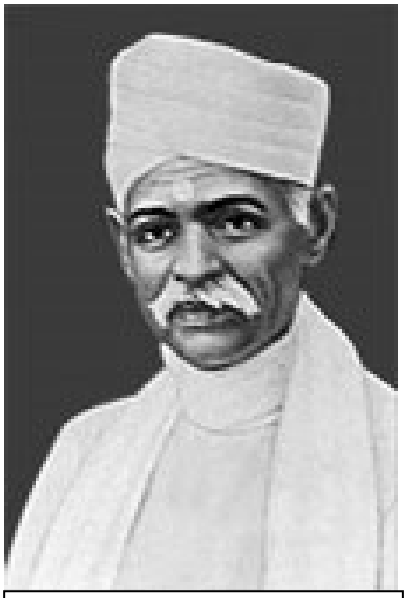

मदनमोहन मालवीय

गोपालकृष्ण गोखले

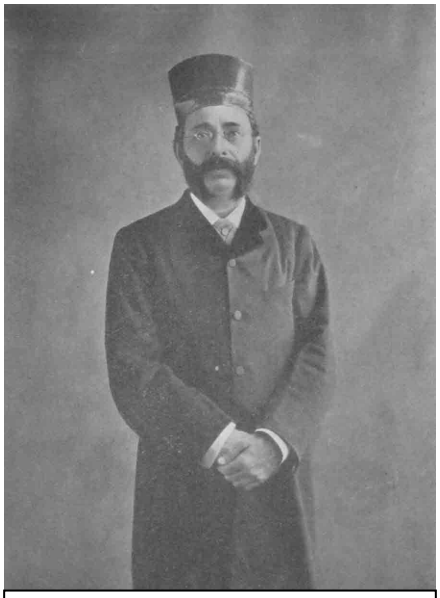

फिरोज़ षाह मेहता

2..3 प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस की मांगें

2..3.1 प्रथम चरण में कांग्रेस का संगठन

कांग्रेस अपने प्रारम्भिक चरण में एक राजनीतिक दल की भूमिका निभाने में असफल हुई थी। वास्तव में इसका काम हर साल के सप्ताहान्त में किसी शहर में देश के राष्ट्रीय नेताओं को सम्मिलित कर तीन-चार दिन का एक आयोजन करने तक सीमित था। इस आयोजन के दौरान रस्मी तौर पर देश की जनता की शाश्वत एवं तत्कालीन समस्याओं को उठाया जाता था। यूं तो कांग्रेस अधिवेशनों के द्वार सभी के लिए खुले थे किन्तु इसके लिए प्रतिनिधि का नाम संगठन के द्वारा प्रस्तावित किया जाना अथवा एक सार्वजनिक सभा में उसका नामांकन किया जाना आवश्यक था। अधिवेशन में प्रतिनिधि बनने के लिए व्यक्ति को 10 से 20 रुपये तक का शुल्क देना होता था और इसके अतिरिक्त उसे अपने स्थान से अधिवेशन के स्थान तक आने जाने के व्यय का भी स्वयं निर्वाह करना होता था। देश की जनता के तत्कालीन आर्थिक संसाधनों को देखते हुए कांग्रेस का सदस्यता शुल्क तथा प्रतिनिधि शुल्क दे सकना आम आदमी के लिए अत्यन्त कठिन था। इसके अतिरिक्त कांग्रेस की कार्रवाही आमतौर पर अंग्रेज़ी भाषा में होती थी। इन कारणों से कांग्रेस अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त शहरी मध्यवर्ग तक सिमटी हुई थी। 1905 में भी नरमपंथी गोपाल कृष्ण गोखले केवल शिक्षित वर्ग के लिए ही राजनीतिक अधिकारों की मांग कर रहे थे क्योंकि उनकी दृष्टि में राजनीतिक विषयों की समझ रखने के लिए शिक्षा एक आवश्यक शर्त थी। कांग्रेस के अधिवेशनों की तड़क-भड़क देखते ही बनती थी। आमतौर पर अधिवेशनों के आयोजनों में ही इसके संसाधनों का अधिकांश भाग खर्च हो जाता था।

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में सदस्यों की कुल संख्या मात्र 72 थी। इसके दूसरे सत्र में यह संख्या पहले सत्र से छह गुने से भी अधिक - कुल 434 हो गई। इसमें जनता के चुने प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मद्रास में हुए कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में प्रतिनिधियों की संख्या 607 हो गई। इलाहाबाद में कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में इसके सदस्यों की संख्या 1248 और 1889 में बम्बई में हुए इसके पांचवे अधिवेशन में यह संख्या बढ़कर 1889 हो गई।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष डब्लू0 सी0 बैनर्जी एक भारतीय ईसाई, दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी एक पारसी, तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी एक मुसलमान और चौथे अधिवेशन के अध्यक्ष जॉर्ज यूल एक अंग्रेज़ थे। इन अध्यक्षों के चयन ने कांग्रेस की धर्मनिर्पेक्षता के सिद्धान्त में आस्था व उसके जातिगत भेदभाव में पूर्ण अविश्वास को स्पष्ट कर दिया।

सन् 1885 से लेकर सन् 1906 तक ए0 ओ0 ह्यूम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऑनरेरी जनरल सेक्रेटरी बने रहे। ह्यूम कांग्रेस के अधिवेशनों के सुचारु संचालन, देश के विभिन्न नेताओं से सम्पर्क, उसके वित्तीय मामलों की देखभाल तथा अधिवेशनों की रिपोर्ट तैयार करने के दायित्वों का निर्वाह

करते थे। वास्तव में गोपाल कृष्ण गोखले से पूर्व ए0 ओ0 ह्यूम ही एक मात्र व्यक्ति थे जिसने अपना पूरा समय कांग्रेस के कार्यों के लिए समर्पित कर रखा था।

2..3.2 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

कांग्रेस के नरमपंथी नेता एडमन्ट बर्क, जॉन स्टुअर्ट मिल तथा जॉन मोर्ले के उपयोगितावादी सिद्धान्तों से प्रभावित थे। कांग्रेस के प्रारम्भिक बीस वर्षों में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी, फ़िरोज़ शाह मेहता, डब्लू0 सी0 बैनर्जी, बदरुद्दीन तैयबजी, रासबिहारी घोष, आनन्द मोहन बोस, लालमोहन बोस, रमेश चन्द्र दत्त, के0 टी0 तैलंग, वीर राघवचारी, आनन्द चारलू, दिनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले, सुब्रह्मण्यम अय्यर, पण्डित मदन मोहन मालवीय, सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि नेताओं ने सरकार की नीतियों की कटु आलोचना करते हुए भी याचिकाओं, शिष्ट मण्डलों, जनसभाओं, पैम्फ्लैटों, स्मरणपत्रों, इंग्लैण्ड में जनता के समक्ष तथा पार्लियामेन्ट में भारत का पक्ष रखने में तथा अखबारों के माध्यम से अपनी निर्भीक राय रखने की रणनीति अपनाई। विलियम वेडरबर्न को इंग्लैण्ड में कांग्रेस की ब्रिटिश कमेटी का अध्यक्ष बनाया गया और कांग्रेस की मांगों को इंग्लैण्ड वासियों के सम्मुख रखने के लिए इण्डिया पत्र का प्रकाशन किया गया।

कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में सरकार के प्रति पूर्ण अविश्वास और विरोध की नीति को नहीं अपनाया क्योंकि उसे विश्वास था कि महारानी के 1858 के घोषणापत्र में दिए गए आश्वासनों के कार्यान्वयन में सरकार आनाकानी नहीं करेगी। कांग्रेस के नेताओं ने उदार ब्रिटिश जनता की सहानुभति प्राप्त कर भारत में राजनीतिक, संवैधानिक, आर्थिक, शैक्षिक व प्रशासनिक सुधार प्राप्त करना सम्भव माना। नरमपंथियों का यह मानना था कि भारतीयों के साथ हो रहे अन्याय तथा ब्रिटिश चरित्र के सर्वथा विरुद्ध शासन के लिए मुख्यतः वाइसराय, उसकी कार्यकारिणी तथा स्थानीय नौकरशाही ज़िम्मेदार है और इसके परिष्कार हेतु ब्रिटिश पार्लियामेन्ट, गृह सरकार और ब्रिटिश जनता तक अपनी शिकायतें पहुंचाना आवश्यक है। दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश पार्लियामेन्ट में तथा गोपालकृष्ण गोखले ने भारत की केन्द्रीय विधान परिषद में भारतीयों की समस्याओं को रखा तथा सरकार की कथनी और उसकी करनी में फ़र्क को उजागर किया। आमतौर पर इन नेताओं को विश्वास था कि कॉब्डेन, बेंथम, ब्राइट, मिल तथा ग्लैड्सटन के देश की जनता तथा सरकार उनके न्यायपूर्ण अधिकारों को दिलाने में उनका साथ देगी। उनका लक्ष्य जनता को राजनीतिक आन्दोलन करने की शिक्षा देना और भारतीयों की आकांक्षाओं को ब्रिटिश जनता और राजनीतिज्ञों तक पहुंचाना था।

कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में संवैधानिक सुधारों की मांगों में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधान परिषदों के कार्यक्षेत्र तथा उसके सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि और उसके सदस्यों को जनता द्वारा निर्वाचित किया जाना सम्मिलित था। प्रशासनिक एवं आर्थिक सुधारों की मांगें रखी गईं।

कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई और व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को महत्व दिया गया। इस काल में भारतीय शासन में भारतीयों की हिस्सेदारी बढ़ाने की मांग की गई। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन भारत में भी करने और इसके हेतु परीक्षा देने वाले अभ्यार्थियों की अधिकतम आयु सीमा बढ़ाने की मांगों को बार-बार रखा गया। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की रंगभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार-बार रखी गई। प्रशासनिक तथा सैनिक व्यय में कमी किए जाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया।

कलकत्ते में आयोजित कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन का अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी को चुना गया। अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए दादा भाई नौरोजी ने ब्रिटिश शासन के कारण भारत की विपन्नता का उल्लेख किया था। दूसरे अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष राजेन्द्रलाल मित्र ने कहा था -

हमारी विदेशी नौकरशाही, जन्म, धर्म और प्रकृति में हमसे भिन्न है। वह हमारी आवश्यकताओं, भावनाओं और आकांक्षाओं को समझ नहीं सकती।

दादा भाई नौरोजी, एम0 जी0 रानाडे, जी0 वी0 जोशी आदि ने भारत के खाद्यान्न तथा अन्य उत्पादन, उसके आयात, निर्यात, प्रति व्यक्ति औसत आय, शासन पर होने वाले व्यय तथा जन-कल्याण पर किए जाने वाले व्यय सम्बन्धी प्रामाणिक आंकड़े एकत्र किए और सरकार से भूमि कर में कमी करने, अपनी अकाल नीति में सुधार करने और भारतीय उद्योग को प्रोत्साहन व संरक्षण देने की मांग की। 1888 में सरकार ने जब नमक कर में वृद्धि की तो कांग्रेस ने इस वृद्धि का विरोध किया क्योंकि इससे सबसे अधिक हानि निर्धन वर्ग को होने वाली थी। कांग्रेस ने पॉन्ड-रूपया सम्बन्ध में भारतीय हितों की उपेक्षा और नवोदित भारतीय मिलों के विकास में बाधा डालने की सरकारी नीति की भी आलोचना की थी।

2.3.3 1892 का इण्डियन काउंसिल्स एक्ट और कांग्रेस

कांग्रेस को यह आशा थी कि भारत में उत्तरदायी सरकार स्थापित किए जाने की दिशा में सरकार की ओर से प्रारम्भिक कदम उठाए जाएंगे और इसके लिए सबसे पहले विधान परिषदों में सदस्यों के निर्वाचन की प्रक्रिया शुरू की जाएगी। 1888 में भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन ने भारत सचिव लॉर्ड क्रास को लिखे गए अपने पत्र में प्रान्तीय परिषदों के कार्यक्षेत्र में विस्तार और उसके सदस्यों की संख्या में वृद्धि करने का सुझाव दिया था तथा उनके सदस्यों के निर्वाचन की बात भी रखी थी। भारत में लॉर्ड डफ़रिन के उत्तराधिकारी लॉर्ड लैन्सडाउन ने भी उसके सुझावों का अनुमोदन किया था किन्तु भारत सचिव लॉर्ड क्रास तथा इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री लॉर्ड सेलिसबरी की दृष्टि में प्रान्तीय परिषदों में चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ किए जाने का अभी उचित समय नहीं था क्योंकि इससे विभिन्न जातियों और वर्गों के हितों की रक्षा कर पाना कठिन हो जाता। 1892 के इण्डियन

काउंसिल्स एक्ट में केन्द्रीय विधान परिषद और प्रान्तीय विधान परिषदों में चुनाव की व्यवस्था लागू नहीं की गई और इसके सदस्यों संख्या व उनके अधिकारों में भी मामूली सी वृद्धि ही की गई और साथ ही साथ इन सभी में सरकारी सदस्यों का बहुमत बना रहा। कांग्रेस को 1892 के इण्डियन काउन्सिल्स एक्ट से घोर निराशा हुई और उसका सरकार की सुधार करने की सदाशयता पर से विश्वास उठने लगा।

2..3.4 1892 के बाद तथा बंगाल विभाजन के निर्णय से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

ब्रिटिश शासनकाल में भारत में अकालों की आवृत्ति और भयावहता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही थी। अकाल की समस्या से निपटने के लिए फ़ैमिन कोड का गठन किया जा चुका था किन्तु उससे भारत की जनता को कोई लाभ नहीं पहुंच रहा था। 1896-97 में पड़े भयंकर दुर्भिक्ष में ब्रिटिश भारतीय क्षेत्र में कुल 50 लाख और 1899-1900 में कुल 10 लाख लोग भुखमरी का शिकार हुए थे। भुखमरी फैलने के दौरान भी भारत से आमतौर पर प्रतिवर्ष दस लाख टन अनाज का निर्यात किया जाता रहा। नरमपंथियों ने सरकार की अकाल नीति की निर्भीक आलोचना की और सरकार से अकाल की स्थिति से निपटने के लिए ठोस और स्थायी कदम उठाने की मांग की।

कांग्रेस की एक प्रमुख मांग थी कि भारतीयों को प्रशासन, न्याय व्यवस्था, सेना, रेलवेज़, षिक्षा तथा अन्य क्षेत्रों में उच्च पदों पर नियुक्त किया जाए। इससे न केवल योग्य भारतीयों को उन्नति के अवसर प्राप्त होते अपितु सरकार के खर्च में भी कमी आती।

लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल की दमनकारी नीतियों का कांग्रेस ने खुलकर विरोध किया। महारानी विक्टोरिया के सिंहासनारूढ़ होने की हीरक जयन्ती पर भारत में भयानक दुर्भिक्ष के समय भी उत्सवों में प्रचुर मात्रा में सरकारी संसाधनों का दुरुपयोग हुआ। कर्ज़न की राजनीतिक दमन और प्रशासनिक अपव्यय की नीतियों पर भारतीयों द्वारा नियन्त्रण न रख पाने की असमर्थता पर 1901 के कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए डी0 एन0 वाचा ने कहा था -

'भारत को यह स्वतन्त्रता या अधिकार नहीं है कि वह अपना प्रशासक चुन सके। यदि उसे ऐसा करने का अधिकार होता तो वह पूरी तरह से स्वदेशी संस्था चुनता जो कि देश का पैसा देश के ऊपर ही खर्च करती।'

दरिद्रता में आकण्ठ डूबे भारत में प्रशासन पर किया जाने वाला व्यय विश्व में किसी भी देश के प्रशासनिक व्यय से अधिक था। प्रशासन तथा सेना की सभी शाखाओं में सभी ऊँचे पदों पर अंग्रेज़ों का एकाधिकार रहा। सरकारी व्यय में निरन्तर वृद्धि होती गई। भारतीय सेना पर भी अत्यधिक व्यय किया जा रहा था और उसका उपयोग विदेशी भूमि पर युद्ध करने के लिए भी किया जा रहा था। भारत में शासन करने के शुल्क के रूप में इंग्लैण्ड भेजे जाने वाले होमचार्ज में निरन्तर वृद्धि हो रही थी। भारतीय ऋण 1901-02 में 312 करोड़ रुपये हो गया था।

कांग्रेस ने इस आर्थिक दोहन की निर्भीकतापूर्वक निन्दा की। 1902 के कांग्रेस अधिवेशन में भारी नमक कर के कारण पर्याप्त नमक खरीद पाने में असमर्थता के फलस्वरूप निर्धन वर्ग में नमक की कमी से होने वाली अनेक बीमारियों के फैलने पर चिन्ता व्यक्त की गई और कपास पर उत्पादन शुल्क हटाने की मांग की गई क्योंकि इससे भारतीय कपड़ा उद्योग के विकास में बाधा पहुंच रही थी। 1904 के कांग्रेस अधिवेशन में दुर्भिक्ष पीड़ित क्षेत्रों में भूमि-कर में रियायत किए जाने की बात भी रखी। सरकार से यह भी अपील की गई कि वह वैज्ञानिक कृषि पद्धति को प्रोत्साहित करने और तकनीकी शिक्षा का प्रसार करने के लिए धनराशि आवंटित करे। देश का आधुनिक ढंग से औद्योगिकीकरण करने में सरकार द्वारा पूरी निष्ठा से अपना सहयोग करने तथा भारतीय उद्योग के संरक्षण के लिए आयातित वस्तुओं पर तटकर (टैरिफ़) लगाने की मांगे कांग्रेस अधिवेशनों में रखी जाने वाली मांगों में शामिल थीं। स्वदेशी उद्योग के विकास को प्रोत्साहन देने के लिए कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियां लगाई गईं। कई स्थानों पर स्वदेशी भंडार खोले गए।

2.3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने धर्मनिर्पेक्ष स्वरूप को पहले ही दर्शा दिया था किन्तु कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में एक भी मुस्लिम सदस्य नहीं था। इसके तीसरे अधिवेशन के अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने मुसलमान भाइयों से कांग्रेस में आने की अपील की। अगले अधिवेशन में मुस्लिम सदस्यों की संख्या में वृद्धि हुई पर अधिकांश मुसलमान अब भी कांग्रेस में स्वयं को सुरक्षित अनुभव नहीं कर पाए। उनको अब भी यह लगता था कि कांग्रेस भारत में हिन्दू राज स्थापित करना चाहती है। सैयद अहमद खान ने कांग्रेस को बंगाली हिन्दुओं के प्रभुत्व वाला दल बताया और यह कहा कि यदि कांग्रेस की मांगे मान ली गईं तो भारत में बंगाली हिन्दुओं का शासन स्थापित हो जाएगा। उन्होंने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। प्रारम्भ में कांग्रेस में मुस्लिम सदस्यों का प्रतिशत 13.5 तक बढ़ा किन्तु 1893 के साम्प्रदायिक दंगों के बाद यह गिरकर 7.1 प्रतिशत रह गया।

2.3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

कांग्रेस अधिवेशनों में सरकार के प्रति बार-बार निष्ठा व्यक्त की गई परन्तु इसके बावजूद इंग्लैण्ड की जनता कांग्रेस को भारत में ब्रिटिश शक्ति के लिए एक खतरा मानती रही। लन्दन के पत्र दि टाइम्स के सम्पादकीय टिप्पणी में कहा गया कि कांग्रेस की मांगे मानकर सरकार भारत में भारतीयों स्वशासन दिए जाने का मार्ग प्रशस्त कर देगी।

गवर्नर जनरल लॉर्ड डफ़रिन प्रारम्भ में कांग्रेस की गतिविधियां सामाजिक मुद्दों तक ही सीमित रखे जाने के पक्ष में था परन्तु बाद में उसने उसके राजनीतिक स्वरूप को स्वीकार किया। सरकार ने कांग्रेस की स्थापना के चार वर्ष बाद ही उसको प्रोत्साहित करने अथवा उसके साथ सहयोग करने की नीति का परित्याग कर दिया। लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने

वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। उसकी दृष्टि में मुट्ठी भर शिक्षित शहरी मध्य वर्ग के दल को जिसको कि भारत के राजनीतिक पटल पर केवल सूक्ष्मदर्शी यन्त्र की सहायता से देख जा सकता था, भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नहीं था। 1888 के बाद सरकारी अधिकारियों को कांग्रेस अधिवेशनों में भाग लेने की अनुमति नहीं दी गई। सरकार ने कांग्रेस के प्रस्तावों की सामान्यतः नितान्त उपेक्षा की। इससे सर ए0 ओ0 ह्यूम को बहुत अधिक निराशा हुई। उन्होंने कहा -

शिक्षित भारतीय समुदाय, प्रेस और कांग्रेस, तीनों की सलाहों को अनसुनी कर सरकार ने अपने निरंकुश होने का सबूत दे दिया है।

कांग्रेस ने सरकार के आर्थिक दोहन की नीति का पर्दाफ़ाश किया। कांग्रेस के द्वारा अपनी नीतियों को आर्थिक दोहन, रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियां ठहराया जाना सरकार को सहन नहीं हुआ। सरकार द्वारा कांग्रेस की प्रगति में बाधा पहुंचाई जाने लगी। 1888 में मैसूर के महाराजा को कांग्रेस को चन्दा देने के लिए वाइसराय डफ़रिन ने फटकार लगाई थी। 1900 में गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने भारत सचिव को लिखे एक पत्र में कांग्रेस को पतन की कगार पर खड़ा बताया था और भारत में अपने शासनकाल में उसके शान्तिपूर्ण अवसान की कामना की थी।

2.3.7 कांग्रेस के भीतर तथा बाहर विरोधी स्वरों का मुखर होना

कांग्रेस में लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिन चन्द्र पाल ने सरकार की नीतियों को मूलतः शोषक, दमनकारी, रंगभेदी तथा जातिभेदी मानते हुए यह साफ़ किया कि सरकार के सदाशय में आस्था रखकर, संविधान की सीमाओं मे रहते हुए तथा सरकार से सहयोग करते हुए कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। लोकमान्य तिलक ने भीख मांगने के स्थान पर लड़कर अपना अधिकार लेने की रणनीति अपनाने के लिए कांग्रेस पर दबाव डाला और कांग्रेस को शिक्षित शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक दल से उसे आम भारतीय जनता का दल बनने की सलाह दी। युवा कवि रबीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कांग्रेस की याचक प्रवृत्ति की आलोचना की थी और सुधारों के लिए आत्मशक्ति पर आधारित कार्यक्रमों की महत्ता दर्शाई थी। कांग्रेस के भीतर ही उभरते हुए विरोधी स्वरों में उसकी कागज़ी कार्यवाही करने की नीति की आलोचना की गई।

2.4 उदार राष्ट्रीयता का मूल्यांकन

2.4.1 कांग्रेस के प्रथम चरण की सीमाएं

कांग्रेस के त्रि-दिवसीय अधिवेशनों में बड़ी-बड़ी मांगे रखने के बाद शेष समय चुपचाप बैठ जाने की उसके नेताओं की दुर्बलता की भी आलोचना की गई। कांग्रेस के 1897 के अमरावती अधिवेशन को अश्विनीकुमार दत्त ने तीन दिनों का तमाशा कहा था। गोपालकृष्ण गोखले और मदनमोहन

मालवीय जैसे नेताओं ने त्यागपूर्ण सार्वजनिक जीवन की मिसाल कायम की परन्तु अधिकांश भारतीय नेता आराम की ज़िन्दगी बिताते हुए अपना अधिकतर समय अपने-अपने व्यवसाय में ही व्यस्त रहने में लगाते थे। दिनशा वाचा ने इस विषय में फ़िरोज़शाह मेहता, एम0 जी0 रानाडे तथा के0 टी0 तैलंग की आलोचना की थी। अनेक नेता कांग्रेस से केवल इसलिए जुड़ना चाहते थे क्योंकि इसकी सदस्यता ग्रहण कर उनकी न केवल सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होती थी अपितु इससे उन्हें बड़े-बड़े अधिकारियों से सम्पर्क स्थापित करने का सुअवसर भी प्राप्त होता था। प्रसिद्ध उर्दू शायर अकबर इलाहाबादी ने इन भारतीय नेताओं की जीवन शैली पर व्यंग्य कसते हुए कहा था-

क़ौम के ग़म में डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ।

रंज लीडर को बहुत हैं, मगर आराम के साथ।।

(देश तथा देशवासियों की चिन्ता करने वाले नेतागण सरकारी अधिकारियों के साथ रात्रि-भोज करते हैं। देशसेवा करने में इनको कष्ट तो बहुत होते हैं मगर इनके विलासितापूर्ण जीवन में कोई बाधा नहीं पड़ती।)

वास्तव में उस समय भारत राजनीतिक चेतना की प्रक्रिया के प्रथम चरण से गुज़र रहा था अतः इसमें आम जनता की भागीदारी नहीं थी बल्कि इसमें वकीलों, पत्रकारों, शिक्षकों आदि शहरी मध्य वर्ग का ही प्रतिनिधित्व था। अपने प्रारम्भिक चरण में कांग्रेस आम भारतीयों का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी और लॉर्ड डफ़रिन का यह कहना एक सीमा तक उचित था-

कांग्रेस रिप्रज़ेन्ट्ज़ दि माइक्रोस्पिक माइनॉरिटी इन इण्डिया।

कांग्रेस के अनेक सदस्यों ने सरकार के श्रमिकों की सुरक्षा हेतु उठाए गए कदमों का केवल इसलिए विरोध किया था क्योंकि उनके स्वयं के हित नवोदित भारतीय उद्योग से जुड़े हुए थे। कैम्ब्रिज स्कूल के इतिहासकार कांग्रेस को एक राष्ट्रवादी राजनीतिक दल नहीं अपितु इसे महत्वाकांक्षी, सत्ता लोलुप मध्यवर्गीयों का आन्दोलन मानते हैं।

2.4.2 सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में बदलाव लाने में कांग्रेस की असफलता

सरकार की नीतियों को बदलने में अथवा उसकी शोषक प्रकृति बदलने में कांग्रेस को बहुत कम सफलता मिली। भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की दिशा में सरकार ने कछुए की गति से भी धीमा रुख अपनाया। सरकार ने 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में विधानपरिषदों में चुनाव की प्रक्रिया षुरू की जाने वाली भारतीयों की मांग को स्वीकार नहीं किया। इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा का आयोजन इंग्लैण्ड के साथ-साथ भारत में नहीं किया गया। उच्च सेवाओं में भारतीयों की संख्या नगण्य ही रही। सरकार प्रशासनिक तथा सैनिक अपव्यय में पूर्ववत लिप्त रही। होमचार्ज बढ़ता ही रहा और भारत से धन का दोहन भी पूर्ववत जारी रहा। भारतीय उद्योग को संरक्षण दिला

पाने में कांग्रेस नाकाम रही और ब्रिटिश भारतीय सरकार अभी भी ब्रिटेन के उद्योगपतियों के इशारों पर नाचती रही। कांग्रेस सरकार की रंगभेदी व जातिभेदी नीतियों में बदलाव लाने में भी असफल रही।

2.4.3 प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की उपलब्धियां

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत में राजनीतिक चेतना का प्रसार करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इसके द्वारा पारित प्रस्तावों का जनता में व्यापक प्रसार-प्रचार किया गया। समाचार पत्रों ने इस संगठन का स्वागत किया। इंग्लैण्ड में भारतीयों की समस्याओं को उठाने में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व विलियम वैडरबर्न, चार्ल्स ब्रैडला तथा जॉन डिग्बी ने किया। धर्मनिर्पेक्ष, अहिंसक राजनीतिक आन्दोलन का सूत्रपात करने के साथ-साथ कांग्रेस के प्रथम चरण के नेताओं ने भारतीयों को एकसूत्र में बांधने का सराहनीय कार्य भी किया। आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में उनका अभूतपूर्व योगदान था। उन्होंने व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा सामाजिक समानता की महत्ता को जन-जन तक पहुंचाया, समाज सुधार हेतु 'नेशनल सोशल कॉन्फ्रेन्स' जैसी संस्थाओं को अपना पूर्ण सहयोग दिया। स्वदेशी की भावना का प्रसार-प्रचार करने में भी उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया था। कांग्रेस के अधिवेशनों के साथ औद्योगिक प्रदर्शनियों का आयोजन कर उन्होंने भारत की आर्थिक आत्मनिर्भरता की महत्ता को जन-साधारण तक पहुंचाया। कांग्रेस के लगभग सभी प्रारम्भिक नेता पत्रकारिता से सम्बद्ध रहे। निर्भीक तथा प्रतिबद्ध पत्रकारिता के उन्नत मापदण्ड स्थापित करने में भी उन्हें सफलता मिली थी। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को हम भारतीय राजनीति का पहला जन-नायक कह सकते हैं। दादा भाई नौरोजी को हम आर्थिक राष्ट्रवाद के जनक के रूप में जानते हैं। कांग्रेस के उग्रवादी नेताओं और महात्मा गांधी जैसे जन-नायकों ने नरमपंथियों से बहुत कुछ सीखा था। महात्मा गांधी को दक्षिण अफ्रीका से भारतीय राजनीति में लाने का श्रेय गोपाल कृष्ण गोखले को जाता है। गांधीजी उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के संस्थापक मदन मोहन मालवीय जैसे नरमपंथी भारत में शिक्षा प्रसार में अमूल्य योगदान के लिए आज भी स्तुत्य हैं। अपने प्रारम्भिक चरण में कांग्रेस ने भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण प्रदान किया था और भविष्य में होने वाले सक्रिय राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1.कांग्रेस के प्रारम्भिक अधिवेशनों में सरकार की आर्थिक नीतियों की आलोचना।

2.प्रथम चरण में कांग्रेस से भारतीय मुसलमानों का अलगाव।

3.कांग्रेस के प्रथम चरण में सरकार का उसके प्रति रवैया।

2.5 सारांश

ए0 ओ0 ह्यूम द्वारा स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक धर्मनिर्पेक्ष राजनीतिक संस्था थी। शिक्षित शहरी मध्यवर्ग लोकतान्त्रिक प्रणाली की स्थापना की दिशा में कांग्रेस के प्रयास अधिक सफल नहीं हुए क्योंकि सरकार अपने सुधारवादी मुखौटे को उतारकर जल्द ही एक दमनकारी, स्वार्थी, शोषक और निरंकुश रूप में प्रकट हो गई। राष्ट्रीय एकीकरण के लिए कांग्रेस के प्रथम चरण में सराहनीय कार्य किया गया। कांग्रेस के प्रथम चरण में प्रेस तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की गई। कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के पृथक्कीकरण की आवश्यकता पर बहुत ज़ोर दिया गया तथा सरकार की नीतियों में रंगभेद व जातिभेद की नीति को पूरी तरह समाप्त किए जाने की मांग बार-बार रखी गई। आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में कांग्रेस का अभूतपूर्व योगदान था। स्वदेशी की भावना का प्रसार-प्रचार करने में भी राष्ट्रीय नेताओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लॉर्ड डफ़रिन ने कांग्रेस को भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले दल के रूप में मान्यता नहीं दी। सैयद अहमद खान ने मुसलमानों को सलाह दी कि वो कांग्रेस से दूर रहें। सरकार ने सदैव यह प्रयास किया कि मुसलमान, भारतीय रियासतों के शासकगण, ज़मींदार, उद्योगपति आदि कांग्रेस से दूरी बनाए रखें।

कांग्रेस अपने प्रथम चरण में सरकार की अन्यायपूर्ण नीतियों में स्वस्थ बदलाव लाने में निष्फल रही। कांग्रेस के भीतर ही रहते लोकमान्य तिलक तथा उनके सहयोगियों ने यह स्पष्ट किया कि सरकार से सहयोग करते हुए और भीख मांगकर कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। कांग्रेस अपने प्रथम चरण में मुख्यतः शहरी मध्य वर्ग तक ही सीमित रही और आम आदमी से इसका जुड़ाव नहीं हो सका किन्तु कांग्रेस ने अपने प्रथम चरण में हर अन्याय का साहसपूर्वक प्रतिकार किया, राष्ट्रीय आन्दोलन को एक स्वस्थ दिशा प्रदान कर स्क्रिय राजनीतिक आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की, जागरूक व प्रतिबद्ध पत्रकारिता के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया और भारतीयों को आवश्यक राजनीतिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराया।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

व्यक्ति स्वातन्त्र्यः नागरिक अधिकारों की रक्षा अर्थात् कानून के दायरे में रहते हुए कुछ भी करने अथवा कहने की स्वतन्त्रता।

आकण्ठः गले तक

क़ौमः जाति, देशवासी।

हुक्कामः अधिकारी गण।

धर्मनिर्पेक्षः धर्म से परे अर्थात् धर्म के बन्धनों से हटकर।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.देखिए 2.3.4 1892 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट से पूर्व कांग्रेस की नीतियां

2.देखिए 2..3.5 कांग्रेस के प्रथम चरण में उसके प्रति मुसलमानों का दृष्टिकोण

3.देखिए 2..3.6 कांग्रेस के प्रति भारतीय सरकार, गृह सरकार तथा ब्रिटिश जनता का रवैया

2. 8. सन्दर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, (भाग 1 व 2), बम्बई, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

चन्द्रा, बिपन - दि राइज़ एण्ड ग्रोथ ऑफ इकानॉमिक नेषनलिज़्म इन इण्डियानई दिल्ली, 1965

बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाषक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

2.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

नौरोजी, दादाभाई - पॉवर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया, लन्दन, 1902

घोष, पी0 सी0 - दि डवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1960

सीतारमैया, पी0 - दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1946

नन्दा, बी0 आर0 - गोखले, दि इण्डियन मॉडरेट्स एण्ड दि ब्रिटिश राज, दिल्ली, 1977

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.आर्थिक राष्ट्रवाद के विकास में नरमपंथियों के योगदान का आकलन कीजिए।

2.कांग्रेस के प्रथम चरण में उसकी उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।

उग्रवादी आन्दोलन के उदय के कारण

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पूर्व भारत में उग्र राष्ट्रवाद का विकास

3.3.1 प्राचीन भारत में राष्ट्रवादी भावना का विकास

3.3.2 मध्यकालीन भारत में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

3.3.3 पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

3.3.3.1 उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन

3.3.3.2 आर्यसमाज

3.3.3.3 स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन

3.3.3.4 थियोसोफ़िकल सोसायटी

3.3.4 उग्र राष्ट्रवादी साहित्य का विकास

3.3.4.1 बंकिमचन्द्र चटर्जी

3.3.4.2 अन्य राष्ट्रवादी साहित्यकार

3.4 भारत में उग्र राजनीतिक विचारधारा का विकास

3.4.1 नरमपंथियों की नीतियों के प्रति आक्रोश

3.4.2 लोकमान्य तिलक

3.4.3 लाला लाजपत राय

3.4.4 बिपिन चन्द्र पाल

3.4.5 अरबिन्दो घोष

3.4.1.5 अन्य उग्रवादी नेता

3.5 उग्रवाद की असफलताओं और उसकी उपलब्धियों का आकलन

3.5.1 सरकार द्वारा उग्रवाद का दमन

3.5.2 उग्रवाद का स्वतः शिथिल पड़ना

3.5.3 उग्रवादी आन्दोलन की असफलताएं

3.5.4 उग्रवादी आन्दोलन की उपलब्धियां

3.6 सारांश
3.6 पारिभाषिक शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भारतीयों में अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम और समर्पण की भावना के दर्शन होते हैं। हमारे वेदों, पुराणों तथा साहित्य में अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। भारत पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिन्दुओं की दृष्टि में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ उठाया जाने वाला हर प्रयास देशभक्ति माना जाने लगा। भारतीय संस्कृति और परम्परा में फिर से अभिरुचि और भारत के गौरवशाली अतीत के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता भारतीय नवजागरण की एक प्रमुख विशेषता थी। एशियाटिक सोसायटी तथा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफ़िकल सोसायटी आदि पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों व बंकिम चन्द्र, एच0 एन0 आप्टे जैसे साहित्यकारों ने भारत में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उग्र राष्ट्रवाद के विकास में अपना योगदान दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक भारत में औपनिवेशिक शासन की दमनकारी एवं शोषक नीतियों का खुलासा हो चुका था। अब सरकार के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सहयोग कर भारतीयों के लिए शासन के हर क्षेत्र में सुधार की अपेक्षा करने की नीति की निरर्थकता सिद्ध हो चुकी थी। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो घोष आदि उग्रवादियों ने भारतीयों को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए भीख मांगने के स्थान पर लड़ना सिखाया। उग्रवादी भारतीय धर्म, संस्कृति और उसके गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने के पक्षधर थे। उनके आलोचकों ने उन पर हिन्दू राष्ट्रवाद को पोषण देने का आरोप लगाया। उग्रवादियों ने स्वराज, स्वशासन तथा स्वदेशी को अपना राजनीतिक लक्ष्य बनाया तथा राजनीतिक आन्दोलन में आम आदमी की सहभागिता को महत्ता दी। बंगाल विभाजन के विरुद्ध उग्रवादियों ने सक्रिय राजनीतिक विरोध का मार्ग अपनाया। 1907 में नरमपंथियों व उग्रवादियों में मतभेद बढ़ जाने के कारण कांग्रेस का विभाजन हो गया। सरकार ने उग्रवादियों के दमन हेतु कठोर कदम उठाए। 1908 के बाद उग्रवादी आन्दोलन मन्द पड़ गया किन्तु उग्रवादियों के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को आने वाले समय में राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बना लिया गया।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में उग्रवादियों की विचारधारा, उनकी कार्य-शैली व राष्ट्रीय आन्दोलन पर उग्रवादियों के प्रभाव से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1 - भारत में उग्र राष्ट्रवाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2 -पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों में उग्र राष्ट्रवाद के तत्व

3 - उग्र राष्ट्रवादी साहित्य

4 - बाल-लाल-पाल की त्रिमूर्ति, अरबिन्दो घोष तथा अन्य उग्र राष्ट्रवादियों के विचार तथा उनकी कार्य-प्रणाली

5 - उग्रवादियों का विरोध तथा उनका दमन

6 - भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादियों के योगदान का आकलन

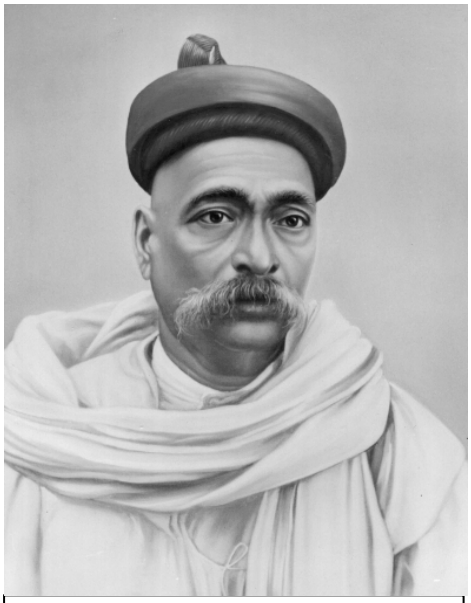

लोकमान्य तिलक

लाला लाजपत राय

बिपिन चन्द्र पाल

सुब्रमण्य भारती

3.3 उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से पूर्व भारत में उग्र राष्ट्रवाद का विकास

3.3.1प्राचीन भारत में राष्ट्रवादी भावना का विकास

प्राचीन काल में भारतीयो में देश प्रेम की भावना के सर्वत्र दर्शन होते हैं। वेदों में राष्ट्र की रक्षा और सुरक्षा, एकता और संगठन पर अनेक बार प्रकाश डाला गया है। वेदों में अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने का उपदेश दिया गया है और राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। भारतमाता की परिकल्पना भी वैदिक साहित्य में ही विकसित हुई है। पुराण भारत महिमा से भरे हुए हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है -

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरुत्वात्।।

(इस देश की महिमा का देवता भी गान करते हैं। वे लोग धन्य हैं जो इस पवित्र भारतभूमि में जन्म पाते हैं। देवत्व की समाप्ति पर यहाँ मानव-जाति में जन्म पाने के लिए देवगण भी लालसा करते हैं।)

हमारे महाकाव्यों - रामायण और महाभारत में, भी स्वदेश-प्रेम और स्वदेशी की भावना मुखरित हुई है। कालिदास की रचनाओं में भारतीय इतिहास के गौरवशाली अध्याय का चित्रण मिलता है।

3.3.2 मध्यकालीन भारत में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

मध्यकाल में हमारे देश में प्रान्तीयता तथा क्षेत्रवाद के भाव ने हमारी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। देशप्रेम अब अपने राज्य अथवा अपने क्षेत्र तक सिमट कर रह गया। भारत पर मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो जाने के बाद हिन्दुओं की दृष्टि में हिन्दू धर्म की रक्षार्थ उठाया जाने वाला हर प्रयास देशभक्ति माना जाने लगा। मध्यकाल में हिन्दू राष्ट्र की अवधारणा का विकास हुआ। विजय नगर के शासकों ने 'हिन्दूराय सुरत्न' की उपाधि धारण की। दिल्ली के शासक हेमू ने 'सम्राट हेमचन्द्र विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की। महाराष्ट्र में वाराकरी पंथ के सन्तों ने महाराष्ट्र धर्म का विकास कर धर्म, संस्कृति और भाषा को आधार बनाकर मराठा जाति को एकसूत्र में बांधने का सफल प्रयास किया। मेवाड़ के महाराणा प्रताप स्वयं को 'हिन्दूकुल कमल-दिवाकर' कहलाने में गर्व का अनुभव करते थे। जैसोर के षासक महाराज प्रतापादित्य ने मुगल शासनकाल में स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का प्रयास किया था।

बर्दवान के शासक राजा सीताराम राय ने भी हिन्दुओं के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रयास किया था। महाराष्ट्र में 1674 में छत्रपति के रूप में अपना राज्याभिषेक कर शिवाजी ने 'हिन्दवी स्वराज्य' की स्थापना की थी। कवि भूषण शिवाजी को हिन्दू धर्म, आचार-विचार और संस्कृति का रक्षक और अपनी तलवार से हिन्दू धर्म व हिन्दुओं के शत्रु बादशाह औरंगज़ेब के मान का मर्दन करने वाला कहते हैं -

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,

अस्मृति पुरान राखे बेद-विधि सुनी मैं।

राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की,

धरा मैं धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी मैं।

भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,

देस-देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।

साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,

दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं।।

कविवर बिहारी जैसे श्रृंगारिक कवि ने अपने संरक्षक आमेर के शासक मिर्ज़ा राजा जयसिंह को विजातीय औरंगज़ेब के आदेश पर स्वजातीय शिवाजी पर आक्रमण करने को शिकारी के कहने पर बाज द्वारा अपनी ही पक्षी जाति का शिकार करने के समान निन्दनीय बताया था -

स्वारथ, सुकृत न, श्रम वृथा, देख विहंग बिचारि,

बाज पराए पान परि, तू पच्छीन न मार।।

प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने 'हिन्दू-पद-पादशाही' का स्वप्न देखा था जिसको कि उसके पुत्र पेशवा बाजीराव प्रथम ने साकार रूप देने का प्रयास किया था। 1761 में पेशवा बालाजी बाजीराव के आदेश पर सदाशिव राव भाऊ व विश्वास राव के नेतृत्व में मराठों ने हिन्दू साम्राज्य की स्थापना कर दिल्ली को उसका एक अंग बनाने के लिए उत्तर भारत की ओर अभियान किया था। पंजाब के महाराणा रंजीत सिंह ने सिक्ख तथा हिन्दू परम्पराओं को संरक्षण प्रदान किया था।

3.3.3 पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

3.3.3.1 उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक पुनरुत्थानवादी आन्दोलन

भारतीय संस्कृति और परम्परा में फिर से अभिरुचि और भारत के गौरवशाली अतीत के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता भारतीय नवजागरण की एक प्रमुख विशेषता थी। भूतकाल की अपनी उपलब्धियों के ज्ञान ने भारतीयों में आत्मविश्वास जाग्रत किया। एशियाटिक सोसायटी से सम्बद्ध विद्वानों ने मौलिक शोध करके तथा महत्वपूर्ण भारतीय ग्रंथों का अनुवाद करके ने पाश्चात्य जगत को भारतीय धर्म, दर्शन और साहित्य की महानता से परिचित कराया। जागरूक भारतीयों में धीरे-धीरे हीन भावना समाप्त होती जा रही थी। उन्हें अपने गौरवशाली अतीत के ज्ञान से वर्तमान दुर्दशा को सुधारने की प्रेरणा मिली। अपने देश की वैभवशाली परम्परा को पुनर्जीवित करने के लिए वह प्रयत्नशील हो गए। 'यंग बैंगाल' के जनक विवियन डेरोज़ियो ने भारतीयों को अपने गौरवशाली इतिहास पर गर्व करना सिखाया। सनातनधर्मी राजा राधाकान्त देव पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के एक प्रमुख स्तम्भ थे। उन्होंने सन् 1851 में प्रसिद्ध प्राच्यवादी मैक्समुलर को लिखा था -

मेरी सबसे बड़ी अभिलाषा है यही है कि मेरे देश में जहाँ कि संस्कृत का अध्ययन उपेक्षित हो रहा है, उसे पुनर्जीवित किया जाय।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में ही हिन्दू समाज के पुनरुत्थान हेतु प्रयास प्रारम्भ हो गए थे। बंगाल में नबगोपाल मित्र के 'नेशनल एसोसियेशन' तथा कमल कृष्ण देव और कालीकृष्ण देव द्वारा स्थापित 'सनातनधर्मरक्षिणी-सभा' ने पुनरुत्थानवादी आन्दोलन की शुरूआत की। 'सनातनधर्मरक्षिणी सभा' की गतिविधियों में हिन्दू शास्त्रों की व्याख्या तथा शास्त्रीय संस्कारों का पुनरुत्थान सम्मिलित थे।

3.3.3.2 आर्यसमाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज का लक्ष्य वैदिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करना था। आर्य समाज ने वैदिक धर्म पर प्रहार करने वालों के प्रति आक्रामक रूप धारण किया। वैदिक धर्म की रक्षा करते हुए उन्होंने मुस्लिम और ईसाई धर्म प्रचारकों की आक्रामकता का उनकी ही शैली में उत्तर दिया। जिन हिन्दुओं ने अपना धर्म परिवर्तित कर लिया था, उनके लिए अपने धर्म में वापस लौटने के सभी मार्ग हिन्दू समाज ने अवरुद्ध कर दिए थे परन्तु दयानन्द सरस्वती ने अपने शुद्धि आन्दोलन के द्वारा ऐसे लोगों के लिए अपनी शुद्धि करा के फिर से हिन्दू बनने का रास्ता साफ़ कर दिया। आर्य समाज को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि उसने हिन्दुओं में व्याप्त हीनभावना का उन्मूलन करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। आर्य समाज द्वारा स्थापित विद्यालयों और पाठशालाओं में वैदिक मूल्यों के संरक्षण का समुचित प्रबन्ध किया गया और संस्कृत भाषा व देवनागरी लिपि को विशेष महत्व दिया गया। स्वामीजी ने स्वराज और स्वदेशी की महत्ता को दर्शाया। उन्होंने अंग्रेज़ों के स्वदेश प्रेम और उनकी स्वदेशी की भावना की प्रशंसा की। स्वामीजी ने देशवासियों के लिए विदेशी सुराज की तुलना में दोषपूर्ण स्वराज को श्रेयस्कर माना। स्वामी दयानन्द सरस्वती भारतीय सामाजिक परिष्कार हेतु विदेशी शासकों व सुधारकों की सहायता और उनका मार्ग-दर्शन आवश्यक नहीं समझते थे अपितु इस विषय में भी उन्होंने भारतीयों को आत्म-निर्भर होने का उपदेश दिया।

दयानन्द सरस्वती के अनुयायी स्वामी श्रद्धानन्द ने भारतीयों को पश्चिम की अंधी नकल न करने का उपदेश दिया। दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेजों की स्थापना कर दयानन्द सरस्वती के अनुयायियों ने भारतीयों को भारतीय मूल्यों का संरक्षण करने वाली आधुनिक शिक्षा का विकास किया। स्वामी श्रद्धानन्द ने वैदिक मूल्यों को आदर्श बनाकर हरद्वार में गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की।

3.3.3.3 स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन

विवेकानन्द को प्राचीन काल के गौरवशाली भारत का घोर पतन देखकर अपार कष्ट हुआ। दरिद्रता, अज्ञान, निराशा, विघटन और कट्टरता ने भारतीयों की उन्नति के सभी द्वार बन्द कर दिए थे। दरिद्र भारतीयों की दशा सुधारने के लिए उन्हें धनधान्य से परिपूर्ण पाश्चात्य जगत की सहायता की आवश्यकता थी पर इस धन को वो भीख में नहीं लेना चाहते थे, इसके बदले में वो पष्चिम को भारतीय आध्यात्म से अवगत करा वहां के निवासियों की आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करना चाहते थे। उन्होंने पश्चिम से समानता तथा स्वतन्त्रता की भावना और कार्य करने की ऊर्जा ग्रहण कर उसे भारतीयों के उत्थान हेतु प्रयुक्त किया परन्तु उन्होंने आत्मनिर्भरता को उन्नति और मुक्ति की आवश्यक शर्त माना। स्वामीजी पश्चिम की भौतिक उन्नति व वैज्ञानिक प्रगति के प्रशंसक थे किन्तु उसकी आध्यात्मिक अवनति से वो चिन्तित भी थे।

विवेकानन्द के सन्देश में राष्ट्रवाद सन्निहित था। उनका गोरों की और पश्चिम की श्रेष्ठता के सिद्धान्त में कोई आस्था नहीं थी। उनकी दृष्टि में पश्चिम की भौतिकवादी प्रगति भारतीय आध्यात्मिक उन्नति के समक्ष फीकी थी।

3.3.3.4 थियोसोफ़िकल सोसायटी

थियोसोफ़िकल सोसायटी की विचारधारा वेदो, उपनिषदों तथा बौद्ध साहित्य से विशेष रूप से प्रभावित थी। श्रीमती एनीबीसेन्ट ने 1893 में थियोसोफ़िकल सोसायटी के अड्यार (मद्रास) केन्द्र की कमान सम्भाली। थियोसोफ़िकल सोसायटी ने हिन्दुओं को अपने धर्म और अपनी संस्कृति पर गर्व करने का संदेश दिया। इस पुनरुत्थानवादी आन्दोलन ने आर्य समाज की भांति भारतीयों को अपने गौरवशाली अतीत पर और अपनी समृद्ध धार्मिक व दार्शनिक धरोहर पर गर्व करना सिखाया।

3.3.4 उग्र राष्ट्रवादी साहित्य का विकास

3.3.4.1 बंकिमचन्द्र चटर्जी

नवजागरणकालीन पुनरुत्थानवादी लेखकों ने प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव तथा मुसलमानों के विरुद्ध राजपूतों, मराठों व सिक्खों के वीरतापूर्ण संघर्ष का गुणगान किया। इन लेखकों में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का नाम सर्वप्रमुख है। बंकिम भारतीय पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के अग्रणी नेता थे। उन्होंने अपने उपन्यास राजसिंह में मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के नेतृत्व में राजपूत स्वतन्त्रता संग्राम का वर्णन किया। उनके उपन्यास दुर्गेश नन्दिनी में हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। आनन्द मठ में उन्होंने सन् 1770 के बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि में आततायी मुस्लिम शासकों के विरुद्ध देशभक्त सन्तानों के सफल संघर्ष की गाथा वर्णित की। इसी उपन्यास में उन्होंने भारतमाता की स्तुति करने वाला 'वन्दे मातरम्' मन्त्र दिया। इस राष्ट्रगान में बंगाल की हरी-भरी धरती की शोभा का गुणगान किया गया है और ऐसी सुखदायिनी मातृभूमि का मानवीकरण करके उसे माँ के रूप में प्रतिष्ठित कर उसको विद्या, धर्म, कर्म, प्राण तथा शक्ति का आधार और शत्रुओं का विनाश करने वाली बताया गया है। बंगाल के सात करोड़ निवासियों के कण्ठों से मातृभूमि की वन्दना और उनकी चौदह करोड़ भुजाओं में उसकी रक्षा हेतु शस्त्र धारण करने की कामना करोड़ों देशवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार करने में सफल रही -

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्

शस्य श्यामलां मातरम्।

शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्

फुल्ल कुसमित द्रुम दल शोभिनीम्

सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्। वन्दे मातरम्।

सप्त कोटि कंठ कलकल निनाद कराले

द्विसप्त कोटि भुजैधृत खर करवाले

अबला केनो माँ तुमि एतो बले!

बहुबल धारिणीम् नमामि तारिणीम्

रिपुदल वारिणीम् मातरम्। वन्दे मातरम्।

3.3.4.2 अन्य राष्ट्रवादी साहित्यकार

मराठी भाषा में एच0 एन0 आप्टे का ऐतिहासिक उपन्यास वज्रघात राष्ट्रवादी साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है। हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का काव्य-नाटक भारत दुर्दशा भारत के गौरवशाली अतीत और वर्तमान में उसकी दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करता है। उनका नाटक अन्धेर नगरी अप्रत्यक्ष रूप से भारत में ब्रिटिश शासन की असंगतताओं व अन्यायपूर्ण नीतियों पर कटाक्ष करता है। अल्ताफ़ हुसेन हाली का उर्दू में महाकाव्य - मुसद्दसे हाली इस्लाम के गौरशाली अतीत का उल्लेख करते हुए मुसलमानों की वर्तमान में दुखद स्थिति का विश्लेषण करता है। पश्चिम की इस अंधी नकल करने की प्रवृत्ति ने भारतीयों को अपने ही घर में, अपने ही देश में बेगाना बना दिया था। मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने पश्चिमी सभ्यता के दीवानों, इन तथाकथित मुहज़्ज़ब (सभ्य) भारतीयों पर कटाक्ष करते हुए कहा था -

हुए इस क़दर मुहज़्ज़ब, कभी घर का मुहँ न देखा।

कटी उम्र होटलों में, मरे अस्पताल जाकर।।

रबीन्द्र नाथ टैगोर के उपन्यास गोरा का नायक अपनी भारतीयता पर गर्व करता है और पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाले शिक्षित भारतीयों की भर्त्सना करता है। तमिल के महान राष्ट्रवादी कवि सुब्रमण्य भारती ने अपनी देशभक्तिपूर्ण काव्य रचनाओं से उग्र राष्ट्रवाद के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था।

3.4 भारत में उग्र राजनीतिक विचारधारा का विकास

3.4.1 नरमपंथियों की नीतियों के प्रति आक्रोश

उच्च मध्यम वर्ग के पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त कांग्रेस के नरमदलीय नेता स्वयं को स्वामिभक्त देशभक्त कहलाना पसन्द करते थे। उत्तरदायी सरकार की स्थापना की दिशा में अपने लक्ष्य को वे संवैधानिक साधनों के माध्यम से ही प्राप्त करना चाहते थे। कांग्रेस की गतिविधियां किसी भी तरह जन-आन्दोलन से जुड़ी हुई नहीं थी। इसी कारण अपनी स्थापना के पहले बीस सालों में कांग्रेस सरकार को वांछित सुधार करने के लिए विवश नहीं कर पाई। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में शिक्षित बेरोज़गारों की संख्या में वृद्धि, अकालों की पुनरावृत्ति, प्लेग जैसी महामारी का प्रकोप और उससे निपटने में सरकार की नाकामी, महंगाई की मार और ग्रामीण व शहरी जनता के असन्तोष का कठोरतापूर्वक दमन करने की सरकार की नीति ने उग्र विचारधारा रखने वालों को सरकार से नाराज़ और कांग्रेस से विमुख कर दिया था। औपनिवेशिक सरकार के सुधार करने के खोखले वादों पर भरोसा करने वाले नरमपंथियों के प्रति उग्रवादी विचारधारा के नवयुवकों में आक्रोश बढ़ता जा रहा था। इंग्लैण्ड के इतिहास और पाश्चात्य संस्कृति के प्रति नरमपंथियों की श्रद्धा रखने की प्रवृत्ति भी उग्रवादियों को स्वीकार्य नहीं थी। उग्रवादी नरमपंथियों की भांति औपनिवेशिक सरकार को भारत में शान्ति, व्यवस्था स्थापित करने, उसका एकीकरण करने का और उसका आधुनिकीकरण करने का श्रेय नहीं देते थे। गरमदलीय वर्ग सरकार के समक्ष नरमपंथियों के भिक्षुक के समान व्यवहार, उनके पश्चिमोन्मुख आचार-विचार और आम जनता से उनकी दूरी की कटु आलोचना करने लगा था। इटली पर अबीसीनिया की विजय और रूस पर जापान की विजय ने यूरोपीय अपराजेयता के मिथक को तोड़ दिया था। आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन ने स्वशासन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार पर आर्थिक बहिष्कार कर दबाव डालने की नीति अपनाने के लिए प्रेरित किया था। स्वदेशी की प्रतिध्वनि श्रीमती एनीबीसेन्ट के विचारों में सुनाई पड़ती है। सन् 1903 में उन्होंने लिखा -

भारत का शासन भारतीयों की भावनाओं, परम्पराओं, विचारों और सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

3.4.2 लोकमान्य तिलक

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण में राष्ट्रवाद का नैतिक आधार अपने ही देश के इतिहास, धर्म और संस्थाओं में खोजा जा रहा था। उग्रवादी राजनीतिक दासता से भी बड़ा अभिशाप मानसिक दासता को मानते थे। सदियों तक गुलाम रहे भारतीयों की दासता की प्रवृत्ति को तथा राष्ट्रीय चरित्र को बदलने की आवश्यकता थी। लोकमान्य तिलक ने हिन्दू पुनरुत्थान, व्यापक जन-सम्पर्क और सीधी कार्रवाही पर ज़ोर दिया। लोकमान्य तिलक औपनिवेशिक शासन के शोषक एवं दमनकारी स्वरूप की एक-एक रग से वाकिफ़ थे। उन्हें अंग्रेज़ों से राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षिक अथवा किसी

भी प्रकार के सुधार की कोई अपेक्षा नहीं थी। अपने अंग्रेज़ी पत्र मराठा तथा मराठी भाषा के पत्र केसरी में उन्होंने सरकार की राजनीतिक, प्रशासनिक, शैक्षिक एवं आर्थिक नीति की आलोचना के साथ भारतीयों को अपने आर्थिक-सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं राजनीतिक उत्थान हेतु स्वयं प्रयास करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था। लोकमान्य ने स्वदेशी की महत्ता का व्यापक प्रचार किया था। केसरी में लोकमान्य ने लिखा था -

वास्तव में स्वदेशी एक विस्तृत विषय है जिसके अन्तर्गत राजनीतिक और आर्थिक, वो सभी मुद्दे आते हैं जिनके आधार पर कोई देश विकसित और सभ्य देशों की श्रेणी में आता है। यदि कोई व्यक्ति इमानदारी के साथ स्वदेशी है तो वह हर क्षेत्र में स्वदेशी के चलन के लिए प्रयास करेगा अन्यथा वह झूठा और ढोंगी स्वदेशी है।

लोकमान्य तिलक ने भीख मांगने के स्थान पर लड़कर अपना अधिकार लेने की रणनीति अपनाने के लिए कांग्रेस पर दबाव डाला और कांग्रेस को शिक्षित शहरी मध्यवर्ग के राजनीतिक दल से उसे आम भारतीय जनता का दल बनने की सलाह दी। लोकमान्य द्वारा कांग्रेस की कागज़ी कार्यवाही करने की नीति की आलोचना की गई। कांग्रेस के त्रि-दिवसीय अधिवेशनों में बड़ी-बड़ी मांगे रखने के बाद शेष समय चुपचाप बैठ जाने की उसके नेताओं की दुर्बलता की भी उन्होंने आलोचना की।

लोकमान्य ने ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा समाज सुधार के नाम पर भारतीयों की सामाजिक परम्पराओं में हस्तक्षेप करने की नीति का विरोध किया। उन्होंने 1891 के 'एज ऑफ़ कन्सेन्ट बिल' का विरोध किया। महाराष्ट्र में राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान कराने वाले जो तत्व सहायक बने वे थे - 'गणपति महोत्सव' तथा 'शिवाजी महोत्सव' की शुरूआत। लोकमान्य तिलक के गणपति तथा शिवाजी महोत्सवों के प्रारम्भ के पीछे जो प्रेरणा काम कर रही थी वह थी - अपने परंपरागत आदर्श चरित्रों का गुणगान कर उनसे शक्ति अर्जित करना तथा उनके सत्कार्यों को देश की तात्कालिक मांगों के अनुरूप प्रासंगिक ठहराना। गणेशोत्सव के बहाने लोकमान्य ने सभी वर्गों व सभी समुदायों को छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष आदि का भेद मिटाकर एक मंच पर एकत्र कर उन्हें सामाजिक समता व एकता का सन्देश दिया और धीरे-धीरे इसके माध्यम से उन्होंने राजनीतिक एकता का प्रचार-प्रसार किया। अपने धार्मिक मूल्यों और अपनी सांस्कृतिक धरोहर के पुनरुत्थान हेतु गणेशोत्सव का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है।

1894 में लोकमान्य द्वारा रायगढ़ के किले में पहला शिवाजी-उत्सव मनाया गया। शिवाजी उत्सव का लक्ष्य शिवाजी के 'स्वराज' प्राप्ति के लक्ष्य को फिर से हासिल करना था। शिवाजी उत्सव में लोकमान्य तिलक ने भारतीय युवाओं का आवाहन किया कि वो स्वस्थ बनें, स्फूर्तिवान बनें, साहसी बनें और अन्याय का प्रतिकार करने में सक्षम बनें।

महाराष्ट्र में प्लेग कमिश्नर रैण्ड द्वारा प्लेग से निपटने के लिए जो उपाय अपनाए उनसे जनता को बहुत परेशानी हुई। 15 जून, 1897 को अपने पत्र केसरी में लोकमान्य तिलक ने शिवाजी द्वारा अफ़ज़ल खां की हत्या का उल्लेख करते हुए अन्यायी का वध करना उचित ठहराया था। ठीक सात दिन बाद चापेकर बंधुओं ने रैण्ड की हत्या कर दी। तिलक पर हिंसा भड़काने वाला लेख लिखने का आरोप लगाया गया और उन्हें 18 महीने का सश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। जेल से छूटने के बाद लोकमान्य ने अपना नारा दिया -

स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं इसे लेकर रहूंगा।

लोकमान्य तिलक ने बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को केवल बंगाल के लिए नहीं अपितु समस्त भारत के लिए दुर्भायपूर्ण बताया। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ बॉम्बे प्रेसीडेन्सी में अनेक स्थानों पर बहिष्कार के समर्थन में जन-सभाओं का आयोजन किया। बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने और स्वराज्य प्राप्ति व आर्थिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वदेशी आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। राष्ट्रीय एकीकरण भी स्वदेशी आन्दोलन का एक प्रमुख लक्ष्य था।

कांग्रेस ने 1905 के अधिवेशन में ब्रिटिश कपड़ों के बहिष्कार हेतु प्रस्ताव पारित किया गया। 1906 से पूर्व भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का कोई लिखित संविधान नहीं था और न ही उसका कोई घोषित लक्ष्य था। उग्रवादियों के दबाव में आकर 1906 में कांग्रेस को अपना लोकतान्त्रिक संविधान तैयार करना पड़ा और स्वराज अथवा स्वशासन को अपना लक्ष्य घोषित करना पड़ा।

उग्रवादियों ने जब बॉयकाट व शान्तिपूर्ण विरोध करने पर ज़ोर दिया तो नरमपंथियों के एक वर्ग ने उन्हें कांग्रेस से बाहर निकालने का फ़ैसला कर लिया। इन परिस्थितियों में दिसम्बर, 1907 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस का नरमदल और गरमदल में विभाजन हुआ।

3.4.3 लाला लाजपत राय

शिवाजी, दयानन्द सरस्वती, मेज़िनी और गैरीबाल्डी के विचारों तथा उनके कार्यों से प्रभावित लाला लाजपतराय 'बाल-लाल-पाल' त्रिमूर्ति के दूसरे स्तम्भ थे। लालाजी आर्यसमाज के सक्रिय सदस्य थे। लोकमान्य तिलक की ही भांति लालाजी नरमपंथी कांग्रेसियों की याचक प्रवृत्ति से नाराज़ थे -

भीख मांगने या प्रार्थना करने से आज़ादी हासिल नहीं हो सकती। इसे केवल तुम संघर्ष करके और बलिदान देकर अर्जित कर सकते हो।'

लाला लाजपत राय ने लाहौर से पंजाबी, वन्दे मातरम् तथा पीपुल का प्रकाशन किया। लालाजी ने कांग्रेस की स्थापना से लेकर अगले बीस सालों तक नरम दल की उपलब्धियों का आकलन करते हुए अपने पत्र में लिखा था-

बीस साल तक रियायतों की मांग तथा देशवासियों के दुःखों को दूर करने के असफल संघर्ष करने के बाद इन्हें रोटी के बदले पत्थर ही प्राप्त हुए।

सन् 1907 में 'लाहौर इण्डियन एसोसियेशन' के नेताओं लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीत सिंह के नेतृत्व में सरकार के किसान विरोधी निर्णयों के विरुद्ध जन-सभाएं आयोजित की गईं तथा किसानों को लगान न देने के लिए कहा गया। लाला लाजपत राय को अशान्ति फैलाने आरोप में अल्पावधि के लिए माण्डले निर्वासित कर दिया गया। माण्डले के निर्वासन से वापस आने के बाद गरम दल ने लाला लाजपत राय का नाम कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में अध्यक्ष पद हेतु प्रस्तावित किया और नरमपंथियों ने रास बिहारी घोष का नाम अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित किया। लाला लाजपत राय ने विवाद से बचने के लिए अध्यक्ष पद हेतु अपना नाम प्रस्तावित नहीं होने दिया किन्तु वह नरमदल व गरमदल के बीच की खाई को पाटने में और कांग्रेस के विभाजन को रोकने में सफल नहीं हो सके।

3.4.4 बिपिन चन्द्र पाल

'बाल-लाल-पाल' त्रिमूर्ति के तीसरे स्तम्भ बिपिन चन्द्र पाल ने बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद की अलख जलाई थी। बिपिन चंद्र पाल बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की राष्ट्रवादी विचारधारा के अनुयायी थे। उन्होंने अंग्रेज़ी में न्यू इण्डिया साप्ताहिक तथा बंगला में अरबिंदो घोष के साथ बन्देमातरम् का प्रकाशन किया । लोकमान्य तिलक की ही भांति उन्हें नरमदल की सुधारों के लिए भिक्षा मांगने का तरीका पसन्द नहीं था, वह उग्र-राष्ट्रवाद के समर्थक थे। बंगाल विभाजन के विरोध में हुए स्वदेशी आंदोलन में उनकी अग्रणी भूमिका थी। बंगाल विभाजन के विरुद्ध स्वदेशी आन्दोलन में बिपिन चन्द्र पाल ने बॉयकाट कर सरकार पर अपने निर्णय को बदलने के लिए दबाव डालने की नीति को उचित ठहराया था। 1907 में कांग्रेस का विभाजन हो गया, नरमदल से वैचारिक मतभेदों के कारण उन्होने लोकमान्य तिलक व लाला लाजपतराय के साथ गरमदल बनाया। उनकी उग्रवादी नीतियों के कारण उन पर 1907 में राजद्रोह का अभियोग लगा और फिर उन्हें जेल भेज दिया गया।

बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो घोष तथा ब्रह्मबान्धब उपाध्याय भारतीयों की मुक्ति में ही भारतीय राष्ट्रीय जीवन के पुनर्निर्माण की सम्भावना देखते थे। 1907 में उग्रवादियों के विरुद्ध सरकार का दमन चक्र देखते हुए लाला लाजपत राय तथा बिपिन चन्द्र पाल इंग्लैण्ड चले गए। लन्दन में बिपिन चन्द्र पाल ने स्वराज पत्र का प्रकाशन किया और वह इण्डिया हाउस जैसी उग्रवादी संस्था से भी सम्बद्ध रहे।

3.4.5 अरबिन्दो घोष

बंकिम चन्द्र, दयानन्द सरस्वती और लोकमान्य तिलक के प्रशंसक अरबिन्दो घोष भारत की पूर्ण राजनीतिक स्वतन्त्रता के विचार का विकास करने वाले पहले चिन्तक कहे जा सकते हैं। अरबिन्दो ने

1893-94 में बम्बई से प्रकाशित पत्र इन्दु प्रकाश में कांग्रेस की अनुनय-विनय करने की प्रवृत्ति की भर्त्सना की थी। उन्होंने नरमपंथी नेताओं को कायर, भविष्य-निरूपणता तथा उत्साह से हीन और नितान्त असफल बताया था। अरबिन्दो इंग्लैण्ड की राजनीतिक व्यवस्था को अपना आदर्श नहीं मानते थे। वे फ्रांस, अमेरिका, इटली और आयरलैण्ड की क्रान्तियों और उनमें निहित आदर्शों से प्रेरणा लेते थे। उन्होंने राष्ट्रवाद को धर्म से जोड़ा था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में अरबिन्दो घोष ने भारतीय पुनरुत्थानवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। स्वदेशी की भावना उनके जीवन का आधार थी। उनका मानना था कि भारत को किसी बाह्य शक्ति ने नहीं जीता है बल्कि वह स्वयं अपनी दुर्बलता से हारा है। बंकिम का महामन्त्र 'वन्दे मातरम्' उनके जीवन का लक्ष्य था, स्वदेशी की भावना उनके जीवन का आधार थी और स्वतन्त्रता उसकी चरम परिणति।

3.4.1.5 अन्य उग्रवादी नेता

लोकमान्य तिलक के अनुयायी वी0 ओ0 चिदम्बरम पिल्लई ने मद्रास प्रेसीडेन्सी में उग्र राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1908 में उन्हें अपने उग्र राजनीतिक विचारों के कारण आजन्म कारावास मिला परन्तु बाद में उन्हें 1912 में रिहा कर दिया गया। उनके सहयोगियों में सुब्रमण्य सिवा, काची वरथा चारियार व राष्ट्रवादी तमिल कवि सुब्रमण्य भारती सम्मिलित थे। सुब्रमण्य भारती लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। उन्होंने कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में भाग लिया था। ब्रिटिश भारतीय सरकार के कोप से बचने के लिए वह फ्रांसीसियों के अधीन पॉण्डिचेरी चले गए। पॉण्डिचेरी में सुब्रमण्य भारती तमिल पत्रों स्वदेश मित्रन तथा इण्डिया और अंग्रेज़ी पत्र बाल भारतम् से सम्बद्ध रहे और वहां उन्होंने अरबिन्दो घोष को आर्य तथा कर्मयोगी पत्रों के प्रकाशन में सहयोग दिया। अपनी देशभक्तिपूर्ण रचनाओं के लिए भारती को राष्ट्रकवि कहा जाता है।

3.5 उग्रवाद की असफलताओं और उसकी उपलब्धियों का आकलन

3.5.1 सरकार द्वारा उग्रवाद का दमन

कांग्रेस के विभाजन के बाद उग्रवादियों के विरुद्ध ब्रिटिश भारतीय सरकार ने कठोर कदम उठाए। 1908 में खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी द्वारा जज किंग्सफ़ोर्ड को बम से उड़ाने के प्रयास को अपने पत्र केसरी में लोकमान्य ने उचित ठहराया। अदालत में लोकमान्य पर हिंसात्मक व आतंकवादी गतिविधियों को उचित ठहराने व उनको प्रोत्साहित करने का आरोप लगा और उन्हें छह वर्ष का कारावास देकर माण्डले निष्कासित कर दिया गया।

पंजाब सरकार के किसान विरोधी निर्णयों के विरुद्ध सन् 1907 में 'लाहौर इण्डियन एसोसियेशन' के नेताओं लाला लाजपतराय तथा सरदार अजीत सिंह ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। लाला लाजपत राय को अशान्ति फैलाने आरोप में अल्पावधि के लिए माण्डले निर्वासित कर दिया गया। सरकार के

प्रकोप से बचने के लिए लाला लाजपत राय और बिपिन चन्द्र पाल को 1907 के बाद अपना अधिकांश समय भारत से बाहर व्यतीत करना पड़ा।

खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी द्वारा जज किंग्सफ़ोर्ड पर हमले को अलीपुर षडयन्त्र कहा गया और अरबिन्दो घोष पर इसमें शामिल होने का आरोप लगा। अरबिन्दो इस आरोप से एक साल बाद बरी हो गए किन्तु तब तक उन्हें कारावास में रहना पड़ा।

सरकार ने अपने विरुद्ध किसी भी प्रकार की सामग्री प्रकाशित करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया। 1910 के प्रेस एक्ट के अन्तर्गत 200 प्रिन्टिग प्रेस और 130 पत्र बन्द किए गए तथा 400 प्रकाशनों पर जुर्माना किया गया।

3.5.2 उग्रवाद का स्वतः शिथिल पड़ना

लोकमान्य तिलक तथा अन्य शीर्षस्थ उग्रवादी नेताओं की भारतीय राजनीतिक मंच से अनुपस्थिति के कारण उग्रवादी आन्दोलन का शिथिल पड़ना स्वाभाविक था। सरकार तथा नरमपंथियों द्वारा उनपर आतंकवाद को पोषण देने के आरोप से उनके राजनीतिक दबदबे में फ़र्क पड़ा था। स्वयं प्रमुख उग्रवादी नेताओं को भी अब क्रान्तिकारी आन्दोलन के औचित्य पर आशंका होने लगी थी। उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद से भी वो दूर होते जा रहे थे। माण्डले से 1914 में लौटकर लोकमान्य हिन्दू-मुस्लिम एकता को महत्व देने लगे थे। लाला लाजपत राय समाजवादी विचारधारा की ओर उन्मुख होने लगे थे। बिपिन चन्द्र पाल और अरबिन्दो घोष अपने राष्ट्रवादी चिन्तन को विस्तार देकर समस्त मानव जाति के कल्याण के प्रति समर्पित हो गए थे।

अलीपुर षडयन्त्र के सिलसिले में अरबिन्दो 1908 से 1909 तक जेल में रहे थे। भारतवासियों में लगभग तीन सालों तक राजनीतिक आन्दोलन करते रहने के बाद उसको और आगे तक ले जाने का उत्साह बाकी नहीं रहा था। अरबिन्दो ने इस बारे में अपने अनुभव लिखे थे -

मैं जब मैं जेल गया था तो अपनी अवनति के बाद एक बार फिर से उठ खड़े हुए करोड़ों भारतीय राष्ट्र के निर्माण की आशा में 'बन्दे मातरम्' का उद्घोष कर रहे थे किन्तु जब मैं जेल से छूटकर बाहर आया और मैंने 'बन्दे मातरम् का वही उद्घोष सुनना चाहा तो मुझे चारों ओर सन्नाटा मिला।

3.5.3 उग्रवादी आन्दोलन की असफलताएं

1. उग्रवादी आन्दोलन मूलतः उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद था। भारत जैसे विभिन्न धर्मों और जातियों के देश में गणेशोत्सव को राजनीतिक महत्व देना, मातृभूमि भारत को भारतमाता की प्रतिष्ठा देना, महाराणा प्रताप, महाराणा राजसिंह और छत्रपति शिवाजी जैसे हिन्दू शासकों को महानायक के रूप में प्रस्तुत करना, वेद, पुराण संस्कृत भाषा, देवनागरी लिपि को अत्यधिक

सम्मान देना, हिन्दू पुनरुत्थानवादी आन्दोलन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध रहना आदि ऐसी बातें थीं जो उनके आन्दोलन को संकुचित और संकीर्ण बनाती थीं।

2. उग्रवादियों की विचारधारा से नरमपंथी सहमत नहीं थे क्योंकि उनकी दृष्टि में उग्रवादी राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जल्दबाज़ी कर रहे थे। सरकार उनकी विचारधारा को आतंकवाद से जोड़ रही थी।

3. मुसलमान उग्रवादियों की विचारधारा को मुस्लिम विरोधी मानते थे। मुसलमानों ने 1906 में अपने हितों की रक्षार्थ मुस्लिम लीग की स्थापना की। 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्रदान कर हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को और भी हवा दी गई। उग्रवादी आन्दोलन प्रत्यक्ष रूप से नहीं तो कम से कम अप्रत्यक्ष रूप से भारत के विभाजन के लिए ज़िम्मेदार कहा जा सकता है।

4. भारत में और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में परिस्थितियां बदलती जा रही थीं। 1911 में बंगाल विभाजन के रद्द किए जाने के बाद उग्रवादी आन्दोलन की उपादेयता लगभग समाप्त हो गई थी। 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने के उपरान्त सरकार के साथ सहयोग कर उससे राजनीतिक व आर्थिक सुधार प्राप्त करने का यह अनुकूल समय था। स्वयं लोकमान्य तिलक ने भी इस बात को समझ कर अपनी उग्रवादी विचारधारा का परित्याग कर 1916 में अपना शान्तिपूर्ण होमरूल आन्दोलन प्रारम्भ किया था।

3.5.4 उग्रवादी आन्दोलन की उपलब्धियां

1. उग्रवादियों ने कांग्रेस के शिक्षित शहरी मध्यवर्गीय राजनीतिक आन्दोलन को जन-साधारण तक पहुंचाया था। लोकमान्य तिलक को हम भारतीय राजनीति का पहला जन-नायक कह सकते हैं। अब कांग्रेस के सदस्यों की संख्या सैकड़ों और हज़ारों में नहीं बल्कि लाखों में पहुंच गई थी और उसमें महानगर, छोटे शहर, कस्बे, यहां तक कि गांव की जनता भी सम्मिलित थी।

2. स्वशासन, स्वराज और स्वदेशी को अपना राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक लक्ष्य बनाकर उग्रवादियों ने भारतीयों की हीन भावना को कम करने में सफलता प्राप्त की थी। आने वाले समय में गोपाल कृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरु मानने वाले महात्मा गांधी ने उग्रवादियों की सक्रिय राजनीतिक विरोध की शैली अपनाई और स्वशासन, स्वराज और स्वदेशी को अपना राजनीतिक, आर्थिक और शैक्षिक लक्ष्य बनाया।

3. बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को रद्द कराने का श्रेय काफ़ी हद तक उग्रवादियों को दिया जा सकता है।

4. उग्रवादी साहित्य व पत्रकारिता ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना जागृत करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की थी। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो आदि उग्रवादियों ने प्रतिबद्ध पत्रकारिता की एक नई मिसाल कायम की थी।

5. उग्रवादियों ने राष्ट्रीय शिक्षा के विकास में योगदान दिया। स्वदेशी आन्दोलन के दौरान अरबिन्दो घोष और स्वामी श्रद्धानन्द ने प्राचीन भारतीय शिक्षा-पद्धति के श्रेष्ठ तत्वों को आधुनिक शिक्षा-पद्धति में समाहित किया।

6. उग्रवादियों द्वारा उठाई गई स्वशासन की मांग को पूरी तरह से नकारना अब सरकार के भी बस में नहीं था। 1917 में मॉन्टेग्यू की घोषणा द्वारा सरकार ने सैद्धान्तिक रूप से भारतीयों को स्वशासन प्रदान करना स्वीकार कर लिया था।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पुनरुत्थानवादी आन्दोलन में उग्र राष्ट्रवाद के तत्वों की समीक्षा कीजिए।

2. उग्र राष्ट्रवादियों द्वारा सरकार की दमनकारी नीतियों की निर्भीक आलोचना पर प्रकाश डालिए।

3. 1907 में कांग्रेस के विभाजन के क्या कारण थे?

3.6 सारांश

वेदों, पुराणों तथा साहित्य में अपनी मातृभूमि, मातृ संस्कृति और मातृभाषा का समादर करने की प्रेरणा दी गई है। राष्ट्र की देवी को राष्ट्र का सर्वस्व कहा गया है। मध्यकाल में मुस्लिम आधिपत्य-काल में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास हुआ। एशियाटिक सोसायटी तथा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफ़िकल सोसायटी आदि पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों व बंकिम चन्द्र, एच0 एन0 आप्टे जैसे साहित्यकारों ने भारत में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से उग्र राष्ट्रवाद के विकास में अपना योगदान दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वराज और स्वदेशी की महत्ता को दर्शाया।

लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चन्द्र पाल, अरबिन्दो घोष आदि उग्रवादियों ने भारतीयों को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए भीख मांगने के स्थान पर लड़ना सिखाया। उग्रवादी भारतीय धर्म, संस्कृति और उसके गौरवशाली इतिहास को पुनर्जीवित करने के पक्षधर थे। उग्रवादियों ने स्वराज, स्वशासन तथा स्वदेशी को अपना राजनीतिक लक्ष्य बनाया तथा राजनीतिक

आन्दोलन में आम आदमी की सहभागिता को महत्ता दी। लोकमान्य तिलक ने गणेशोत्सव के बहाने सभी वर्गों व सभी समुदायों को छोटे-बड़े, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष आदि का भेद मिटाकर एक मंच पर एकत्र कर उन्हें सामाजिक समता व एकता का सन्देश दिया और धीरे-धीरे इसके माध्यम से उन्होंने राजनीतिक एकता का प्रचार-प्रसार किया। उनके द्वारा आयोजित शिवाजी उत्सव का लक्ष्य शिवाजी के 'स्वराज' प्राप्ति के लक्ष्य को फिर से हासिल करना था।

बंगाल विभाजन के विरुद्ध उग्रवादियों ने सक्रिय राजनीतिक विरोध का मार्ग अपनाया। स्वशासन, स्वराज्य व स्वदेशी को इस आन्दोलन में लक्ष्य बनाया गया। अरबिन्दो घोष राष्ट्रीय शिक्षा के विकास से सम्बद्ध रहे। 1907 में नरमपंथियों व उग्रवादियों में मतभेद बढ़ जाने के कारण कांग्रेस का विभाजन हो गया। सरकार ने उग्रवादियों के दमन हेतु कठोर कदम उठाए। 1908 के बाद उग्रवादी आन्दोलन शान्त पड़ गया किन्तु उग्रवादियों के राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक लक्ष्यों को आने वाले समय में राष्ट्रीय आन्दोलन का अभिन्न अंग बना लिया गया।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

मरहट्टन - मराठे

मुहज़्ज़ब - सभ्य

बॉयकाट - बहिष्कार

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.3.3.2 आर्य समाज, 3.3.3.3 स्वामी विवेकानन्द और आर्य समाज तथा 3.3.3.4 थियोसोफ़िकल सोसायटी

2. देखिए 3.4 भारत में उग्र राजनीतिक विचारधारा का विकास

3. देखिए 3.4.1 लोकमान्य तिलक तथा 3.4.1.2 लाला लाजपत राय

3.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-ब्रिटिश पैरामाउंट्सी एण्ड इण्डियन रिनेसा, (भाग 1 व 2), बम्बई, 1965

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बॉम्बे, 1969

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य - इण्डियाज़ स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, नई दिल्ली, 1988

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

3.8 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

घोष, पी0 सी0 - दि डवलपमेन्ट ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, कलकत्ता, 1960

सीतारमैया, पी0 - दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1946

सरकार, सुमीत - स्वदेशी मूवमेन्ट इन बैंगाल, नई दिल्ली, 1973

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय आन्दोलन में लोकमान्य तिलक के योगदान का आकलन कीजिए।
2. उग्रवादी आन्दोलन की असफलताओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

इकाई चार

बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद और बंगाल का विभाजन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 बंगाल में उग्र राष्ट्रवादी भावना का विकास

4.3.1 मध्यकालीन बंगाल में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

4.3.2 उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में राष्ट्रवादी भावना का विकास

4.4 लॉर्ड कर्ज़न का दमनकारी शासन तथा बंगाल विभाजन का निर्णय

4.4.1 भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रति लॉर्ड कर्ज़न का दृष्टिकोण तथा बंगाल विभाजन से पूर्व उसके बंगाल-विरोधी विचार तथा कार्य

4.4.2 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका क्रियान्वयन

4.5 बंगाल विभाजन का विरोध

4.5.1 विभिन्न समुदायों, संगठनों तथा पत्रों द्वारा बंगाल विभाजन का विरोध

4.5.2 स्वदेशी आन्दोलन

4.5.2.1 बहिष्कार

4.5.2.2 स्वदेशी का सकारात्मक रूप

4.5.2.2.1 आर्थिक आत्मनिर्भरता

4.5.2.2.2 ग्राम स्वराज्य

4.5.2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा

4.5.2.2.4 राष्ट्रीय एकता

4.5.2.2.5 स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज अथवा स्वशासन

4.5.3 क्रान्तिकारी आतंकवाद

4.6.1 बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना

4.6.2 भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद का आकलन

4.6.2.1 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की सीमाएं

4.6.2.2 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की उपलब्धियां

4.7 सारांश

4.8 पारिभाषिक शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.12 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारतीयों की बढ़ती हुई राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की तुलना में ब्रिटिश सरकार की सुधार की गति अत्यन्त धीमी थी। इसके कारण भारतीयों में असन्तोष की भावना बढ़ी। सरकार के प्रति भारतीयों के बढ़ते असन्तोष को देखते हुए सरकार ने अपना सुधारवादी मुखौटा उतारकर राजनीतिक दमन की नीति अपनाना प्रारम्भ कर दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद का विकास होने लगा था। राजनारायण बोस, नबगोपाल मित्र तथा बंकिम चन्द्र ने उग्र हिन्दू राष्ट्रवाद के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया था। भारत में लोकतान्त्रिक प्रणाली स्थापित किए जाने का विरोधी लॉर्ड कर्ज़न जब 1899 में भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया तो उसने बंगाल में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना का दमन करने तथा साम्प्रदायिक विघटन के उद्देश्य से 1905 में बंगाल विभाजन का निर्णय लिया।

इस इकाई में आपको बताया जाएगा कि बंगाल विभाजन के विरोध में किए गए स्वदेशी आन्दोलन के मुख्य उद्देश्य क्या-क्या थे और उन्हें हासिल करने के लिए आन्दोलनकारियों ने अपनी क्या रणनीति रखी थी। इस इकाई में आपको बंगाल विभाजन के विरोध में क्रान्तिकारी आतंकवाद के विकास से भी अवगत कराया जाएगा। आपको यह भी बताया जाएगा कि स्वदेशी आन्दोलन व क्रान्तिकारी आतंकवाद के कारण किस प्रकार सरकार को अपना दुर्भाग्यपूर्ण निर्णय बदलने के लिए बाध्य होना पड़ा था। इस इकाई में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन व क्रान्तिकारी आतंकवाद के योगदान का आकलन भी किया जाएगा।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की की अवधि में बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद के विकास तथा लॉर्ड कर्ज़न के शासनकाल में बंगाल विभाजन के निर्णय की पृष्ठभूमि तथा उसके कार्यान्वयन से आपको परिचित कराना है। बंगाल विभाजन के विरोध में स्वदेशी आन्दोलन के रूप में पहली बार अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन के दोनों पक्षों - सकारात्मक तथा निषेधात्मक के विकास की जानकारी देना भी इस इकाई का उद्देश्य है। इस इकाई में बंगाल विभाजन के विरोध में हुई क्रान्तिकारी गतिविधियों की चर्चा भी की जाएगी। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. बंगाल विभाजन के निर्णय के सरकारी स्पष्टीकरण के पीछे छिपे हुए षडयन्त्र के विषय में।
2. बंगाल विभाजन के विरोध में किए गए स्वदेशी आन्दोलन के निषेधात्मक तथा सकारात्मक पक्ष के विषय में।
3. बंगाल विभाजन के विरोध में की गई क्रान्तिकारी गतिविधियों के विषय में।
4. बंगाल विभाजन के निर्णय को रद्द किए जाने के विषय में।
5. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद के योगदान के विषय में।

लॉर्ड कर्जन

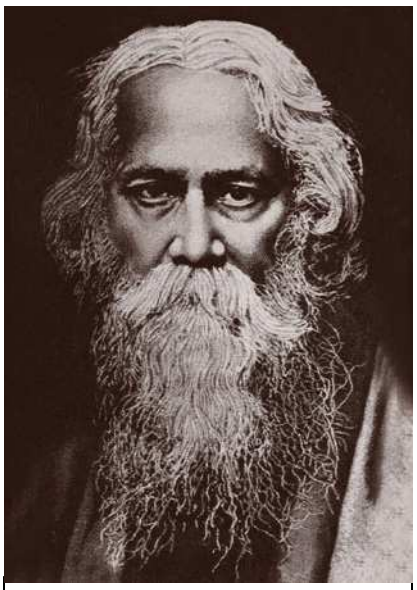

रबीन्द्रनाथ टैगोर

बंकिम चन्द्र चटर्जी

अरबिन्दो

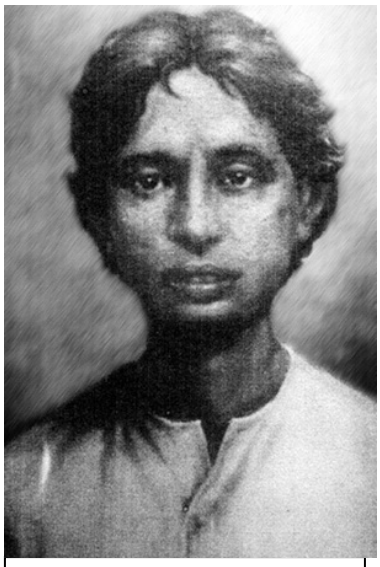

खुदीराम बोस

प्रफुल्ल चाकी

4.3 बंगाल में उग्र राष्ट्रवादी भावना का विकास

4.3.1 मध्यकालीन बंगाल में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास

मध्यकालीन बंगाल के इतिहास में पाल शासकों - धर्मपाल और देवपाल के शासनकाल को मध्यकालीन बंगाल का स्वर्ण युग कहा जा सकता है किन्तु बाद में तुर्क आक्रमणों ने बंगाल की स्वतन्त्रता पर ग्रहण लगा दिया। मुगल बादशाह अकबर और जहांगीर के समकालीन देवी काली 'जसोहरेश्वरी' के भक्त, जैसोर के शासक महाराज प्रतापादित्य ने अपनी मातृभूमि को विदेशी मुगलों के चंगुल से मुक्त कराकर बंगाल में एक स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना का प्रयास किया था। बर्दवान के शासक राजा सीताराम राय ने भी हिन्दुओं के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रयास किया था।

4.3.2 उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में राष्ट्रवादी भावना का विकास

राजा राममोहन राय के पत्र सम्बाद कौमुदी में पहली बार जनता की शिकायतों का प्रकाशन हुआ। डेरोज़ियो के 'यंग बैंगाल आन्दोलन' ने स्वतन्त्रता, समानता तथा देशभक्ति की भावना के प्रसार में योगदान दिया। द्वारिकानाथ टैगोर के पत्र बैंगाल हरकारा के 1843 के अंकों में भारत में भी जनता की समस्याओं का निराकरण करने के लिए फ्रांस की जुलाई क्रान्ति का अनुकरण करने की बात कही गई थी।

राजनारायण बोस ने 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' की स्थापना की थी। इनसे प्रेरणा लेकर 1867 में नबगोपाल मित्र ने 'हिन्दू मेला' की स्थापना की जिसका कि उद्देश्य देश की प्रगति हेतु भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर उद्योग, स्वास्थ्य निर्माण आदि का विकास करना था। हिन्दू मेले द्वारा भारतीय उत्पादों की प्रदर्शनी का नियमित आयोजन सराहनीय प्रयास था। नबगोपाल मित्र ने 'नेशनल स्कूल', 'नेशनल जिमनेज़ियम', 'नेशनल थियेटर' तथा 'नेशनल सर्कस' की स्थापना भी की थी।

रंगलाल बैनर्जी (1826-1886) - ने अपनी काव्य रचनाओं पद्मिनी, कर्मादेवी तथा सुर सुन्दरी के द्वारा बंगवासियों में देशभक्तिपूर्ण भावना का संचार किया। कर्मादेवी में कवि रंगलाल ने बंगाल के बालकों तथा नवयुवकों में पुरुषोचित गुणों का विकास देखने की कामना की थी।

बंकिम चन्द्र ने अपने उपन्यास दुर्गेश नन्दिनी में मुगलों तथा पठानों के विरुद्ध हिन्दू प्रतिरोध का वर्णन किया। अपने अमर उपन्यास आनन्द मठ में बंकिम ने 1773 में उत्तर बंगाल में हुए 'सन्तान विद्रोह' की गाथा को धार्मिक एवं राजनीतिक कलेवर प्रदान किया था। भगवद् गीता के निष्काम कर्म के सिद्धान्त से प्रेरित उनके मुख्य पात्र निःस्वार्थ भाव से देशभक्त हैं और दुष्ट-दमन के लिए कटिबद्ध हैं। 'सन्तान' अंग्रेज़ों की अदम्य शक्ति की चिन्ता न करते हुए उनसे अनवरत संघर्ष करते रहते हैं। बंकिम ने इस उपन्यास में अन्याय का साहसपूर्वक प्रतिकार करने का सन्देश दिया है। यह उपन्यास विभिन्न धार्मिक, देशभक्तिपूर्ण एवं राष्ट्रीय गतिविधियों का प्रेरणा स्रोत बना। 'वन्दे मातरम् गीत' इसी उपन्यास का अंग है। इस राष्ट्रगान में बंगाल की हरी-भरी धरती की शोभा का गुणगान किया गया है और ऐसी सुखदायिनी मातृभूमि का मानवीकरण करके उसे माँ के रूप में प्रतिष्ठित कर उसको विद्या, धर्म, कर्म, प्राण तथा शक्ति का आधार और शत्रुओं का विनाश करने वाली बताया गया है। मातृ सम्प्रदाय के अनुयायी शान्ति, भवानन्द और जीवानन्द - बेड़ियों में जकड़ी, बिखरे केश लिए, श्रृंगार विहीन, मलिन वस्त्र धारी, अपमानित होती हुई भारतमाता को आततायी विदेशी आक्रान्ता के चंगुल से छुड़ाने का संकल्प लेते हैं। बंगाल के सात करोड़ निवासियों के कण्ठों से मातृभूमि की वन्दना और उनकी चौदह करोड़ भुजाओं में उसकी रक्षा हेतु शस्त्र धारण करने की कामना करोड़ों देशवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार करने में सफल रही -

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्

शस्य श्यामलां मातरम्।

शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्

फुल्ल कुसमित द्रुम दल शोभिनीम्

सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्। वन्दे मातरम्।

1903 में टैगोर परिवार की प्रसिद्ध लेखिका सरला देवी ने भवानीपुर में डॉन के सम्पादक सतीश कुमार मुखर्जी के सहयोग से लोकमान्य के शिवाजी उत्सव से प्रेरित होकर मध्यकालीन बंगाल में स्वतन्त्र हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करने वाले जसोहर के महाराज प्रतापादित्य की स्मृति में 'प्रतापादित्य उत्सव' की अध्यक्षता की।

4.4 लॉर्ड कर्ज़न का दमनकारी शासन तथा बंगाल विभाजन का निर्णय

4.4.1 भारतीय राजनीतिक चेतना के प्रति लॉर्ड कर्ज़न का दृष्टिकोण तथा बंगाल विभाजन से पूर्व उसके बंगाल-विरोधी विचार तथा कार्य

लॉर्ड कर्ज़न को तथाकथित 'अपवित्र चीज़' कांग्रेस द्वारा सरकार की कटु आलोचना स्वीकार्य नहीं थी। उसकी दृष्टि में भारतीयों की नियति तथा उनका कर्तव्य शासित होना था और जो भारतीय इसके विपरीत अपने अधिकारों के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाते थे वो उसके अनुसार मर्यादा की लक्ष्मण रेखा को पार करने की भूल करते थे। अपने शासनकाल के पहले ही साल में बंगाल में बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना से सशंकित लॉर्ड कर्ज़न ने 1899 में कलकत्ता नगर महापालिका में सरकारी नियन्त्रण बढ़ाने के उद्देश्य से उसके निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम कर दी। कलकत्ते के यूरोपियन व्यापारिक समुदाय के हितों की रक्षा के लिए 1904 के यूनीवर्सिटी एक्ट द्वारा उसने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्वायत्त-शासित ढांचे के बदल कर उसके सेनेट में सरकारी नियन्त्रण बढ़ा दिया। 1905 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में दिया गया उसका भाषण भारतीयों के प्रति उसकी घृणा और उनको नीचा दिखाने की उसकी प्रवृत्ति का खुलासा करता है -

मेरे विचार से ऐसा कहना कि सत्य का सर्वोच्च आदर्श काफ़ी हद तक पाश्चात्य अवधारणा है, यह न तो न तो कोई झूठा दावा है और न ही घमण्ड भरा।

4.4.2 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका क्रियान्वयन

बंगाल प्रान्त भारत का सबसे बड़ा प्रान्त था। 1864 में इससे सिलहट तथा आसाम को अलग करने पर विचार किया गया था तथा 1896-97 में चिटगांव कमिश्नरी, ढाका तथा मैमनसिंह को आसाम में मिलाने का सुझाव दिया था। बंगाल के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर एन्ड्रू फ्रेज़र ने मार्च 1903 में देश के क्षेत्रीय विभाजन का एक प्रस्ताव भेजा था जिसे गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्ज़न ने जून, 1903 में स्वीकार कर लिया था। दिसम्बर 1903 में गृह सचिव एच0 एच0 रिज़ले ने अपने पत्र में बंगाल प्रान्त के बटवारे

का समर्थन किया था। लॉर्ड कर्ज़न, एन्ड्रू[a] फ्रेज़र तथा रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। सात करोड़ अस्सी लाख आबादी वाले बंगाल में से एक करोड़ दस लाख आबादी वाला पूर्वी बंगाल तथा आसाम अलग कर उसे एक नया प्रान्त बनाने का निश्चय किया गया, इसकी राजधानी ढाका निश्चित की गई। सरकार ने यह दावा किया कि वह प्रशासनिक सक्षमता बढ़ाने की दृष्टि से बंगाल विभाजन का निर्णय ले रही है परन्तु वास्तविकता कुछ और थी। अविभाजित बंगाल में आसाम, उड़ीसा तथा बिहार सम्मिलित थे। इन क्षेत्रों को बंगाल से अलग कर प्रशासनिक क्षमता को बढ़ाया जा सकता था किन्तु बंगाल प्रान्त से बिहार तथा उड़ीसा को अलग करने के प्रस्ताव को कर्ज़न ने स्वीकार नहीं किया। उसने भारत सचिव को भेजे तार में इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए अंकित किया कि बंगाल से गैर-बंगाली क्षेत्र को अलग करने से तो बंगालियों की शक्ति और बढ़ जाती और यही अंग्रेज़ नहीं चाहते थे। कर्ज़न इससे पहले बरार के मामले में ऐसा कर चुका था। 1902 में निज़ाम से प्राप्त मराठी भाषी क्षेत्र बरार को बम्बई प्रेसीडैन्सी में न मिलाकर उसे मध्य प्रान्त में मिलाया गया क्योंकि बम्बई प्रेसीडेन्सी में इस क्षेत्र को मिलाने से शिवाजी के हिन्द स्वराज की अवधारणा को बल मिल सकता था।

कर्ज़न फूट डाल कर शासन करने की नीति में विश्वास करता था। बंगाल में राजनीतिक चेतना का प्रसार-प्रचार करने में बंगाली भद्रलोक की अहम भूमिका थी। बंगाली मुसलमान, बंगाली हिन्दुओं की तुलना में पिछड़ी स्थिति में थे और उनमें सामान्यतः राजनीतिक जागृति भी कम थी। कर्ज़न मुसलमानों को कुछ सुविधाएं देकर उन्हें अपनी ओर मिलाना चाहता था। बंगाल विभाजन का मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था।

गृह सचिव एच0 एच0 रिज़ले ने फ़रवरी तथा दिसम्बर 1904 में अपने द्वारा लिखी टिप्पणियों में यह स्वीकार किया था कि -

एकीकृत बंगाल एक शक्ति है तथा विभाजित बंगाल का मतलब है विभाजित शक्ति। हमारा मुख्य उद्देश्य अपने विरोधियों की शक्ति को विभाजित कर उसको कमज़ोर करना है।

पूर्वी बंगाल तथा आसाम के लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फुलर ने अपनी दो पत्नियों - हिन्दू तथा मुसलमान में, दूसरी बीबी अर्थात् मुसलमान को अपनी चहेती बीबी बताया था। 16 अक्टूबर, 1905 को बंगाल का विभाजन कर दिया गया।

4.5. बंगाल विभाजन का विरोध

4.5.1 विभिन्न समुदायों, संगठनों तथा पत्रों द्वारा बंगाल विभाजन का विरोध

बंगाल विभाजन के निर्णय को भारतीयों ने अपना राष्ट्रीय अपमान माना। दिसम्बर, 1903 में बंगाल विभाजन की योजना के प्रकाशित होते ही भारतीय प्रेस ने इसका विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। आनन्द बाज़ार पत्रिका, चारु मिहिर, संजीवनी, ढाका गज़ट आदि पत्रों ने इस योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। 'बैंगाल नेशनल चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स' तथा 'सेन्ट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसियेशन ऑफ़ कैलकटा' ने यह स्पष्ट किया कि सभ्यता, भाषा, आचार-विचार, भू-राजस्व प्रशासन आदि की दृष्टि से पूर्वी बंगाल तथा पश्चिमी बंगाल दोनों एक दूसरे के करीब हैं और यदि विभाजन करना है तो बंगाल से भिन्न बिहार व उड़ीसा को उससे अलग कर दिया जाए। बंगाल विभाजन के निर्णय का इंग्लैण्ड में भी विरोध हुआ। लन्दन टाइम्स तथा मैनचेस्टर गार्जियन ने इस निर्णय को बंगालवासियों के लिए अन्यायपूर्ण बताया तथा इसके विरुद्ध आन्दोलन को न्यायसंगत ठहराया। दिसम्बर, 1905 में भारत सचिव का पद सम्भालने के बाद जॉन मॉर्ले ने पार्लियामेन्ट में यह स्वीकार किया कि यह निर्णय जन-भावनाओं के सर्वथा विरुद्ध था। भारत के भूतपूर्व सेनाध्यक्ष लॉर्ड किचनर ने भी बंगाल विभाजन के निर्णय की भर्त्सना की किन्तु इस दुर्भाग्यपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण निर्णय को वापस नहीं लिया गया।

बंगाल विभाजन के विरोधियों ने यह प्रयास किया कि सभी वर्ग उनके आन्दोलन में सम्मिलित हों तथा प्रेस का उन्हें पूर्ण सहयोग मिले। बंगाल विभाजन रद्द कराने के उद्देश्य से स्थानीय, प्रान्तीय राष्ट्रीय तथा गृह सरकार को याचिकाएं भेजी गईं तथा इस निर्णय के विरोध में सैकड़ों जन-सभाएं की गईं। समाचार पत्रों में प्रकाशित लेखों में विभाजन से होने वाली कठिनाइयों को दर्शाया गया। यह बताया गया कि किसी नए प्रान्त का गठन मुख्यतः भौगोलिक, भाषागत, आर्थिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक आधार पर किया जाता है किन्तु इस निर्णय का ऐसा कोई आधार नहीं था। इस अन्यायपूर्ण निर्णय के विरुद्ध ब्रिटिश जनता से भी सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया गया। कलकत्ता के टाउन हॉल में इसके विरोध में मार्च, 1904 तथा जनवरी, 1905 में सभाएं हुईं। विभाजन के निर्णय के विरोध में पूर्वी तथा पश्चिमी बंगाल के हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, अमीर, गरीब सभी ने रक्षा बन्धन मनाया। रबीन्द्रनाथ ने लिखा -

किसी शासक की तलवार, चाहे वह कितनी भी शक्तिशाली क्यों न हो, एक ही जाति में विधाता द्वारा प्रदत्त एकता के टुकड़े नहीं कर सकती है।

रबीन्द्रनाथ टैगोर का -

आमार शोनार बांग्लादेश,

आमी तोमार भालोबाशी

गीत, सितम्बर, 1905 के बंगदर्शन में प्रकाशित हुआ था। इस गीत में सोने जैसे बंगाल की महिमा का गुणगान करते हुए एक बंगवासी उसके प्रति अपने शाश्वत प्रेम का उल्लेख करता है। अपनी मातृभूमि को वह अपनी माता के पद पर प्रतिष्ठित करता हुआ यह भाव व्यक्त करता है कि उसके मुखड़े पर उदासी का भाव उसकी आंखों को अश्रुपूरित कर देता है।

4.5.2 स्वदेशी आन्दोलन

4.5.2.1 बहिष्कार

सरकार बंगाल विभाजन के निर्णय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण विरोध के दबाव में अपना इरादा बदलने को तैयार नहीं हुई तो फिर प्रतिरोध का रास्ता अपनाया गया। कृष्णकुमार मित्र के सप्ताहिक पत्र संजीवनी के 13 जुलाई, 1905 के अंक में ब्रिटिश सामान के बहिष्कार का सुझाव दिया गया। 16 अक्टूबर, 1905 अर्थात् विभाजन के दिन को शोक-दिवस के रूप में मनाया गया, बाज़ार बन्द कर दिए गए तथा जुलूस निकाले गए। बिपिन चन्द्र पाल के पत्र न्यू इण्डिया, अरबिन्दो घोष के पत्र बन्दे मातरम्, ब्रह्मबांधव उपाध्याय के पत्र सांध्य तथा बारीन्द्र कुमार घोष के पत्र जुगान्तर में बंगाल विभाजन को रद्द कराने में शान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा केवल सृजनात्मक कार्यक्रमों को अपर्याप्त बताया गया। सांध्य में सरकारी कर्मचारियों का सामाजिक बहिष्कार करने का आवाहन किया गया।

बॉयकॉट अर्थात् बहिष्कार को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की रणनीति सर्वप्रथम आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में अपनाई गई थी। भारतीयों ने इस अप्रिय निर्णय को बदलने के लिए सरकार पर दबाव डालने के लिए इसी रणनीति का प्रयोग किया। भारतीय जानते थे कि इंग्लैण्ड की सरकार तथा भारत की सरकार इग्लैण्ड के उद्योगपतियों तथा व्यापारियों के इशारों पर चलती है और यदि उन्हें भारतीयों के निर्णय से किसी प्रकार की हानि उठानी पड़ेगी तो वो भारत की सरकार पर उस निर्णय को बदलने के लिए दबाव डाल सकते हैं। इसलिए भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के उद्देश्य से बॉयकाट अर्थात बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बॉयकॉट अर्थात् ब्रिटिश सामान के बहिष्कार को आन्दोलनकारियों का अन्तिम अस्त्र माना। अरबिन्दो घोष ने बंगाल विभाजन के विरुद्ध बहिष्कार के निर्णय तथा आन्दोलन के अन्य तरीकों को स्वराज तथा पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करने की दिषा में पहला कदम बताया था। बॉयकाट के अंतर्गत सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों आदि का बहिष्कार किया गया।

लोकमान्य तिलक ने बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को केवल बंगाल के लिए नहीं, अपितु समस्त भारत के लिए दुर्भायपूर्ण बताया। उन्होंने अपने सहयोगियों के साथ बॉम्बे प्रेसीडेन्सी में अनेक स्थानों पर बहिष्कार के समर्थन में जन-सभाओं का आयोजन किया। लाला लाजपत राय ने इस

आन्दोलन को पंजाब में फैलाया। कांग्रेस ने 1905 के अधिवेशन में ब्रिटिश कपड़ों के बहिष्कार हेतु प्रस्ताव पारित किया गया। 1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन (1906) के बाद तिलक ने केसरी में लिखा-

हमारा राष्ट्र एक वृक्ष की भांति है, स्वदेशी इसका तना है जिसकी कि दो विशाल शाखाएं स्वदेशी और बॉयकाट आंदोलन के रूप में निकली हैं। हमारा राष्ट्र एक मनुष्य है। स्वदेशी उसका धड़ है और स्वराज्य तथा बॉयकाट उसके शरीर के हाथ तथा पैर हैं।

ज़मींदारों ने अपनी-अपनी ज़मींदारी में किसानों को विदेशी कपड़ों का बहिष्कार करने के लिए कहा। शान्तिपुर तथा नवद्वीप के पुजारियों ने उन लोगों के लिए पूजा करने से मना कर दिया जो विदेशी वस्त्र धारण किए हुए थे। डॉक्टर, वकील, अध्यापक, मज़दूर, नाई, धोबी, साधु, सन्यासी, सभी ने बहिष्कार आन्दोलन को सफल बनाने में अपना योगदान दिया। विदेशी कपड़ों की होली जलाकर आन्दोलनकारियों ने अपना आक्रोश व्यक्त किया। विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने आन्दोलनकारियों ने धरना देकर उनके व्यापार में बाधा पहुंचाने का प्रयास किया। बहिष्कार की भावना का कारखानों पर भी प्रभाव पड़ा। अंग्रेज़ मिल मालिकों के प्रतिष्ठानों में श्रमिकों तथा अन्य कर्मचारियों ने हड़तालें कीं तथा टेªड यूनियन्स का गठन किया। कलकत्ता के कस्टम कलैक्टर ने सितम्बर, 1906 में पिछले साल की तुलना में आयातित सूती कपड़े, सूती धागे, नमक, सिगरेट तथा जूतों में आई अप्रत्याशित कमी की बात स्वीकार की।

सरकार ने बहिष्कार को राजद्रोह, आंग्ल-विरोधी तथा मुस्लिम विरोधी माना अतः उसके दमन के लिए उसने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। जनसभाओं तथा प्रचार कार्यक्रम पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। वन्दे मातरम् का नारा लगाने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। छात्र आन्दोलनकारियों को कार्लाइल सर्कुलर के द्वारा रोकने का प्रयास किया गया। आन्दोलनकारियों के दमन के लिए बारिसाल में गोरखा सेना बुलाई गई। स्वदेशी तथा बॉयकाट आन्दोलन में भाग लेने वालों को सरकारी कॉलेजों और नौकरियों से निकाला गया।

4.5.2.2 स्वदेशी का सकारात्मक रूप

4.5.2.2.1 आर्थिक आत्मनिर्भरता

पिछले डेड़ सौ साल के अंग्रेज़ी शासन में भारत अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए काफ़ी हद तक आयातित वस्तुओं पर निर्भर करने लगा था अतः विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कार्यक्रम सफल बनाने के लिए यह आवश्यक था कि भारत में उन वस्तुओं का उत्पादन बढ़े। स्वदेशी के अंतर्गत भारत में बनी वस्तुओं के प्रयोग का प्रण लिया गया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए स्वदेशी स्टोर खोले गए तथा स्वदेशी मेलों का आयोजन किया गया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादन में प्रकाशित हिन्दी पत्रिका सरस्वती के अगस्त, 1905 के अंक में जापान-रूस युद्ध में

जापान की विजय का प्रमुख कारण उसका स्वदेश के प्रति प्रेम तथा स्वदेशी के प्रति अनुराग बताया गया था। इलाहाबाद से प्रकाशित हिन्दी प्रदीप के अक्टूबर, 1905 के अंक में बालकृष्ण भट्ट ने स्वदेशी आन्दोलन को सफल बनाने के लिए महिलाओं के योगदान की महत्ता पर प्रकाश डाला। इस पत्र में भारतीयों की परमुखकातरता पर खेद प्रकट किया गया था।

स्वदेशी आन्दोलन ने कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। हैण्डलूम तथा रेशम उद्योग को पुनर्जीवित किया गया। बंगलक्ष्मी कॉटन मिल्स, मोहिनी मिल्स, बंगाल केमिकल्स, स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कम्पनी, स्वदेशी बैंक तथा स्वदेशी बीमा कम्पनियों की स्थापना की गई। अहमदाबाद और कानपुर में कपड़ा उद्योग को विकसित किया गया। जमशेदजी टाटा का जमशेदपुर में स्थापित इस्पात का कारखाना भारत का गौरव बन गया।

4.5.2.2.2 ग्राम स्वराज्य

स्वदेशी आन्दोलन से पूर्व ही 1904 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वदेशी समाज शीर्षक अपने भाषण में गांवों में स्वायत्तता, तथा उनकी आत्मनिर्भरता को पुनर्स्थापित करने के लिए कुटीर उद्योगों के पुनरुत्थान पर बल दिया दिया था। इस आन्दोलन में स्वदेशी न्याय-व्यवस्था का भी पोषण किया गया। अष्विनीकुमार दत्त की 'स्वदेश बांधव समिति' ने बारिसाल के गांवों में एक साल के भीतर में 89 पंचायतों द्वारा 523 मामले निबटाए थे। अप्रैल, 1907 तक 1000 ग्राम समितियां इस कार्य में जुटी थीं।

4.5.2.2.3 राष्ट्रीय शिक्षा

सरकारी शिक्षा संस्थानों में महंगी अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति से विद्यार्थियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाया जाता था और अपनी संस्कृति तथा अपने संस्कारों के प्रति घृणा करना सिखाया जाता था। सतीशचन्द्र मुकर्जी के पत्र डॉन ने राष्ट्रीय शिक्षा की महत्ता पर प्रकाश डाला। स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना की गई। 1906 में बैंगाल टैक्निकल इन्सटीट्यूट की स्थापना की गई। 1906 में ही बंगाल नेशनल कॉलेज की स्थापना की गई जिसके प्राचार्य अरबिंदो घोष थे। इस विद्यालय में मानव चरित्र को महत्व दिया गया था और साथ ही आधुनिक तकनीक के प्रयोग को देश के विकास के लिए आवश्यक मानकर उसको अपनाए जाने बल दिया गया था।

राष्ट्रीय शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत में भारतीय भाषाओं में प्रशिक्षण देने वाले तकनीकी संस्थानों की स्थापना को महत्व दिया गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शान्तिनिकेतन में इस पद्धति का प्रचलन किया गया। पश्चिम बंगाल, पूर्वी बंगाल तथा बिहार में राष्ट्रीय पाठशालाओं की स्थापना की गई। स्वामी श्रद्धानन्द ने हरद्वार में वैदिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा के प्रसार हेतु गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना की।

4.5.2.2.4 राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकीकरण स्वदेशी आन्दोलन का लक्ष्य था। इस आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम एकता को सदैव महत्व दिया गया। स्वदेशी आन्दोलन केवल बंगाल तक सीमित नहीं रहा, यह पहला राजनीतिक आन्दोलन था जो किसी क्षेत्र, समुदाय अथवा वर्ग तक सीमित नहीं था। महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक, पंजाब के लाला लाजपत राय, संयुक्त प्रान्त के मदनमोहन मालवीय, दक्षिण भारत के सी0 वाई0 चिन्तामणि आदि सभी देश को एकसूत्र में बांधने का प्रयास कर रहे थे। वन्दे मातरम् गीत देशवासियों के लिए राष्ट्रगान के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था।

4.5.2.2.5 स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज अथवा स्वशासन

भारतीयों ने स्वशासन अथवा स्वराज्य के लक्ष्य को प्राप्त करने का एकजुट प्रयास पहली बार स्वदेशी आन्दोलन में ही किया था। इसी आन्दोलन के कारण कांग्रेस ने भी पहली बार स्वराज्य की प्राप्ति को अपना लक्ष्य घोषित किया था।

4.5.3 क्रान्तिकारी आतंकवाद

क्रान्तिकारी आतंकवादियों का मानना था कि विदेशी शासन भारतीयों के धर्म, उनकी संस्कृति और उनके नैतिक मूल्यों के लिए विनाषकारी है और उनके शासन को जड़ से उखाड़ फेंकना मातृभूमि के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिए आवश्यक है। उनका कहना था कि जब तक भारत से विदेशी शासन समाप्त नहीं हो जाता वो ऐसे ही लड़ते रहेंगे और लड़ाई में क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसकी चर्चा भी बेमानी होगी। स्वतन्त्रता के शत्रुओं, चाहे वो अंग्रेज़ हों या भारतीय, उनके विरुद्ध बम और पिस्तौल का प्रयोग क्रान्तिकारियों की दृष्टि में न्यायसंगत था। वो जानते थे कि अधिकारियों तथा गद्दारों की छुटपुट हत्याओं से वो सरकार का तख्ता नहीं पलट पाएंगे पर उन्हें आशा थी कि इससे अत्याचारी सरकार हतोत्साहित अवश्य होगी और उसकी प्रशासनिक व्यवस्था चरमरा जाएगी।

प्रमोथ मित्तर, जतीन्द्रनाथ बनर्जी तथा बारीन्द्रकुमार घोष ने 1902 में मिदनापुर तथा कलकत्ते में क्रान्तिकारी संस्था अनुशीलन समिति की स्थापना की। मिदनापुर में ज्ञानेन्द्रनाथ बसु द्वारा स्थापित मिदनापुर सोसायटी तथा कलकत्ते की सरला घोषाल की व्यायामशाला और युवाओं द्वारा स्थापित आत्मोन्नति समिति भी क्रान्तिकारी संस्थाएं थीं। रूस तथा इटली के क्रान्तिकारी आन्दोलनों से प्रेरित होकर ब्रिटिश शासन के उन्मूलन के लिए क्रान्तिकारियों ने निम्न योजना बनाईः

- प्रेस के माध्यम से क्रान्ति की भावना का प्रचार किया जाए।

- स्वतन्त्रता सेनानियों के जीवन पर आधारित नाटकों का मंचन हो तथा उन पर लिखे गीतों का पाठ हो।

- सरकार के लिए परेशानी खड़ी करने के लिए हड़तालों तथा जल्सों, जुलूसों का आयोजन किया जाए।

- क्रान्तिकारी आन्दोलन को दृढ़ आर्थिक प्रदान करने के लिए सरकारी और सरकार के समर्थकों के प्रतिष्ठानों पर डाके डाले जाएं।

- 5. . युवकों को व्यायाम, सैनिक शिक्षा, शक्तिपूजा आदि के लिए प्रशिक्षित किया जाए। हथियार एकत्र किए जाएं, बम और पिस्तौलों के प्रयोग व उनके निर्माण हेतु प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए।

1905 में अरबिन्दो ने अपनी पुस्तिका भवानी मन्दिर में तीस करोड़ भारतीयों से मां भवानी को अपनी शक्ति स्थानान्तरित करने का आवाहन किया था। अरबिन्दो ने यह आशा व्यक्त की थी कि देशवासियों की संगठित शक्ति के बल पर मां आततायी का समूल नाश करने में सक्षम होंगी। अरबिन्दो ने देशभक्ति को धर्म का अविभाज्य अंग माना।

बारीन्द्रकुमार घोष तथा भूपेन्द्रनाथ दत्त ने अप्रैल, 1906 में जुगान्तर पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पूर्वी बंगाल के दमनकारी लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर फ़ुलर को मारने का असफल प्रयास किया गया। जुगान्तर के मार्च, 1907 तथा अगस्त 1907 के अंकों में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्ण रणनीति को निरर्थक मानते हुए, उनकी प्राप्ति हेतु अपना खून बहाना आवश्यक बताया गया। हेमचन्द्र कानूनगो सैनिक प्रशिक्षण के लिए पेरिस गए, उन्होंने लौटकर मानिकतल्ला में एक धार्मिक विद्यालय में बम बनाने का गुप्त कारखाना खोला।

30 अप्रैल, 1908 को खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने अत्याचारी न्यायधीश किंग्सफ़ोर्ड की हत्या का असफल प्रयास किया। नवम्बर, 1909 में गवर्नर जनरल लॉर्ड मिन्टो की रेलगाड़ी से अहमदाबाद यात्रा के समय दो बम रेल की पटरी पर पाए गए। सरकार ने क्रान्तिकारियों के दमन के लिए हर सम्भव उपाय किए। सरकार के विरुद्ध साज़िश करने वालों और सरकार के विरुद्ध देशवासियों को भड़काने वालों की गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए गुप्तचरों की सेवाएं ली गईं। 1908 में सरकार ने 'एक्सप्लोसिव सब्सटेन्सेज़ एक्ट' तथा 'न्यूज़पेपर एक्ट', 'इण्डियन लॉ अमेन्डमेन्ट एक्ट' बनाकर क्रान्तिकारियों की गतिविधियों तथा उनके प्रचार कार्य को कुचलने का प्रयास किया।

4.6.1 बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना

बहिष्कार ने सरकार तथा ब्रिटिश उद्योग व व्यापार की कठिनाइयां बढ़ा दीं थीं। ब्रिटिश उद्योगपतियों तथा व्यापारियों ने भारत सरकार पर इस निर्णय को रद्द करने के लिए दबाव डालना शुरू कर दिया। 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करके हिन्दू-बहुल पश्चिमी बंगाल तथा मुस्लिम-बहुल पूर्वी बंगाल को फिर से मिलाकर एक प्रान्त बना दिया गया। अब हिन्दी, उड़िया तथा आसामी भाषी क्षेत्रों के लिए अलग प्रशासनिक इकाइयां बना दी गईं। बाद में बिहार तथा उड़ीसा को मिलाकर एक अलग प्रान्त बना दिया गया तथा आसाम को फिर से चीफ़ कमिश्नरशिप बना दिया गया। किन्तु बंगालियों के प्रभाव को कम करने के लिए भारत की राजधानी कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली बना दी गई।

4.6.2 भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद का आकलन

4.6.2.1 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की सीमाएं

1. स्वदेशी आन्दोलन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को कभी भी पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सका।

2. अंग्रेज़ों ने भारत की राजधानी को कलकत्ता के स्थान पर दिल्ली स्थानान्तरित कर बंगाल के राजनीतिक महत्व को घटाने में सफलता प्राप्त की।

3. सरकार ने साम्प्रदायिकता के आधार पर भारतीयों में फूट डालने के लिए बंगाल विभाजन किया था। इससे सरकार को हिन्दू और मुसलमानों में दरार डालने में पर्याप्त सफलता मिली थी। 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई और हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधारा भी उग्र होती चली गई। इस अलगाववादी विचारधारा के पोषण ने धर्म के आधार पर भारत के विभाजन हेतु अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न कर दी थीं।

4. क्रान्तिकारी आतंकवाद को भारतीय जनता ने कभी भी पूरी तरह आत्मसात नहीं किया। क्रान्तिकारियों के पास संसाधनों की सदैव कमी रही और उनमें संगठन व अनुशासन की कमी भी रही इसलिए इसका विकास जन-आन्दोलन के रूप में नहीं हो सका और सरकार को इसे कुचलने में हर बार सफलता मिली।

4.6.2.2 स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आतंकवाद की उपलब्धियां

1. बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली महत्वपूर्ण सफलता थी। सरकार के इस निर्णय का श्रेय मुख्यतः स्वदेशी आन्दोलन तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन को दिया जाना चाहिए।

2. स्वदेशी आन्दोलन भारतीय इतिहास का पहला अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन था। इस आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य - बंगाल विभाजन को रद्द किया जाना तो प्राप्त कर ही लिया गया था, साथ में इसके राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज, इसके आर्थिक लक्ष्य - आर्थिक आत्म-निर्भरता, इसके अन्य लक्ष्य - राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय शिक्षा के विकास को परवर्ती आन्दोलनों - होमरूल आन्दोलन तथा असहयोग व सविनय अवज्ञा आन्दोलन में अपनाया गया तथा सरकार पर दबाव डालने के लिए इस आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की नीति का भी अनुगमन किया गया। सरकार को 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में भारतीयों को विधान परिषदों में सदस्यों के चुनाव की प्रक्रिया प्रारम्भ करनी पड़ी और 1917 की मान्टेग्यू की घोषणा में भारतीयों को स्वशासन दिए जाने को सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार करना पड़ा।

3. एच0 चक्रबर्ती अपनी पुस्तक पॉलिटिकल प्रोटैस्ट इन बैंगालः बॉयकॉट एण्ड टैरेरिज़्म, 1905-18 में 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने के फ़ैसले तथा सरकार द्वारा भारतीयों को संवैधानिक सुधार दिए जाने का श्रेय क्रान्तिकारियों को देते हैं। क्रान्तिकारियों ने उत्कट एवं निःस्वार्थ देशभक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। नाबालिग खुदीराम बोस को जब प्राणदण्ड दिया गया तब बंगाल की देशभक्त युवतियों ने खुदीराम बोस की चिता की राख से अपनी मांग सजाईं और उसके नाम के छापे की साड़ियां पहनीं।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में उग्र राष्ट्रवाद के विकास की समीक्षा कीजिए।

2. सरकार ने बंगाल विभाजन के निर्णय को किन कारणों से उचित ठहराया था?

3. स्वदेशी आन्दोलन को पहला अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन क्यों कहा जाता है?

4.7 सारांश

मध्यकालीन बंगाल में जैसोर के षासक महाराज प्रतापादित्य तथा बर्दवान के शासक राजा सीताराम राय ने हिन्दुओं के राजनीतिक पुनरुत्थान का प्रयास किया था। राजनारायण बोस के 'पैट्रिएट्स एसोसियेशन' तथा 'सोसायटी फ़ॉर दि प्रमोशन ऑफ नेशनल फ़ीलिंग अमंग दि एजुकेटेड नेटिव्ज़ ऑफ बैंगाल' एवं नबगोपाल मित्र के 'हिन्दू मेला' ने भारतीयों में आत्मनिर्भरता की भावना, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय साहित्य, भारतीय कला, संस्कृति, कुटीर उद्योग तथा स्वास्थ्य निर्माण के विकास का प्रयास किया। बंकिम चन्द्र का उपन्यास आनन्द मठ विभिन्न धार्मिक, देशभक्तिपूर्ण एवं राष्ट्रीय

गतिविधियों का प्रेरणा स्रोत बना। इसका 'वन्देमातरम् गीत' करोड़ों देशवासियों में देशभक्ति की भावना का संचार करने में सफल रहा।

लॉर्ड कर्ज़न, एन्ड्रू फ्रेज़र तथा रिज़ले ने मिलकर बंगाल विभाजन की योजना तैयार की तथा प्रशासनिक क्षमता बढ़ाने के बहाने बंगाल में से पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग कर एक नया प्रान्त बनाने का निर्णय लिया। किन्तु इसका मुख्य उद्देश्य पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम बहुल राज्य बनाकर हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में दरार डालना था।

भारतीय पत्रों, व्यापारिक संगठनों तथा मुसलमानों सहित सभी समुदायों ने इस योजना के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया। आन्दोलनकारियों ने अब शान्तिपूर्ण आन्दोलन तथा केवल सृजनात्मक कार्यक्रमों को अपर्याप्त बताया। आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में अपनाई गई बॉयकॉट अर्थात् बहिष्कार की नीति को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त करने की रणनीति स्वदेशी आन्दोलन में भी अपनाई गई। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के लिए बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। आन्दोलनकारियों ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं, अदालतों, कार्यालयों आदि का बहिष्कार किया। लोकमान्य तिलक ने बॉयकाट को महाराष्ट्र में तथा लाला लाजपत राय ने इसे पंजाब तक फैला दिया। ज़मींदारों, व्यापारियों, पुजारियों, डॉक्टरों, वकीलों, अध्यापकों, मज़दूरों, साधुओं आदि सभी ने बहिष्कार आन्दोलन को सफल बनाने में अपना योगदान दिया।सरकार ने बहिष्कार को राजद्रोह, आंग्ल-विरोधी तथा मुस्लिम विरोधी माना अतः उसके दमन के लिए उसने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया। स्वदेशी आन्दोलन ने भारत को आर्थिक आत्मनिर्भरता दिलाने हेतु कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। ग्राम स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा तथा राष्ट्रीय एकता स्वदेशी आन्दोलन के अन्य लक्ष्य थे। स्वदेशी आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज अथवा स्वशासन प्राप्त करना था।

क्रान्तिकारी आतंकवादियों का मानना था कि विदेशी शासन भारतीयों के धर्म, उनकी संस्कृति और उनके नैतिक मूल्यों के लिए विनाशकारी है और उनके शासन को जड़ से उखाड़ फेंकना आवश्यक है। स्वतन्त्रता के शत्रुओं के विरुद्ध बम और पिस्तौल का प्रयोग क्रान्तिकारियों की दृष्टि में न्यायसंगत था। अनुशीलन समिति, मिदनापुर सोसायटी आत्मोन्नति समिति आदि क्रान्तिकारी संस्थाएं थीं। अरबिन्दो घोष, बारीन्द्रकुमार घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त, हेमचन्द्र कानूनगो, खुदीराम बोस, प्रफुल्ल चाकी, रास बिहारी बोस आदि इस काल के प्रमुख क्रान्तिकारी थे।सरकार ने क्रान्तिकारियों के दमन के लिए हर सम्भव उपाय किए। सरकार के विरुद्ध देशवासियों गतिविधियों पर नज़र रखने के लिए गुप्तचरों की सेवाएं ली गईं। 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करके हिन्दू बहुल पश्चिमी बंगाल तथा मुस्लिम बहुल पूर्वी बंगाल को फिर से मिलाकर एक प्रान्त बना दिया गया।

स्वदेशी आन्दोलन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक लक्ष्यों को कभी भी पूरी तरह प्राप्त नहीं किया जा सका। बंगाल विभाजन के निर्णय के बाद सरकार को हिन्दू और मुसलमानों में दरार डालने में पर्याप्त सफलता मिली थी। क्रान्तिकारी आतंकवाद को भारतीय जनता ने कभी भी पूरी तरह आत्मसात नहीं किया इसलिए इसका विकास जन-आन्दोलन के रूप में नहीं हो सका।

बंगाल विभाजन का रद्द किया जाना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की पहली महत्वपूर्ण सफलता थी। स्वदेशी आन्दोलन के राजनीतिक लक्ष्य - स्वराज, इसके आर्थिक लक्ष्य - आर्थिक आत्म-निर्भरता, इसके अन्य लक्ष्य - राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय शिक्षा के विकास को परवर्ती आन्दोलनों - होमरूल आन्दोलन तथा असहयोग व सविनय अवज्ञा आन्दोलन में अपनाया गया तथा सरकार पर दबाव डालने के लिए इस आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की नीति का भी अनुगमन किया गया। बंगाल विभाजन को रद्द किए जाने के फ़ैसले तथा सरकार द्वारा भारतीयों को संवैधानिक सुधार दिए जाने का आंशिक श्रेय क्रान्तिकारियों को भी जाता है।

4.8 पारिभाषिक शब्दावली

बॉयकाटः मूलतः आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन से ली गई अवधारणा जिसका तात्पर्य बहिष्कार है।

भद्रलोक बंगाली: उच्च अथवा मध्यवर्गीय सुशिक्षित शहरी सवर्ण बंगाली।

एक्सप्लोसिव सब्सटेन्सेज़ः विस्फोटक पदार्थ

चीफ़ कमिश्नरशिपः चीफ़ कमिश्नर के आधीन प्रशासनिक इकाई

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.3.2 उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल में राष्ट्रवादी भावना का विकास
2. देखिए 4.4.2 बंगाल विभाजन की योजना तथा उसका क्रियान्वयन
3. देखिए 4.5.2.2.4 राष्ट्रीय एकता

4.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक)-स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम, बम्बई, 1969

बनर्जी, एस0 एन0 - नेशन इन मेकिंग, कलकत्ता, 1915

नटेसन, जी0 ए0 (प्रकाशक) - इण्डियन नेशनल कांग्रेस, मद्रास, 1917

सीतारमैया, पी0 - दि हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1946

बोस, एन0 एस0 - दि इण्डियन अवेकेनिंग एण्ड बैंगाल, कलकत्ता,1976

सरकार, सुमीत - स्वदेशी मूवमेन्ट इन बैंगाल, नई दिल्ली, 1973

4.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

सेन, सुकुमार - हिस्ट्री ऑफ़ बैंगाली लिटरेचर, नई दिल्ली, 1979

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (चार भागों में), नई दिल्ली, 1984

4.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वदेशी आन्दोलन के सकारात्मक पक्ष पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
2. बंगाल विभाजन के विरुद्ध बंगाल में क्रान्तिकारी आतंकवाद के विकास का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

ब्लाक दो- भारत में राष्ट्रवाद का विकास: आरंभिक चरण

इकाई एक- क्रान्तिकारी आन्दोलन

इकाई दो- विदेशों में क्रान्तिकारी कार्य और क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यॉकन

इकाई तीन- साम्प्रदायिकता का उदय तथा विकास

इकाई चार- लखनऊ समझौता एवं मूल्यांकन, होमरूल लीग आन्दोलन

क्रान्तिकारी आन्दोलन

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 बंगाल और अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियां का उदय

1.4 क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वरूप और नतीजे

1.5 अन्य प्रान्तों में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

1.5.1 उत्तर प्रदेश

1.5.2 गुजरात

1.5.3 पंजाब

1.5.4 मद्रास

1.5.5 महाराष्ट्र

1.6 सारांश

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारत में क्रान्तिकारी गतिविधियों की शुरुआत बीसवीं सदी के प्रथम दशक में हो चुकी थी। देश भर में गुप्त समूह बन चुके थे। इस किस्म के संगठन सबसे पहले में मिदनापुर में उभरे थे, जिनके संस्थापक ज्ञानेन्द्रनाथ बसु थे। बाद में, कलकत्ता में प्रमथ मित्र ने अरबिन्दो घोष के दो प्रतिनिधियों, जतीन्द्रनाथ बनर्जी और बारीन्द्रकुमार घोष के साथ मिलकर बाद में खासा चर्चित होने वाली अनुशीलन समिति की स्थापना की। शुरुआती दौर में ये समूह अपने सदस्यों को शारीरिक व नैतिक प्रशिक्षण देने तक सीमित रहा करते थे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलनों से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से भी परिचित हो सकेंगे :

1. बंगाल और अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियां

2. क्रान्तिकारी आन्दोलन: स्वरूप और परिणाम

3. उत्तर प्रदेशमें चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

4. गुजरातमें चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

5. पंजाब में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

6. मद्रास में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

7. महाराष्ट्र में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

1.3 बंगाल और अन्य प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियों का उदय

1906 में कलकत्ता अनुशीलन के बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त ने साप्ताहिक युगान्तर का प्रकाशन शुरू किया। उन्होंने कुछ कुख्यात लोगों के सफाये की कोशिशें की, हालांकि इन कोशिशों में वे सफल न हो सके थे। इसी दरमियान प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हेमचन्द्र कानूनगो एक रूसी आप्रवासी से प्रशिक्षण हासिल करने पेरिस गए। उन्होंने लौटकर एक धार्मिक स्कूल और बम बनाने का कारखाना स्थापित किया, जिसे कलकत्ता के बाहरी इलाके में स्थित मानिकतला मोहल्ले के एक बगीचे वाले घर में लगाया गया था। लेकिन **30** अप्रैल **1908** को केनेडी महिलाओं की हत्या के चन्द घन्टों बाद पुलिस ने इस कारखाने को पकड़ लिया। इसी दिन प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस ने एक बदनाम मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफर्ड को मारने की कोशिश की थी, लेकिन वह बच गया और उनके हमले में ये महिलायें मारी गई थीं। इस कांड के बाद पुलिस ने क्रान्तिकारियों के इस समूचे दल को गिरफ्तार कर लिया था।

इस बीच पूर्वी बंगाल में ढाका अनुशीलन की संगठित गतिविधियाँ शुरू हो चुकी थीं। संगठन का संचालन पुलिन दास किया करते थे। **2** जून **1908** की बारा डकैती इस समूह का सबसे पहला साहसिक अभियान था। **1911** में बंग-विभाजन की कार्यवाही वापस ली जा चुकी थी। तब तक यह दल समूचे प्रान्त में फैल चुका था और अन्य प्रान्तों में भी इसकी पहुंच बन चुकी थी। समूह का मुख्य काम सरकारी खजाने को लूटना था, जिसे वे 'स्वदेशी डकैती' कहा करते थे। इन डकैतियों का मकसद अपनी कार्यवाहियों के लिए कोष का प्रबन्ध करना था। इसके अलावा उनकी योजना में

अंग्रेज व अन्य औपनिवेशिक अफसरों की हत्या करना शामिल था। जो भी सरकार के लिए काम करे, उसे वे गद्दार समझते थे, इसलिए वे उसकी हत्या भी कर देते थे। दूसरा समूह जतीन्द्रनाथ मुकर्जी के नेतृत्व वाला युगान्तर था, जो अनेक दलों का एक ढीला-ढाला मंच था। यह समूह उस वक्त अपने संसाधन जुटाने और अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क बनाने में लगा था, और उसका मकसद उचित अवसर उपस्थित होने पर अंग्रेजों के खिलाफ एक बड़ा सैनिक हमला आयोजिक करना था। **23** दिसम्बर **1912** को रास बिहारी बोस और सचिन सान्याल ने तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग पर हमला किया, हालांकि हत्या के लिए की गई इस कार्यवाही में वे सफल नहीं हुए थे।

इन संगठनों के अलावा वीडी सावरकर ने **1904** में क्रान्तिकारियों के एक गुप्त संगठन अभिनव भारत का गठन किया था। बाद में इस दल की कार्यवाहियों का केन्द्र लंदन स्थानान्तरित हो गया था (जिसपर अगले पाठ में हम और अधिक चर्चा करेंगे)। **1905** के बाद ऐसे कई अखबार निकलने लगे थे जो हिंसा के जरिए अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंखने की खुली वकालत करते थे।

इन घटनाओं से भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन के युग का आगाज़ हो चुका था। भारत के सभी प्रान्तों में क्रान्तिकारियों के गुप्त संगठन सक्रिय हो रहे थे। इनमें युगान्तर और अनुशीलन समिति की सक्रियता सबसे स्थायी साबित हुई। महाराष्ट्र और पंजाब जैसे अन्य प्रान्तों में भी चरमपंथी व रैडिकल आन्दोलन हो रहे थे, हालांकि वहां इन आन्दोलनों का जोर जन गोलबन्दी करने और क्रान्तिकारी साहित्य निकालने पर ज्यादा था। इन आन्दोलनों को इसी दौर में दमन झेलना पड़ा था, जिसके कारण महाराष्ट्र में एक अल्प दौर के अलावा यह क्रान्तिकारी आतंकवाद के रास्ते पर नहीं बढ़ पाया था। बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त, वीडी सावरकर नासिक में सक्रिय थे। उन्होंने सफलतापूर्वक लंदन से हथियार जुटाए थे, जिनका इस्तेमाल नासिक के जिला मजिस्ट्रेट की हत्या में किया गया था। ग्वालियर में क्रान्तिकारियों ने नव भारत समाज का गठन किया था, जिसके द्वारा भारत में गणतन्त्र की स्थापना को अपना लक्ष्य घोषित किया गया था। बाद में, लंदन में लार्ड वायली की हत्या के बाद इन दोनों समूहों की कार्यवाहियाँ ठप हो गई थीं। नासिक और ग्वालियर षड़यन्त्र मुकदमों के बाद के माहौल में महाराष्ट्र की क्रान्तिकारी गतिविधियां भी धीरे-धीरे समाप्त हो गईं।

अंग्रेज **1918** तक बंगाल में भी राज्य के भीतर से या बाहर से संगठित सभी क्रान्तिकारी आन्दोलन रोकने में सफल हो गए थे। आन्दोलन खत्म करने के लिए अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों के बाद कठोर सजायें दी जा रही थीं। बाद में तो दमन चक्र ने सार्वजनिक गतिविधियों को भी अपनी जद में ले लिया था। इनमें रैडिकल और क्रान्तिकारी साहित्य के प्रकाशन और राजनीतिक सभाओं के आयोजन की गतिविधियॉं भी शामिल थीं।

1.4 क्रान्तिकारी आन्दोलन का स्वरूप और नतीजे

इस दौर के क्रान्तिकारी आन्दोलन को देखकर मोटे तौर पर तीन सवाल उठते हैं। सबसे पहला यह कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का उदय भारतीय इतिहास के इसी दौर में क्यों हुआ? दूसरा, क्रान्ति और मुक्ति के वे विचार क्या थे जिनके आलोक में इस आन्दोलन के नेता अपनी कार्यवाहियाँ चलाते थे? तीसरा, भारतीय समाज पर और अंग्रेजी शासन के खिलाफ अपने मुक्ति-संग्राम में इस क्रान्तिकारी आन्दोलन ने क्या असर डाला है?

प्रोफेसर बिपिन चन्द्र अपनी पुस्तक भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में इस तर्क को स्थापित करते हैं कि युवाओं में अपनी देशभक्ति जाहिर करने की बेकरारी ही बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन की शुरुआत करने वाला कारण था। उन्नीसवीं सदी के परवर्ती काल के शिक्षित शहरी युवा ने भारत में अंग्रेजी शासन को स्वयं देखा था और उसकी असलियत को भी वे समझ चुके थे। ये बेकरार युवा कांग्रेस की राजनीति से भी विक्षुब्ध थे, जिसकी प्रगति की घोंघा चाल और फरियादी चरित्र को वे नापसन्द करते थे। ध्यान रहे कि तब नरमपंथी गुट कांग्रेस में हावी था और चरमपंथियों के उभार की केवल आहट आना शुरू हुई थी। चरमपंथी गुट के प्रमुख नेता तिलक अपने राजनीतिक दौर की शुरुआत में ही अंग्रेजों द्वारा राष्ट्रद्रोह के आरोप में जेल में डाले जा चुके थे। अपनी कार्यवाहियों के चलते चरमपंथी कांग्रेस में अलगाव में डाले जा चुके थे, हालांकि खुद कांग्रेस भी इस सवाल पर ध्रुवीकृत हो चुकी थी। दूसरी ओर चरमपंथी नेताओं द्वारा नरमपंथियों की राजनीतिक सीमाओं की आलोचना तो बिलकुल सटीक थी, लेकिन वे कांग्रेस के लिए अपने द्वारा प्रस्तावित रैडिकल तौर-तरीकों और उद्देश्यों को मूर्त रूप दे पाने में अब तक स्वयं असफल रहे थे। इस रैडिकल रास्ते में भारत में अंग्रेजी राज असल बीमारी है इस बात का खुला दावा करना और अंग्रेजी राज के खिलाफ मुक्ति अभियान की लड़ाई छेड़ने के लिए भारतीय जनता को गोलबन्द करना शामिल था। बहरहाल, कुल मिलाकर उस संधिकाल में एक राजनीतिक खालीपन पनप रहा था, जिसे क्रान्तिकारी आतंकवाद ने आगे बढ़कर भर दिया था। फौरन कुछ कर गुजरने की भावना युगान्तर अखबार के पन्नों से झलकती है। पूर्वी बंगाल के बारीसाल में आयोजित एक शान्तिपूर्ण सम्मेलन पर पुलिस के बर्बर हमले के बारे में लिखते हुए अखबार अपने इस तार्किक आह्वान तक पहुंच जाता हैः भारत में बसने वाले तीस करोड़ लोगों को अपने साठ करोड़ हाथ उठा लेने चाहिये। ताकत का जवाब ताकत से दिया जाना चाहिये।

दुर्भाग्य से फौरन कुछ कर गुजरने के इस आवेग के साथ एक बेहद सरलीकृत वैचारिक परिप्रेक्ष्य व रणनीति ही जुड़ पाई थी। इस आन्दोलन के नेताओं को इस बात का एहसास था कि जन उभार संगठित करना एक लम्बी व कष्ट साध्य प्रक्रिया है। सेना में विद्रोह संगठित करने की सम्भावनाओं पर भी उन्होंने विचार किया था। लेकिन उन्होंने इन दोनों उद्देश्यों को दूरगामी कार्यभार मानकर भविष्य के लिए स्थगित कर दिया था। अंग्रेज शासन में भय का संचार करने के लिए फिलहाल

कुख्यात अंग्रेज अफसरों के सफाये की कार्यनीति को अपना लिया गया। सोचा गया था कि इन कार्यवाहियों से लोगों में देशभक्ति का ज्वार पैदा होगा और आम जनता के दिलो-दिमाग से सत्ता का भय मिट जाएगा। यह भी सोचा गया था कि क्रान्तिकारी अगर गिरफ्तार भी होंगे तो उनके अदालती मुकदमों से क्रान्तिकारी संदेश दूर-दूर तक फैलाया जा सकेगा। इसलिए इस आन्दोलन की मांग ऐसे युवा थे जो अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार हों। यह रणनीति युवाओं में छिपे वीर-भाव को जगाती थी। राजनीतिक संघर्ष का यह तरीका आयरलैन्ड के राष्ट्रवादियों व और रूसी निहिलिस्टों (नकारवादियों) द्वारा आजमाया जा चुका था। काफी संभव है कि भारत का यह क्रान्तिकारी आन्दोलन इस तरह के अपने समकालीन आन्दोलनों से ही प्रेरित रहा होगा।

अरबिन्द घोष के लेखन में इस दौर की नब्ज और क्रान्तिकारियों की दृष्टि की गूंज मिलती है। अप्रैल **1908** में उन्होंने लिखा था, ***'भारत माता कोई युक्ति, कोई योजना, कोई तरीका नहीं मांगती। युक्ति, योजनायें व तरीके वह स्वयं प्रस्तुत करेगी.... '।***

इस आन्दोलन से क्या हासिल हुआ**?** मौत को धता बताने वाली युवाओं की बहादुरी अंग्रेज शासन को दहलाने में कुछ हद तक जरूर सफल हुई थी। नव-शिक्षित भारतीयों के दिल भी इसने जीते थे। भारत के मध्यवर्गीय साहित्यिक दायरे के बाहर भी आन्दोलन ने अपने प्रति आदर व विस्मय का भाव जगाया था। खुदीराम बोस और उसके बलिदान की गाथा लोकगीतों में गाई जा रही थी। उन्हें फांसी पर चढ़ाये जाने के काफी बाद उनकी बहादुरी और बलिदान की करुण गाथा भिखारियों के मुँह से सड़कों पर गूँजती थी। क्रान्तिकारी आन्दोलन की हरेक घटना न जाने कितनी कहानियों व कविताओं को जन्म दे रही थी। देशभक्ति के गीतों का खजाना लबालब हो चुका था। इस आन्दोलन की एक कम चर्चित लेकिन महत्वपूर्ण सांस्कृतिक उपलब्धि यह भी है कि इसने अनेक लोगों को क्षेत्रीय व स्थानीय इतिहास**,** लोक व देशज परम्पराओं को खोजने की ओर उन्मुख किया था। जे.सी. बोस और पी.सी. राय की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ**,** अबनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित पेन्टिंग की कलकत्ता शैली इस दौर के माहौल और घटनाओं से प्रभावित थीं। क्रान्तिकारी आन्दोलन ने रैडिकल पत्रकारिता की संस्कृति का भी आगाज़ किया था। भारत में और भारत की धरती से बाहर सक्रिय हरेक क्रान्तिकारी समूह अखबार निकालता था**,** जिसकी वजह से सार्वजनिक लेखन की संस्कृति फल-फूल रही थी। हालांकि इस मोर्चे पर भी क्रान्तिकारियों को लड़ना पड़ता था क्योंकि अंग्रेज सरकार उन लोगों के दमन पर भी उतारू थी जो क्रान्तिकारी आन्दोलन से केवल सहानुभूति रखते थे। इस तरह हम कह सकते हैं कि अपना अभीष्ठ लक्ष्य हासिल करने में क्रान्तिकारी अकसर असफल हुए थे**,** लेकिन भारतीय जनता ने उनके ध्येय को पूरी तरह से भुलाया न था। उन्होंने अपने समय में राष्ट्र प्रेम का जो भाव जगाया था**,** बाद के दशकों में भी उसकी अलग जलती रही।

क्रान्तिकारी आन्दोलन की इन तमाम खूबियों के बावजूद तथ्य यही है कि यह आन्दोलन शहरों में बड़े विद्रोह नहीं संगठित कर सका था। ग्रामीण इलाकों में भी यह कोई टिकाऊ छापामार लड़ाई नहीं छेड़ सका था। अपनी पुस्तक आधुनिक भारत में सुमित सरकार इन असफलताओं के कुछेक

कारणों का जिक्र करते हैं। उनके अनुसार शुरुआती दौर के अनेक गुप्त समूह बेहद धार्मिक थे और उनके सिद्धान्त गीता के निष्काम कर्म जैसी अवधारणाओं से प्रेरित रहते थे। धार्मिकता के इस स्वर के हावी रहने के कारण मुसलमान जनता इनके आन्दोलन से दूर रहती थी, और कभी-कभी खिलाफ भी चली जाया करती थी। एक क्रान्तिकारी हेमचन्द्र कानूनगो ने अपने बाद के जीवन में तो यह भी कहा है कि इस तरह के सिद्धान्त एक शहीदी पंथ को भी बढ़ावा देते थे। यह प्रवृत्ति जन सम्पर्क बढ़ाने वाले कारगर कार्यक्रम चलाए जाने की इजाजत नहीं देती थी। क्रान्तिकारियों की सामाजिक पृष्ठभूमि स्वयं उन सीमाओं को प्रदर्शित करती है जो इस आन्दोलन को जकड़े थी। **1918** में **186** सजायाफ्ता क्रान्तिकारियों की जो सरकारी सूची बनी थी, उसमें **165** क्रान्तिकारी केवल तीन मुख्य सवर्ण - ब्राह्मण, कायस्थ और वैद्य- जातियों के थे।

हमने अब तक की चर्चा में देखा है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन की कार्यवाहियां मुख्यतया बंगाल में केन्द्रित थीं। **1905** के बंगाल विभाजन को इसका कारण माना जा सकता है। उसने बंगाल में एक जनआन्दोलन के बतौर स्वदेशी आन्दोलन का ज्वार ला दिया था और राज्य के क्रान्तिकारी आन्दोलन को और तीखा कर दिया था। हालांकि इस दौर में अतिवाद बंगाल तक सीमित नहीं था। अंग्रेज शासन से प्रत्यक्ष या परोक्ष ताल्लुक रखने वाले मुद्दों पर अनेक जन आन्दोलन व जन गोलबन्दियां अन्य प्रान्तों में भी हुई थीं, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद के दौर पर दूरगामी असर डाला है।

स्वमूल्यांकित

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. ढाका अनुशीलन समिति का संचालन पुलिन दास करते थे।
2. **1912** को वीडी सावरकर और सचिन सान्याल ने तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिंग पर हमला किया था।
3. रास बिहारी बोस ने **1904** में क्रान्तिकारियों के एक गुप्त संगठन अभिनव भारत का गठन किया था।
4. अबनीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा स्थापित पेन्टिंग की कलकत्ता शैली इस दौर के माहौल और घटनाओं से प्रभावित थीं।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. **1906** में कलकत्ता अनुशीलन के ..... ने साप्ताहिक युगान्तर का प्रकाशन शुरू किया।

2. **2** जून **1908** की ..... ढाका अनुशीलन का सबसे पहला साहसिक अभियान था।

3. ..... और..... की वैज्ञानिक उपलब्धियाँ इस दौर के माहौल और घटनाओं से प्रभावित थीं।

1.5 अन्य प्रान्तों में चरमपंथी व क्रान्तिकारी गतिविधियों का विस्तार

1.5.1 उत्तर प्रदेश

तत्कालीन संयुक्त प्रान्त का बनारस शहर क्रान्तिकारी गतिविधियों का महत्वपूर्ण केन्द्र बन गया था। वहां का मराठी व बंगाली समुदाय क्रान्तिकारी उत्साह में अग्रणी था। एक क्रान्तिकारी समूह मुखोदाचरण समाध्याय के नेतृत्व में उभरा था, जो उस वक्त **1907** में अपने पूर्व सम्पादक के निधन के बाद एक सांध्य अखबार का संपादन संभाल रहे थे। यह समूह कलकत्ता से करीबी सम्पर्क बनाये रखता था। इस क्रान्तिकारी समूह ने ही सचीन्द्रनाथ सान्याल के रूप में एक असाधारण नेता देश को दिया था। उस वक्त छात्र के बतौर बनारस में रहने वाले बाद के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी सुन्दरलाल भी इसी समूह से जुड़े थे। बनारस की अपनी भौगोलिक स्थिति की वजह से भी क्रान्तिकारी आन्दोलन में महत्वपूर्ण हो गया था। वह बंगाल व पंजाब के क्रान्तिकारी समूहों का वह संगम स्थल था।

1.5.2 गुजरात

बॉम्बे प्रेसीडेन्सी के गुजराती भाषी इलाकों में कांग्रेस के नरमपंथी नेताओं की मौजूदगी के कारण वहां अतिवाद का विस्तार नहीं हो सका था। इसमें तब्दीली तब आई जब **1907** में कांग्रेस के नरमपंथी नेता फिरोज शाह मेहता की कोशिशों की बदौलत सूरत में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन आयोजित हुआ। अधिवेशन में लाल-बाल-पाल की प्रसिद्ध तिकड़ी (लाला लाजपत राय, बाल गंगाधर तिलक और बिपिन चन्द्र पाल) मौजूद थी। उनके उत्तेजक भाषणों से दो युवा गुजराती किसान प्रतिनिधि, कुंवर जी और कल्यानजी मेहता इस कदर प्रभावित हुए कि उन्होंने गुजरात लौटकर पाटीदार युवक मंडल की स्थापना कर डाली। बाद में, **1920** के दशक में बारदोली के गांधीवादी सत्याग्रह के संचालन में इस संगठन ने निर्णायक भूमिका अदा की थी।

1.5.3 पंजाब

पंजाब में **1890** के बाद बैंक, बीमा व शिक्षा के क्षेत्रों में स्वदेशी गतिविधियां शुरू हो गई थीं। पंजाब के स्थापित व्यापारी समुदाय, खत्री, अरोड़ा और अग्रवाल इन पहलकदमियों का नेतृत्व करते थे। **1904** और **1907** के बीच यह प्रान्त अतिवाद की तरफ झुकने लगा। लाला लाजपत राय और हन्स

राज ने एक अखबार पंजाबी शुरू किया था, हालांकि इस पहल के पीछे कांग्रेसी धड़ेबाजी भी एक वजह थी। अखबार का ध्येय वाक्य 'हर कीमत पर स्वयं सेवा' था। भारतीयों के प्रति अंग्रेजों के नस्लवादी दुर्व्यवहार के खिलाफ लिखने व आक्रोश व्यक्त करने के कारण सरकार ने **1907** में पंजाबी पर मुकदमा लाद दिया। लेकिन इस मुकदमे की तारीख पर पंजाब में प्रदर्शन भड़क उठे। फरवरी **1907** में लाहौर में गोरों पर छिटपुट हमले भी हुए। विरोध की ऐसी कार्यवाहियां मई में भी जारी रहीं। हालांकि सरकार उस वक्त ल्यालपुर के इर्दगिर्द की नहर कॉलोनियों में फैले असन्तोष पर ज्यादा ध्यान दे रही थी। नहर कालोनियां अंग्रेज औपनिवेशिक अफसरों की नौकरशाही व तानाशाही से त्रस्त थे, जिसमें केवल गोरे अफसर थे। अब सरकार सरकार का नया चेनाब कॉलोनी विधेयक जनता पर अपना फन्दा और कसने वाला था। विधेयक **1906** में लागू किया गया था। नहर प्रशासन के खिलाफ प्रतिरोध कार्यवाहियां **1903** से ही आयोजित हो रही थीं। इन आयोजनों में अग्रणी भूमिका निभाने वाले सिराज-उद-दीन अहमद जमींदार नाम की एक पत्रिका निकाला करते थे। यह पत्रिका मालिक-किसानों के मंच में तब्दील हो गई थी। आन्दोलनों में चेनाब नहर कॉलोनी के हिन्दू, मुसलमान और सिख सभी की भागीदारी होने से वह साम्प्रदायिक एकता की शानदार मिसाल कायम कर रहा था। सरकार के जनविरोधी कदमों के न थमने के कारण प्रतिवाद और तीखा होता गया। **1906** नवम्बर में बड़ी दोआब क्षेत्र में नहर की जल-दरों में **25** फीसदी का इजाफा कर दिया गया। रावलपिंडी इलाके में भी भू-राजस्व की दरें बढ़ा दी गईं। सरकार की इन जन विरोधी कार्यवाहियों के जवाब में राजस्व-लिपिक हड़ताल पर चले गए। फिर कॉलोनी से गुजरने वाली उत्तर-पश्चिमी रेल के सभी कर्मचारी हड़ताल पर चले गए। पंजाब में (भगत सिंह के चाचा) अजीत सिंह उस वक्त बेहद सक्रिय थे, और वे लाहौर में अंजुमन-ए-मोहिब्बन-ए-वतन की स्थापना कर चुके थे। वे भारत माता पत्रिका का भी प्रकाशन किया करते थे। **1907** में इलाके के किसानों को संगठित करके भू-राजस्व और जल-शुल्क न अदा करने का अभियान चलाने में यह पत्रिका सक्रिय भूमिका अदा कर रही थी। पत्रिका द्वारा साम्प्रदायिक एकता बनाए रखने के कारगर प्रयासों ने सरकार को और भी खफा कर रखा था। इसी साल सिपाहियों द्वारा फिरोजपुर की विद्रोही बैठकों में शामिल होने की खबरें भी आ रही थीं। रावलपिंडी में भी व्यापक प्रतिवाद हो रहे थे, शस्त्रागार के मुसलमानों और सिखों द्वारा हड़ताल छेड दी गई थी, अजीत सिंह की सभा करने से वकीलों को मना करने के कारण अंग्रेज साहबों के बंगलों पर हमले होने लगे। इन कार्यवाहियों को नियन्त्रित करने के मकसद से सरकार ने राजनीतिक बैठकों पर पाबन्दी जड़ दी, और अजीत सिंह को गिरफ्तार करके निर्वासित कर दिया। ध्यान देने की बात है कि बाद में अजीत सिंह, और मुरादाबाद के सूफी अम्बा प्रसाद, उर्दू के क्रान्तिकारी कवि लाल चन्द 'फलक', दिल्ली के भाई परमानन्द और हर दयाल पूर्ण क्रान्तिकारी बनने के रास्ते पर आगे बढ़ गए। **1907** के बाद सरकार की तरफ से कुछ रियायतों की पेशकश होने के बाद से पंजाब का चरमपंथी आन्दोलन नरम पड़ गया। और भी दुर्भाग्य की यह हुई कि उसके बाद क्रान्तिकारी राजनीति को रंगमंच से उतारकर साम्प्रदायिक राजनीति पंजाब में हावी हो गई।

1.5.4 मद्रास

मद्रास प्रेसीडेन्सी के तटीय क्षेत्र राज्य में अतिवादी हलचलों के केन्द्र थे। इस उभार का एक और केन्द्र आन्ध्र का सुदूरवर्ती दक्षिणी जिला तिरुनेलवेली था। **1906** के बाद से ही बंगाल के आन्दोलनों के समर्थन में राजामुन्द्री, काकीनाड़ा और मसुलीपटनम जैसे आन्ध्र के तटीय शहरों में सभायें की जाने लगी थीं। ये गतिविधियां बढ़ते-बढ़ते वन्देमातरम नाम का एक आन्दोलन बन गईं। अप्रैल **1907** में बिपिन चन्द्र पाल ने आन्ध्र का दौरा किया, जिसके बाद यह आन्दोलन और तेज हो गया। चरमपंथी बिपिन पाल को आन्ध्र में बुलाने वाले नेता एम कृष्णा राव थे। अंग्रेज सरकार इसके जवाब में दमन पर उतारू हो गई। जनता भी कहां पीछे रहने वाली थी। **31** मई **1906** को काकीनाड़ा में गोरों के एक क्लब पर गुस्साई भीड़ ने हमला कर दिया। इसका तात्कालिक कारण एक बच्चे के बन्दे मातरम कहने पर अंग्रेज अधिकारी द्वारा उस पर किया गया हमला था। आन्दोलन के इस दौर में तेलुगू भाषा, साहित्य, व उसके इतिहास के प्रति एक नये किस्म का उत्साह फैल रहा था। आन्ध्र के दक्षिणी जिले तिरुनेलवेली में जी सुब्रमण्यम अय्यर स्वदेशी के प्रचार की खातिर लगातार दौरा कर रहे थे। तूतीकोरीन में वी.ओ. चिदम्बरम पिल्लई भी अपनी कार्यवाहियों से एक अतिवादी नेता के बतौर चर्चित हो चुके थे। जनवरी **1908** में सुब्रमण्यम सिवा के रूप में इस आन्दोलन को एक मजदूर पृष्ठभूमि वाले जुझारू नेता मिल गए थे। वे मदुरा के थे। सिवा प्रायः प्रतिदिन तूतीकोरीन के तट पर सभायें करते और लोगों से बहिष्कार की अपील करते थे। पुलिस अधिकारियों की रपटें उन्हें हिंसक रास्तों की भी तरफदारी करने वाला बताती थीं। फरवरी **1908** के बाद वे अपने भाषणों में मजदूरों को सीधे तौर पर सम्बोधित करने लगे थे, और अपने सम्बोधनों में रूसी क्रान्ति के बारे में बताते हुए उस क्रान्ति से मजदूरों को होने वाले फायदे लोगों को बताया करते थे। अंग्रेजी सरकार इन सभाओं को रोकने लगी। विरोध में वहां के व्यापारियों ने दूकानें बन्द कर दीं, नगरपालिका के अलावा दूसरे सफाई कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी, तूतीकोरीन के बग्घी चालक भी हड़ताल पर चले गए। यही नहीं, तिरुनेलवेली नगरपालिका के दफ्तरों, कचहरी ओर पुलिस थानों पर हमले भी हुए। सरकार का दमन भी तेज हो गया, **11-13** मार्च **1908** को दोनों शहरों में पुलिस ने लोगों पर गोलियां बरसायीं। इस घटना के बाद सिवा और पिल्लई इलाके से बाहर चले गए। तिरुनेलवेली के उग्र तत्वों ने एक आतंकवादी दल का गठन कर लिया। जून **1911** में इस दल ने वहां के जिला मजिस्टेट ऐशे की हत्या कर दी। तमिल क्रान्तिकारियों का भी एक छोटा समूह भी इस इलाके में सक्रिय रहता था। गौरतलब है कि इस समूह में बाद के मशहूर महाकवि सुब्रमण्यम भारती भी हुआ करते थे। हालांकि उनके साथी वी.वी.एस. अiयर बाद में सावरकर के शिष्य बन गए थे।

1.5.5 महाराष्ट्र

उन दिनों महाराष्ट्र बॉम्बे प्रेसीडेन्सी में हुआ करता था, और उन्नीसवीं सदी के अन्त तक वहां विभिन्न संगठनों की सरपरस्ती में कई किस्म की राजनीतिक धारायें राजनीतिक गोलबन्दी करने लगी

थीं। लेकिन सड़कों पर जनता का पहला बड़ा आन्दोलन **1908** में तब देखा गया जब बाल गंगाधर तिलक पर अंग्रेज सरकार राजद्रोह का मुकदमा चला रही थी। गौरतलब है कि सड़क पर उतरे लोगों में औद्योगिक मजदूर अग्रणी थे। **13** जुलाई को छिटपुट हड़तालें, पत्थरबाजी, व पुलिस से भिड़ने की कार्यवाहियां हुईं। यह मुकदमे का पहला दिन था। बाद में तो जन आक्रोश इतना बढ़ गया कि स्थितियां नियन्त्रित करने के लिए सरकार सेना बुलाने पर मजबूर हो गई। **22** जुलाई को तिलक को सजा सुना दी गई, जिसके बाद मुल्जी जेथा बजार के कपड़ा व्यापारी छह दिन की हड़ताल पर चले गए। बम्बई के मजदूर भी **28** जुलाई तक कार्य बहिष्कार की घोषणा करते हुए हड़ताल में शामिल हो गए। बम्बई की **85** में से **76** मिलों में कामकाज ठप हो गया। उधर पुलिस और सेना द्वारा कई बार गोलियां चलाई गईं, जिनमें सरकारी रपटों के मुताबिक **16** लोग मारे गये थे और **43** घायल हुये थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. कुंवर जी और कल्यानजी मेहता ने पाटीदार युवक मंडल की स्थापना की थी।
2. सिराज-उद-दीन अहमद , **जमींदार** नाम की एक पत्रिका निकालते थे ।
3. **1906** नवम्बर में बड़ी दोआब क्षेत्र में नहर की जल-दरों में **25** फीसदी का इजाफा कर दिया गया।
4. चरमपंथी बिपिन पाल को आन्ध्र में बुलाने वाले नेता एम कृष्णा राव थे।

1.6 सारांश

यहां यह एक बार दोहराने की जरूरत है कि भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के शुरुआती दौर का यह क्रान्तिकारी आन्दोलन भारतीय जनता की दुर्दशा और अंग्रेजी शासन के बढ़ते दमन-उत्पीड़न से उपजी एक उतावली प्रतिक्रया थी, जिसके नायक मुख्यतया देश के शिक्षित युवा थे। यह राष्ट्र की दुर्दशा और उसके प्रति बढ़ती जागरूकता का प्रतिबिम्ब थी। जाहिरा तौर पर इस प्रतिक्रया में वह गुस्सा भी था, जिसका उभरना राष्ट्र की दुर्दशा के प्रति इस जागरूकता के बाद लाजिमी था। यह आक्रोश फौरी कार्यवाहियां मांग रहा था, और युवा इस दिशा में आगे बढ़ गए। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रति देश के युवाओं के लगाव का यही राज था। लेकिन यह आवेग ज्यादा दिन टिक नहीं सका। संसाधनों व संयोजन की कमी, जनता में व्यापक आधार के अभाव ने आन्दोलन को टिकाऊ नहीं बनने दिया। नतीजतन यह आन्दोलन भविष्य की विजय का स्वप्न लिए बलिदान की एक गाथा बन गया। समग्र तौर पर देखें तो यह आन्दोलन एक टिकाऊ जन आन्दोलन की जरूरत के प्रति देश को जगाने वाला साबित हुआ और बाद के राष्ट्रीय आन्दोलन में आत्म-बलिदान का प्रेरणा

स्रोत बन गया। शहीदों की कवितायें और गीत हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन की दशकों तक खिंची जंग में जनता को सतत उत्साहित करते रहे।

1.7 पारिभाषिक शब्दावली

आप्रवासी – दूसरे देश में निवास करने वाला

जन गोलबन्दी – लोगों को इकट्ठा करना

सांध्य अखबार- शाम को प्रकाशित होने वाला अखबार

1.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.4 के प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य

2. असत्य
3. असत्य
4. सत्य

रिक्त स्थानों की पूर्ति

1. बारीन्द्रकुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त

2. बारा डकैती

3.जे.सी. बोस पी.सी. राय

इकाई 1.5 के प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य

2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य

1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

1.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

J.C. Ker, *Political Trouble in India 1907-1917,* Calcutta, 1917

Hirendranath Mukherjee, *India Struggles for Freedom,* Bombay, 1948

Haridas and Urna Mukherjee, *India's Fight for Freedom or the Swadeshi Movement 1905-1906,* Calcutta, 1958

R.C. Majumdar, *History of Freedom Movement in India*, Vol. I, Calcutta 1962

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के विभिन्न प्रान्तों में क्रान्तिकारी गतिविधियों पर चर्चा कीजिए।

विदेशों में क्रान्तिकारी कार्य और क्रान्तिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ

2.4 प्रवासी भारतीयों के अनुभव और क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ

2.5 प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

2.6 सारांश

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारतीय उपमहाद्वीप में आने वाले क्रान्तिकारी आवेग का विस्तार भारत की भौगोलिक सीमाओं के पार भी पहुँचा था। भारत की धरती से बाहर आजादी के स्वप्न के लिए समर्पित जिन समूहों का उदय हुआ था, वे दो तरह के थे। कुछ तो ऐसे थे जो भारत में रहते हुए क्रान्ति के लड़ाकू बन चुके थे, और अपनी गतिविधियों को बढ़ाने के सुनियोजित क्रम में विदेश गए थे। उनके प्रवासी बनने का मकसद मुख्यतया सुरक्षित आश्रय खोजने, हथियारों और प्रशिक्षण के लिए मदद तलाशने और अपने विचारों को प्रकाशित कर पाना था। लेकिन क्रान्तिकारियों का दूसरा समूह इस आन्दोलन के पहले से ही विदेश में प्रवासी हो चुका था और इसी दौरान नस्लवाद व भेदभाव से लड़ने के लिए उसने खुद को संगठित भी किया था। अन्ततः इस समूह में भी भारत को अंग्रेजों से आजाद कराने की आकांक्षायें जोर मारने लगी थीं। यही वह पृष्ठभूमि है जिसके आलोक में हमें भारत से बाहर की क्रान्तिकारी गतिविधियों और आन्दोलनों समझने की जरूरत है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको भारतीयों के विदेशों में क्रान्तिकारी कार्य और क्रान्तिकारी आन्दोलन के मूल्यांकन

से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से परिचित हो सकेंगे :

- भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ
- प्रवासी भारतीयों के अनुभव और क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ
- प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ
- क्रान्तिकारी आन्दोलन और विदेशी भूमि पर क्रान्तिकारी कार्यवाहियों का मूल्यांकन

2.3 भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ

1905 में श्यामजी कृष्णवर्मा लंदन में रहते हुए भारतीय छात्रों के एक केन्द्र (इन्डिया हाउस), एक पत्रिका (इन्डियन सोशोलाजिस्ट), एक भारतीय होम रूल सोसाइटी और भारत से युवाओं को आकर्षित करने के लिए एक छात्रवृत्ति योजना की शुरुआत कर चुके थे। लेकिन उनका जुझारूपन मुख्यतया सैद्धान्तिक सक्रियता तक सीमित था। **1907** में श्यामजी कृष्णवर्मा के इन संस्थानों का संचालन वी.डी. सावरकर और उनके नासिक गुट के हाथ में स्थानान्तरित हो गया। लार्ड कर्जन-वाइली की हत्या करने वाले मदन लाल ढींगरा इसी समूह से जुड़े थे। क्रान्तिकारियों की इस कार्यवाही के बाद सावरकर गिरफ्तार कर लिये गए, भारत प्रत्यर्पित किए गए, और फिर नासिक षड़यन्त्र मामले में सरकार द्वारा आजीवन निर्वासित कर दिये गए। इस तरह क्रान्तिकारिता के लंदन केन्द्र की आग बुझ गई। इसके बाद क्रान्तिकारी कार्यवाहियों के नए केन्द्र यूरोपीय महाद्वीप में उभरना शुरू हुए। पेरिस में पारसी क्रान्तिकारी मैडम कामा ने बन्दे मातरम का प्रकाशन करना शुरू कर दिया। वे फ्रांस के समाजवादी क्रान्तिकारी ज्यां लांगे से करीबी सम्बन्ध भी विकसित करने में कामयाब हुई थीं। इसके अलावा, **1909** के बाद के विशेष अन्तर्राष्ट्रीय माहौल में, ब्रिटेन और जर्मनर के रिश्ते में आई गिरावट का फायदा उठाते हुए वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय भी बर्लिन से अपनी क्रान्तिकारी गतिविधियाँ शुरू कर चुके थे।

बंगाल के हेमचन्द्र कानूनगो भी पेरिस पहुँच चुके थे। एक रूसी आप्रवासी से कुछ सैनिक व राजनीतिक प्रशिक्षण हासिल करने के बाद वे वापस भारत लौटे। कानूनगो के इस अनुभव का फायदा उठाते हुए उनकी भारत वापसी के बाद कलकत्ता की अनुशीलन समिति ने बम बनाने का एक कारखाना लगाया था। क्रान्तिकारी समूहों ने आयरलैन्ड के क्रान्तिकारियों के साथ भी करीबी सम्पर्क

स्थापित किए गए थे। उधर, इन समूहों के बीच जी.एफ. फ्रीमैन द्वारा न्यूयार्क से प्रकाशित गैलिक अमरीकन का प्रसार होने लगा था। इसके अलावा इन्डियन सोशालॉजिस्ट, मैडम कामा का बन्दे मातरम, बर्लिन से चट्टोपाध्याय द्वारा प्रकाशित तलवार, वैंकूवर से तारकनाथ दास द्वारा प्रकाशित फ्री हिन्दुस्तान और प्रसिद्ध गदर जैसे अखबार भी पढ़े और वितरित किए जा रहे थे। भारतीय क्रान्तिकारियों के अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी आन्दोलन के साथ भी नजदीकी रिश्ते बन चुके थे। लंदन में ब्रिटिश मार्क्सिस्ट सोशल डेमोक्रेटिक फेडरेशन के हिन्डमैन लंदन में इन्डिया हाउस की बैठकों को सम्बोधित किया करते थे। उधर मैडम कामा ने एक और महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए अगस्त **1907** में द्वितीय इन्टरनेशनल की स्टुटगार्ट कांग्रेस में आजाद भारत का झन्डा फहराया था। दिल्ली के एक छात्र, हरदयाल, संयुक्त राज्य अमरीका के सैन फ्रांसिस्को शहर पहुँचकर अन्तर्राष्ट्रीय मजदूरों के अराजकतावादी-सिंडीकेटवादी धड़े के सचिव का काम किया करते थे।

2.4 प्रवासी भारतीयों के अनुभव और क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ

अमरीका के ब्रिटिश कोलम्बिया और प्रशान्त तट पर भारतीयों के क्रान्तिकारी आन्दोलन अपना जनाधार बना चुका था। यह स्थित ब्रिटेन और यूरोप में जनता से अलग-थलग रहने वाले क्रान्तिकारी समूहों की हकीकत से बिलकुल अलग थी। अमरीका के इस इलाके में **1914** तक तकरीबन **15,000** भारतीय बस चुके थे, जिनमें अधिकांशतया सिख थे। ज्यादातर सिख पंजाब के होशियारपुर ओर जालन्धर जिलों से वहां पहुँचे थे। पंजाब के इन दो अत्यन्त सघन आबादी वाले जिलों से लोग रोजगार की तलाश में मलेशिया, फिजी और अमरीका की ओर पलायन कर रहे थे। अपनी इस प्रवास-यात्रा का खर्च वे अकसर अपने जीवन भर की सम्पत्ति व कमाई गिरवी रखने के बाद जुटा पाया करते थे। लेकिन जीवन भर की कमाई दाँव पर लगाने के बाद जब वे सपनों की नई दुनिया पहुंचते, तो वहाँ अवांछित होने का एहसास उन्हें हलाल करने लगता था। मेजबान विदेशी समाज प्रवासी भारतीयों के रहन-सहन और तौर तरीकों पर नाक-भौं सिकोड़ता था। लेकिन इससे भी बड़ी बात यह थी कि उनके वहाँ आगमन के कारण रोजगार की प्रतिद्वन्द्विता गहरा जाती थी, जो गोरे मजदूरों और उनके संघों को प्रवासी भारतीयों से खफा कर देती थी। नतीजतन, वे भारतीयों के प्रवेश के खिलाफ आन्दोलन छेड़ रहे थे, जिनको राजनीतिक समर्थन हासिल करने की गरज के चलते वहाँ के नेता भी समर्थन कर रहे थे।

संयुक्त राज्य अमरीका में भारतीयों के इस बहिष्कार और उन्हें वहाँ प्रवेश देने की खिलाफत का भारतीय सेक्रेटरी ऑफ स्टेट परोक्ष तौर पर समर्थन कर रहे थे। उन्हें यह भरोसा था कि अमरीकी गोरों के साथ भारतीयों की करीबी पहचान का बनना अंग्रेजी रुतबे के लिये अच्छा साबित नहीं होगा। इसके अलावा उन्हें यह भी चिन्ता सता रही थी कि दूसरे महाद्वीप का प्रवास उन्हें समाजवादी विचारों से परिचित करा देगा, और नई जगहों पर उनसे किया जाने वाला नस्लीय भेदभाव बदले में भारतीय राष्ट्रवादी लड़ाई को और भड़काएगा। अंग्रेजों की इन आशंकाओं के चलते **1908** में प्रवास के लिए

कनाड़ा में भारतीयों के प्रवेश पर एक तरह की कारगर रोक लग चुकी थी। यही वे हालात थे जब एक भारतीय छात्र और उत्तरी अमरीका के पहले भारतीय नेता तारक नाथ दास ने फ्री हिन्दुस्तान का प्रकाशन शुरू किया था।

इन पाबन्दियों ने भारतीयों की राजनीतिक गतिविधियों को और तेज कर दिया। उनकी आवाज लड़ाकू और क्रान्तिकारी होती गई। **1907** में, पश्चिमी तट पर बसे एक निर्वासित भारतीय, रामनाथ पुरी ने सर्कुलर-ए-आजादी जारी करते हुए उस वक्त भारत में चल रहे स्वदेशी आन्दोलन को समर्थन देने का वचन दिया। जी.डी.कुमार ने वैंकूवर में स्वदेश सेवक गृह स्थापित किया, यह काफी हद तक लंदन के इन्डिया हाउस जैसा ही था। इसके अलावा उन्होंने गुरुमुखी में स्वदेश सेवक नाम का अखबार भी निकाला था। यह अखबार भारतीयों में सामाजिक सुधार किए जाने की वकालत करता था। इसने भारतीय सैनिकों से अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने की अपील भी की थी। सरकार के लिए जी.डी.कुमार और तारकनाथ को कनाडा से बाहर निकाल देने के लिए इतनी गतिविधियाँ काफी थीं। उनका अगला पड़ाव संयुक्त राज्य अमरीका का सियाटेल शहर बना, जहाँ पहुँचकर उन्होंने यूनाइटेड इन्डिया हाउस बनाकर अपना काम जारी रखा। हरेक शनिवार **25** भारतीय मजूदरों के समूह के बीच वे भाषण दिया करते थे। उन्होंने रैडिकल राष्ट्रवादी छात्रों के अलावा खालसा दीवान समाज के साथ भी सम्पर्क स्थापित किया था। **1913** में, औपनिवेशिक मामलों के सचिव से लंदन में और भारत में वायसराय व दूसरे अधिकारियों से मिलने के लिये इनकी तरफ से एक शिष्ट मंडल भेजा गया था। ब्रिटेन में सचिव से तो वे मुलाकात नहीं कर सके, लेकिन वायसराय और पंजाब के लेफ्टीनेन्ट गवर्नर से मिलने में वे जरूर कामयाब हुए थे। इन बैठकों का कोई महत्व तो न था लेकिन लुधियाना, अम्बाला, फिरोजपुर, जालन्धर, ल्यालपुर, गुजरांवाला, सियालकोट और शिमला में उनके द्वारा की गई जनसभायें जरूर महत्वपूर्ण थीं। अखबारी दुनिया ने भी उन्हें काफी समर्थन दिया था।

इन तरह संयुक्त राज्य अमरीका और कनाड़ा में क्रान्तिकारियों का अभियान निरन्तर चलता रहा। सभाओं और अखबारों के प्रकाशन ने वहाँ के प्रवासी भारतीयों के बीच एकजुटता बढ़ाने और गहन राष्ट्रीय भावनायें पैदा करने में बड़ी भूमिका अदा की थी। फिर भी यह आन्दोलन ब्रिटेन या भारत की सरकार द्वारा लगाई गई पाबन्दियों को वापस कराने में सफल न हो सका। यह असफलता इस आन्दोलन के अन्ततः क्रान्तिकारी आन्दोलन की ओर मुड़ने का कारण बन गई।

1913 में एक सिख ग्रन्थी, भगवान सिंह वैंकूवर पहुँचे। वे पहले हांगकांग और वर्तमान मलेशिया में काम कर चुके थे। भगवान सिंह वहाँ हिंसा के जरिये अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने का खुला प्रचार करने लगे। वे लोगों को बन्दे मातरम कहकर सलाम करने की अपील किया करते थे। तीन महीने बाद भगवान सिंह कनाड़ा से बाहर कर दिए गए। इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका क्रान्तिकारियों का नया अड्डा बन गया। हरदयाल अप्रैल **1911** में कैलिफोर्निया रहने लगे थे। वे कुछ समय तक स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय में शिक्षण करते रहे। **1912** की गर्मियों में वे बुद्धिजीवियों, क्रान्तिकारियों और मजदूरों

के विभिन्न समूहों के बीच अराजकतावादी-सिंडीकेटवादी आन्दोलनों पर व्याख्यान देने लगे। **23** दिसम्बर **1912** में लार्ड हार्डिंग पर हमले की कार्यवाही के बाद वे भारतीय आजादी की लड़ाई में दिलचस्पी लेने लगे। भारत में रासबिहारी बोस और सचिन सान्याल द्वारा की गई यह कार्यवाही हालाँकि असफल रही थी, और उसके बाद दोनों को देश से भागकर बाहर जाना पड़ा था। लेकिन इस घटना ने अमरीका में हरदयाल को आश्वस्त कर दिया कि क्रान्तिकारी तरीकों के जरिए भारत से अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंका जा सकता है। युगान्तर सर्कुलर निकालकर उन्होंने इस घटना का स्वागत किया। मई **1913** के फौरन बाद पोर्टलैन्ड में एक 'हिन्दी संघ' बना लिया गया। लाला हरदयाल इस आन्दोलन का नेतृत्व करने के लिए तैयार हो गए। इस संघ की पहली बैठक कांशी राम जी के घर पर हुई, जिसमें भाई परमानन्द, सोहन सिंह भकना और हरनाम सिंह 'तुंडीलाट' शामिल हुए थे। उन्होंने लोगों को यह समझाया कि जब तक भारत आजाद नहीं होगा, अमरीकी भारतीय प्रवासियों का सम्मान नहीं करेंगे। उनका कहना था कि अमरीका में उपलब्ध आजादी के माहौल का इस्तेमाल भारत में एक सशस्त्र विद्रोह संगठित करने में किया जाना चाहिए। उन्होंने लोगों को यह संदेश भारतीय जनता व भारतीय सेना में फैलाने और भारत जाकर उनका समर्थन जुटाने के लिए कहा। एक कार्यकारिणी गठित कर ली गई और गदर अखबार का साप्ताहिक प्रकाशन करने का निर्णय कर लिया गया। निर्णय यह भी था कि अखबार का वितरण निशुल्क किया जाएगा। सैन फ्रांसिस्को के युगान्तर आश्रम से संघ का मुख्यालय कार्य करने लगा। पहली बैठक के बाद अलग-अलग शहरों में बैठकों का सिलसिला शुरू हो गया, जहाँ पोर्टलैन्ड बैठक के निर्णयों को समर्थन मिलता रहा।

प्रवासी मजदूरों के हरेक तबके में क्रान्तिकारियों ने एक सघन अभियान शुरू कर दिया। इन सभी राजनीतिक कार्यकर्ताओं का कार्यालय युगान्तर आश्रम था। **1** नवम्बर **1913** को गदर का पहला अंक प्रकाशित हुआ, और यह उर्दू में निकला था। **9** दिसम्बर को इसके गुरुमुखी और अन्य भारतीय भाषाओं के संस्करण निकाले गए। गदर नाम अपने आप में संगठन के लक्ष्य को स्पष्ट कर देता था। उसके मुख पृष्ठ पर सबसे ऊपर 'अंग्रेजी राज्य का दुश्मन' लिखा रहता था। साप्ताहिक अखबार अपने इरादे की घोषणा करते हुए अंग्रेजी राज के दुष्परिणामों का चिट्ठा जारी किया करता था। इसका हरेक अंक अपने पाठकों के लिए अंग्रेजी राज की अपनी आलोचना का सारांश **14** बिन्दुओं में व्यक्त किया करता था। अन्तिम दो बिन्दु लोगों को इस समस्या का यह समाधान बताया करते थे- भारत में राज करने वाले मुट्ठी भर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करो।

अखबार का संदेश सीधा और सरल था। उसमें सूफी अम्बा प्रसाद से लेकर अनुशीलन समिति के सभी भारतीय राष्ट्रवादियों और उनके योगदान का जिक्र भी रहता था। इसमें धर्मनिरपेक्षता के साथ-साथ चरम क्रान्तिकारी उत्साह व्यक्त करने वाली सशक्त कवितायें छपा करती थीं। उत्तर अमरीका में अखबार का प्रचार-प्रसार काफी व्यापक था। कुछ महीनों में ही फिलीपीन्स, हांगकांग, चीन, मलेशिया, सिंगापुर, ट्रिनिडाड, होन्डुरास में रहने वाले भारतीयों के अलावा इसका वितरण भारत में

भी होने लगा था। पंजाबी आप्रवासियों की सभाओं में सुनायी जाने वाली इसकी कवितायें बेहद लोकप्रिय थीं।

गदर अखबार ने बहुत कम समय में आन्दोलन का एक जनाधार तैयार कर दिया था। अगले साल, **1914** में, घटी तीन घटनाओं ने आन्दोलन को आक्रामक कार्यवाहियों की ओर धकेलने में उत्प्रेरक का काम किया। **25** मार्च **1914** को हरदयाल अराजकतावादी गतिविधियां संचालित करने के आरोप में गिरफ्तार कर लिए गए। हालाँकि बाद में जमानत पर उन्हें रिहा कर दिया गया। इसके बाद उन्होंने अमरीका से बाहर जाने का फैसला कर लिया, और इस तरह एकाएक गदर के साथ उनका जुड़ाव समाप्त हो गया।

मार्च **1914** को कनाडा के समुद्र तट पर घटी कामागाटामारू घटना ने गदर आन्दोलन की आग को चरम पर लहका दिया। जैसा पहले बताया जा चुका गया है, भारतीयों को कनाड़ा में प्रवेश न देने की नीति पर चलते हुए कनाड़ा की सरकार भारतीयों के लिए अप्रवास के कानून सख्त कर चुकी थी। इस कानून के एक अनुच्छेद में लिखा था कि भारत से अनवरत यात्रा के जरिए कनाड़ा पहुंचने वाले भारतीयों को छोड़कर अन्य सभी भारतीयों का वहाँ प्रवेश प्रतिबन्धित रहेगा। उस वक्त भारत से अनवरत यात्रा कराने वाली कोई जहाजी व्यवस्था मौजूद न होने के कारण यह नियम कनाडा में भारतीयों का प्रवेश कारगर ढंग से रोक देता था। लेकिन तभी कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय का एक असाधारण फैसला आया, जिसमें उसने भारत से अनवरत यात्रा न करने वाले **35** भारतीयों के प्रवेश की इजाजत दे दी थी। यह खबर सिंगापुर में रहने वाले एक भारतीय गुरदीत सिंह को भी मिल गई, जो वहाँ ठेकेदारी किया करते थे। वे एक जहाज किराए में लेकर उसमें भारतीय यात्रियों के साथ पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया के कई स्थानों पर गए। जहाज में कुल **376** यात्री थे। जहाज के जापान में याकोहामा शहर पहुँचने पर गदर कार्यकर्ता भी वहां पहुँच गए। उन्होंने वहां भाषण किए और अपने पर्चे वितरित किए। जहाज के वैंकूवर की तरफ बढ़ने और कनाड़ा सरकार द्वारा उसे प्रवेश न दिए जाने की आशंकाओं को लेकर पहले ही सार्वजनिक बहस शुरू हो चुकी थी। पंजाब के अखबारों में चेतावनियां छप रही थीं कि भारतीयों को न घुसने देने के परिणाम बुरे होंगे। उधर कनाडाई प्रेस के कुछ हिस्से तो जहाज के वहाँ आने की घटना को पूरब से किया जाने वाला हमला बताने में लगे थे। दूसरी तरफ कनाडा सरकार भारतीयों के प्रवेश की हरेक कानूनी सम्भावना खत्म करने के बाद, जहाज की प्रतीक्षा से ज्यादा उससे मुकाबला करने के लिए बेकरार दिख रही थी।

जैसा कि आशंका थी जहाज तट पर रोक दिया गया, और उसे बंदरगाह की ओर बढ़ने की इजाजत नहीं दी गई। बलवन्त सिंह, सोहन लाल पाठक और हुसेन रहीम द्वारा यात्रियों के हकों की लड़ाई आगे बढ़ाने के लिए एक तट कमेटी का गठन कर लिया गया। यह कमेटी कोष इकट्ठा करने के अलावा प्रतिवाद सभायें आयोजित करने में लग गई। उधर संयुक्त राज्य अमरीका में गदर नेता भगवान सिंह, बरकतुल्ला, राम चन्द्र और सोहन सिंह भकना एक विशाल सम्पर्क अभियान शुरू करके लोगों से विद्रोह करने की अपील कर रहे थे।

अन्ततः जहाज को कनाडा के जल क्षेत्र से खदेड़ दिया गया। तब तक प्रथम विश्व युद्ध भी शुरू हो चुका था, और ब्रिटेन सरकार का फरमान आ गया कि कलकत्ता के सिवा जहाज को रास्ते में यात्रियों को उतारने की इजाजत नहीं मिलेगी। लौटते हुए जहाज को रास्ते में कई बन्दरगाह मिले लेकिन कहीं भी उसे रुकने नहीं दिया गया। अंग्रेज सरकार के इस दुर्व्यवहार से हरेक बन्दरगाह पर असन्तोष फैल गया और एक अंग्रेज विरोधी लहर पैदा हो गई। अन्ततः कलकत्ता के पास बजबज में जहाज ने अपना लंगर डाला। अधिकारियों के शत्रुतापूर्ण रवैये के कारण यात्रा से थके-मांदे यात्री उत्तेजित हो गए। उन्होंने पुलिस का प्रतिरोध किया। झड़पें शुरू हो गईं। **18** यात्री मारे गए, **202** गिरफ्तार कर लिए गए। बहुत कम यात्री वहाँ से बच निकलने में कामयाब हो सके थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. लार्ड कर्जन-वाइली की हत्या मदन लाल ढींगरा ने की थी।
2. वी.डी. सावरकर ने **1907** में द्वितीय इन्टरनेशनल की स्टुटगार्ट कांग्रेस में आजाद भारत का झन्डा फहराया था।
3. जी.डी.कुमार ने वैंकूवर में स्वदेश सेवक गृह स्थापित किया, यह लंदन के इन्डिया हाउस जैसा ही था।
4. मार्च **1914** को कामागाटामारू घटना ने गदर आन्दोलन की आग को चरम पर लहका दिया।
5. कामागाटामारू जहाज में कुल **376** यात्री थे।

2.5 प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत को उप महाद्वीप की सम्पूर्ण आजादी का सपना देखने वाले भारतीय क्रान्तिकारियों ने एक अहम मौके के बतौर देखा था। इन नेताओं को लग रहा था कि ब्रिटेन के दुश्मनों के साथ मिलकर भारत से अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने वाली रणनीति बनाने का अवसर आ गया। तुर्की के खिलाफ ब्रिटेन द्वारा छेड़ा गया युद्ध परोक्ष तौर पर लड़ाकू हिन्दू राष्ट्रवादियों और पैन-इस्लामी मुसलमानों के बीच करीबी सहयोग का कारण साबित हो रहा था। यही वह दौर था जब गदर के बरकतुल्ला और देवबंद के मौलवी महमूद हसन और ओबेदुल्ला सिन्धी जैसे नेता राष्ट्रीय परिदृश्य में उभरे थे।

1914 के अगस्त महीने में बंगाल के क्रान्तिकारी कलकत्ता की रोद्दा कम्पनी के जरिए **50** माउजर पिस्तौलें और **46,000** राउन्ड कारतूसों का जखीरा हस्तगत करने में सफल हो गए थे। कोष और राजनीतिक हत्याओं के मकसद से की जाने वाली डकैतियों की घटनायें काफी बढ़ गई थीं- **1914-**

1915 में क्रमशः **12** और **7** से बढ़कर **1915-1916** में क्रमशः **23** और **9**। जतिन मुखर्जी के नेतृत्व में एक बहु स्तरीय हमले की योजना बनाई गई, जिसके तहत रेल संचार भंग करने, कलकत्ता के फोर्ट विलियम पर कब्जा करने और जर्मनी से हथियारों की खेप बन्दरगाह में मंगाने के लक्ष्य निर्धारित थे। लेकिन एक बार फिर खराब संयोजन के कारण सारी योजना ध्वस्त हो गई। पुलिस ने जतिन मुखर्जी को ढूंढ़ निकाला और उड़ीसा के बालासोर तट पर उन्हें मार दिया गया।

युद्ध शुरू होने के बाद लड़ाई करने के मकसद से गदर क्रान्तिकारी बड़ी संख्या में पंजाब लौटने लगे। **29** सितम्बर **1914** की कामागारू घटना उनकी भावनाओं को और भड़का चुकी थी। इसके अलावा अनेक जगहों पर सैनिकों के विद्रोह हुए थे, जिनमें **15** फरवरी **1915** को सिंगापुर में पंजाबी मुसलमानों की **5**वीं लाइट इन्फैन्ट्री का विद्रोह और जमादार चिश्ती खान, जमादार अब्दुल गनी और सूबेदार दाउद खान के नेतृत्व में **36**वीं सिख बटालियन द्वारा किए गए विद्रोह सबसे महत्वपूर्ण थे। इन विद्रोहों का दमन कर दिया गया, **37** विद्राही फांसी पर चढ़ा दिए गए, और **41** को आजीवन-निर्वासन दे दिया गया।

बाहर से भारत के क्रान्तिकारियों को मदद पहुचाने के साहसिक प्रयास भी इस दौरान हुए थे। युद्ध काल में ये प्रयास मुख्यतया बर्लिन से किये जा रहे थे। **1915** में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन दत्त, हर दयाल और कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में एक भारतीय स्वतन्त्रता समिति का गठन किया गया, यह प्रयास तथाकथित 'जिमरमान योजना' के तहत जर्मनी के विदेश मन्त्रालय के सहयोग से हुआ था। एक भारतीय-जर्मन-तुर्की मिशन के जरिए भारत-ईरान सीमा के पास रहने वाले आदिवासियों में ब्रिटेन-विरोधी भावनायें भड़काने की कोशिशें भी की गईं। दिसम्बर **1915** में महेन्द्र प्रताप, बरकतुल्ला और ओबेदुल्ला सिन्धी द्वारा काबुल में 'आजाद भारत की अस्थायी सरकार' गठित की गई। इस सरकार का अमानुल्ला समर्थन कर रहे थे।

विदेशी धरती पर क्रान्तिकारी गतिविधियों के दूसरे बड़े केन्द्र अमरीका में गदर नेताओं को जर्मनी से काफी धन मिला था। वहां रामचन्द्र और चन्द्र चक्रबर्ती जैसे नेता बर्लिन कमेटी के न्यूयार्क प्रतिनिधि के बतौर काम कर रहे थे। हालाँकि, उनके अन्दरूनी झगड़ों के कारण कोई भी योजना क्रियान्वित न की जा सकी थी। बाद में, अमरीका के युद्ध में कूद पड़ने के बाद **1918** में 'हिन्दू षडयन्त्र केस' चला, जिसके कारण वहाँ इन गतिविधियों का अन्त हो गया। सुदूर पूर्व में भी जर्मन दूतावास के जरिये धन पहुँचाया गया गया था। जापान में रासबिहारी बोस और अबनी मुकर्जी द्वारा **1915** के बाद भारत में हथियार भेजने की कई कोशिशें की गई थीं। लेकिन ये सारे प्रयास लगातार असफल होते रहे। कुछ ही समय बाद लगने लगा कि भारत में विद्रोह का माकूल अवसर जा चुका है।

इस दौर में अंग्रेजी हुक्मरान क्रान्तिकारी गतिविधियों पर जिस सख्ती से टूट रहे थे, उसकी तुलना केवल **1857** के दमन से ही करना सम्भव है। अंग्रेज सरकार अमरीका में सक्रिय गदर क्रान्तिकारियों की योजनाओं से पूरी तरह वाकिफ थी। **1915** में भारत पर 'डिफेन्स ऑफ इन्डिया ऐक्ट' लाद दिया

गया। इसका बुनियादी मकसद गदर आन्दोलन को कुचलना था। **1914** के बाद लौटे अनेक पंजाबियों को अंग्रेज सरकार द्वारा फुर्ती के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। पंजाब और बंगाल में संदिग्ध माने गए अनेक लोग बगैर मुकदमे के अंग्रेजों द्वारा जेलों में ठूँस दिये गए थे। विशेष अदालतें चलाकर लोगों को कठोर सजायें सुनायी जा रही थीं। गदर क्रान्तिकारियों पर चले मुकदमों के एक अध्ययन के मुताबिक तकरीबन **46** लोग फाँसी पर चढ़ाये गए थे, जबकि **64** को आजीवन कारावास की सजा देकर जेल में ठूंस दिया गया था। इसके अलावा सैनिकों के कोर्ट मार्शल की अनेक कार्यवाहियाँ की गई थीं। उग्र पैन-इस्लामवादियों को भी नहीं बक्शा गया था। अली भाइयों, आजाद, हसरत मोहानी और दूसरे अनेक लोगों को युद्ध के दौरान, और यहां तक कि बाद में भी, सालों जेल में बन्द रखा गया। **1916** तक गिरफ्तार होने वाले **8,000** लोगों में **2,500** को नजरबन्द किए गए थे, जबकि **400** जेल में ठूंसे गए थे। फिरोजपुर, लाहौर और रावलपिन्डी की सैनिक इकाइयों में **21** फरवरी **1915** के दिन एक साथ विद्रोह करने की योजना बनी थी, जिसे अंग्रेज सरकार अन्तिम क्षण में विफल करने में कामयाब हो गई। रासबिहारी बोस को भाग कर जापान जाना पड़ा। सचिन सान्याल को बनारस और दानापुर सैन्य इकाइयों में विद्रोह संगठित करने की कोशिश के आरोप में आजीवन निर्वासन मिल गया। गदर आन्दोलन मिटा दिया गया। इस तरह राष्ट्रवादियों की एक समूची पीढ़ी अंग्रेज सरकार के दमन के जरिए मिटा दी गई थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. उत्तरी अमरीका के पहले भारतीय नेता ..... ने फ्री हिन्दुस्तान का प्रकाशन शुरू किया था।
2. ..... को गदर का पहला अंक प्रकाशित हुआ।
3. **15** फरवरी **1915** को सिंगापुर में पंजाबी मुसलमानों की ..... का विद्रोह हुआ था।
4. **1915** में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, भूपेन दत्त, हर दयाल और कुछ अन्य लोगों के नेतृत्व में'जिमरमान योजना' के तहत एक भारतीय स्वतन्त्रता समिति का गठन किया गया, यह प्रयास .... के विदेश मन्त्रालय के सहयोग से हुआ था।
5. फिरोजपुर, लाहौर और रावलपिन्डी की सैनिक इकाइयों में ..... के दिन एक साथ विद्रोह करने की योजना बनी थी

2.6 सारांश

यह तो स्पष्ट है कि विदेशी धरती से चलाई गयी क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ अपने घोषित मकसद में असफल रही थीं। लेकिन विचारधारा का मसला अलग है, जहाँ गदर और अन्य क्रान्तिकारियों के

बलिदानों की वजह से भारी प्रगति दर्ज हुई थी। नरमपंथी राष्ट्रवादियों द्वारा की जाने वाली उपनिवेशवाद की आलोचना शुरुआती दौर के इन अखबारों, खासकर गदर के जरिये बेहद सशक्त और सरल रूप में देश और विदेश की भारतीय जनता तक पहुँचाई गई थी। विदेश में सक्रिय भारतीय क्रान्तिकारियों को जिस कठिन परीक्षा से गुजरना पड़ता था, उसने उनके विचारों में गहरी जड़ जमाए संकीर्ण धार्मिक तत्व भी खत्म कर दिए थे। अब वह सीमित, संकीणी दृष्टिकोण बदल चुका था, जिससे भारत के शुरुआती दौर की उग्र राष्ट्रवादी पीढ़ी ग्रस्त रहती थी। धार्मिक पहचान के तंग दायरे से निकलकर लेखन और संगठन में व्यापक गठबन्धन बनने लगे थे। इस सन्दर्भ में लंदन के क्रांन्तिकारियों द्वारा(**1907)** प्रकाशित पुस्तिका 'ओ शहीदों' में **1857** जैसे संयुक्त हिन्दू-मुसलमान विद्रोह का आह्वान गौरतलब है। (**1909)** बन्दे मातरम में भी साम्राज्यवाद विरोधी एक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष का नजरिया उभरता देखा जा सकता है।

राष्ट्रवादी आन्दोलन का धर्मनिरपेक्ष चेहरा गदर और गदर दी गूंज में सर्वाधिक प्रखरता के साथ दिखायी दे रहा था। हालांकि गदर के अधिकांश क्रान्तिकारी सिख थे, लेकिन उनकी अपील कहीं व्यापक थी। वे दूसरे धर्मों के लोगों का नेतृत्व स्वीकार करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे। इसके अलावा गदर आन्दोलन कतिपय धारणाओं में बदलाव और धर्मनिरपेक्ष माहौल सुदृढ करने का सचेत प्रयास अपने लेखन में करता दिख रहा था। मसलन, तुर्काशाही शब्दावली, और उसमें निहित मुसलमान या तुर्क-मुसलमान प्रभुत्व की धारणा को उसने छोड़ने का प्रयास किया था, हालांकि पंजाब और सिख समुदाय के भीतर उस वक्त इस शब्दावली की व्यापक मान्यता थी। गदर के नेता मुसलमानों को अपने भाई की तरह देखने की अपील लोगों से किया करते थे। इस आन्दोलन ने एक दूसरा बदलाव भी किया था। अब, अंग्रेज साम्राज्य के वफादार छवि वाले पंजाबी की जगह एक ऐसे विद्रोही पंजाबी की छवि सामने आ चुकी थी जो अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए समर्पित था। इस समुदाय में यह तब्दीली सचेत प्रयासों का नतीजा थी। उन्हें मातृभूमि की सेवा को ही अपने साम्राज्यवाद परस्त अतीत का प्रायश्चित बताया गया था। धार्मिक चर्चाओं में भी बदलाव आया था, और अब वहां कर्मकान्ड की जगह स्वानुशासन के माडल व भले व्यवहार को तरजीह दी जाती थी।

बन्दे मातरम का राष्ट्रवादी सलाम सहजता के साथ सभी क्रान्तिकारियों की दैनिक सलामी बन चुका था। इन क्रान्तिकारियों की देशभक्ति सर्वभारतीयता की परिकल्पना में पकी थी। सभी इलाकों के शहीद व क्रान्तिकारी इनके नायक थे। विदेशी धरती में हरदयाल जैसे क्रान्तिकारी जिन समाजवादी व अराजकतावादी विचारों से परिचित हुए थे, अब वे भारतीय भूमि में प्रचारित होकर पनप रहे थे। इसका नतीजा नेताओं की एक ऐसी नई पीढ़ी के विकास में देखा गया, जो किसानों के बीच सक्रिय रहते हुए भावी दशकों में कम्युनिस्ट बने थे।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

प्रवासी – दूसरे देश में निवास करने वाला

ग़दर - विद्रोह

कोर्ट मार्शल- सैनिकों के खिलाफ की जाने वाली न्यायिक कार्यवाही

उत्प्रेरक – क्रिया को तेज करने वाला

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 2.4 के उत्तर

1. सत्य
2.असत्य

3. सत्य

4. सत्य

5. सत्य

इकाई 2.5 के उत्तर

1. तारक नाथ दास

2. **1** नवम्बर **1913**

3. **5**वीं लाइट इन्फैन्ट्री

4. तथाकथित जर्मनी

5. **21** फरवरी **1915**

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

2.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Randhir Singh, *The Ghadar Heroes,* Bombay 1945

Indulal Yagnik, *Shyamji Krishnavarama-Life and Times of an Indian Revolutionary,* Bombay, 1950

Sohan Singh Josh, *Baba Sohan Singh Bhakna: Life of the Founder of the Ghadar Party*, New Delhi, 1970

A.C. Bose, *Indian Revolutionaries Abroad, 1905-22 in the background of international developments,* Patna, 1971

Emily C Brown, *Har Dayal: Hindu Revolutionary and Rationalist,* Tuscon, 1975

Sohan Singh Josh, *Hindustan Ghadar Party: A Short History*, New Delhi 1977

Harish K Puri, *Ghadar Movement,* Amritsar, 1983

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत के क्रान्तिकारियों की पारदेशीय गतिविधियाँ और क्रान्तिकारी कार्यवाहियों पर चर्चा कीजिए।

2.प्रथम विश्व युद्ध के दौरान भारतीयों की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ पर प्रकाश डालिए।

साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 साम्प्रदायिकताः अवधारणा व विविध आयाम

3.4 साम्प्रदायिकता का भारतीय सन्दर्भ

3.4.1 भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता

3.5 भारत का सम्प्रदायीकरणः पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों और साहित्य की भूमिका

3.6 सारांश

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

3.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच घृणा और फसाद की घटनायें हमारे उप महाद्वीप और दुनिया के व्यापक इतिहास में भरी पड़ी हैं। फिर भी, साम्प्रदायिकता एक आधुनिक परिघटना है। अकसर साम्प्रदायिक विचारक अतीत की चन्द मनमाफिक घटनाओं को उछालकर अपना पक्षपोषण करने वाला ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत करते हैं, और उसे एक ऐतिहासिक परिघटना साबित करने की कसरत करते हैं। इतिहास की बेहतर समझ न रखने वालों को उनका यह मनगढन्त वृत्तान्त भावनात्मक तौर पर काफी प्रभावित करता है। लेकिन ऐतिहासिक तथ्यों के ऐसे पिटारे से निकले निष्कर्ष मूलतः घातक होते हैं।

साम्प्रदायिकता उस आधुनिक राजनीति का नतीजा है जो प्राचीन व मध्य काल की राजनीति से पूरी तरह हटकर एकदम नया आकार ले चुकी है। सरकार के निर्णयों में और सरकार चलाने वालों के चयन में आधुनिक राजनीति आम आदमी को शामिल करने की औपचारिक कसरत करती है। भारत की साम्प्रदायिकता को उपमहाद्वीप का अनोखापन या विशिष्टता नहीं माना जाना चाहिए। उपमहाद्वीप में आधुनिक व सांविधानिक राजनीति के आगमन के साथ साम्प्रदायिकता की राजनीति वैसे ही चली आई जैसे राष्ट्रवाद और समाजवाद उदित हुए थे। दरअसल, यह इटली के फासीवाद,

मध्य पूर्व के यहूदीद्रोह, यूरोप व अमरीका के नस्लवाद, उत्तरी आयरलैन्ड की कैथोलिक-प्रोटेस्टेन्ट लड़ाइयों और लेबनान के इसाई-मुसलमान फसादों का भारतीय प्रतिरूप है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रारम्भिक दौर में साम्प्रदायिकता के उद्भव और विकास से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से भी परिचित हो सकेंगे :

1. साम्प्रदायिकता की अवधारणा और उसके विविध आयाम

2. भारतीय सन्दर्भ में साम्प्रदायिकता

3. भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता

4. भारत के सम्प्रदायीकरण में पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों और साहित्य की भूमिका

3.3 साम्प्रदायिकता: अवधारणा व विविध आयाम

साम्प्रदायिकता की हरेक सीढ़ी उसके अनुयायी को इस विचारधारा की अगली सीढ़ी की ओर धकेलती जाती है। जब अलग-अगल समुदाय धीरे-धीरे आस्था की इस दिशा में अग्रसर होते हैं, उनके दोषपूर्ण चिन्तन पर उनकी ऐसी तीव्र भावान्धता छा जाती है, जो भय और घृणा की भाषा के अलावा कुछ नहीं समझती। अपनी चरम अवस्था में पहुंचने पर साम्प्रदायिकता बुनियादी तौर पर हिंसक हो जाती है, और वह उन सबका सफाया करने की फिराक में रहती है जिनकी पहचान वह परस्पर दुश्मन के बतौर कर चुकी होती है।

साम्प्रदायिकता का उद्भव और विकास एक आधुनिक परिघटना है। इस चिन्तन की तीन उल्लेखनीय अवस्थायें हैं, जो आनुक्रमिक भी हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा का पहला तत्व यह आस्था है कि लोगों के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक हित एक समान तभी होंगे जब वे सभी एक समुदाय के हों। यह समुदाय कोई पंथ या धर्म हो या फिर किसी अन्य संकीर्ण आधार पर परिभाषित कोई अन्य पहचान। इस विश्वास-प्रणाली के आधार पर लोगों को संगठित करने वाले नेता इसी पहचान पर सर्वाधिक बल देते हैं।

इसका दूसरा तत्व इस साम्प्रदायिक विचारधारा की अगली अवस्था है, और यह दावा करता है कि अपनेपन के अलग-अलग भावबोध वाले समुदायों को लेकर बनने वाले किसी समाज के हित अनिवार्यतया अलग-अलग होते हैं।

इसका तीसरा तत्व यानी कि इस विचारधारा की चरम अवस्था वह है जब लोगों की रूढिबद्ध आस्था अलग-अलग धर्मों या समुदायों के हितों को अनिवार्यतया प्रतिद्वन्द्वी मानने लगती है। इस तरह, एक हिन्दू साम्प्रदायिक विचारक दावा करने लगता है कि वर्ग, सामाजिक हैसियत या पद चाहे जो हों, सभी हिन्दुओं का हित एक है, और वह मुसलमान समुदायों से असंगत है। इसी चरम अवस्था में सामाजिक समाधान के लिए भौगोलिक क्षेत्र के विभाजन की वकालत की जाती रही है। यह हकीकत वाकई त्रासद है कि बीसवीं सदी में अनेक राष्ट्र इसी विचार-आस्था के तन्त्र की पैदाइश हैं, और हिंसा के जरिए ही ये राष्ट्र अस्तित्व में आए हैं।

3.4 साम्प्रदायिकता का भारतीय सन्दर्भ

भारत के सन्दर्भ में कहा जाता है कि यहां उपनिवेशवाद द्वारा लाए बदलावों के प्रभाव के तहत साम्प्रदायिकता पनपी और विकसित हुई। उपनिवेश में बदल दिए गए भारत में साम्प्रदायिकता मूलतः अविकास करने वाले औपनिवेशिक आर्थिक रूपान्तरण का ही एक उप-उत्पाद थी। अर्थव्यवस्था में ठहराव और जनता के दरिद्रीकरण ने ऐसी परिस्थितियाँ बना दीं जो धार्मिक-तबकाई विभाजन व वैमनस्य के फलने-फूलने के लिए मुफीद थीं। अपने शासन के विरोध में पनपी प्रतिक्रया को दबाने के लिए औपनिवेशिक शासन तरह-तरह के सामाजिक व तबकाई विभाजनों को हवा देता रहता था, और इस हथकन्डे का प्रत्यक्ष इस्तेमाल करने में भी उसे कोई गुरेज नहीं होता था। हालांकि, अन्य साम्प्रदायिक संघर्षो की भाँति हिन्दू-मुसलमानों के बीच टकराहटों के उदाहरण ढूंढ़ने पर मध्य काल में भी मिल सकते हैं, लेकिन **1880** के दशक के पहले साम्प्रदायिक चरित्र वाले दंगों के उदाहरण न के बराबर मिलते हैं। दूसरी ओर आधुनिक युगीन औपनिवेशिक भारत में साम्प्रदायिक चेतना अभिजनों व मध्य वर्गों में जड़ जमाने के अलावा आम जनता में भी काफी व्यापक पैठ बना चुकी थी।

उपनिवेशवाद के प्रभाव में साम्प्रदायिकता का हुआ उभार उस वक्त की एक राजनीतिक प्रवृत्ति के विश्लेषण से भी उजागर होता है। उन्नीसवीं सदी के अन्त और बीसवीं सदी की शुरुआत में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था गतिरुद्धता की शिकार थी, और जिसके कारण सरकार व अन्य व्यवसायों में नौकरियों के सीमित अवसरों के लिए तीखी होड़ पैदा हो रही थी। इसलिए सरकार के साथ रब्त-जब्त बनाए रखने वाले व पदवीधारी मध्यमवर्गीय व्यक्ति इन आर्थिक अवसरों को हड़पने की फिराक में एड़ी चोटी एक किये रहते थे। सरकारी रवैये ने भी इस होड़ को एक अतिरिक्त आयाम दे दिया था, क्योंकि वह रोजगार के अवसरों के बंटवारे में जाति, समुदाय और इलाके के हितों की संकीर्ण गणित का दांव भी खेला करती थी। आखिर, उसे अपने लिए एक राजनीतिक आधार जुटाने और उसे पुष्ट करने की गरज जो थी। अंग्रेज सरकार की सरपरस्ती में इन संकीर्ण प्रक्रियाओं को अपने विकास के लिए हासिल माकूल माहौल में साम्प्रदायिकता कुछ व्यक्तियों और उनके हितों को फायदा पहुंचाती ही थी। लेकिन खास बात यह है कि वह साम्प्रदायिक तन्त्र को एक घरेलू उद्योग

बना देती थी, जो बदले में फिर इन्ही आधारों पर लोगों को संगठित किए जाने वाली कार्यवाहियों के लिए प्रेरणा देने का काम करता था। इस राजनीतिक प्रक्रिया की सबसे खास बात यह थी कि वह साम्प्रदायिक राजनीति को पुनर्स्थापित और जायज बनाती थी।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ने के साथ उपरोक्त प्रवृत्ति और भी बढ़ती गई। अब ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले ऐसे साक्षर लोगों की संख्या बढ़ने लगी जो स्कूल और कॉलेज से पढ़ाई करने के बाद पेशेवर नौकरियों के लिये लालायित रहते थे और खेती से विमुख हो रहे थे। कृषि पर ठहराव की मार तो पहले ही थी, अब एक नया ग्रहण इसके माथे पर लग चुका था। यह पेशा सामाजिक सम्मान के ओहदे से नीचे लुढ़क चुका था।

3.4.1 भारत में साम्प्रदायिक दंगों का चरित्र और तीव्रता

एक कम विदित तथ्य यह है कि भारत की आम जनता में साम्प्रदायिकता का प्रसार काफी पहले शुरू हो चुका था। इसका बढ़ना और व्यापक होते जाना प्रान्तों की अभिजात राजनीति से भी अपरोक्ष तौर पर जुड़ा था। **1880** के दशक से साम्प्रदायिक दंगों की घटनायें संयुक्त प्रान्त और पंजाब में बढ रही थीं। दोनो ही प्रान्तों की राजनीति में हिन्दू और मुसलमानों के अभिजात वर्ग का एक समान दबदबा था। इस बात पर भी ध्यान देना जरूरी है कि साम्प्रदायिक दंगों को भड़काने में वहां के सामाजिक आर्थिक कारक भी भूमिका निभा रहे थे, वजह यह थी कि इन प्रान्तों में वर्ग और पेशे भी धार्मिक आधार पर ध्रुवीकृत थे। अवध और अलीगढ़ क्षेत्र में एक बड़े इलाके के किसान हिन्दू थे जबकि तालुकदार मुसलमान। शहरों में अधिकांश कारीगर, दुकानदार और छोटे व्यापारी मुसलमान थे जबकि बड़े व्यापारी और बैंक मालिक हिन्दू। दूसरी ओर पंजाब में अधिकांश व्यापारी और सूदखोर हिन्दू थे, जबकि उनका लेनदेन जिन किसानों के साथ था वे अधिकांशतया मुसलमान थे।

दंगों की आग में घी का काम करने वाले तात्कालिक मुद्दे, हालांकि, बिलकुल अलग थे। इतिहासकार गेराल्ड बैरियर **1883** और **1891** के बीच हुए पंजाब के ऐसे **15** बड़े दंगे गिनाते हैं जिनकी शुरुआत गोहत्या के मुद्दे से हुई थी। इसी मुद्दे पर **1888** और **1893** के बीच पूर्वी उत्तर प्रदेश ओर बिहार के इलाकों में दंगे भड़के थे, और बलिया, बनारस, आजमगढ़, गोरखपुर, आरा, सारन, गया और पटना जिले दंगों से झुलस गए थे। **1893** और **1895** के बीच बम्बई शहर और महाराष्ट्र के दूसरे कई शहर भी दंगों की चपेट में आए थे। यहाँ एक बार फिर गोकशी और गोरक्षा के मुद्दों ने आग भड़काने का काम किया था, हालाँकि यहां सामुदायिक आधार पर गणपति उत्सव आयोजित किए जाने से भी तल्खी पैदा हो रही थी। मामला तब विस्फोटक हो गया जब गणपति उत्सव के लिए लिखे गीतों में मुसलमानों और उनके मुहर्रम जैसे त्योहार पर पर भड़काऊ टिप्पणियां की गईं। कुछेक गीतों में तो मुहर्रम के बहिष्कार की अपील भी हिन्दुओं से की गई थी। हद तो यह थी कि सुधारक जैसी सुधारवादी पत्रिका सार्वजनिक जीवन के साम्प्रदायीकरण को बढ़ावा देने वाली टिप्पणियां छाप रही थीं।

कलकत्ता के औद्योगिक इलाके में भी साम्प्रदायिक दंगे की पहली घटना काफी पहले, मई **1891** में, दर्ज की गई थी। इसके बाद **1896** में भी टीटागढ़ और गार्डेन रीच मोहल्लों में बकरीद के अवसर पर भी फसाद हुए थे। इसके अलावा **1897** में उत्तरी कलकत्ता के तल्ला में व्यापक पैमाने पर दंगे देखे गए थे।

जैसा हम पहले बता चुके हैं, एक प्रवृत्ति के बतौर साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद का करीबी हमसफर रही है। **1905** में बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान साम्प्रदायिक सौहार्द की अनेक मिसालें कायम हुई , आन्दोलनकारियों में मुसलमानों की भारी भागीदारी देखी गई, लेकिन फिर भी भांति-भांति के मुद्दों पर साम्प्रदायिक दंगों की घटनायें भी काफी ज्यादा हुईं। कांग्रेस के राजनीतिक विकास को थामने के लिए अंग्रेज सरकार बंगाल विभाजन की चाल चल चुकी थी, और यह प्रचार भी कर रही थी कि नया प्रान्त बनने से मुसलमानों को अधिक रोजगार की सौगात मिलेगी। अंग्रेजों के इस प्रचार को ढाका के नवाब की नई राजनीति से और बल मिल रहा था, क्योंकि वे लार्ड कर्जन की सरपरस्ती में **1906** में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना के जरिए साम्प्रदायिकता को हवा दे रहे थे।

इस दौर में सबसे भयानक दंगों का सिलसिला पूर्वी बंगाल में देखा गया, जब मई **1906** में मैमनसिंह जिले के ईश्वरगंज, **1907** में कोमिला, अपैल से मई **1907** के बीच मैमनसिंह जिले के जमालपुर, दीवानगंज और बक्शीगंज के इलाके दंगों की आग में जल उठे थे। मैमनसिंह जिले के साम्प्रदायिक दंगों में ग्रामीण इलाके का विशिष्ट सामाजिक अन्तरविरोध सतह पर आ गया था। यहाँ दंगाइयों द्वारा मुख्यतया हिन्दू जमींदार व महाजन निशाना बनाए जा रहे थे। कुछ हिन्दू जमींदारों ने हाल में हिन्दू मूर्तियों के रखरखाव के लिए ईश्वर बृत्ति नाम से एक नया कर अधिकांशतया मुसलमान किसानों पर थोप दिया था, जो जाहिरा तौर पर इससे काफी क्षुब्ध थे। दंगों के दौरान महाजनों के बहीखाते जलाए जाने की कई घटनायें हुई थीं, और इस लूटपाट में अधिसंख्य मुसलमानों के अलावा कहीं-कहीं हिन्दू किसानों ने भी भागीदारी की थी।

जब किसान दंगे कर रहे थे, उस वक्त मौलवी गण यह अफवाह फैलाने में लगे थे कि अंग्रेज यह इलाका ढाका के नवाब को सिपुर्द करने वाले हैं, जिनको वे मसीहा बनाकर पेश कर रहे थे। इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है कि ये नेता उभरते धनी मुसलमान किसानों के साथ संश्रय कायम करना चाहते थे, ताकि वे मुख्यतया हिन्दू जमींदार-महाजनों के समूह को परास्त कर सकें।

आने वाले दशकों में साम्प्रदायिकता और फैलती गई, खासकर अलगाववाद की लहरों पर सवार होकर, जो अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के गठन के साथ न सिर्फ अभिजनों में फैल रही थी बल्कि जनता में भी उसका तेजी के साथ विस्तार हो रहा था। कारण यह था कि अब विभिन्न मुद्दों पर जनगोलबन्दी की सारी कोशिशें अन्त में साम्प्रदायिक रंग ले लेती थीं और पूरे इलाके का साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण तेज हो जाता था। इस प्रवृत्ति को एक ऐतिहासिक घटना से भी समझा जा सकता है। **1904** में, बंगाल में मैमनसिंह जिला के जमालपुर ब्लाक स्थित कमरिया चर में एक प्रजा

सम्मेलन आयोजित किया गया था, यहां लगान घटाने, अतिरिक्त कर खत्म करने, कर्ज में राहत देने, पेड़ लगाने व जमींदारों को नजर (कर) दिए बगैर तालाब खोदने का हक देने और हिंदू जमींदारों की कचहरी में मुसलमान किसानों से सम्मानजनक बर्ताव किये जाने की मांगे उठाई गई थीं। सम्मेलन के आयोजन में एक धनी मुसलमान रैयत चौधरी खोस माहम्मद सरकार की अग्रणी भूमिका थी। सम्मेलन के मांग पत्र को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि वहां मुसलमान बटाईदारों के सवालों को नहीं उठाया गया था। बंगाल के अनेक नेताओं की इस सम्मेलन में भागीदारी भी हुई थी। बहरहाल, गौरतलब है कि खुले तौर पर केवल मालिक (मुसलमान) किसानों के सवाल उठाने वाले इस सम्मेलन से बाद के दौर में खालिस मुसलमानों का एक मोर्चा विकसित हो गया, और वह बीसवें व तीसवें दशक में बंगाल की राजनीति में प्रभावी भूमिका निभाता रहा।

इन्हीं दशकों में साम्प्रदायिक दंगों के लिये की गई जनगोलबन्दी के स्तर में बेतरह इजाफा हुआ था। अक्टूबर **1917** में, बिहार के शाहाबाद में मुसलमानों के **124** गांव, गया के **28** गांव और पटना के **2** गांव जिन साम्प्रदायिक हमलों के शिकार हुए थे, उनमें तकरीबन **50,000** हिन्दू शामिल हुये थे। हालांकि यह भी सच है कि उस समय ऐसी अफवाहें फैली थीं कि अंग्रेजी शासन खत्म होने जा रहा है। कहा तो यह भी जाता है कि खतरे में पड़े अपने नेतृत्व को बचाने के लिए ऊंची जाति के जमींदार ये दंगे करवा रहे थे।

गोरक्षा के लिए सनातन धर्म सभा और आर्य समाजियों द्वारा चलाये गये अभियान भी इन दंगों में खतरनाक भूमिका निभा रहे थे। इन संगठनों का प्रचार के व्यापक स्वीकृति हासिल करने की वजह यह थी कि वे धार्मिक भाषणों, हिंदी भाषा के प्रसार जैस मुद्दों की होम रूल राजनीति और **1917** के बाद किसान सभायें बनाने जैसे सवालों की खिचड़ी बनाकर परोसे जा रहे थे।

सितम्बर में हुए कलकत्ता दंगों के दौरान बड़ाबजार के मारवाड़ी व्यवसायियों पर उनके गरीब मुसलमान पड़ोसियों द्वारा हमले हुए थे। कहा जाता है कि पैन-इस्लाम के प्रचारक कुछ गैर बंगाली मुसलमान आन्दोलनकारी व ग्रामीण उलेमाओं ने इन दंगों में उकसावेबाजी का काम किया था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट -**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।**

1. इतिहासकार गेराल्ड बैरियर के अनुसार **1883** और **1891** के बीच पंजाब में **15**0 बड़े दंगे हुए थे

2. **1896** में टीटागढ़ और गार्डेन रीच मोहल्लों में बकरीद के अवसर पर फसाद हुए थे।

3. **19**1**6** में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना हुई थी ।

3.5 भारत का सम्प्रदायीकरण: पुनरुत्थानवादी आन्दोलनों और साहित्य की भूमिका

परवर्ती उन्नीसवीं सदी में और उसके बाद साम्प्रदायिक घटनाओं का विस्तार कोई अकस्मात की आसमानी बारिश न थी। हिन्दू व मुसलमान समाजों के अन्दर सामाजिक आन्दोलनों की शक्ल में चलने वाली कुछ प्रक्रियाओं ने ही इस बदलाव को आधार मुहैया कराया था। समाज सुधार के विभिन्न संगठनों के कतिपय विमर्श, उनकी शिक्षायें, भाषायी-लिपि की बहसें, देशी भाषाओं के साहित्य के इतिहास सम्बन्धी तत्व और उनकी ऐतिहासिक परिकल्पना जैसी बातों ने मिलकर, और अपने स्तर पर, दोनों धार्मिक समुदायों में साम्प्रदायिक चेतना के विस्तार को आगे बढ़ाया था।

बंगाल में 'वेदों की ओर चलो' के नारे के साथ हिन्दू समाज को व उसकी परम्पराओं को सुधारने का सबसे पहला आह्वान ब्रह्म समाज ने किया था। परम्परा की पुनर्खोज और पुनरुत्थान जैसे विचारों के बल पर ब्रह्म समाज की सक्रियता बढ़ती गई लेकिन इसी कोटि के अन्य संगठन व ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे महत्वपूर्ण सुधारक पृष्ठभूमि में चले गए। आन्तरिक कलह भी इस तरह के संगठनों को मथ रही थी, और जब ऐसी निर्णायक घड़ियां आईं, अधिकांश सुधारक संगठन का नेतृत्व करने के लिए उपस्थित नहीं रह गए थे। **1870** के आसपास समाज सुधार का मुद्दा धीरे-धीरे पृष्ठभूमि में खोता जा रहा था, और हिन्दू परम्पराओं के पुनरुत्थान का मुद्दा लोगों में लोकप्रिय हो रहा था। यह बदलाव मैक्स मुलर द्वारा भारत के प्राचीन गौरव की खोज के बाद शुरू हुआ था। खुद मैक्स मुलर 'अनोखे पूरब' के एक रोमानी पंथ के वैचारिक प्रभाव में थे, जिसका उस वक्त की पश्चिमी बौद्धिक परम्परा में खासा असर था। भारत में यह बदलाव बंगाल में बंकिम चन्द्र की **1880** दशक की रचनाओं में सबसे ज्यादा दिखता है। बंकिम ने कृष्ण की पुनर्व्याख्या करते हुए उन्हें एक आदर्श पुरुष, सांस्कृतिक नायक और राष्ट्र निर्माता के बतौर प्रस्तुत किया था। कृष्ण प्रसन्न सेन की छलांग तो और भी लम्बी थी। उनका दावा था कि पश्चिम के आधुनिक विज्ञान की सभी खोजों के दृष्टान्त हमारे शास्त्रों में उपलब्ध हैं। बंगाल में चैतन्य से अभिभूत एक नव वैष्णववादी प्रवृत्ति उभर रही थी, जिसके प्रचार में वहां का एक अखबार, अमृत बाजार पत्रिका सक्रिय था। रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द एक और प्रवृत्ति का नेतृत्व करते थे, जो सारतः सरलीकृत और सारसंग्रहवादी थी। अपने स्वरूप और कथ्य में उनकी शिक्षायें भावनात्मक थीं और उन्होंने जीवन के हरेक क्षेत्र के लोगों को अपनी तरफ आकर्षित किया था। उनकी शिक्षाओं में प्रगतिशील तत्वों की मौजूदगी के बावजूद लोगों में उनकी अपील सीमित रही, क्योंकि बदलाव का कोई ठोस कार्यक्रम वहां मौजूद न था। इस कमजोरी की वजह से सामाजिक सुधार का एजेन्डा पुनरुत्थानवादी अभियान के आगे और कमजोर पड़ गया।

महाराष्ट्र में विष्णु कृष्ण चिपलुन्कर की निबन्धमाला 'खो चुके हिन्दू' का जो भावुक चित्र खींचती थी, उससे अंग्रेजी शिक्षा पाए युवा बेहद प्रभावित हो रहे थे। अपनी खोयी परम्परा का विलाप करते हुए उसे पुनर्स्थापित करने का आह्वान वे परम्परावादी शास्त्री भी कर रहे थे, अंग्रेजी राज ने जिनकी

आर्थिक दशा खस्ता कर दी थी। दूसरी ओर पूना के पुनरुत्थानवादियों ने **1990** के दशक में एज ऑफ कन्सेन्ट विधेयक के विरोध के माहौल में बाल गंगाधर तिलक के साथ मोर्चा बना लिया था। महाराष्ट्र में इसी समय गणपति उत्सव भी आयोजित किये जा रहे थे। यहां तक कि एन्नी बेसेन्ट भी अपनी थिओसॉफिकल सोसाइटी के जरिये सामाजिक सुधार की धारा पर हमला बोल रही थीं और पारम्परिक हिन्दुत्व का गुणगान कर रही थीं।

बहरहाल, अपनी तीव्रता और विस्तार में जनगोलबन्दी के ये सभी प्रयास आर्य समाज की सफलता के आगे फीके थे। काठियावाड़ के दयानन्द सरस्वती इस संगठन के संस्थापक थे और इसका मुख्य सामाजिक आधार उत्तर भारत था। आर्य समाज की शिक्षा के दो मुख्य सन्देश थे। एक तरफ यह हिन्दुओं के वर्तमान आचार-विचार की तीखी आलोचना करते हुये वेदों की ओर लौटने को अचूक निदान के बतौर प्रस्तुत करता था। दूसरी ओर वह अन्य धर्मों की तुलना में बेहद आक्रामक लहजे में हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करता था। उसके इस सैद्धान्तिक दोहरेपन की अस्पष्टता के कारण समाज सुधार के इच्छुक लोगों को आकर्षित करने के साथ-साथ हिन्दू पुनरुत्थान के पुजारियों को भी अपने संगठन में खींच लेता था। वैचारिक दोहरेपन के इसी अस्त्र के जरिए वह ब्रह्म समाज को पीछे धकेलने में सफल हो गया था। समाज सुधार की राह से आकर्षित शिक्षित भारतीय युवा इसकी तरफ आए क्योंकि वह उन्हें सुरक्षित माहौल मुहैया करता था। इसके विस्तार के पीछे इसके प्रतिद्वन्द्वी ब्रह्म समाज की एक कमजोरी का भी योगदान था, उसे बंगाली समाज से जोड़कर देखा जाता था, जबकि नौकरियों में बंगालियों का भारी बाहुल्य होने के कारण उत्तर भारत में प्रवासियों का यह समुदाय खासा अलोकप्रिय हो चुका था।

आर्य समाज ने अपने कार्य क्षेत्र के व्यापारी समुदायों में काफी पैठ बनाई थी। इतिहासकार केनेथ जोन्स के अनुसार आर्य समाज के चार केन्द्र थे- पंजाब-पेशावर-रावलपिंडी, मुलतान, रोहतक-हिसार और जालन्धर का दोआब क्षेत्र। ये सारे आर्य समाजी केन्द्र स्थानीय व्यवसायियों के सहयोग के बलबूते चलते थे। आर्य समाज ने **1900** के बाद अपने आधार क्षेत्र का गुणात्मक विस्तार किया, और यह कारनामा उसने अपने विशाल शुद्धि कार्यक्रम के जरिए हासिल किया था, जो राधिया, जाट, मेघ और ओध जैसी दलित जातियों का धर्मान्तरण कराने वाला एक अभियान था। उसकी सदस्यता भी काफी बढ़ गई थी, और **1901** में **92,000** की संख्या तक पहुंच गई थी। हालांकि, इसी दौरान अन्दरूनी सांगठनिक विवाद भी जोर मारने लगे थे। **1893** में खानपान (मांसाहार बनाम शाकाहार) और शिक्षा (अंग्रेजीनिष्ठ बनाम संस्कृतनिष्ठ) के मसले पर आर्यसमाजी संगठन टूट गया। नरमपंथी धड़ा दयानन्द एंग्लो वेदिक कालेज खोलने, कांग्रेस से तालमेल करने और स्वदेशी उद्यम लगाने की राह पर चलने लगा। कट्टर व पुनरुत्थानवादी धड़ा **1902** गुरुकुलों की स्थापना के अपने एजेन्डे में जुट गया। यह धड़ा वेतनभोगी प्रचारकों के जरिये शुद्धीकरण और धर्मान्तरण के कार्यक्रमों पर बल देता था। इतिहासकार केनेथ जोन्स का मानना है कि मतभेदों के बावजूद दोनों धड़े वैचारिक

तौर पर हिन्दू चेतना की ओर और झुकते गए, और उनकी वैचारिक स्थिति मुसलमानों के खुले विरोध की हो गई।

आर्यसमाज विचार और क्षेत्र के सम्प्रदायीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के मामले में बेशक सबसे आगे था, लेकिन इस मामले में वह अकेला न था। यह नहीं भूलना चाहिए कि समाज सुधार के प्रगतिशील आदर्शों का झन्डा लेकर चलने वाले प्रार्थना समाज, डेरोज़िओ का यंग बेंगाल मूवमेन्ट, विद्यासागर का ब्रह्म समाज जैसे अन्य संगठन भी अपनी बनावट में मूलतः हिन्दू थे। उनका प्रभाव भी हिन्दुओं तक सीमित था। इसके अलावा उनके विचार और कर्म की बुनियाद ही इस परिकल्पना पर खड़ी थी कि भारतीय मध्ययुग मुसलमान-तानाशाही से बेजार एक अन्धकार युग था, जिससे उपमहाद्वीप की मुक्ति पुनर्जागरण के अनुभव से समृद्ध प्रबुद्ध अंग्रेजों के हाथों हुई है। ऐसे बौद्धिक आधार वाले अभियान के इर्दगिर्द मुसलमान बुद्धिजीवी या आम मुसलमान आश्वस्त नहीं रह सकते थे।

मुसलमान समुदाय खुद भी इसी रास्ते का राही हो गया था। मुसलमानों में उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में दो विरोधी राजनीतिक प्रवृत्तियां आपस में होड़ करती दिखती हैं। पहली प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व समाज सुधार को लक्ष्य करके चलने वाला सर सैयद अहमद खान का अलीगढ़ आन्दोलन करता है, जो अंग्रेज सरकार से घनिष्ठता बनाकर अपना रास्ता बना रहा था। उनके द्वारा विज्ञान को बढ़ावा देने वाली एक वैज्ञानिक समिति और उर्दू भाषा की पत्रिका तहज़ीब-अल-इखलाक़ की शुरुआत की गई थी। सर सैयद आजाद चिन्तन के हिमायती थे और कहा करते थे कि कुरान के आप्त वचनों और आधुनिक विज्ञान द्वारा खोजे प्राकृतिक नियमों में समानतायें हो सकती हैं। हालांकि बाद में अलीगढ़ की धार्मिक कक्षाओं का जिम्मा मौलवियों के पास चला गया था और इसके चलते वहां आधुनिकता के स्वर दब गए थे। सामाजिक तौर पर देखें तो उत्तर प्रदेश के मुसलमान जमींदार ही अलीगढ़ आन्दोलन के आधार थे। और आधुनिक शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि इस आन्दोलन को पारम्परिक मुसलमान अभिजातों द्वारा समर्थन मिलने की वजह यह थी कि उन्हें अब अपने पेशों व व्यापार में उभरते हिन्दू व्यापारियों की घुसपैठ से खतरा लगने लगा था। हालांकि पंजाब में स्थितियां इसके उलट थीं। वहां आर्य समाज के पुनरुत्थानवाद का समर्थन बढ़ने की एक वजह यह थी कि खत्री, आरोड़ा और वाड़िया व्यापारी अब मुसलमान व्यापारियों व उद्यमियों की बढ़ती हैसियत से खतरा महसूस करने लगे थे।

दूसरी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व देवबंद का पुनरुत्थानवादी आन्दोलन दार-उल-उलूम करता था। अंग्रेज विरोधी भावनाओं से लबरेज इस संगठन की स्थापना मोहम्मद क़ासिम नानावतवी और राशिद अदमद गंगोही द्वारा की गई थी। दार-उल-उलूम के ये दोनो संस्थापक **1857** की गदर के वरिष्ठ योद्धा थे, और यह संगठन मामूली व गरीब पृष्ठभूमि के बच्चों को खूब आकर्षित करता था। देवबंदी विचार और संस्था प्रभावशाली बने रहे और उनके मदरसा शिक्षकों के जरिए इसका प्रचार-प्रसार भी होता रहा। यह संस्था कांग्रेस के राष्ट्रीय आन्दोलन का समर्थन करती रही। इसके अन्दर अपने बुनियादी

कार्यक्रमों के अलावा कभी-कभार पैन-इस्लामी विचार भी हावी हो जाते थे, जिसके प्रभाव में वह अरब के सुलतान-खलीफा के प्रति राजनिष्ठा जाहिर करने की मांग उठाने लगती थी। इन्हीं पैन-इस्लामी विचारों ने **1897** के कलकत्ता दंगों में खतरनाक भूमिका अदा की थी। लेकिन बीस बरस बाद होने वाले खिलाफत आन्दोलन के दौरान ये विचार साम्राज्यवाद विरोधी ताकत का सबब भी बने थे।

इसी दौर में उर्दू-देवनागरी विवाद और गोरक्षा के दो मुद्दे भी उभरे, जिन पर सवार होकर साम्प्रदायिकता एक अखिलभारतीय परिघटना बन गई। गोरक्षा मुद्दे की गोंद ने कुलीन और सामान्य हिन्दुओं को जोड़कर उन्हें एक मंच पर जुटा दिया था। खेती में गाय के महत्व के मद्देनजर शिक्षित युवक गाय की रक्षा व उसके देखभाल की बातों को भारत की समग्र उन्नति के लिये जरूरी मान लेते थे। उधर, इस आन्दोलन के पैरोकारों ने न्यायालय के जरिए गोहत्या को प्रतिबन्धित करवाने की कोशिशें की, और नगरपालिकाओं ने भी गोकशी व उससे सम्बन्धित खरीद-फरोख्त को प्रतिबन्धित करने वाले नियम जारी कर दिए। कुछ जगहों पर सक्रिय गोरक्षिणी सभायें बूचड़ों को दन्डित करने व मांस की बिक्री जबरन रोकने के अभियान में लग गईं। प्रतिक्रिया में मुसलमान पुनरुत्थानवादी बकरीद के अवसर पर गाय की बलि आयोजित करने लगे और गोकशी को अपने धर्म के लिए जरूरी ठहराने वाला प्रचार करने लगे। पाले खिंच गए थे। **1893** में आज़मगढ़ के मऊ में दंगे भड़क उठे। इस बार मऊ के मुसलमानों की अच्छी-खासी आबादी पर गाजीपुर और बलिया के पड़ोसी जिलों के हिन्दुओं की भीड़ द्वारा हमले किए गए। बलिया और उसके अलावा सारन, गया और पटना में भी दंगे हुए। ध्यान रहे कि इन्हीं जगहों पर पशुओं के बड़े मेले लगा करते थे। इस दौर में सबसे हिंसक दंगे बम्बई में हुए, जिनमें **80** लोगों को जान गंवानी पड़ी थी। दंगों की लपट सुदूरवर्ती जूनागढ़ और रंगून तक पहुंची थी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट -**निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति करें।**

1. **1904** में, बंगाल में मैमनसिंह जिला के जमालपुर ब्लाक स्थित .... में एक प्रजा सम्मेलन आयोजित किया गया था।
2. **1905** में बंगाल के ..... के दौरान साम्प्रदायिक सौहार्द की अनेक मिसालें कायम हुई।
3. आर्य समाज ने **1900** के बाद अपने आधार क्षेत्र का विशाल ..... के जरिए गुणात्मक विस्तार किया।
4. दार-उल-उलूम की स्थापना मोहम्मद क़ासिम नानावतवी और ..... द्वारा की गई थी।

3.6 सारांश

ऊपर के वर्णन स्पष्ट करते हैं कि भारत में साम्प्रदायिकता किसी अलगाव में नहीं, बल्कि अपने समय में सक्रिय दूसरे सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलनों और परिघटनाओं के साथ अंतर्क्रिया करते हुए पनपी थी। सतह पर तो धार्मिक या प्रतीकात्मक दिखने वाले मुद्दे ही दंगों का कारण लगते हैं, लेकिन इन दंगों में प्रभावशाली आर्थिक स्वार्थों की रोटी भी सिंक रही होती थी। यह भी ध्यान देना जरूरी है कि शान्ति काल में जब दंगे नहीं हो रहे होते थे, सम्प्रदायीकरण की परिघटना सक्रिय रहकर अन्य आन्दोलनों के साथ अपना विस्तार करती जा रही थी। और इसी तरह भावी दशकों की राष्ट्रवादी लड़ाई में वह एक प्रमुख खिलाड़ी बन गई।

3.7 पारिभाषिक शब्दावली

तालुकदार : अवध क्षेत्र में जमींदार को तालुकदार कहा जाता था।

शुद्धीकरण : पवित्र करना

धर्मान्तरण : धर्म परिवर्तन

गोकशी : गौ-हत्या

3.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 3.4 के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य

3. असत्य

इकाई 3.5 के प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति

1. कमरिया चर

2. स्वदेशी आन्दोलन

3. शुद्धि कार्यक्रम

4. राशिद अदमद गंगोही

3.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

W.W. Hunter, *Indian Musalmans,* Calcutta, 1871

C. H. Heimsath, *Indian Nationalism and Hindu Social Reform,* Princeton University Press, 1964

B.B. Majumdar, *History of Indian Social and Political Ideas-From Rammohun to Dayananda*, Calcutta, 1967

Peter Hardy, *The Muslims of British India,* Cambridge South Asian Studies, 1972

J R McLane, *Indian Nationalism and the Early Congress,* Princeton University Press, 1977

Sudhir Chandra, *Communal Consciousness in Late 19th Century Hindi Literature* in Mushirul Hasan (ed.) *Communal and Pan-Islamic Trends in Colonial India*, Delhi 1981

Gyan Pandey, *Rallying Round the Cow; Sectarian Strife in the Bhojpur Region, C. 1881-1917,* Centre for Studies in Social Sciences, Calcutta, Occasional Paper No. 39, 1981

3.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय संदर्भ में साम्प्रदायिकता की अवधारणा, चरित्र एवं विकास पर चर्चा कीजिए।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग का लखनऊ पैक्ट और 1916 का होम रूल आन्दोलन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4. 3 कांग्रेस और मुस्लिम लीग का लखनऊ पैक्ट

4. 3.1 लखनऊ पैक्ट की पृष्ठभूमि और होम रूल आन्दोलन

4. 3. 2 होम रूल लीग का रास्ता और कार्यवाहियाँ

4. 3. 3 होम रूल आन्दोलन के प्रति सरकार का रवैया

4.4 सारांश

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

1905 के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान स्वराज्य अर्थात् स्वशासन को लक्ष्य बनाया गया था किन्तु औपनिवेशिक सरकार ने जवाब में भारतीयों को नाममात्र के सुधार और निर्मम राजनीतिक दमन का उपहार दिया। कांग्रेस की आपसी फूट, लोकमान्य तिलक तथा अन्य उग्रवादी नेताओं की भारतीय राजनीतिक परिदृश्य से अनुपस्थिति, कांग्रेस की राजनीति पर एक बार फिर नरमपंथियों का प्रभुत्व, एक सीमा तक क्रान्तिकारी आतंकवाद की दिशाहीनता और सरकार की भारत पर मज़बूत पकड़ इसके लिए काफ़ी हद तक ज़िम्मेदार थी।

1908 में लोकमान्य तिलक के माण्डले निर्वासन से समस्त राष्ट्र में असन्तोष की एक लहर दौड़ पड़ी थी। 1909 के इण्डियन काउंसिल्स एक्ट में दिए गए नाममात्र के सुधारों से नरमपंथी भी संतुष्ट नहीं थे। विश्वयुद्ध में भारतीय संसाधनों का युद्ध के लिए खुलकर उपयोग हो रहा था। लोकमान्य तिलक की

माण्डले से 1914 में रिहाई तथा भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में श्रीमती एनीबीसेन्ट के पदार्पण से होमरूल आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण विकसित हो रहा था।

प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेने के अपने उद्देश्यों में मित्र-शक्तियों ने लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा करना भी शामिल किया था। इस पृष्ठभूमि में सुधारों की आशा में भारतीयों ने तन-मन-धन से युद्ध में अंग्रेज़ों का साथ दिया। पहली बार भारत एक गुलाम देश से शासन करने वाले देश के सहयोगी के रूप में उभर कर आया और इसके कारण भारतवासियों में भी अपनी राजनीतिक, आर्थिक तथा संवैधानिक मांगों को सरकार के सामने उठाते हुए एक नया आत्मविश्वास और एक नया उत्साह दिखाई दिया। अनेक शीर्षस्थ नेताओं ने साम्प्रदायिक सद्भाव तथा राष्ट्रीय एकता को महत्व दिया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लखनऊ पैक्ट और **1916** के होम रूल आन्दोलन से परिचित कराना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित जानकारियों से भी परिचित हो सकेंगे -

1. लखनऊ पैक्ट की मुख्य बातें

2. लखनऊ पैक्ट की पृष्ठभूमि और होम रूल आन्दोलन

3. होम रूल लीग का रास्ता और कार्यवाहियाँ

4. होम रूल आन्दोलन के प्रति सरकार का रवैया

5. होम रूल आन्दोलन का मूल्यांकन

4. 3 कांग्रेस और मुस्लिम लीग का लखनऊ पैक्ट

1916 दिसम्बर में, दोनों, अखिल भारतीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में हुए। दोनों सम्मेलनों ने (कांग्रेस ने **29** दिसम्बर और मुस्लिम लीग ने **31** दिसम्बर को) एक साझा प्रस्ताव पारित किया। इस साझा प्रस्ताव के जरिए जिन प्रशासनिक सुधारों की वकालत की गई, वे भारतीय राजनीतिक परिदृष्य के दो सर्वव्यापी व बेहद अहम सवालों को सम्बोधित करते थे। इस प्रस्ताव में भारत में स्वशासन बहाल किए जाने की मांग उठी थी, और सरकार में भारतीयों की संख्या व भागीदारी बढ़ाने वाले निम्न प्रशासनिक सुधारों की पैरोकारी की गई थीः

- केन्द्रीय विधायी काउन्सिल की सदस्य संख्या बढ़कर **150** की जायेगी

- प्रान्तों में विधायी काउन्सिल के अस्सी फीसदी सदस्य निर्वाचित हों और मनोनीत सदस्य केवल बीस फीसद होंगे

- प्रान्तीय विधायिकाओं की कुल निर्धारित सदस्य संख्या बड़े प्रान्तों में कम से कम **125** और छोटे प्रान्तों में **50** से **75** के बीच होगी

- मनोनीत सदस्यों को छोड़कर बाकी सभी सदस्यों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर किया जाएगा

- किसी समुदाय से सम्बन्धित विधेयक तब पारित न होगा अगर विधायी काउन्सिल में समुदाय के दो तिहाई सदस्य उसके विरोध में हों

- काउन्सिल का कार्यकाल **5** वर्ष का रहेगा

- काउन्सिल के अध्यक्ष का चुनाव स्वयं उसके सदस्यों द्वारा किया जायेगा

- इम्पीरियल विधायी काउन्सिल के आधे सदस्य भारतीय होंगे

- इन्डियन काउन्सिल खारिज कर दी जायेगी

- भारतीय मामलों के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का वेतन भारतीय कोष के बजाय ब्रिटेन की सरकार द्वारा दिया जाएगा।

- दो अनुसचिवों में एक भारतीय होगा

- कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग किया जाएगा।

दूसरी तरफ दोनों संगठन निर्वाचन मंडलों के सवाल पर भी एकमत थे**,** जो हिन्दू-मुसलमान रिश्तों के सवाल पर कांग्रेस और लीग के बीच मित्रता और समझदारी को दर्शाती थी। इस सन्दर्भ में निम्न बातों की वकालत की गई थीः

- केन्द्रीय सरकार में एक तिहाई प्रतिनिधित्व मुसलमानों का रहेगा

- सारे समुदायों के लिये अलग निर्वाचन मंडलों की व्यवस्था रहगी**,** बशर्ते कोई समुदाय स्वयं संयुक्त निर्वाचन मंडल की मांग न करे।

- वेटेज प्रणाली अपनाई जाएगी।

इन बातों के अलावा प्रस्ताव में यह भी मांग की गई थी कि सरकारी फौज व जल सेना के कमीशन व गैर कमीशन वाले पदों को भारतीयों के लिए खोला जाएगा और उन्हें वालंटियर के बतौर शामिल किया जाएगा।

इस समय बाल गंगाधर तिलक और एन्नी बेसेन्ट के नेतृत्व वाला होम रूल आन्दोलन लोकप्रियता के चरम पर था। तिलक के होम रूल लीग ने इस अधिवेशन में एक नई परम्परा की नींव भी डाल दी थी। अधिवेशन में प्रतिनिधियों को पश्चिम भारत से लखनऊ पहुँचाने के लिए एक विशेष रेलगाड़ी की व्यवस्था की गई थी। तिलक और उनके समर्थक भारी संख्या में अधिवेशन में पहुँचे थे, और वहाँ उनका खूब स्वागत हुआ था।

अधिवेशन में तिलक इस आलोचना से भी मुखातिब हुए थे कि मुसलमानों को जरूरत से ज्यादा हिस्सा दिया गया है। वहां साफ लफ्जों में तिलक ने कहा था कि, जब तक स्वशासन के अधिकार भारतीयों व भारत के हित में सक्रिय लोगों को मिलते हैं, उन्हें इस बात से फर्क नहीं पड़ता कि किस समुदाय को ये अधिकार मिल रहे हैं। उन्होंने मजबूती से वहाँ कहा कि अंग्रेज सरकार से मुकाबले में सबको एक मंच पर इकट्ठा होना होगा। बहरहाल, कांग्रेस के दैनिक कामकाज के संचालन के लिए एक कार्यकारी समिति गठित किए जाने के तिलक के प्रस्ताव को कांग्रेस के मुख्यतया नरमपंथी नेताओं की कोशिशों के चलते सम्मेलन द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस प्रस्ताव के मूर्तिमान होने में अभी चार बरस का इन्तजार बाकी था, और वह **1920** में गांधी द्वारा तैयार कांग्रेस के संशोधित संविधान के बाद ही स्वीकार किया जा सका था।

कांग्रेस अधिवेशन के समापन पर, उसी पंडाल में, होम रूल लीग के दोनों धड़ों की संयुक्त बैठक भी हुई थी। **1,000** से अधिक प्रतिनिधि इस बैठक में शामिल हुए थे। प्रतिनिधियों द्वारा कांग्रेस-लीग समझौते की सराहना की गई। बैठक को नेताद्वय, तिलक और एन्नी बेसेन्ट, द्वारा संबोधित किया गया था। लखनऊ से लौटकर दोनों नेता उत्तर, मध्य और पूर्वी भारत के विभिन्न इलाकों के एक व्यापक दौरे के कार्यक्रम में निकल पड़े थे।

4.3.1 लखनऊ पैक्ट की पृष्ठभूमि और होम रूल आन्दोलन

लखनऊ सम्मेलनों में इस साझा प्रस्ताव का पारित किया जाना भारत के राजनीतिक इतिहास का एक अहम क्षण माना जाता है। यह न सिर्फ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग की एकता का क्षण था, बल्कि नरमपंथियों और गरमपंथियों में एक दशक पहले विभाजित हो चुकी कांग्रेस के लिए भी एकता का क्षण था। अपने लेखों में प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस द्वारा बंगाल के मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफोर्ड की हत्या के असफल प्रयास की सराहना करने के लिए बाल गंगाधर तिलक पर राजद्रोह का मुकदमा लाद दिया गया था। उसके बाद तिलक **6** सालों के लिए मांडले निर्वासित कर दिए गए थे। हालांकि, अपने चरमपंथी विचारों और समाज सुधार के गहन प्रयासों के कारण तिलक

इस दौर में काफी मशहूर थे। वे उन कांग्रेसी नेताओं की आलोचना करते थे जो नरम राजनीतिक तरीकों पर चल रहे थे। यही मतभिन्नता कांग्रेस के भीतर गुटबाजी में बदल गई, जिसके कारण वह **1906** के सूरत अधिवेशन मे नरमपंथियों और गरमपंथियों के दो धड़ों में विभाजित हो गई थी।

निर्वासन से तिलक की वापसी के समय भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का परिदृश्य उजाड़ सा था। चारों ओर तीखा दमन जारी था। स्वदेशी आन्दोलन सख्ती से कुचला जा चुका था। कांग्रेस एक वार्षिक तमाशे में बदल चुकी थी। तिलक यह बात समझ गए थे कि एक मंच की कमी पूरा करने के लिए कांग्रेस में शामिल हो जाना जरूरी है। उन्हें इस मंच में व्यापक आन्दोलन की संभावनायें दिख रही थीं। इसलिए वे अपने समर्थकों समेत कांग्रेस में प्रवेश करने की कोशिशें करने लगे। अपने पुराने भाषणों को उन्होंने संशोधित कर लिया, और सरकार को भरोसा दिलाया कि वे ब्रिटेन की वफादार प्रजा हैं, और ऐसे होम रूल का सपना देखते हैं जहां भारत सरकार के अन्दर भारतीयों की उपस्थिति और हैसियत अधिक होगी। गुजरात के फिरोजशाह मेहता जैसे कांग्रेस के नरमपंथी नेता मानते थे कि तिलक का कांग्रेस में लौटना अच्छा नहीं रहेगा। बहरहाल मेहता की मौत के बाद तिलक की कांग्रेस में वापसी का विरोध ठन्डा पड़ गया। दूसरी ओर कलकत्ता के भूपेन्द्रनाथ बोस जैसे नेताओं से तिलक को समर्थन भी मिल रहा था।

इस दौरान कांग्रेस में एन्नी बेसेन्ट काफी प्रभावशाली हो चुकी थीं। थिओसॉफिकल समाज का नेतृत्व करने वाली बेसेन्ट मानती थीं कि भारत में ब्रिटेन के रैडिकल व आयरलैन्ड के होम रूल आन्दोलनों के माडल पर भारत में होम रूल का लागू किया जाना भारत-ब्रिटेन रिश्तों के लिए अहम है। वे मानती थीं कि एक राष्ट्र व्यापी आन्दोलन चलाकर इस लक्ष्य को हासिल करना सम्भव है। वे तिलक के काफी करीब भी थीं। दिसम्बर **1915** में तिलक अपने समर्थकों समेत कांग्रेस में शामिल कर लिए गए। इसी साल कांग्रेस का एक मांग पत्र तैयार करने की प्रक्रिया भी शुरू हुई। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग अपनी बम्बई बैठक में अपना मांग पत्र तैयार करने का फैसला कर चुकी थी। इस दौर में एक युवा पार्टी मुस्लिम लीग पर काफी असर रखती थी, और मोहम्मद अली जिन्ना कांग्रेस का हिस्सा थे। वे इस वक्त **1916** के लखनऊ पैक्ट की सफलता के लिए पुरजोर कोशिशें कर रहे थे।

लखनऊ पैक्ट को हम ऐसे क्षण के बतौर समझ सकते हैं जब कांग्रेस व मुस्लिम लीग के नेता अपने मतभेदों को दरकिनार करने की कोशिश कर रहे थे, और एक ऐसे साझा मंच को ढूँढ़ रहे थे जिसके जरिए साझा मकसद की ओर बढ़ा जा सके। इस वक्त दोनों दलों का राजनीतिक मकसद भी साझा जमीन पर खड़ा था।

हालांकि, इसके बाद भी कांग्रेस के जरिए होम रूल आन्दोलन चलाने में न तो तिलक सफल हुए, और न ही एन्नी बेसेन्ट। होम रूल आन्दोलन तेज करने के लिए दोनों, तिलक और एन्नी बेसेन्ट ने होम रूल लीग संगठन बना लिए। तिलक और एन्नी बेसेन्ट के समर्थकों की आपसी नापसन्दगी के चलते एक साझा लीग चलाना संभव न हो सका था। लेकिन दोनों होम रूल लीग अपने लिए एक

अलग कामकाज का इलाका चिन्हित करने पर राजी हो गई थीं। तिलक की लीग बम्बई शहर को छोड़कर महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य प्रान्तों व बेरार में सक्रिय थी, जबकि बाकी भारत में एन्नी बेसेन्ट की लीग काम कर रही थी।

4. 3. 2 होम रूल लीग का रास्ता और कार्यवाहियाँ

होम रूल लीग के दोनों संगठनों ने शहरों में बहस-मंडलियाँ और वाचनालय बनाए, व्यापक तौर पर पुस्तिकायें बेचीं और भाषण-व्याख्यान के दौरे आयोजित किए। दिलचस्प बात तो यह है कि ये तरीके नरमपंथी राजनीति के तरीकों से मेल खाते थे, हालाँकि अपनी गहनता में वे नरमपंथियों से बहुत अलग और आगे थे। तिलक की लीग ने अपनी सक्रियता के पहले ही साल में **6** मराठी व **2** अंग्रेजी पुस्तिकाओं की **47,000** प्रतियां बेची थीं। उसका **6** शाखाओं में संगठित कामकाज था, इनमें एक-एक मध्य महाराष्ट्र, बम्बई शहर, कर्नाटक और मध्य प्रान्तों में थीं, जबकि बेरार में उसकी दो शाखायें थीं। दूसरी ओर एन्नी बेसेन्ट की लीग ने भी सितम्बर **1916** तक **26** अंग्रेजी पुस्तिकाओं की तीन लाख प्रतियां बेंच दी थीं। उनकी लीग के प्रावधानों के अनुसार तीन सदस्य एक शाखा का गठन कर सकते थे। इस तरह शहरों, यहां तक कि गांव-समूहों में भी तकरीबन **200** शाखाओं का गठन किया गया था। एक औपचारिक कार्यकारिणी भी थी, जिसके सात सदस्य लीग की **34** संस्थापक शाखाओं द्वारा चुने जाते थे। बहरहाल, अधिकांश काम एन्नी बेसेन्ट और उनके कुछ अनुयायी निपटाया करते थे। सी.पी.रामास्वामी अ्ययर और बीपी वाड़िया एन्नी बेसेन्ट के साथ अड्यार से कामकाज का संचालन किया करते थे।

तिलक ने महाराष्ट्र का दौरा शुरू कर दिया। अपनी यात्रा में हर जगह वे भाषण दे रहे थे और होम रूल की मांग को लोकप्रिय बना रहे थे। भाषणों के दौरान लोगों के साथ सवाल-जवाब भी हुआ करते थे, जिसकी वजह से इस मांग की अवधारणा लोगों को स्पष्ट होती जा रही थी। वे कहते थे कि अब भारत इतना परिपक्व हो चुका है कि वह अपना शासन खुद चला सकता है। भाषाई राज्यों के गठन व स्थानीय भाषा में शिक्षण की जरूरत जैसे मुद्दों को जोड़ते हुए वे स्वराज या होम रूल की अवधारणा पर अपनी बात कहा करते थे। तिलक अपने भाषणों में हरेक भाषाई समुदाय को शिक्षा और स्वशासन उनकी अपनी भाषा में मुहैय्या कराने पर बल दिया करते थे। अपने भाषाई सिद्धान्त की मिसाल पेश करते हुए उन्होंने **1915** के बम्बई प्रान्तीय सम्मेलन में वी.बी. अलूर को अपनी मातृभाषा कन्नड़ में भाषण देने के लिए कहा था। तिलक वक्तृता कला के धनी थे, जिसके बल पर वे उस वक्त ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों के दरमियान उभरे विवाद को ठन्डा करने में भी कामयाब हुए थे। गैर-ब्राह्मणों ने सरकार को ज्ञापन दिया था और उन्होंने खुद को ब्राह्मणों से पूरी तरह अलग कर लिया था। इसका विरोध किया जा रहा था, लेकिन तिलक ने उन्हें समझाते हुए कहा कि अगर उनका आन्दोलन गैर-ब्राह्मणों को इस बात का यकीन दिला दे कि गैर-ब्राह्मणों की मांगों के प्रति उनकी पूर्ण सहमति और समर्थन है, तो दोनों संघर्ष मिलकर एक हो जायेंगे और मजबूती की ओर बढ़ेंगे।

वे गैर-ब्राह्मणों को भी समझाते थे कि ब्राह्मणों व गैर-ब्राह्मणों में असली फर्क उस शिक्षा का है जो सरकारी नौकरियां दिलाती है। इसलिए वे कहा करते थे कि हमारा असली मकसद शिक्षा हासिल करना होना चाहिए, जिसे हम एकताबद्ध रहकर ही हासिल कर सकते हैं।

तिलक द्वारा की जाने वाली होम रूल की वकालत का वैचारिक आधार भी व्यापक था। वे बेलाग ढंग से कहते थे कि हम सरकार से इसलिये लड़ रहे हैं, क्योंकि वह भारत के हित में कार्य नहीं करती, और इसलिये नहीं कि सरकार चलाने वाले किसी और धर्म के हैं, या उनकी चमड़ी का रंग हमसे अलग है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट -**निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।**

1. प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस ने बंगाल के मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफोर्ड की हत्या की थी।
2. बाल गंगाधर तिलक पर राजद्रोह के मुकदमे के बाद उन्हें **6** साल के लिए मांडले निर्वासित किया गया।
3. **1906** के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस नरमपंथियों और गरमपंथियों के दो धड़ों में विभाजित हो गई थी।
4. गुजरात के फिरोजशाह मेहता कांग्रेस के गरमपंथी नेता थे।
5. महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस के नरमपंथी नेता थे।

नोट -निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति करें।

1. **1916** दिसम्बर में, अखिल भारतीय कांग्रेस और ..... के वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में हुए।
2. थिओसॉफिकल समाज की नेता ..... थीं।
3. एन्नी बेसेन्ट की लीग ने सितम्बर **1916** तक **26** अंग्रेजी पुस्तिकाओं की ..... प्रतियां बेंच दी थीं

4.3.3 होम रूल आन्दोलन के प्रति सरकार का रवैया

23 जुलाई, **1916** को भारत की अंग्रेज सरकार ने तिलक को **60,000** रु. जमानत राशि जमा करने के लिए कहा। होम रूल लीग आन्दोलन पर सरकारी दमन का यह पहला वाकया था। मुकदमे में तिलक की पैरवी वकीलों की जिस टीम ने किया, उसका नेतृत्व मोहम्मद अली जिन्ना ने किया था।

मजिस्ट्रेटी अदालत में तो तिलक मुकदमा हार गए, लेकिन नवम्बर में उच्च न्यायालय द्वारा वे बरी कर दिये गए थे।

मद्रास सरकार ने अपने एक आदेश के जरिए राजनीतिक सभाओं में छात्रों के जाने पर पाबन्दी लगा दी थी। इस सरकारी कदम की चौतरफा निन्दा हुई। इसके बाद, जून **1917** में मद्रास सरकार ने श्रीमती बेसेन्ट और उनके सहयोगी बी.पी. वाड़िया व जार्ज अरुन्डेल को गिरफ्तार करने का निर्णय किया। सरकार के इस कुकृत्य के विरोध में राष्ट्रव्यापी प्रतिवाद भड़क उठा। विरोध में सर सुब्रमण्यम अ॑यर ने अपनी नाइट की उपाधि लौटा दी। सरकार के इस दमन का सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि होम रूल लीग से अब तक अलग रहने वाले अनेक कांग्रेसी लीग के सदस्य बनने लगे। इन लोगों में मदन मोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और एम.ए. जिन्ना जैसे कद्दावर नेता शामिल थे। इन सभी नेताओं ने होम रूल लीग के नेताओं की गिरफ्तारी करने के लिए सरकार की घोर भर्त्सना भी की थी।

28 जून **1917** की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में तिलक ने देश में व्यापक पैमाने पर सत्याग्रह आयोजित करने का प्रस्ताव रखा। उनका प्रस्ताव कांग्रेस की सभी प्रान्तीय कमेटियों के पास भेज दिया गया। बेरार और मद्रास कमेटियों ने इस प्रस्ताव पर मोहर भी लगा दी। गांधी की सलाह पर शंकर लाल बैंकर और जमनादास द्वारकादास ने एक हजार ऐसे स्वयंसेवकों के हस्ताक्षर इकट्ठा किए, जो उसी जगह सरकार के नजरबन्दी आदेश का उल्लंघन करने के लिए तैयार थे, जहाँ एन्नी बेसेन्ट गिरफ्तार की गई थीं।

इसके अलावा, होम रूल के ज्ञापन पर दस लाख किसानों और मजदूरों के हस्ताक्षर इकट्ठा करने का एक सघन अभियान छेड दिया गया। गुजरात के शहरों व गांवों में शाखायें खोलने का अभियान भी तेज कर दिया गया।

सरकार को समझ में आ गया कि इस गिरफ्तारी से आन्दोलन और तेज हो गया है। इसलिए ब्रिटेन की सरकार ने अपना रवैया बदलने का फैसला कर लिया। नए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट मान्टेग्यू ने **20** अगस्त **1917** को ब्रिटेन के निचले सदन में घोषणा करते हुए कहा कि, सरकार की नीति प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाने और भारत में एक ऐसी जिम्मेदार सरकार की ओर बढ़ने की रहेगी, जो ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग होगी। इस घोषणा के बाद होम रूल लीग द्वारा स्वशासन की मांग किए जाने को राष्ट्रद्रोह नहीं माना जा सकता था। नतीजतन, सितम्बर **1917** को एन्नी बेसेन्ट रिहा कर दी गईं। विजय के माहौल के बीच जेल से उनकी वापसी हुई, और **1917** के अपने वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस ने उन्हें अपने अध्यक्ष का पद सौंप दिया।

लेकिन अगले ही साल आन्दोलन बिखरने लगा, क्योंकि वहां शामिल नरमपंथी सरकार द्वारा दिए गए सुधारों के वादे को कुछ ज्यादा ही गम्भीरता देने लगे थे। अब ये लोग सविनय अवज्ञा आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्तावों के विरोध में खड़े होने लगे। कई तो **1918** के बाद कांग्रेस में गए ही नहीं। जुलाई

1918 में सरकार ने अपनी सुधार योजनाओं को प्रकाशित कर दिया। कई नेता उसे अपर्याप्त मानते हुए उससे असन्तुष्ट हुए, और उन्हें खारिज कर देना चाहते थे। हालाँकि कुछ दूसरे लोग उन्हें स्वीकार करने के पक्ष में भी थे। इनके अलावा अन्य लोग भी थे, जो स्वीकार करते थे कि ये सुधार बेहद सीमित हैं, लेकिन वे उन्हें एक बार आजमा लिए जाने के पक्ष में भी थे। सरकार द्वारा सुधारों की इस घोषणा के बाद एन्नी बेसेन्ट का पक्ष भी सुसंगत न रहा। वे सत्याग्रह को कभी स्वीकार करती थीं, तो कभी उसे नकारने भी लगती थीं। सत्याग्रह के सवाल पर तिलक की राय तो बिलकुल स्पष्ट थी लेकिन एन्नी बेसेन्ट की असंगतता के कारण वे कुछ खास कर नहीं पाए। सितम्बर **1918** में वैलेन्टाइन चिरोल के खिलाफ अपने द्वारा दायर किये गए मानहानि के मुकदमे की खातिर उन्हें लंदन जाना पड़ा। इसके बाद यह आन्दोलन ही नेतृत्वविहीन हो गया।

4. 4 सारांश

अपनी आन्दोलनात्मक तीव्रता से प्रभाव डालने के अलावा होम रूल आन्दोलन नये इलाकों, समूहों और एक हद तक नयी पीढ़ी के बीच अपना विस्तार भी करने में सफल रहा था। बेसेन्ट के नेतृत्व वाले लीग को मुख्यतया मद्रास शहर और छोटे कस्बों के ब्राह्मणों, संयुक्त प्रान्त के शहरी पेशेवर समूहों, सिंध के अमील अल्पसंख्यकों, गुजरात के युवा उद्योगपतियों, बम्बई शहर और गुजरात के व्यापारियों और वकीलों का समर्थन हासिल हुआ था।

इस आन्दोलन में भावी लड़ाइयों के न जाने कितने ही नेता उभर कर सामने आए थे। इन नये नेताओं में मद्रास के सत्यमूर्ति, कलकत्ता के जितेन्द्रीलाल बनर्जी, इलाहाबाद और लखनऊ के जवाहरलाल नेहरू और कलीक़ुज़्ज़ुमा, बम्बई और गुजरात के जमनादास द्वारकादास, उमर सोभानी, शंकरलाल बैंकर और इन्दुलाल याज्ञिक जैसी भविष्य की हस्तियाँ शामिल हैं। अकेले बम्बई शहर में बेसेन्ट की लीग के **2,500** सदस्य थे, शाताराम चॉल में आयोजित होने वाली सभाओं में **10000-12,000** लोग जुट जाया करते थे। वे अधिकांशतया सरकारी कर्मचारी और औद्योगिक मजदूर हुआ करते थे।

जमनादास द्वारकादास, शंकरलाल बैंकर और इन्दुलाल याज्ञिक ने बम्बई में यंग इन्डिया अखबार निकालना शुरू कर दिया। एक अखिल भारतीय प्रचार कोष का भी निर्माण उनके द्वारा किया गया था। इस कोष का मकसद क्षेत्रीय व अंग्रेजी भाषा में प्रचार पुस्तिकायें छापना था। इन सारी गतिविधियों के कारण राजनीतिक कार्यवाहियाँ अंग्रेजी न जानने वाले तबके तक भी पहुँच सकी थीं। इस आन्दोलन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान शहर और गांवों के बीच कायम किये गए सांगठनिक सम्पर्क थे। राष्ट्रीय आन्दोलन के बाद के दौर में ये कड़ियां काफी उपयोगी साबित हुईं। होम रूल का विचार एक ऐसा सशक्त विचार था, राष्ट्रवाद के विचार को समझने और स्वराज की कल्पना को लोगों द्वारा जज्ब किए जाने में जिसका बड़ा योगदान रहा है।

4.5 पारिभाषिक शब्दावली

वालंटियर – स्वयंसेवक

लफ्ज - शब्द

मूर्तिमान – यहां पर साकार अर्थ में प्रयुक्त

नरमपंथी – शांतिपूर्ण तरीके से अपनी बात रखने वाले

4.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 4.3.2 के उत्तर

1.असत्य

2.सत्य

3. असत्य

4. असत्य

5. असत्य

रिक्त स्थान की पूर्ति

1. मुलिम लीग

2. एनी बेसेन्ट

3. तीन लाख

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

Bal Gangadhar Tilak, His Writings and Speeches, Madras, 1919

G.P Pradhan and A K Bhagwat, *Lokmanya Tilak: A Biography, Bombay,* 1959

H.F. Owen, *Towards Nation-wide Agitation and Organisation: The Home Rule Leagues, 1915-18' in* D.A. Low*, editor, Soundings in Modern South Asian History,* Berkley and Los Angeles, 1968

A.M. Zaidi and S.G. Zaidi, *The Encyclopaedia of the Indian National Congress,* Vol. 7, 1916-1920, New Delhi, 1979

4.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

Sumit Sarkar*, Modern India, 1885-1947*, Macmillan Publishers, 1983

Bipan Chandra, Mridula Mukherjee, Aditya Mukherjee, Sucheta Mahajan, K.N. Panikkar, *India's Struggle for Independence,* Penguin, 1989

Sekhar Bandopadhyay*, From Plassey to Partition: A History of Modern India*, Orient Blackswan, 2004

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. 1916 के लखनऊ पैक्ट और होम रूल आंदोलन पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिए।

ब्लाक तीन- राष्ट्रवाद का गॉधी युग: एक

इकाई एक- गांधी जी का प्रारंभिक राजनीतिक जीवन

इकाई दो- असहयोग आन्दोलन: कारण , कार्यक्रम रोलेट एक्ट एवं उसका विरोध जलिंयावाला बाग हत्याकाण्ड। चोरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति।

इकाई तीन- साइमन कमीशन, सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट

इकाई चार- सविनय अवज्ञा आंदोलन

गांधीजी का प्रारम्भिक राजनीतिक जीवन

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका का प्रवास

1.3.1 गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका आगमन के समय वहां के प्रवासी भारतीयों की दशा

1.3.2 अन्याय के प्रतिकार हेतु गांधीजी का अभियान

1.3.3 दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके प्रमुख नेताओं से सम्बन्ध

1.3.4 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

1.3.4.1 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा अन्य भारतीय धर्मग्रंथों का प्रभाव

1.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

1.3.5 इण्डियन ओपिनियन

1.3.6 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन

1.3.7 हिन्द स्वराज

1.3.8 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए प्रस्थान

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अपने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी ने सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित अपने आदर्शवादी राजनीतिक विचारों और राजनीतिक प्रतिरोध हेतु सत्याग्रह की रणनीति का विकास किया था। गांधीजी के चिन्तन पर भगवद् गीता, रस्किन, थरो, एमर्सन तथा टॉल्सटॉय का विशेष प्रभाव पड़ा था। गांधीजी ने सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं

जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली दक्षिण अफ्रीका में गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया। 1909 में उन्होंने 'हिन्द स्वराज' शीर्षक पुस्तिका में अपने राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व शैक्षिक विचारों का प्रतिपादन किया।

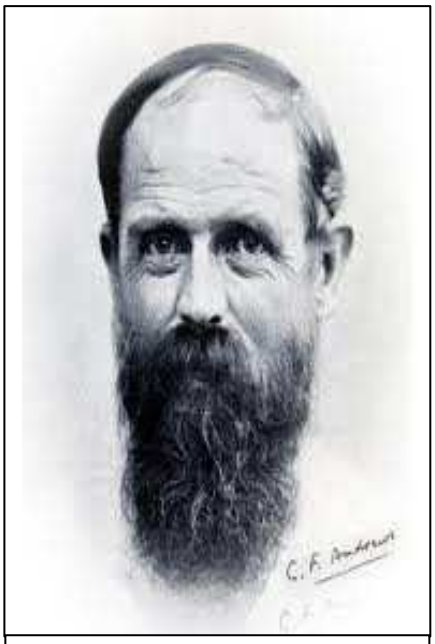

सी० एफ० एन्ड्रूज

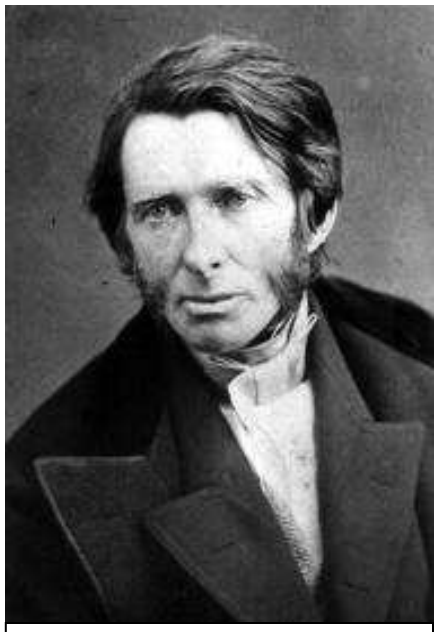

रस्किन

अपने आन्दोलनों से गांधीजी को अनुबंधित भारतीय मज़दूरों पर लगाए जाने वाले 13 दमनकारी टैक्सों को रद्द कराने में और उनकी भारतीय विधियों से की गई शादियों को मान्यता दिलाने में सफलता प्राप्त की। अपनी विचारधारा का प्रचार करने में और सरकार की दमनकारी नीतियों का खुलासा करने में उन्होंने पत्रकारिता का उपयोग करना दक्षिण अफ्रीका में ही प्रारम्भ किया था। 1914 में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका छोड़कर भारत वापस लौटने का तथा वहां के राजनीतिक मंच पर प्रवेश करने का निश्चय किया। भारत लौटने से पहले ही गांधीजी वहां एक सफल राजनीतिज्ञ और अहिंसक राजनीतिक आन्दोलन के प्रणेता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। भारतीय राजनीति का अब एक नया अध्याय प्रारम्भ होने वाला था।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक विचारों के विकास तथा उनके राजनीतिक आन्दोलनों की जानकारी देना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका आगमन के समय वहां रह रहे भारतीयों के प्रति दक्षिण अफ्रीका की सरकार की नीति
2. गांधीजी के विचारों पर भारतीय व पाश्चात्य चिन्तन का प्रभाव
3. इण्डियन ओपिनियन पत्र की राजनीतिक चेतना के विकास में भूमिका
4. दक्षिण अफ़्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन
5. हिन्द स्वराज

1.3 गांधीजी का दक्षिण अफ़्रीका का प्रवास

1.3.1 गांधीजी के दक्षिण अफ़्रीका आगमन के समय वहां के प्रवासी भारतीयों की दशा

इंग्लैण्ड से बैरिस्टर की षिक्षा प्राप्त कर भारत में अपनी वकालत को स्थापित करने में असफल गांधीजी को 1893 में नाटाल के एक भारतीय मूल के व्यापारी दादा अब्दुल्ला ने अपने व्यापारिक अनुष्ठान 'दादा अब्दुल्ला एण्ड कम्पनी' के मुकद्दमे की पैरवी करने हेतु डरबन बुलाया। गांधीजी डरबन पहुंचे और वहां पहुंचने के कुछ समय बाद ही उन्हें इस बात का व्यक्तिगत अनुभव हो गया कि एक भारतीय के लिए रंगभेदी नीति कितनी अपमानजनक हो सकती है। रेलगाड़ी में डरबन से प्रिटोरिया तक के लिए यात्रा करते समय गांधीजी के पास प्रथम श्रेणी का टिकट होने पर भी एक श्वेत सहयात्री द्वारा एक भारतीय कुली के साथ एक ही डिब्बे में बैठकर यात्रा करने पर आपत्ति करने पर पुलिसकर्मी ने आकर उन्हें सामान वाले डिब्बे में बैठकर यात्रा करने को कहा। गांधीजी द्वारा विरोध करने पर उसने पीटरमैरित्ज़बर्ग स्टेशन पर उन्हें जबरन धक्का देकर उतार दिया और उनका सामान भी प्लेटफ़ार्म पर फेंक दिया। गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है -

मैरित्ज़बर्ग में एक पुलिस कांन्सटेबिल ने मुझे धक्का देकर ट्रेन से बाहर निकाल दिया। ट्रेन चली गई। मैं जाकर विश्रामकक्ष में बैठ गया। मैं ठन्ड से कांप रहा था। मुझे नहीं पता था कि मेरा सामान कहां पर है और न मैं किसी से कुछ पूछने की हिम्मत कर सकता था कि कहीं फिर मेरी बेइज़्ज़ती न हो। नींद का सवाल ही नहीं था। मेरे मन में उथल-पुथल हो रही थी। काफ़ी रात गए मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि भारत वापस भाग जाना कायरता होगी। मैंने जो दायित्व अपने ऊपर लिया है उसे पूरा करना चाहिए।

गांधीजी को होटलों में भारतीय होने के कारण कई बार ठहरने के लिए कमरा नहीं दिया गया और एक बार डरबन कोर्ट में मैजिस्ट्रेट ने उन्हें पगड़ी उतारने का आदेश दिया किन्तु गांधीजी ने मैजिस्ट्रेट के आदेश का पालन करने के स्थान पर कोर्ट छोड़ना उचित समझा।

इन सब घटनाओं के बाद गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा भारतीयों, चीनियों, अश्वेतों तथा अन्य गैर-यूरोपीय जातियों के निवासियों के साथ अपनाई जाने वाली अन्यायपूर्ण नीतियों की विस्तृत जानकारी प्राप्त की।दक्षिण अफ्रीका में उस समय लगभग दो लाख भारतीय रह रहे थे। इनमें से अधिकांश बंधुआ मज़दूर थे जिनकी कि दशा सबसे दयनीय थी। कुछ स्वतन्त्र मज़दूर थे, कुछ व्यापारी थे और कुछ सरकारी कार्यालयों में कार्यरत क्लर्क व अन्य कर्मचारी थे। खेत बागानों के मालिक भारतीय श्रमिकों के साथ अमानवीय व्यवहार करते थे और उन्हें अर्ध-दासों की स्थिति में रखते थे। भारतीय नागरिक, व्यापारिक एवं सम्पत्ति विषयक अधिकारों से वंचित थे। अपने लिए मानवीय अधिकारों की तो वो कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

सभी भारतीयों को कुली कहकर पुकारा जाता था। गोरों के लिए सुरक्षित पक्के मार्ग पर वो नहीं चल सकते थे। गोरों के साथ वो फुटपाथ पर भी साथ-साथ नहीं चल सकते थे और न ही रात में बिना परमिट लिए कहीं आ-जा सकते थे।

भारतीयों को रेलगाड़ियों में प्रथम व द्वितीय श्रेणी में यात्रा करने का अधिकार नहीं था। अक्सर उन्हें डिब्बे में खड़े होकर या रेलगाड़ी के पांवदान पर खड़े होकर यात्रा करनी पड़ती थी। यूरोपियनों के लिए आरक्षित होटलों में भारतीयों को प्रवेश करने तक की अनुमति नहीं थी। ट्रांसवाल में भारतीयों को रहने के लिए तथा अपनी व्यापारिक गतिविधियां संचालित करने के लिए सबसे गंदा और स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक क्षेत्र उपलब्ध कराया गया था जहां पर न तो पानी की और न उसके निकास समुचित व्यवस्था थी और न ही हवा व रौशनी की पर्याप्त व्यवस्था थी।

पूर्व अनुबंधित मज़दूरों को अनुबंधन से मुक्ति प्राप्त करने के बाद 3 पॉण्ड वार्षिक मतगणना कर देना होता था।

1.3.2 अन्याय के प्रतिकार हेतु गांधीजी का अभियान

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की दीन दशा को सुधारने का संकल्प लिया और जागरूक भारतीयों के साथ मिलकर 1894 में 'नाटाल इण्डियन कांग्रेस' की स्थापना में अपना सहयोग दिया। उन्हें इस संस्था का फ़र्स्ट ऑनरेरी सेक्रेटरी बनाया गया।

गांधीजी ने भारतीयों को मताधिकार दिलाए जाने के लिए ब्रिटिश कोलोनियल सेक्रेटरी जोसेफ़ चेम्बरलेन को स्मरण पत्र भेजा। गांधीजी द्वारा सरकार द्वारा तथा गोरों द्वारा अमानवीय रंगभेदी एवं जातिभेदी नीतियों के विरोध से नाराज़ होकर 1897 में डरबन में गांधीजी पर गोरों की भीड़ ने हमला कर दिया। पुलिस अधीक्षक की पत्नी की सहायता जान बचाकर निकलने में वो सफल हुए किन्तु उन्होंने गांधीजी द्वारा हमलावरों के खिलाफ़ कानूनी कार्रवाही करने से इंकार कर दिया।

अपनी अगली भारत यात्रा में गांधीजी ने क्वेटा में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया और इस अधिवेशन में उन्होंने दखिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की स्थिति में सुधार लाए जाने के लिए एक प्रस्ताव रखा।

बोअर युद्ध के दौरान गांधीजी के नेतृत्व में 1899 में घायलों की सेवार्थ 1100 भारतीय स्वयंसेवकों के 'एम्बुलेन्स कोर्प्स' का गठन हुआ। जनरल रैडवर्स बुलर द्वारा भारतीय स्वयं सेवकों की निःस्वार्थ सेवा-भावना तथा उनके साहस व धैर्य की प्रशंसा की गई। गांधीजी सहित 37 लोगों को वार मैडिल मिले। 1904 में ब्यूबोनिक प्लेग फैलने पर कुलियों की बस्ती में गांधीजी और उनके सहयोगियों ने जाकर रोगियों का उपचार किया। 1906 में जूलू-विद्रोह के दौरान भी गांधीजी के 'एम्बुलेन्स कोर्प्स' ने अपनी निःस्वार्थ सेवा का परिचय दिया।

1.3.3 दक्षिण अफ्रीका प्रवास के दौरान गांधीजी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा उसके प्रमुख नेताओं से सम्बन्ध

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति से सदैव जुड़े रहे। अपने भारत दौरों में उन्होंने शीर्षस्थ राष्ट्रीय नेताओं से मिलने का प्रयास किया। गोपाल कृष्ण गोखले से गांधीजी की पहली भेंट 12 अक्टूबर, 1896 को हुई थी। अपनी आत्मकथा में गांधीजी ने इसका उल्लेख किया है। 1901 में गांधीजी ने कलकत्ते में कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लिया था। वहां उन्होंने गोखले के समर्थन से दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों की दयनीय दशा सुधारने हेतु एक प्रस्ताव रखा था। गोपाल कृष्ण गोखले ने गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा को अत्यधिक प्रभावित किया था और उनकी प्रेरणा से ही उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को हमेशा के लिए छोड़कर भारत में रहकर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रवेश किया था। गांधीजी ने निर्मल गंगा के समान सबको अपनी धारा में समा लेने की क्षमता रखने वाले गोखले को अपना राजनीतिक गुरु माना है।

गांधीजी कांग्रेस के नरमपंथी नेता फ़िरोज़शाह मेहता को हिमालय के समान ऊंचे व्यक्तित्व वाला मानते थे। दादा भाई नौरोजी तथा रमेश चन्द्र दत्त के आर्थिक राष्ट्रवाद ने उनके आर्थिक विचारों को प्रभावित किया था। लोकमान्य तिलक गांधीजी को महासागर की भांति अथाह लगे थे। तिलक के उग्रवादी विचारों से उनका मतभेद था किन्तु वह उनकी उत्कट देशभक्ति के प्रषंसक थे। इण्डियन ओपिनियन के 1 अगस्त, 1908 के अंक में लोकमान्य तिलक के माण्डले के लिए 6 साल के निर्वासन पर गांधीजी ने लिखा था -

जेल जाना अपमान की नहीं अपितु सम्मान की बात है। हमको अंग्रेज़ों के हाथों कभी न्याय नहीं मिलने वाला। यह अपने मीठे वादों की छुरी से हमको हलाल करती है पर हमको इसके धोखे में नहीं आना चाहिए। महान देशभक्त तिलक का 6 साल का निर्वासन अत्यन्त भयानक है किन्तु हमको इसका शोक नहीं मनाना चाहिए क्योंकि अंग्रेज़ सरकार से हमको ऐसे ही कृत्य की अपेक्षा थी।

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में किए जा रहे अपने आन्दोलनों से भारतीयों को निरन्तर अवगत कराया तथा उनकी सफलता के लिए उनसे समर्थन की अपेक्षा भी की। 1909 में लिखित गांधीजी के ग्रंथ हिन्द स्वराज में समकालीन भारतीय राजनीतिक विचारधाराओं पर उनकी गहरी समझ के दर्शन होते हैं।

1.3.4 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

1.3.4.1 गांधीजी की विचारधारा पर गीता तथा अन्य भारतीय धर्मग्रंथों का प्रभाव

संस्कृत भाषा में निष्णात न होने के कारण गांधीजी ने बी साल की आयु तक भगवद् गीता का अध्ययन नहीं किया था। 1888-89 के दौरान इंग्लैण्ड में उन्होंने एडविन एर्नोल्ड द्वारा भगवद् गीता के अंग्रेज़ी में किए गए अनुवाद का अध्ययन किया और तभी से गीता उनके जीवन के लिए आध्यात्मिक शब्दकोश बन गई। गीता के निष्काम कर्म तथा कर्मयोग का गांधीजी के विचारों तथा उनकी जीवन-शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा था। निजी कष्टों के प्रति विरक्ति का भाव रखने की क्षमता का विकास भी गांधीजी ने भगवद् गीता से ही सीखा था।

गांधीजी ने अपने चिन्तन पर उपनिषदों के प्रभाव को स्वीकार किया है। जैन एवं बौद्ध धर्म के अहिंसा के सन्देश को उन्होंने अपने जीवन में उतारा था। राम-राज्य की परिकल्पना के विकास तथा अपने वसुधैव कुटुम्बकम के उदार दृष्टिकोण के लिए गांधीजी भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक ग्रंथों के ऋणी थे।

1.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव

गांधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण पर सबसे अधिक प्रभाव जॉन रस्किन की पुस्तक अन टु दि लास्ट का पड़ा था। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त उन्होंने इसी पुस्तक से ग्रहण किया था। मालिक और कर्मचारी के मध्य सम्बन्ध, आर्थिक समानता की अवधारणा, आधुनिक तकनीक के प्रयोग, तथा भातृत्व की भावना विषयक उनके विचार भी रस्किन की विचारधारा से प्रभावित थे। 25 अगस्त, 1946 के हरिजन में गांधीजी ने लिखा था-

'यदि मनुष्य को प्रगति करनी है और समानता व भातृत्व की भावना के लक्ष्य को प्राप्त करना है तो उसे अन टु दि लास्ट में दिए गए सिद्धान्तों का अनुपालन करना होगा।'

जॉन रस्किन ने सत्ता प्राप्ति के लिए धन के दुरुपयोग की भर्त्सना की थी और गांधीजी ने धनवानों से यह अपेक्षा की थी कि वे अपने धन का उपयोग मानव जाति के कल्याण हेतु करें न कि अधिक से अधिक लोगों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में।

लियो टॉल्सटॉय ने नैतिकता, सत्य और अहिंसा को मनुष्य के उत्थान के लिए नितान्त आवश्यक बताया था। गांधीजी की विचारधारा पर टॉल्सटॉय की पुस्तक दि किंगडम ऑफ़ गॉड इज़ विदिन यू का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा था। इस पुस्तक में टॉल्सटॉय ने अहिंसा की महत्ता को दर्शाया है और यह सन्देश दिया है कि अन्यायी की हिंसा का प्रतिकार अहिंसा से और पशु-बल का सामना नैतिक बल से करना चाहिए। टॉल्सटॉय की ही भांति गांधीजी का व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा में विश्वास नहीं था और वह संसाधनों का उपयोग मानव कल्याण के निमित्त किया जाना श्रेयस्कर समझते थे। गांधीजी ने सादगी भरा नैतिकतापूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा भी टॉल्सटॉय से प्राप्त की थी। ब्रह्मचर्य की महत्ता का पाठ भी उन्होंने टॉल्सटॉय के विचारों में पढ़ा था। 1906 गांधीजी ने व्यक्तिगत जीवन में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का निश्चय किया।

टॉल्सटॉय का सन्देश था - ***बैक टु दि लैण्ड***

सादगी भरे, छल-कपट से दूर, आत्मनिर्भर ग्रामीण जीवन के प्रति उनके हृदय में अपार श्रद्धा थी। गांधीजी के ग्राम्य-विकास एवं ग्राम-स्वराज्य विषयक विचारों पर टॉल्सटॉय के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। टॉल्सटॉय के जीवन दर्शन को अपनाने के लिए गांधीजी ने 1910 में टॉल्सटॉय फ़ार्म की स्थापना की थी।

हेनरी डेविड थरो को अमेरिका में दास प्रथा के उन्मूलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने का श्रेय दिया जाता है। उनकी पुस्तक सिविल डिस-ओबिडियेन्स के राजनीतिक दर्शन का गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा व रणनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था। थरो को उन्होंने अपने राजनीतिक मार्गदर्शकों में महत्वपूर्ण स्थान दिया था। 1906 में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के विरुद्ध आन्दोलन करते समय उन्होंने थरो की सविनय अवज्ञा की रणनीति का अनुगमन किया था। 1907 में उन्होंने अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन में थरो के विचारों का प्रकाशन किया था। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भी गांधीजी ने सिविल डिस-ओबिडियेन्स के सन्देश का सदैव निष्ठापूर्वक अनुगमन किया था। अन्याय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण प्रतिरोध की रणनीति का विकास करने में गांधीजी ने थरो के प्रभाव को स्वीकार किया था।

एमर्सन की भांति गांधीजी शिक्षा का उद्देश्य किताबी ज्ञान नहीं अपितु चरित्र निर्माण मानते थे। एमर्सन के विचार से शिक्षा का लक्ष्य किताबी ज्ञान अर्जित कराना नहीं अपितु अपने कर्तव्यों का बोध कराना है। गांधीजी दक्षिण अफ़्रीका में 'एमर्सन क्लब' से सम्बद्ध रहे। गांधीजी 'लन्दन एमर्सन क्लब' के भी सदस्य रहे। एमर्सन का कथन है -

अपने धर्म की अपने कर्मों में अभिव्यक्ति दो।

तथा

अपने जीवन में सत्य का प्रयोग करके ही तुम सत्य के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त कर सकते हो।

गांधीजी की आत्मकथा माय एक्सपेरीमेन्ट्स विद ट्रुथ पर एमर्सन के विचारों का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

1.3.5 इण्डियन ओपिनियन

गांधीजी की दृष्टि में पत्रकारिता को समाजसेवा तथा मानव-कल्याण के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए था। धनोपार्जन अथवा सत्ता-प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर की जाने वाली पत्रकारिता उनके विचार से निन्दनीय थी। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता में गांधीजी का अटूट विश्वास था। किसी भी सभ्य देश के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता उनकी दृष्टि में एक ऐसी अमूल्य निधि थी जिसको खो जाने से उस देश को पहुंचने वाली हानि का हिसाब भी नहीं लगाया जा सकता था।

दक्षिण अफ्रीका के यूरोपीय समुदाय को वहां रह रहे भारतीयों की समस्याओं, आवश्यकताओं तथा उनके मुद्दों से परिचित कराने के उद्देश्य से अपने मुवक्किलों, प्रतिष्ठित भारतीयों तथा 'नाटाल इण्डियन कांग्रेस' के सहयोग से नाटाल में 6 जून, 1903 को मनसुख लाल नज़र के सम्पादन में गुजराती, तमिल, हिन्दी और अंग्रेज़ी में गांधीजी ने इण्डियन ओपिनियन का प्रकाशन प्रारम्भ किया। बाद में मात्र गुजराती और अंग्रेज़ी में इसका प्रकाशन किया जाने लगा। 1904 में डरबन के निकट स्थित फ़ीनिक्स फ़ार्म से इसका प्रकाशन किया जाने लगा।

प्रारम्भ में इण्डियन ओपिनियन ने ब्रिटिश कानून के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए कृषि फ़ार्मों में बंधुआ मज़दूरों की दुर्दशा, उनके द्वारा की गई आत्महत्याओं की वारदातों और उनके मालिकों के उन पर अमानवीय अत्याचारों का खुलासा किया जाता था। 1906 से यह पत्र सरकार की दमनकारी रंगभेदी, जातिभेदी नीतियों का खुलकर विरोध करने लगा और एशियन जातियों के लिए बनाए गए अन्यायपूर्ण रजिस्ट्रेशन कानून के विरुद्ध आन्दोलन का मुख्य स्वर बन गया। ब्रायन गैब्रील ने इसके फ़ोटोग्राफर तथा हेनरी पोलाक ने इसके सम्पादक के रूप में इस पत्र को दक्षिण अफ्रीका में रह रहे भारतीयों के राजनीतिक आन्दोलन का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज़ बना दिया। 1906 से 1913 तक इसने भारतीयों के सत्याग्रह का जीवन्त चित्रण किया। अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन के विषय में गांधीजी ने कहा था -

'इण्डियन ओपिनियन मेरे जीवन का अभिन्न अंग था। इसके पन्नों में अपनी आत्मा की पुकार और सत्याग्रह के सिद्धान्त डाल देता था। अपने सिद्धान्तों के क्रियान्वयन की विस्तृत सूचना भी मैं इसी पत्र के माध्यम से देता था। इण्डियन ओपिनियन के बिना सत्याग्रह असम्भव था। इस पत्र ने मुझे आत्म-संयम का प्रशिक्षण दिया था।'

इण्डियन ओपिनियन ने स्थानीय भारतीय आन्दोलनकारियों में साहस, त्याग और बलिदान की भावना का विकास किया और अन्ततः रंगभेदी व जातिभेदी रजिस्ट्रेशन कानून को रद्द करवाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1.3.6 दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के राजनीतिक आन्दोलन

गांधीजी ने 1904 में नाटाल में फ़ीनिक्स फ़ार्म की स्थापना की। इसी फ़ार्म से इण्डियन ओपिनियन का अंग्रेज़ी और गुजराती में प्रकाशन किया गया।

नैटाल की सरकार ने एक ऐसा विधेयक प्रस्तावित किया जो कि प्रवासी भारतीयों से मताधिकार वापस ले सकता था। इस स्थिति में गांधीजी ने अन्याय का प्रतिकार करने का निश्चय किया।

1906 में 11 सितम्बर को ट्रांसवाल में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के अन्तर्गत आठ वर्ष से अधिक आयु के सभी भारतीयों के लिए अपने अंगूठे के निशान वाले जातिभेदी पास रखने की अनिवार्यता के विरोध में गांधीजी द्वारा जोहेन्सबर्ग के एम्पायर थियेटर में आयोजित सभा में 3000 भारतीय सम्मिलित हुए। इस सभा में गांधीजी ने कहा -

हम जैसे लोगों के लिए बस एक ही रास्ता है, हम मर सकते हैं पर ऐसे कानून के सामने घुटने नहीं टेकेंगे। अगर और लोग पीछे हट भी गए तो मैं अकेला रह कर भी इस अन्याय के खिलाफ़ अपनी लड़ाई जारी रक्खूंगा।

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी के नेतृत्व में प्रथम सत्याग्रह का प्रारम्भ किया गया। गांधीजी ने 'पैसिव रेज़िज़टेन्स ऐसोसियेशन' का गठन किया। इस संगठन ने भारतीयों से अपील की कि वो रजिस्ट्रेशन अर्थात् पंजीकरण कार्यालयों का बहिष्कार करें। ट्रांसवाल सरकार द्वारा इस आन्दोलन को तोड़ने के अथक प्रयासों के बाद भी भारतीय मूल के मुट्ठी भर नागरिक (30 नवम्बर, 1907 तक मात्र 519) ही अपना पंजीकरण कराने रजिस्ट्रेशन कार्यालय पहुंचे। गांधीजी को पंजीकरण विधेयक का विरोध करने के आरोप में 2 माह का कारावास भी दिया गया। गांधीजी 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' को रद्द कराने में इंग्लैण्ड की सरकार की मदद लेने के उद्देश्य से लन्दन गए। इस जातिभेदी कानून का वापस ले लिया गया किन्तु 1907 में ट्रांसवाल में स्वशासन की स्थापना के बाद इसे फिर से लागू कर दिया गया।

विडम्बना यह थी कि दक्षिण अफ्रीका में एक ओर ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन रहकर भी श्वेत समुदाय द्वारा स्वशासन के लिए संघर्ष किया जा रहा था तो दूसरी ओर भारतीयों, चीनियों, अश्वेतों तथा अन्य समुदायों के लिए किसी भी प्रकार के अधिकार की बात उठाना तक अपराध माना जा रहा था।

1908 में 16 अगस्त और फिर 23 अगस्त को हमीद मस्जिद के सामने 3000 सत्याग्रहियों द्वारा जातिभेदी एवं अपमानजनक रजिस्ट्रेशन सर्टिफ़िकेट्स जलाए गए। 2000 से अधिक आन्दोलनकारियों को जेल में डाला गया। गांधीजी ने चीनी नेता ल्युंग क्विन के साथ मिलकर आन्दोलन जारी रखा। अन्त में ल्युंग क्विन तथा गांधीजी का जनरल स्मट्ज़ से समझौता हो गया। जनरल स्मट्ज़ ने अपना वादा तोड़ दिया और एक बार फिर गांधीजी तथा उनके सहयोगियों ने इस अन्यायपूर्ण कानून के विरुद्ध अपना संघर्ष प्रारम्भ कर दिया।

1910 में गांधीजी ने कैद किए गए आन्दोलनकारियों के परिवारों के भरण-पोषण हेतु टॉल्सटॉय फ़ार्म की स्थापना की। इस फ़ार्म में सामुदायिक जीवन तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए फ़ार्म में रहने वालों को प्रषिक्षण दिया गया।

1912 में गोपाल कृष्ण गोखले दक्षिण अफ़्रीका पहुंचे जहां उन्होंने गांधीजी के आन्दोलन को भरपूर समर्थन दिया। गोखले के कहने पर गांधीजी के आन्दोलन में पीयर्सन तथा सी0 एफ़0 एन्ड्रूज़ शामिल हुए।

13 अक्टूबर, 1913 को पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉन्ड वार्षिक टैक्स लगाए जाने के विरोध में डरबन/जोहनेसबर्ग रेल्वे लाइन पर 29 अक्टूबर 2000 से अधिक मज़दूरों, खानकर्मियों की हड़ताल हुई। जनरल स्मट्ज़ का हडताल कुचलने का प्रयास निष्फल हुआ। मिलों, होटलों, जलपान गृहों में कार्यरत भारतीय कर्मचारियों की हड़ताल के कारण इन सबके कामकाज में बाधा पहुंची तथा घरेलू भारतीय नौकरों के भी हड़ताल में षामिल होने की वजह से गोरों के घरों का कामकाज भी ठप्प पड़ गया। मजबूर होकर सरकार ने हड़तालियों के साथ समझौते की वार्ता प्रारम्भ कर दी और अन्ततः पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉण्ड के वार्षिक टैक्स लगाए जाने के कानून को रद्द कर दिया गया।

1913 में ही दक्षिण अफ्रीका के सुप्रीम कोर्ट द्वारा गैर-ईसाई विधियों (हिन्दू, मुस्लिम, पारसी आदि) से किए गए विवाहों को अमान्य घोषित कर दिया गया। भारतीयों के लिए अपने विवाहों का पंजीकरण कराना भी आवश्यक हो गया। इस प्रकार गैर पंजीकृत व अमान्य विवाहों से उत्पन्न सन्तानें भी स्वतः अवैध हो जातीं। गांधीजी ने इस अन्यायपूर्ण फ़ैसले के विरुद्ध अपील की परन्तु सरकार ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। विवश होकर गांधीजी ने 6 नवम्बर, 1913 को इस जातिभेदी कानून के विरुद्ध सत्याग्रह यात्रा का नेतृत्व कर ट्रांसवाल की सीमा को पार किया। उनके साथ 127 स्त्रियां, 57 बच्चे और 237 पुरुष आन्दोलनकारी थे। गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया परन्तु आन्दोलन पूर्ववत निर्बाध जारी रहा। गोपाल कृष्ण गोखले ने गांधीजी के इस आन्दोलन के समर्थन में भारत भर में भ्रमण कर उनके आन्दोलन के लिए धन एकत्र किया। गांधीजी को भारतीय व्यापारियों, उद्योगपतियों तथा भारतीय शासकों से अपने आन्दोलन हेतु आर्थिक सहायता भी प्राप्त हुई। भारत के वाइसराय लॉर्ड हार्डिंज ने भारतीयों पर दक्षिण अफ्रीका की सरकार द्वारा किए जा रहे तथाकथित अत्याचारों की निष्पक्ष जांच कराए जाने की मांग की। लॉर्ड हार्डिंज के इस कदम की

लन्दन और प्रेटोरिया में आलोचना भी की गई परन्तु इस जातिभेदी व रंगभेदी अन्यायपूर्ण फ़ैसले पर पुनर्विचार करने के लिए अब अनुकूल समय आ गया था। अन्ततः जनरल स्मट्ज़ को आन्दोलनकारियों से समझौते की बात करनी पड़ी। अपने अनुबंध से मुक्त हो चुके स्वतन्त्र मज़दूरों पर से 3 पॉण्ड वार्षिक का मतगणना कर हटा लिया गया। भारतीय विधियों (गैर ईसाई विवाह विधियां जैसे हिन्दू, मुस्लिम, पारसी विवाह विधियां आदि) से किए गए विवाहों को मान्यता दे दी गई। अब दक्षिण अफ्रीका आने के लिए केवल आदिवासी प्रमाणपत्र पर अंगूठे का निशान लिया जाना आवश्यक रह गया।

गांधीजी ने अपने 21 वर्षीय दक्षिण अफ़्रीका प्रवास में सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया। अपनी विचारधारा का प्रचार करने में और सरकार की दमनकारी नीतियों का खुलासा करने में उन्होंने पत्रकारिता का उपयोग करना दक्षिण अफ़्रीका में ही प्रारम्भ किया था। राजनीतिक आन्दोलनों में बच्चों और स्त्रियों सहित आम आदमी की सहभागिता के महत्व को भी उन्होंने दक्षिण अफ़्रीका में ही जाना था। ग्राम्य-विकास की महत्ता को भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में ही जाना था। गांधीजी ने साम्प्रदायिक एकता व सामुदायिक एकता को राष्ट्रीय एकता व संगठित राजनीतिक आन्दोलन की आवश्यक शर्त मान लिया था। किसी क्षेत्र विशेष अथवा समुदाय विशेष के हितों लिए संघर्ष करने के स्थान पर उनका जीवन सभी क्षेत्रों के समस्त समुदायों के निवासियों के कल्याण हेतु समर्पित था। दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही गांधीजी ने अपना मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित किया था। सर्व-धर्म सम्भाव, शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना का विकास भी उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में रहकर ही किया था।

1.3.7 हिन्द स्वराज

1909 में 13 नवम्बर से 22 नवम्बर के मध्य गांधीजी ने एस0एस0 किल्डोनान कैसल नामक जहाज में इंग्लैण्ड से केपटाउन जाते समय गुजराती भाषा में महान दार्शनिक प्लैटो की पुस्तक रिपब्लिक में अपनाई गई प्रश्नोत्तर शैली (प्रश्नकर्ता- डॉक्टर प्रान्जीवन मेहता तथा उत्तरदाता - गांधीजी) में इस लघु पुस्तिका को लिखा था। मूल गुजराती पुस्तिका पर सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगाए जाने के कारण गांधीजी ने स्वयं अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद कर सर्वप्रथम इसका क्रमबद्ध प्रकाशन अपने पत्र इण्डियन ओपिनियन में कराया था। यह पुस्तिका 20 अध्यायों तथा 2 परिशिष्टों में विभक्त है। इस पुस्तिका में कांग्रेस, कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ता, बंगाल विभाजन, स्वराज की परिभाषा, इंग्लैण्ड की दशा, पाश्चात्य सभ्यता, भारत की दशा, सच्ची सभ्यता, भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग, इटली और भारत, विस्फोटक सामग्री, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, मशीनीकरण, मुक्ति और हिन्द स्वराज की चर्चा की गई है। अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने के लिए गांधीजी ने इस पुस्तिका में अपने पाठकों को प्लैटो,

हैनरी डेविड थरो, एमर्सन, जॉन रस्किन, मेज़िनी, लियो टॉल्सटॉय, दादा भाई नौरोजी तथा आर0 सी0 दत्त के विचारों का अध्ययन करने की सलाह दी है।

ईश्वरहीन, नैतिक मूल्यों से सर्वथा वंचित पूंजीवादी एवं भौतकतावादी आधुनिक मानव सभ्यता में साम्राज्यवादी प्रवृत्ति को गांधीजी समर्थ राष्ट्रों के लिए स्वाभाविक मानते हैं। परन्तु भारत की परतन्त्रता के लिए गांधीजी अंग्रेज़ों को नहीं बल्कि नैतिक मूल्यों का परित्याग कर पूंजीवाद की पोषक वैधानिक एवं राजनीतिक व्यवस्था को अपनाने वाले स्वयं भारतीयों को ही दोषी ठहराते हैं। गांधीजी की दृष्टि में भारतीय अपना कल्याण उसी स्थिति में कर सकते हैं जब कि वे अपने लालच और भोगवादी प्रवृत्ति पर अंकुश लगाकर प्राचीन काल की आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को फिर से अपना लें। उनकी दृष्टि में व्यक्ति का महत्व राजनीतिक संस्थाओं की तुलना में अधिक है। गांधीजी सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित राजनीतिक प्रतिरोध में बड़े से बड़े और समर्थ से समर्थ शासक की दमनकारी नीतियों व व्यवस्थाओं को पलटने की असीमित शक्ति में विश्वास करते हैं।

गांधीजी पाश्चात्य राजनीतिक, आर्थिक, प्रशासनिक, विधि-परक, सैनिक तथा शैक्षिक संस्थाओं को भारत के लिए अनुपयोगी मानते हैं। उनकी दृष्टि में 'स्वराज' कोई पाश्चात्य राजनीतिक अवधारणा नहीं है अपितु यह अवधारणा मूलतः भारतीय है जिसमें कि शक्ति के विकेन्द्रीकरण और व्यक्तियों तथा समुदाय के माध्यम से स्वशासन की व्यवस्था की जाती है। 'स्वराज' का राजनीतिक अर्थ नैतिक मूल्यों पर आधारित स्वशासन है और इसकी चरम परिणति स्वतन्त्रता में है। इसका आर्थिक अर्थ है - करोड़ों देशवासियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता। 'स्वराज' का सर्वोच्च आदर्श सभी वाह्य नियन्त्रणों से मुक्त हो कर आत्म-संयम रखते हुए स्वशासन प्राप्त कर मुक्ति अथवा मोक्ष पाना है।

1.3.8 गांधीजी का दक्षिण अफ्रीका से भारत के लिए प्रस्थान

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में रंगभेदी व जातिभेदी गोरी सरकार को अपनी अन्यायपूर्ण नीतियों को बदलने के लिए बाध्य कर अपने राजनीतिक जीवन का प्रथम अध्याय सम्पन्न कर लिया था। गोपालकृष्ण गोखले उन्हें भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने का पहले ही निमन्त्रण दे चुके थे। गांधीजी के लिए अब भारत लौटकर अपने सत्य व अहिंसा के प्रयोगों को व्यापक आधार देना आवश्यक हो गया था। 1914 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़कर वापस भारत लौटने का निश्चय किया। 1915 के प्रारम्भ में गांधीजी स्वदेश लौटे और वहां पहुंचते ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई जान फूंक दी।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1. गांधीजी के दर्शन पर पाश्चात्य चिन्तकों का प्रभाव।
2. इण्डियन ओपिनियन
3. हिन्द स्वराज

1.5 सारांश

गांधीजी को 1893 में नाटाल के एक भारतीय मूल के व्यापारी दादा अब्दुल्ला ने अपने व्यापारिक अनुष्ठान के मुकद्दमे की पैरवी करने हेतु डरबन बुलाया। गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार की रंगभेदी तथा जातिभेदी नीतियों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। गांधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति से सदैव जुड़े रहे। गोपाल कृष्ण गोखले को गांधीजी ने अपना राजनीतिक गुरु माना।

गीता के निष्काम कर्म तथा कर्मयोग का गांधीजी के विचारों तथा उनकी जीवन-शैली पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

गांधीजी के आर्थिक दृष्टिकोण पर सबसे अधिक प्रभाव जॉन रस्किन की पुस्तक अन टु दि लास्ट का पड़ा था। ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त उन्होंने इसी पुस्तक से ग्रहण किया था।

गांधीजी की विचारधारा पर टॉल्सटॉय की पुस्तक दि किंगडम ऑफ़ गॉड इज़ विदिन यू का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था। गांधीजी के अहिंसा, नैतिक बल, ब्रह्मचर्य, ग्राम्य-विकास एवं ग्राम-स्वराज्य विषयक विचारों पर टॉल्सटॉय के विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था।

हेनरी डेविड थरो की पुस्तक सिविल डिस-ओबिडियेन्स के राजनीतिक दर्शन का गांधीजी की राजनीतिक विचारधारा व रणनीति पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

एमर्सन की भांति गांधीजी शिक्षा का उद्देश्य किताबी ज्ञान नहीं अपितु चरित्र निर्माण मानते थे।

गांधीजी का पत्र इण्डियन ओपिनियन दक्षिण अफ्रीका की सरकार की दमनकारी रंगभेदी, जातिभेदी नीतियों का खुलकर विरोध करता था।

1906 में 11 सितम्बर को ट्रांसवाल में 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट' के विरोध में गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में प्रथम सत्याग्रह का प्रारम्भ किया। 1908 में भी इस कानून के विरुद्ध आन्दोलन हुआ। 1913 में पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉन्ड वार्षिक टैक्स लगाए जाने के विरोध में मज़दूरों, खानकर्मियों, मिलों, होटलों, जलपान गृहों में कार्यरत भारतीय कर्मचारियों तथा गोरों के घरेलू भारतीय नौकरों की हड़ताल हुई। अन्ततः पूर्व अनुबंधित भारतीयों पर 3 पॉण्ड के वार्षिक टैक्स लगाए जाने के कानून को रद्द कर दिया गया। 1913 में ही अनुबंधित भारतीय मज़दूरों के गैर-ईसाई

विधियों से किए गए विवाहों को अमान्य घोषित किए जाने पर गांधीजी ने सत्याग्रह यात्रा का नेतृत्व किया।

गांधीजी ने अपने 21 वर्षीय दक्षिण अफ्रीका प्रवास में सत्य, अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह के अस्त्र के बल पर रंगभेद एवं जातिभेद की पोषक तथा 'रक्त एवं लौह' की नीति का पालन करने वाली गोरों की सरकार को अपने दमनकारी कानून रद्द करने के लिए अनेक बार विवश किया।

1909 में लिखित गांधीजी की पुस्तिका हिन्द स्वराज में भारतीय राजनीतिक चर्चा, स्वराज की परिभाषा, इंग्लैण्ड की दशा, पाश्चात्य सभ्यता, भारत की दशा, सच्ची सभ्यता, भारत की स्वतन्त्रता का मार्ग, विस्फोटक सामग्री, सत्याग्रह, आत्मबल, शिक्षा, मशीनीकरण, मुक्ति और हिन्द स्वराज की चर्चा की गई है। गांधीजी सत्य, अहिंसा और नैतिकता पर आधारित राजनीतिक प्रतिरोध से बड़े से बड़े और समर्थ से समर्थ शासक की दमनकारी नीतियों व व्यवस्थाओं को पलटने की असीमित शक्ति में विश्वास करते हैं।

गोपालकृष्ण गोखले गांधीजी को भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने का पहले ही निमन्त्रण दे चुके थे। गांधीजी के लिए अब भारत लौटकर अपने सत्य व अहिंसा के प्रयोगों को व्यापक आधार देना आवश्यक हो गया था। 1914 में उन्होंने दक्षिण अफ्रीका को सदा के लिए छोड़कर वापस भारत लौटने का निश्चय किया। अन्याय व दमन से पीड़ित भारतीय अपने उद्धार के लिए एक करिश्माई महानायक की प्रतीक्षा में थे और उन्हें वह 1915 में गांधीजी के रूप में प्राप्त हो गया था।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

बैक टु दि लैण्ड - फिर से अपनी ज़मीन, अपने गांवों से जुड़ो

सिविल डिसओबिडियेन्स - सविनय अवज्ञा

निलहे साहब - नील के बागानों के मालिक

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 1.3.4.2 गांधीजी की विचारधारा पर पाश्चात्य चिन्तकों के विचारों का प्रभाव
2. देखिए 1.3.5 इण्डियन ओपिनियन
3. देखिए 1.3.7 हिन्द स्वराज

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 3), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बॉम्बे, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य - इण्डियाज़ स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, नई दिल्ली, 1988

दत्त, आर0 पी0 - इण्डिया टुडे, कलकत्ता, 1970

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

1.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गांधी, एम0 के0 - हिन्द स्वराज एण्ड अदर राइटिंग्ज़, कैम्ब्रिज, 1947

2. सील, अनिल - दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म, कैम्ब्रिज, 1968

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका प्रवास की राजनीतिक उपलब्धियों का आकलन कीजिए।

इकाई दो

असहयोग आन्दोलन के कारण, रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध, जलियांवालाबाग हत्याकाण्ड, चौरी-चौरा चौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 असहयोग आन्दोलन के कारण
2.3.1 स्वदेशी आन्दोलन से लेकर मान्टेग्यू की घोषणा तक का राजनीतिक घटना चक्र
2.3.2 रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध
2.3.3 जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड
2.3.4 खिलाफ़त आन्दोलन
2.4 असहयोग आन्दोलन
2.4.1 असहयोग आन्दोलन के लक्ष्य
2.4.2 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक एवं सृजनात्मक स्वरूप
2.4.2.1 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक स्वरूप
2.4.2.2 असहयोग आन्दोलन का सृजनात्मक स्वरूप
2.4.2.3 सरकार द्वारा असहयोग आन्दोलन को कुचलने के प्रयास
2.5 चौरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति
2.6 असहयोग आन्दोलन का आकलन
2.7 सारांश
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों द्वारा लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ युद्ध में भाग लेने के दावे और विश्व युद्ध में भारत के सक्रिय सहयोग के वातावरण में ब्रिटिश सरकार से भारतीयों को स्वशासन अथवा होमरूल दिए जाने की आशा थी और होमरूल आन्दोलन के बाद 1917 की मान्टेग्यू की घोषणा से इसकी आशा भी की जा रही थी किन्तु युद्ध में जीत हासिल करने के बाद इंग्लैण्ड की और ब्रिटिश भारत की सरकार अपने वादों से पलट गई और भारत में राजनीतिक दमन का एक नया दौर प्रारम्भ हो गया। रॉलट एक्ट तथा जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के बाद भारत में राजनीतिक असन्तोष चरम सीमा पर पहुंच गया।

भारत के अधिकांश मुसलमान तुर्की के सुल्तान को अपना खलीफ़ा मानते थे। विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद उसको अपदस्थ किए जाने की योजना के विरुद्ध भारत में खिलाफ़त आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। गांधीजी ने मुसलमानों को मुख्य राष्ट्रीय धारा में जोड़ने के उद्देश्य से खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में अगस्त 1920 में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया।

असहयोग आन्दोलन की गणना विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन-आन्दोलनों में की जाती है। इसका अहिंसक और शान्तिपूर्ण स्वरूप इसे और भी अधिक महत्व प्रदान करता है। इस आन्दोलन में स्वदेशी आन्दोलन की बहिष्कार की रणनीति अपनाते हुए उसके लक्ष्य स्वराज, आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने और राष्ट्रीय एकता स्थापित करने का प्रयास किया गया था, साथ ही साथ इसमें अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, ग्राम-स्वराज्य और नारी-उत्थान के लक्ष्यों को भी जोड़ दिया गया था।

डेढ़ साल तक चले इस आन्दोलन ने सरकार की जड़ें तक हिला दी थीं और विश्व को अहिंसा का मार्ग अपनाते हुए अन्याय का प्रतिकार करना सिखाया था। चौरीचौरा में क्रुद्ध आन्दोलनकारियों द्वारा पुलिसकर्मियों की हत्या की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया किन्तु इस आन्दोलन को असफल नहीं कहा जा सकता। इस आन्दोलन से गांधीजी पूरे विश्व में शान्ति और अहिंसा के मसीहा माने गए और अंग्रेज़ों को शान्तिपूर्ण अहिंसात्मक प्रतिरोध की शक्ति के सामने पूरी तरह से तो नहीं तो आंशिक रूप से अवश्य झुकना पड़ा।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि, उसके उद्देश्य, उसके सृजनात्मक एवं निषेधात्मक पक्ष, उसकी व्यापकता, सरकार के दमन चक्र, आन्दोलन के स्थगन तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व इतिहास में असहयोग आन्दोलन की महत्ता पर प्रकाश डालना है। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे-

1. प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त भारतीयों में अंग्रेज़ों के विश्वासघात के कारण व्याप्त आक्रोश
2. रॉलट एक्ट तथा जलियांवालाबाग हत्याकाण्ड
3. अधिकांश मुसलमानों के खलीफ़ा तुर्की के सुल्तान को अपदस्थ किए जाने के विरोध में भारतीय मुसलमानों द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन का प्रारम्भ।
4. खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में तथा रॉलट एक्ट व पंजाब में सरकार के दमन चक्र के विरोध में असहयोग आन्दोलन का प्रारम्भ।
5. असहयोग आन्दोलन लक्ष्य और उसका निषेधात्मक व सृजनात्मक पक्ष।
6. असहयोग आन्दोलन का स्थगन।
7. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व इतिहास में असहयोग आन्दोलन का महत्व।

2.3 असहयोग आन्दोलन के कारण

2.3.1 स्वदेशी आन्दोलन से लेकर मान्टेग्यू की घोषणा तक का राजनीतिक घटना चक्र

प्रथम अखिल भारतीय राजनीतिक आन्दोलन - स्वदेशी आन्दोलन में बंगाल विभाजन को रद्द कराने के अतिरिक्त स्वशासन, आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता तथा राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लक्ष्य रखे गए थे और इन्हें हासिल करने के लिए आयरलैण्ड के होमरूल आन्दोलन में प्रयुक्त बॉयकाट की रणनीति को अपनाया गया था। परवर्ती राजनीतिक आन्दोलनों ने इसके लक्ष्य और इसकी रणनीति को अपनाया। स्वदेशी आन्दोलन को बंगाल विभाजन के अन्यायपूर्ण निर्णय को बदलवाने का बहुत कुछ श्रेय दिया जा सकता है।

कस्तूरबा गांधी

मित्र राज्यों ने प्रथम विश्वयुद्ध में लोकतान्त्रिक मूल्यों की रक्षार्थ भाग लेने का दावा किया था। प्रथम विश्वयुद्ध में मित्र राज्यों के सहयोगी के रूप में अपना योगदान देने के कारण भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं में वृद्धि 1916 के होमरूल आन्दोलन के अन्तर्गत श्रीमती एनीबीसेन्ट तथा लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में होमरूल अर्थात् डोमिनियन स्टेटस की मांग के रूप में दिखाई दी।

गांधीजी 1915 में भारत लौटे थे। बिहार में चम्पारन जिले के नील की खेती करने वाले किसानों की दुर्दषा सुधारने के लिए चम्पारन जिले में 1917 में अपना चम्पारन आन्दोलन प्रारम्भ किया। चम्पारन आन्दोलन को व्यापक जन-समर्थन मिलता देख सरकार को झुकना पड़ा। नील के बागानों के मालिकों के किसानों पर किए जाने वाले अत्याचार रोकने के लिए 1917 का 'चम्पारन एग्रेरियन बिल' प्रस्तावित किया गया और दमनकारी तिनकथिया प्रणाली रद्द कर दी गई।

1917-18 में गुजरात के अधिकांश भाग में, विशेषकर अहमदाबाद से 32 किलोमीटर दूर स्थित खेड़ा में भयंकर अकाल पड़ा था। किसानों ने 3 साल की लगान की माफ़ी दिए जाने की प्रार्थना की किन्तु बाम्बे प्रेसीडेन्सी की सरकार द्वारा लगान की माफ़ी की प्रार्थना ठुकरा दी गई अपितु कर में और वृद्धि कर दी गई। गांधीजी इस समय 'गुजरात सभा' के अध्यक्ष थे। 1918 में गुजरात के किसानों के हितों की रक्षार्थ गांधीजी ने खेड़ा सत्याग्रह में प्रवेश किया किन्तु इसमें उन्होंने मुख्य रूप से मार्गदर्शक की भूमिका निभाई थी। इसके वास्तविक नेता तो सरदार वल्लभ भाई पटेल, रविशंकर व्यास आदि थे।

इस व्यापक आन्दोलन की संगठित शक्ति के सामने सरकार को झुकना पड़ा। वर्तमान वर्ष और अगले साल की लगान माफ़ कर दी गई और कर में की गई बढ़ोत्तरी को स्थगित कर दिया गया। इस सत्याग्रह ने आने वाले समय के बारदोली सत्याग्रह की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

चम्पारन व खेड़ा आन्दोलनों से यह संकेत अवश्य मिल गया कि आने वाले समय में भारतीय राजनीतिक मंच पर गांधीजी की भूमिका कितनी महत्वपूर्ण होने वाली है।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में इंग्लैण्ड और तुर्की के सम्बन्धों में दरार पड़ चुकी थी। तुर्की के सुल्तान की राजसत्ता को कमज़ोर करने की कोशिश तथा मुसलमानों के पवित्र तीर्थस्थलों मक्का, मदीना, येरुशलम आदि की सुरक्षा पर मण्डराते खतरे ने भारतीय मुसलमानों की ब्रिटिश स्वामिभक्ति तथा स्वयं को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रखने की नीति के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लगा दिया था। इसका फ़ायदा उठाकर कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक राजनीतिक मंच पर लाने के प्रयास तेज़ हो गए। मुहम्मद अली जिन्ना और वज़ीर हसन जैसे मुसलमान भी कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। यह समय भेदभाव भुलाकर स्वशासन के लक्ष्य को प्राप्त करने का था। 1916 में लखनऊमेंनरमपंथी, गरमदल, होमरूल समर्थक तथा मुस्लिम लीगी एकत्र हुए और उन्होंने सर्वसम्मति से एक निर्णय लिया जिसको लखनऊ समझौते के नाम से जाना जाता है। हिन्दू-मुस्लिम

एकता के प्रतीक इस समझौते में मुसलमानों को प्रांतीय विधानपरिषदों तथा इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में विशिष्ट प्रतिनिधित्व तथा भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने की मांग रखी गई।

प्रथम विश्वयुद्ध में मेसोपोटामिया में ब्रिटिश सेना की तुर्कों से पराजय के बाद भारतीय सहयोग की युद्ध में उपयोगिता को देखते हुए भारत को स्वशासन प्रदान किया जाना भारत सचिव मॉन्टेग्यू ने समय की आवश्यकता बताया। 20 अगस्त, 1917 को उसने ऐतिहासिक घोषणा की जिसमें होमरूल आन्दोलन की स्वशासन की मांग को सरकार को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया। इस घोषणा में यह स्पष्ट नहीं किया गया था कि भारतीयों को स्वशासन कब, कितना और किस प्रकार प्रदान किया जाएगा। आगे चल कर सुधारों के विषय में यही अस्पष्टता भारतीयों के व्यापक असन्तोष का कारण बनी।

2.3.2 रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध

मॉन्टेग्यू की घोषणा के तुरन्त बाद विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों का पलड़ा भारी होते देख सरकार ने भारत में राजनीतिक प्रतिरोध को कुचलने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। 10 सितम्बर, 1917 को आतंकवाद के दमन के लिए जस्टिस रॉलट की अध्यक्षता में सेडिशन कमेटी गठित की गई। 1918 में सेडिशन कमेटी की सिफ़ारिशों को प्रकाशित किया गया। भारतीय प्रेस ने इस दमनकारी व्यवस्था को लागू न करने की मांग की परन्तु इन सिफ़ारिशों को 1919 में इम्पीरियल लेजिसलेटिव काउंसिल में रखा गया। इसके गैर सरकारी भारतीय सदस्यों ने एकमत से इन सिफ़ारिशों के आधार पर एक्ट बनाए जाने का विरोध किया। विश्वयुद्ध के दौरान बनाए गए विशेष सुरक्षा कानूनों को उसकी समाप्ति के बाद भी लागू रखना उनकी दृष्टि में भारतीयों के नागरिक अधिकारों का हनन था। रॉलट एक्ट के अंतर्गत सरकार विरोधी गतिविधियों के शक के आधार पर बिना मुकदमा चलाए किसी को भी गिरफ़्तार किया जा सकता था और उसे दो साल तक के लिए बन्दी बनाया जा सकता था। किसी के पास यदि सरकार विरोधी साहित्य मिले तो उसे गिरफ़्तार किया जा सकता था। पुलिस को शक की बिना पर तलाशी, गिरफ्तारी तथा ज़मानत मांगने के असीमित अधिकार मिल गए। इस दमनकारी कानून के पारित किए जाने के पीछे उन अंग्रेज़ अधिकारियों का हाथ था जो मॉन्टेग्यू की 1917 की घोषणा में भारतीयों को स्वशासन दिए जाने के आश्वासन से तथा 1919 के एक्ट में प्रान्तों में आंशिक रूप से उत्तरदायी शासन स्थापित किए जाने की व्यवस्था से नाराज़ थे।

इस एक्ट का घोर विरोध हुआ क्योंकि इससे पुलिस के हाथों जनता को परेशान करने की खुली छूट मिल रही थी। गांधी जी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध फ़रवरी, 1919 में सत्याग्रह सभा का गठन कर देशव्यापी आन्दोलन का आवाहन किया। गांधीजी ने होमरूल लीग तथा मुस्लिम विश्व बंधुत्व की अवधारणा में विश्वास करने वाले (पैन इस्लामिक) दल को अपनी सत्याग्रह सभा के साथ शामिल किया। उन्होंने लखनऊ के फ़िरंगी महल के उलेमा अब्दुल बारी का सहयोग प्राप्त किया। 23 मार्च, 1919 को गांधीजी ने देश-व्यापी हड़ताल का आवाहन किया।

2.3.3 जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद स्वशासन न दिए जाने से निराश जनता सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने को तत्पर थी। रॉलट एक्ट के पारित होने से जनता का आक्रोश अपने चरम बिन्दु तक पहुंच रहा था। पंजाब का लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर माइकिल ओडवेयर तथा अन्य अंग्रेज़ अधिकारी हिन्दू-मुस्लिम-सिख एकता तथा पंजाब में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बढ़ते हुए जन-आक्रोश नाराज़ थे। पंजाब के अमृतसर, लाहौर, गुर्जनवाला, गुजरात तथा लायलपुर में रॉलट एक्ट विरोधी आन्दोलन हो रहे थे। 9 अप्रैल, 1919 को रॉलट एक्ट के विरोध में जुलूस का नेत्त्व कर रहे डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार कर निर्वासित कर दिया गया। 10 अप्रैल को अपना विरोध जताने के लिए डिप्टी कमिश्नर के घर जा रही भीड़ पर पुलिस ने गोली चला दी। 11 अप्रैल, 1919 को माइकिल ओडवेयर ने पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया था परन्तु इसके बाद भी रॉलट एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन जारी रहा। डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को रौलट एक्ट का विरोध करने के कारण गिरफ़्तार किए जाने के विरोध में हुई बैसाखी के दिन 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बागमेंजनसभा में उपस्थित निहत्थे आन्दोलनकारियों पर बिना चेतावनी दिए जनरल डायर ने गोलीबारी की जिससे सैकड़ों लोग मारे गए और घायल हो गए। जनरल डायर के सिपाही तब तक भागती भीड़ पर गोलियां बरसाते रहे जब तक कि उनकी गोलियां खत्म नहीं हुईं। बाग की तंग गलियों में भारी फ़ौजी गाड़ी ले जाना कठिन था नहीं तो जनरल डायर भीड़ को इन भारी गाड़ियों से कुचलना भी चाहता था। जनरल डायर भारतीयों को इस हत्याकाण्ड से सबक देना चाहता था। इस हत्याकांड के बाद भी पुलिस की ज़्यादतियों का दौर चलता रहा। कूचा कूचियानवाला में एक अंग्रेज़ महिला का अपमान करने की सज़ा के तौर पर लोगों को पेट के बल रेंग कर चलने के लिए मजबूर किया गया। भारतीयों को यह पता चल गया कि अंग्रेज़ शासक भारतीयों की राजनीतिक मांगों तथा सरकार की नीतियों के विरोध को कुचलने के लिए अत्याचार की किस सीमा तक जा सकते हैं।

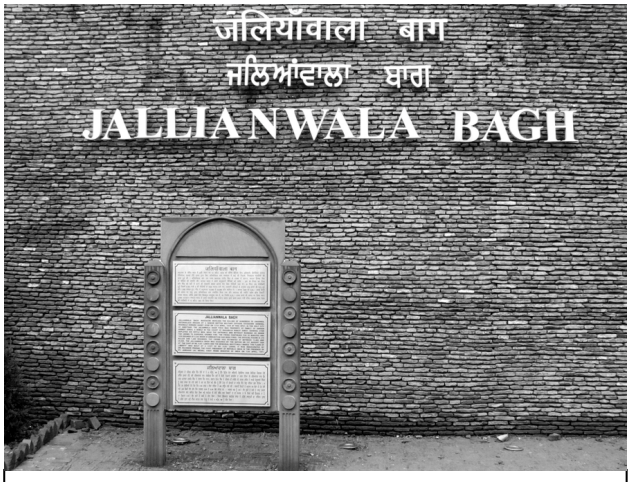

जलियांवाला बाग

इस निर्मम अत्याचार की खबर अखबारों में नहीं छपने दी गई। सरकार की दमनकारी नीतियों की आलोचना करने एवं उसका विरोध करने पर पूर्ण नियन्त्रण लगाने के लिए ही तो रॉलट एक्ट बनाया गया था। मशहूर शायर अकबर इलाहाबादी ने जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड को समाचार पत्रो में प्रकाशित न किए जाने के सरकारी आदेश पर कटाक्ष करते हुए कहा था -

हम आह भी भरते हैं तो, हो जाते हैं बदनाम।

वो क़त्ल भी करते हैं तो, चर्चा नहीं होता।।

30 मई, 1919 को जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड के विरोध में रबीन्द्रनाथ टैगोर ने नाइटहुड की उपाधि का परित्याग किया क्योंकि उनके कथनानुसार अब ऐसी उपाधियां और सम्मान धारण करते हुए अपने देशवासियों के सामने खड़े होने में उन्हें शर्म आ रही थी। जलियांवाला बाग हत्याकाण्ड की जांच के लिए बैठी हंटर कमेटी ने इस काण्ड के हत्यारों को बेदाग छोड़ दिया था।

2.3.4 खिलाफ़त आन्दोलन

प्रथम विश्वयुद्ध में तुर्की की पराजय के बाद से ही यह निश्चित हो गया था कि उसके सुल्तान को अपदस्थ कर दिया जाएगा। तुर्की के सुल्तान को भारत सहित अनेक देशों के मुस्लिम सम्प्रदाय अपना खलीफा या धार्मिक गुरु मानते थे। खिलाफ़त का प्रश्न भारतीय मुसलमानों के लिए एक भावनात्मक मुद्दा था। भारतीय मुसलमान आमतौर पर अंग्रेज़ों के प्रति सहयोग की नीति अपना रहे थे। उन्हें विश्वास था कि उनकी भावनाओं का सम्मान करते हुए ब्रिटिश भारतीय सरकार तथा इंग्लैण्ड की गृह सरकार मित्र राष्ट्रों पर तुर्की के सुल्तान अर्थात् मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ न किए जाने के लिए दबाव डालेंगी। परन्तु मई, 1920 में सेव्र की सन्धि से तुर्की के सुल्तान और मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ कर दिया गया।

31 अक्टूबर, 1918 में तुर्की की पराजय के बाद खिलाफ़त के विषय में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की बैठक हुई। भारत में अली बन्धु, मुहम्मद अली एवं शौकत अली ने खिलाफ़त कमेटी का गठन कर पूरे भारत में आन्दोलन प्रारम्भ किया। खिलाफ़त आन्दोलनकारी जानते थे कि अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्हें हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त करना होगा। हिन्दू-मुस्लिम एकता को महत्व देने वाला यह खिलाफ़त आन्दोलन पूर्णरूपेण अहिंसक था।

फ़रवरी, 1920 को मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की अध्यक्षता में हुई खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स ने असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव रखा। 14 मई, 1920 को सेव्र की सन्धि द्वारा तुर्की के सुल्तान को अपदस्थ कर दिया गया। 1 से 3 जून, 1920 को 'सेन्ट्रल खिलाफ़त कमेटी' ने असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया। इसमें उपाधियां, प्रशासनिक, पुलिस तथा सैनिक सेवाओं का परित्याग और करों का भुगतान न करना शामिल थे। ख़िलाफ़त आन्दोलन के नेता मौलाना मुहम्मद अली ने

अपने अंग्रेज़ी पत्र कामरेड तथा उर्दू पत्र हमदर्द में खलीफ़ा की सत्ता को पुनर्स्थापित करने की मांग को रखा था। गांधीजी ने अपने पत्र यंग इण्डिया में अपने मुसलमान भाइयों की संकट की घड़ी में उनके साथ रहने और उनके अहिंसक आन्दोलन में पूर्ण सहयोग करने का वचन दिया। जुलाई, 1920 में सिंध में आयोजित खिलाफ़त कॉन्फ्रेन्स में गांधीजी ने भी भाग लिया।

2.4 असहयोग आन्दोलन

2.4.1 असहयोग आन्दोलन के लक्ष्य

असहयोग आन्दोलन का एक चित्र

20 अगस्त, 1920 को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में, पंजाब में पुलिस की ज़्यादतियों के विरोध में तथा एक साल के भीतर स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था। गांधी जी ने आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, नारी-उत्थान, ग्राम स्वराज्य तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना को भी असहयोग आन्दोलन के लक्ष्यों में सम्मिलित किया था।

2.4.2 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक एवं सृजनात्मक स्वरूप

2.4.2.1 असहयोग आन्दोलन का निषेधात्मक स्वरूप

गांधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की रणनीति का असहयोग आन्दोलन में व्यापक प्रयोग किया। भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक आधार को कमज़ोर करने के उद्देश्य से बॉयकाट अर्थात बहिष्कार में भारत में विदेशी उत्पादों के उपयोग पर तथा भारत से विदेशों में कच्चे माल के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया। विदेशी कपड़ों की होली जलाकर

आन्दोलनकारियों ने अपना आक्रोश व्यक्त किया। विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने आन्दोलनकारियों ने धरना देकर उनके व्यापार में बाधा पहंुचाने का प्रयास किया। देशभक्त महिलाओं से अपेक्षा की गई कि वो विदेशी वस्त्रों का तथा अपने आभूषणों परित्याग कर दें और स्व-निर्मित खादी के वस्त्रों को धारण करें। हिन्दी पत्र स्वराज्य के 18 जुलाई, 1921 के अंक में गया प्रसाद शुक्ल सनेही 'त्रिशूल' की एक क़ौमी ग़ज़ल प्रकाशित हुई थी जिसमें उन्होंने भारतीय महिलाओं को विदेशी वस्त्र और अपने आभूषणों का परित्याग कर स्वदेश-निर्मित खादी को अपनाने के लिए प्रेरित किया था -

निहायत बेहया हैं अब भी जो ज़ेवर पहिनते हैं।

जिन्हें है मुल्क का कुछ दर्द, वो खद्दर पहनते हैं।।

बॉयकाट के अंतर्गत सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों आदि का भी बहिष्कार किया गया। गांधीजी के आवाहन पर हज़ारों लोगों ने सरकारी नौकरियों, जमी हुई वकालत और सरकारी उपाधियों को त्याग दिया। 1920 में प्रिंस ऑफ़ वेल्स के भारत आगमन पर उसका बहिष्कार किया गया।

2.4.2.2 असहयोग आन्दोलन का सृजनात्मक स्वरूप

चरखा कातते गांधीजी

स्वदेशी के अंतर्गत भारत में बनी वस्तुओं के प्रयोग का प्रण लिया गया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए स्वदेशी स्टोर खोले गए तथा स्वदेशी मेलों का आयोजन किया गया। असहयोग आन्दोलन ने कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। चर्खे को गांधीजी ने आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया। लंकाशायर और मानचेस्टर के कपड़ा मिलों के भारतीय कपड़ा

बाज़ार पर एकाधिकार को तोड़ने के लिए चर्खा किसी ब्रह्मास्त्र से कम सिद्ध नहीं हुआ। 1920-21 में विदेशी वस्त्रों का आयात 102 करोड़ रुपये था जो कि 1921-22 में घटकर 57 करोड़ रुपये रह गया था। क्रांतिकारी शहीद पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल अपनी देशभक्तिपूर्ण उर्दू नज़्मों के लिए विख्यात हैं। यह बात कम लोग जानते हैं कि बिस्मिल ने स्वदेशी व्रत भी धारण किया था। उनकी कामना थी कि -

तन में बसन स्वदेशी, मन में लगन स्वदेशी,

फिर से भवन भवन में, विस्तार हो स्वदेशी।

सब हों स्वजन स्वदेशी, होवे चलन स्वदेशी,

मरते समय कफ़न भी दरकार हो स्वदेशी।।

उमड़े दिलों में फिर से, गंगा बहे स्वदेशी,

माता व भगनियों का, श्रृंगार हो स्वदेशी।

इस आन्दोलन में स्वदेशी न्याय-व्यवस्था का भी पोषण किया गया तथा ग्राम पंचायतों के विकास के प्रयास किए गए।

सरकारी शिक्षा संस्थानों में महंगी अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति से विद्यार्थियों को मानसिक रूप से गुलाम बनाया जाता था और अपनी संस्कृति तथा अपने संस्कारों के प्रति घृणा करना सिखाया जाता था। असहयोग आन्दोलन का एक लक्ष्य राष्ट्रीय शिक्षा का विकास था। ऐसी शिक्षा जिसमें विद्यार्थी को आरम्भ से ही स्वावलम्बी बनने का प्रशिक्षण दिया जाता हो तथा उसमें नैतिक उत्थान, देश भक्ति, मानवीयता, सत्य, अहिंसा और भ्रातृत्व के संस्कार दिए जाते हों। डॉक्टर ज़ाकिर हुसेन द्वारा जामिया मिलिया इस्लामिया, काशी विद्यापीठ तथा गुजरात विद्यापीठ की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई।

गांधीजी यह मानते थे कि भारत की आत्मा उसके गांवों में बसती है। ग्राम स्वराज के लक्ष्य के अन्तर्गत उन्होंने गांवों को आर्थिक, शैक्षिक तथा न्याय-वितरण की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया।

नारी-उत्थान के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार, पर्दा प्रथा तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन तथा स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर बल दिया।

जीवन भर रंगभेद, जातिभेद व अन्य किसी भी प्रकार के अन्याय के विरुद्ध लड़ने वाले गांधीजी अस्पृश्यता को भारत का सबसे बड़ा सामाजिक एवं धार्मिक कलंक एवं अन्याय मानते थे।

असहयोग आन्दोलन में तथाकथित अस्पृश्यों को आदर एवं सम्मान दिया गया तथा अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम को अत्यन्त महत्व दिया गया।

गांधीजी मद्य-निषेध को भारतीयों के चारित्रिक, सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान के लिए एक आवश्यक शर्त मानते थे। मद्य-निषेध हेतु व्यापक प्रचार को उन्होंने अपने राजनीतिक आन्दोलनों का अन्तरंग भाग बना दिया।

राष्ट्रीय एकीकरण असहयोग आन्दोलन का लक्ष्य था। इस आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव तथा सर्व-धर्म सम्भाव को महत्व दिया गया।

असहयोग आन्दोलन ने किसान आन्दोलनों और मज़दूर आन्दोलनों को नया बल प्रदान किया।

2.4.2.3 सरकार द्वारा असहयोग आन्दोलन को कुचलने के प्रयास

सरकार ने असहयोग आन्दोलन को कुचलने के लिए शान्तिपूर्ण प्रदर्शनों, भाषणों, जुलूसों, जन-सभाओं, विदेशी वस्तुओं की दुकानों के सामने धरनों, सरकार विरोधी प्रकाशन सामग्री आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लाखों आन्दोलनकारियों पर लाठियां और गोली बरसाई गई और लाखों को जेल में डाल दिया गया। आन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को भड़काया गया तथा भारतीय शासकों, ज़मींदारों, उद्योपतियों, व्यापारियों, विद्यार्थियों व सरकारी कर्मचारियों को इस आन्दोलन से दूर रहने के लिए कहा गया किन्तु इस आन्दोलन की व्यापकता ने इस आन्दोलन को कुचलने की तमाम सरकारी कोशिशें नाकाम कर दीं।

2.5 चौरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति

4 फ़रवरी, 1922 को संयुक्त प्रान्त के गोरखपुर जिले के एक गांव चौरीचौरा में आन्दोलनकारी जुलूस निकाल रहे थे। जुलूस को रोकने के लिए सिपाहियों ने भीड़ पर गोली चला दी। 26 आन्दोलनकारी मारे गए और अनेक घायल हो गए। गोलियां समाप्त होने पर सिपाही थाने में छुप गए। क्रोधित भीड़ ने थाने को आग लगाकर 22 सिपाहियों को मार डाला। इस हत्याकांड की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधी जी ने 12 फ़रवरी, 1922 को असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। गांधीजी ने घोषित किया -

मैं स्वराज्य सिर्फ़ अहिंसा और सत्य के द्वारा प्राप्त करना चाहता हूँ।

कांग्रेस समिति के 1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया और कांग्रेसियों को यह निर्देश दिया गया कि वह राष्ट्रीय पाठशाला, अस्पृश्यता निवारण तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के कार्यों में अपना समय लगाएं। इस निर्णय से आन्दोलनकारियों को भारी धक्का लगा। छुटपुट हिंसा की घटनाओं के कारण देश-व्यापी आन्दोलन के स्थगन का निर्णय उन्होंने कभी

भी अपने दिल से स्वीकार नहीं किया। सुभाषचन्द्र बोस ने इस निर्णय की खुलकर आलोचना की। इस निर्णय का विरोध होने पर भी गांधीजी ने इसे वापस नहीं लिया क्योंकि उनके लिए स्वराज से भी अधिक महत्व अहिंसा का था।

2.6 असहयोग आन्दोलन का आकलन

असहयोग आन्दोलन अपने किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं रहा।गांधीजी देश को एक साल के भीतर स्वराज दिलाने में असफल रहे।अक्टूबर, 1923 में मुस्तफ़ा कमाल पाशा के नेतृत्व में हुई क्रान्ति ने तुर्की में गणतन्त्र की स्थापना कर दी जिससे खलीफ़ा की सत्ता की पुनर्स्थापना के लिए भारत में आन्दोलन किए जाने का औचित्य ही समाप्त हो गया। इसके बाद से अधिकांश मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा से एक बार फिर दूर चले गए और हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में एक बार फिर से दरार पड़ने लगी।

चौरीचौरा काण्ड तथा कई स्थानों पर आन्दोलनकारियों द्वारा लूटमार किए जाने का हवाला देकर अंग्रेज़ों ने असहयोग आन्दोलन को पूर्णरूपेण अहिंसक, अनुशासित व शान्तिपूर्ण नहीं माना। किन्तु लगभग डेढ़ साल तक चले इतने बड़े आन्दोलन में छुटपुट हिंसा तथा लूटमार की घटना होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी।इस आदोलन ने समस्त राष्ट्र को अनुशासन तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाया। इतिहास में इस आन्दोलन का अत्यन्त महत्व है। यह भारतीय इतिहास का पहला व्यापक राजनीतिक जन-आन्दोलन था और विश्व इतिहास का पहला अहिंसक राजनीतिक जन-आन्दोलन। इसमें धर्म, जाति, क्षेत्र और वर्ग का भेद किए बिना राष्ट्र को एकसूत्र में बांधा गया था। महिलाओं, किसानों, मज़दूरों तथा अन्य सभी वर्गों की सहभागिता ने इस आन्दोलन को व्यापकता प्रदान की थी। यह आन्दोलन आगे चल कर भारत ही नहीं अपितु समस्त विश्व के दलित, परतन्त्र समाजों तथा जातियों के अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए प्रेरणा स्रोत बना।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का राजनीतिक लक्ष्य अब और आगे - पूर्ण स्वराज और फिर स्वतन्त्रता तक पहुंच गया। सरकार को असहयोग आन्दोलन की स्वराज की मांग को आगे चलकर आंशिक रूप से स्वीकार करना पड़ा।असहयोग आन्दोलन के सृजनात्मक पक्ष - आर्थिक, शैक्षिक आत्मनिर्भरता, मद्य-निषेध, नारी-उत्थान, अस्पृश्यता निवारण, ग्राम्य स्वराज तथा राष्ट्रीय एकता पर आन्दोलन के स्थगन बाद भी निरन्तर काम होता रहा।

असहयोग आन्दोलन ने राजनीतिक सुधार एवं सामाजिक परिष्कार के प्रति प्रतिबद्ध पत्रकारिता व साहित्य के विकास में अभूतपूर्व योगदान दिया। हर भाषा के साहित्यकारों व पत्रकारों ने राष्ट्रवादी विचारधारा का पोषण किया। गोरखपुर से प्रकाशित पत्र स्वदेश ने 6 अप्रैल, 1919 को प्रकाशित अपने पहले ही अंक में भारतीयों को स्वतन्त्रता दिए जाने की आवश्यकता पर बल दिया था -

हम चाहते हैं कि संसार के अन्य स्थानीय देशों के मनुष्यों की भांति हिन्दुस्तानियों की भी गणना मनुष्यों में हो । इसलिए जो स्वत्व और जितनी स्वतन्त्रता एक स्वाधीन राष्ट्र के व्यक्ति को प्राप्त है, उतनी ही स्वतन्त्रता भारतवासियों को भी प्राप्त हो ।

इलाहाबाद से प्रकाशित पत्र भविष्य ने 27 मई, 1920 के अंक में अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में भारतीयों को स्वतन्त्रता-प्राप्ति हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया-

सभी भारतीयों को स्वतन्त्रता के लिए आगे कदम बढ़ाना चाहिए। -- अब वह समय दूर नहीं है जब कि भारतवासी इस योग्य हो जाएँगे कि वन्देमातरम् के जयघोष के साथ भारत के सिर पर स्वतन्त्रता का मुकुट धारण करेंगे।

इस आन्दोलन ने गांधीजी को विश्व-शान्ति, अहिंसा, प्रेम, जातीय समानता, वर्णगत समानता और दलितोद्धार का मसीहा बना दिया।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए -

1 - रॉलट एक्ट तथा उसका विरोध।

2 - गांधीजी द्वारा खिलाफ़त आन्दोलन का समर्थन।

3 - चौरीचौरा काण्ड ।

2.7 सारांश

असहयोग आन्दोलन में स्वदेशी आन्दोलन के स्वशासन, आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता तथा राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने के लक्ष्यों को अंगीकार किया गया था। विश्वयुद्ध में भारतीयों के सहयोग की आशा में भारत सचिव मॉन्टेग्यू की 20 अगस्त, 1917 की ऐतिहासिक घोषणा में होमरूल आन्दोलन की स्वशासन की मांग को सरकार को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया किन्तु इस घोषणा के तुरन्त बाद विश्वयुद्ध में मित्र राष्ट्रों का पलड़ा भारी होते देख सरकार ने भारत में राजनीतिक प्रतिरोध को कुचलने के प्रयास प्रारम्भ कर दिए। आतंकवाद के दमन के लिए जस्टिस रॉलट की अध्यक्षता में सेडिषन कमेटी गठित की गई। रॉलट एक्ट राजनीतिक दमन की पराकाष्ठा का प्रमाण था। गांधी जी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध फ़रवरी, 1919 में सत्याग्रह सभा का गठन कर देशव्यापी आन्दोलन का आवाहन किया। पंजाब के अमृतसर, लाहौर, गुर्जनवाला, गुजरात तथा लायलपुर में रॉलट एक्ट विरोधी आन्दोलन हो रहे थे। 9 अप्रैल, 1919 को रॉलट एक्ट के विरोध में जुलूस का नेत्त्व कर रहे डॉ. सत्य पाल तथा सैफुद्दीन किचलू को गिरफ्तार कर निर्वासित कर दिया गया। 11 अप्रैल, 1919 को माइकिल ओडवेयर ने पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया। डॉ. सत्य पाल

तथा सैफुद्दीन किचलू को रौलट एक्ट का विरोध करने के कारण गिरफ़्तार किए जाने के विरोधमेंहुई 13 अप्रैल, 1919 को अमृतसर के जलियांवाला बागमेंजनसभा में उपस्थित निहत्थे आन्दोलनकारियों पर बिना चेतावनी दिए जनरल डायर ने गोलीबारी की जिससे सैकड़ों लोग मारे गए और घायल हो गए।

कांग्रेस और मुस्लिम लीग को एक राजनीतिक मंच पर लाने के प्रयास तेज़ हो गए थे। 1916 का लखनऊ समझौता हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रतीक था। मई, 1920 में सेव्र की सन्धि से तुर्की के सुल्तान और मुसलमानों के खलीफ़ा को अपदस्थ कर दिया गया। तुर्की के सुल्तान को भारत सहित अनेक देशों के मुस्लिम सम्प्रदाय अपना खलीफा या धार्मिक गुरु मानते थे। भारत में अली बन्धु, मुहम्मद अली एवं शौकत अली ने खिलाफ़त कमेटी का गठन कर पूरे भारत में आन्दोलन प्रारम्भ किया। 20 अगस्त, 1920 को गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन को खिलाफ़त आन्दोलन के समर्थन में, पंजाब में पुलिस की ज़्यादतियों के विरोध में तथा एक साल के भीतर स्वराज प्राप्ति के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था। गांधी जी ने आर्थिक व शैक्षिक आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध, नारी-उत्थान, ग्राम स्वराज्य तथा साम्प्रदायिक सद्भाव की स्थापना को भी असहयोग आन्दोलन के लक्ष्यों में सम्मिलित किया था।

गांधीजी ने स्वदेशी आन्दोलन में अपनाई गई बहिष्कार की रणनीति का असहयोग आन्दोलन में व्यापक प्रयोग किया। बॉयकाट के अंतर्गत सरकारी स्कूलों, अदालतों, कार्यालयों आदि का भी बहिष्कार किया गया। स्वदेशी के अंतर्गत भारत में बनी वस्तुओं के प्रयोग का प्रण लिया गया। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए स्वदेशी स्टोर खोले गए तथा स्वदेशी मेलों का आयोजन किया गया। असहयोग आन्दोलन ने कुटीर उद्योग के पुनरुत्थान को बढ़ावा दिया। चर्खे को गांधीजी ने आर्थिक आत्मनिर्भरता के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया।

असहयोग आन्दोलन का एक लक्ष्य राष्ट्रीय शिक्षा का विकास था। गांधीजी ने ग्राम स्वराज के लक्ष्य के अन्तर्गत गांवों को आर्थिक, शैक्षिक तथा न्याय-वितरण की दृष्टि से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया।नारी-उत्थान के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए गांधीजी ने स्त्री शिक्षा के प्रसार, पर्दा प्रथा तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन तथा स्त्रियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता पर बल दिया।असहयोग आन्दोलन में तथाकथित अस्पृश्यों को आदर एवं सम्मान दिया गया तथा अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम को अत्यन्त महत्व दिया गया।मद्य-निषेध हेतु व्यापक प्रचार को गांधीजी ने उन्होंने अपने राजनीतिक आन्दोलनों का अन्तरंग भाग बना दिया।

राष्ट्रीय एकीकरण असहयोग आन्दोलन का एक प्रमुख लक्ष्य था। असहयोग आन्दोलन ने किसान आन्दोलनों और मज़दूर आन्दोलनों को नया बल प्रदान किया। सरकार ने असहयोग आन्दोलन को कुचलने के लिए शान्तिपूर्ण प्रदर्शनों, भाषणों, जुलूसों, जन-सभाओं, विदेशी वस्तुओं की दुकानों के

सामने धरनों, सरकार विरोधी प्रकाशन सामग्री आदि पर प्रतिबन्ध लगा दिया। लाखों आन्दोलनकारियों पर लाठियां और गोली बरसाई गई और लाखों को जेल में डाल दिया गया।

4 फ़रवरी, 1922 को गोरखपुर जिले के एक गांव चौरीचौरा में पुलिस वालों की गोलीमारी से क्रोधित आन्दोलनकारियों ने थाने को आग लगाकर 22 सिपाहियों को मार डाला। इस हत्याकांड की नैतिक ज़िम्मेदारी लेते हुए गांधी जी ने 12 फ़रवरी, 1922 को असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया।असहयोग आन्दोलन अपने किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं रहा। गांधीजी देश को एक साल के भीतर स्वराज दिलाने में असफल रहे। 1923 में तुर्की में गणतन्त्र की स्थापना के बाद खलीफ़ा की सत्ता की पुनर्स्थापना के लिए भारत में आन्दोलन किए जाने का औचित्य ही समाप्त हो गया। अंग्रेज़ों ने असहयोग आन्दोलन को पूर्णरूपेण अहिंसक, अनुशासित व शान्तिपूर्ण नहीं माना।

इस आदोलन ने समस्त राष्ट्र को अनुशासन तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाया। यह भारतीय इतिहास का पहला व्यापक राजनीतिक जन-आन्दोलन था और विश्व इतिहास का पहला अहिंसक राजनीतिक जन-आन्दोलन। इसमें धर्म, जाति, क्षेत्र और वर्ग का भेद किए बिना राष्ट्र को एकसूत्र में बांधा गया था। महिलाओं, किसानों, मज़दूरों तथा अन्य सभी वर्गों की सहभागिता ने इस आन्दोलन को व्यापकता प्रदान की थी। यह आन्दोलन आगे चल कर भारत ही नहीं अपितु समस्त विश्व के दलित, परतन्त्र समाजों तथा जातियों के अपने अधिकारों के संघर्ष के लिए प्रेरणा स्रोत बना।

इस आन्दोलन ने गांधीजी को विश्व-शान्ति, अहिंसा, प्रेम, जातीय समानता, वर्णगत समानता और दलितोद्धार का मसीहा बना दिया।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली

मित्र शक्तियां: (प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान) इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, इटली, जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका आदि।

सेडिशनः राजद्रोह।

पैन-इस्लामिकः मुस्लिम विश्व बन्धुत्व की भावना के अन्तर्गत विश्व के मुसलमानों को एकसूत्र में बांधने के लिए आन्दोलन।

नाइटहुडः ग्रेट ब्रिटेन की सरकार द्वारा 'सर' की उपाधि।

डोमिनियन स्टेटसः स्वशासित स्थिति (उपनिवेषों के सन्दर्भ में स्वशासित उपनिवेश)

ब्रह्मास्त्रः अचूक हथियार

मद्य-निषेधः नशाबन्दी

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1 - देखिए 2.3.2 रॉलट एक्ट एवं उसका विरोध

2 - देखिए 2.3.4 खिलाफ़त आन्दोलन

3 - देखिए 2.5 चौरीचौरा काण्ड और आन्दोलन की समाप्ति।

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 3), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़ॅर फ्रीडम, बॉम्बे, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

चन्द्रा, बिपन तथा अन्य - इण्डियाज़ स्ट्रगल फा़ॅर फ्रीडम, नई दिल्ली, 1988

दत्त, आर0 पी0 - इण्डिया टुडे, कलकत्ता, 1970

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

2.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

देसाई, ए0 आर0 - भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियां, दिल्ली, 1977

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में असहयोग आन्दोलन के महत्व का आकलन कीजिए।

साइमन कमीशन, सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 साइमन कमीशन

3.3.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन व्यवस्था के दोष

3.3.2 स्वराज दल का गठन तथा उसके द्वारा सरकार की नीतियों का विरोध

3.3.3 मडीमैन कमेटी

3.4 साइमन कमीशन का गठन तथा भारतीयों द्वारा उसका विरोध

3.4.1 साइमन कमीशन का गठन

3.4.2 सर्व-श्वेत साइमन कमीशन के गठन की भारतीयों द्वारा आलोचना

3.4.3 साइमन कमीशन का बहिष्कार तथा विरोध कर रहे आन्दोलनकारियों पर पुलिस के अत्याचार

3.4.4 भारत में साइमन कमीशन की कठिनाइयां

3.5 सर्वदलीय सम्मेलन

3.6 नेहरू रिपोर्ट

3.6.1 नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें

3.6.2 नेहरू रिपोर्ट का विरोध

3.6.3 नेहरू रिपोर्ट का आंकलन

3.7 1929 तथा 1930 में भारत का राजनीतिक घटनाक्रम

3.7.1 कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ

3.7.2 साइमन कमीशन की संस्तुतियां तथा उनका आंकलन

3.8 सारांश

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.13 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

चौरीचौरा काण्ड के बाद 1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया था। राजनीतिक निष्क्रियता के कारण कांग्रेस का जनाधार कमज़ोर पड़ने लगा। कांग्रेस ने 1919 के एक्ट की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले 1920 के चुनाव का बहिष्कार किया था और गांधीजी 1923 के चुनाव का भी बहिष्कार करना चाहते थे जब कि सी0 आर0 दास, मोतीलाल नेहरू, विठ्ठल भाई पटेल तथा हकीम अजमल खान चुनावों में भाग लेकर जन-प्रतिनिधियों के द्वारा विधान सभाओं तथा परिषद में सरकार की गलत नीतियों का खुलासा करने के पक्ष में थे। कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज दल ने चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया और उसमें उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। स्वराजियों ने जन-प्रतिनिधि सभाओं में सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफ़ाश तथा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन की दुर्बलताओं को उजागर करने में सफलता प्राप्त की।

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के एक प्रावधान के अनुसार अधिनियम के पारित होने के 10 साल बाद अर्थात् 1929 तक एक स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी। इस कमीशन को 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की कार्य प्रणाली की जांच कर उसका आकलन करना था और भविष्य के लिए आवश्यक सुधारों की संस्तुति भी करनी थी। 1924 में स्थापित मडीमैन कमेटी ने प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था की अक्षमता पर प्रकाश डाला था। 8 नवम्बर, 1927 को सर जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक स्टेट्यूटरी कमीशन 1919 के एक्ट के प्रावधानों की समीक्षा और भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया गया। सात सदस्यीय इस कमीशन में किसी भी भारतीय को सम्मिलित न किए जाने का सभी भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा व्यापक विरोध हुआ।

साइमन कमीशन के विरोध तथा बहिष्कार ने 5 साल की राजनीतिक निष्क्रियता को दूर कर दिया। साइमन कमीशन के विरोध ने एक बार फिर सरकार और भारतीयों के मध्य राजनीतिक टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। सरकार ने अपनी राजनीतिक दमन की नीति का फिर से प्रदर्शन किया। भारतीय राजनीतिक दलों के सर्वदलीय सम्मेलन ने नेहरू रिपोर्ट के माध्यम से भारत में संवैधानिक सुधार हेतु अपनी योजना प्रस्तुत की जिसको कि सरकार ने ठुकरा दिया। मुस्लिम लीग, खिलाफ़त कमेटी तथा आल इण्डिया सिक्ख लीग ने नेहरू रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को क्रमशः मुसलमानों और

सिक्खों के हितों की रक्षार्थ अपर्याप्त माना। सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों की पूर्ण उपेक्षा किए जाने से नाराज़ कांग्रेस द्वारा 1929 में पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा की गई और सरकार को एक समयबद्ध सीमा में इसको पूरा करने के लिए कहा गया। सरकार द्वारा कांग्रेस की मांगों पर फिर कोई ध्यान न दिए जाने के फलस्वरूप 26 जनवरी, 1930 को कांग्रेस ने अपना स्वतन्त्रता दिवस मनाया और मार्च, 1930 में डान्डी मार्च प्रारम्भ कर गांधीजी ने पूर्ण स्वराज की प्राप्ति के लक्ष्य को लेकर अपना सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस इकाई में 1922 से 1930 के मध्य में हुए भारतीय राजनीतिक घटनाचक्र एवं इस अवधि में हुए संवैधानिक विकास हेतु किए गए सरकार के तथा भारतीय राजनीतिक दलों के प्रयासों से आपको परिचित कराया जाएगा।

3.2 उद्देश्य

1922 में चौरीचौरा काण्ड के बाद असहयोग आन्दोलन आन्दोलन के स्थगन से भारत में राजनीतिक शिथिलता आ गई थी। कांग्रेस के भीतर ही स्वराज दल के गठन ने इस राजनीतिक गतिरोध को समाप्त किया और निरंकुश ब्रिटिश भारतीय सरकार के लिए परेशानियां खड़ी कीं। प्रान्तों में 1922 में लागू की गई द्वैध शासन की व्यवस्था ने भारतीयों को शासन में पर्याप्त हिस्सेदारी न देने की नीति का खुलासा कर दिया था। 1927 में सर जॉन साइमन के नेतृत्व में सर्व-श्वेत ब्रिटिश सांसदों से गठित स्टेट्यूटरी कमीशन का भारत में हुआ। इसके विरोध से बाद भारत में पुनः राजनीतिक सरगर्मी आ गई और सर्वदलीय सम्मेलन ने 1928 में नेहरू रिपोर्ट प्रस्तुत की। नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों पर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। अब भारतीयों ने डोमिनियन स्टेटस के स्थान पर अब पूर्ण स्वराज्य की मांग की। जून, 1930 में साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसमें एक बार फिर खोखले सुधार प्रस्तुत किए गए और फूट डाल कर शासन करने की नीति का पालन किया गया। 1930 में गांधीजी ने पूर्ण स्वराज का लक्ष्य लेकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस इकाई को पढ़कर आप जानेंगेः

1. 1922 से 1927 तक का भारतीय राजनीतिक एवं संवैधानिक घटनाचक्र के विषय में।
2. साइमन कमीशन के गठन, उसके मन्तव्य तथा भारतीयों द्वारा उसके विरोध के विषय में।
3. सर्वदलीय सम्मेलन तथा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों के विषय में।
4. सरकार तथा विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों की आलोचना के विषय में।
5. कांग्रेस के द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा तथा उसको लागू करने हेतु सरकार को अल्टीमेटम दिए जाने के विषय में ।
6. सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किए जाने के विषय में।

7. साइमन कमीशन की संस्तुतियों तथा उनकी कमियों के विषय में।

3.3 साइमन कमीशन

3.3.1 1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारा प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन व्यवस्था के दोष

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विषयों का वर्गीकरण किया गया था। प्रान्तों को स्थानीय स्वशासन, स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस, सार्वजनिक निर्माण, कृषि, सिंचाई, उद्योग, ऊर्जा, भू-राजस्व, जंगलात, सहकारी समिति, जेल, आबकारी और प्रेस पर नियन्त्रण आदि विषय प्रदान किए गए। इस एक्ट में प्रान्तीय स्तर पर द्वैध शासन प्रणाली लागू की गई थी। कुछ महत्वपूर्ण विषयों को सुरक्षित रखा गया था जिन पर कि गवर्नर अथवा लेफ़्टिनेन्ट गवर्नर का सीधा नियन्त्रण था, इनमें प्रमुख थे - वित्त, कानून एवं शान्ति व्यवस्था, संचार, पुलिस तथा अकाल सहायता। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर तथा उसकी 4 सदस्यीय कार्यकारी परिषद द्वारा संचालित होना था। शेष विषयों को हस्तान्तरित विषयों की श्रेणी में रखा गया जिनको कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से गठित मन्त्रिमण्डल के अधीन रखा गया। इनमें शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, उद्योग, स्थानीय स्वशासन आदि सम्मिलित थे। इन हस्तान्तरित विषयों पर भी गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया गया था। इन सबके ऊपर केन्द्र सरकार थी जो आवश्यक समझ कर प्रान्तीय सरकारों पर इच्छानुसार अपना निर्णय थोप सकती थी।

1922 में प्रान्तों में द्वैध शासन लागू किया गया और कुछ ही समय में इसकी भ्रामक व्यवस्था की कमियां सबके सामने आ गईं। द्वैध शासन की संकल्पना और सरंचना दोनों ही दोषपूर्ण थीं। शासकीय कार्य का एक-दूसरे से स्वतन्त्र दो इकाइयों में विभाजन नितान्त अव्यावहारिक था। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों में से आए हुए मन्त्री अपने क्षेत्र की जनता के प्रति जवाबदेह थे इसलिए उनके लिए जनता के हित सर्वोपरि थे जबकि गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और नौकरशाही की निष्ठा ब्रिटिश ताज तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति थी और उनके लिए साम्राज्यवादी हित ही सर्वोपरि थे इसलिए मन्त्रियों का गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर, तथा इण्डियन सिविल सर्विस अथवा इण्डियन पुलिस के अधिकारियों से तालमेल बैठ पाना असम्भव था। मन्त्री अपने ही विभाग के उच्च अधिकारियों पर अपना नियन्त्रण स्थापित नहीं कर सकते थे। अपनी जनता और विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने के साथ-साथ मन्त्री गवर्नर अथवा लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अधीन भी थे और वही उनको नियुक्त अथवा अपदस्थ करने का अधिकार भी रखता था।

भारतीयों ने प्रान्तों में स्थापित द्वैध शासन की व्यवस्था को मान्टेग्यू की 1917 की घोषणा में भारतीयों को दिए गए आश्वासनों का खोखला क्रियान्वयन बताया था। भारतीयों द्वारा केन्द्र और प्रान्तों दोनों ही में उत्तरदायी शासन स्थापित किए जाने की मांग की जा रही थी।

3.3.2 स्वराज दल का गठन तथा उसके द्वारा सरकार की नीतियों का विरोध

1922 के बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया गया था और कांग्रेसियों को यह निर्देश दिया गया कि वे सृजनात्मक कार्यों में अपना समय लगाएं। देश-व्यापी असहयोग आन्दोलन को मात्र एक हिंसक घटना के कारण वापस लिए जाने के कारण कांग्रेस के भीतर ही इस निर्णय से अनेक नेताओं में आक्रोश था। भारतीय जनता भी गांधीजी द्वारा असहयोग आन्दोलन को स्थगित किए जाने के पक्ष में दी गई दलीलों से सन्तुष्ट नहीं थी। इन परिस्थितियों में 1922 से 1927 तक के काल में कांग्रेस का जनाधार कमज़ोर पड़ने लगा। गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस ने 1919 के एक्ट की व्यवस्था के अंतर्गत होने वाले 1920 के चुनाव का बहिष्कार किया था। 1920 के काउंसिल के चुनावों के बहिष्कार से अवांछनीय तत्वों का काउंसिलों में प्रवेश हो गया था जिसके कारण देश के विकास में बाधा पड़ रही थी। गांधीजी 1923 में होने वाले चुनाव का भी बहिष्कार करना चाहते थे। जब कि सी0 आर0 दास, मोतीलाल नेहरू, विठ्ठल भाई पटेल तथा हकीम अजमल खान चुनावों में भाग लेकर जन-प्रतिनिधियों के द्वारा विधान सभाओं तथा परिषद में सरकार की गलत नीतियों का खुलासा करने के पक्षमेंथे। दिसम्बर, 1922 के कांग्रेस के गया अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए सी0 आर0 दास ने कांउसिलों में कांग्रेस के प्रवेश को आवश्यक बताया। श्री दास की यही दलील थी कि हम चुनाव में खड़े होकर, उसमें जीत कर कांउसिलों में प्रवेश पाकर सरकार के साथ असहयोग की नीति अपनाकर उसके कार्यों में बाधा पहुंचा सकते हैं और उसे सुधार देने के लिए विवश कर सकते हैं। गांधीवादियों के विरोध के बावजूद सी0 आर0 दास तथा मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस के अंतर्गत ही मार्च, 1923 में स्वराज दल का गठन किया जिसने कि चुनावोंमेंभाग लेने का निश्चय किया। 1923 के चुनाव में केंद्रीय विधान सभा ने स्वराजदल को कुल 101 में से 42 स्थान मिले। 1925 में विठ्ठल भाई पटेल केंद्रीय विधान परिषद के अध्यक्ष बने। एन0 सी0 केलकर के नेतृत्व में स्वराजियों को मध्य प्रान्त में पूर्ण बहुमत मिला। सी0 आर0 दास के नेतृत्व में बंगाल में भी इसका प्रदर्शन सराहनीय रहा। स्वराजियों ने जन-प्रतिनिधि सभाओं में सरकार की दमनकारी नीतियों का पर्दाफ़ाश किया। स्वराज पार्टी ने द्वैध शासन की दुर्बलताओं को उजागर करने में सफलता प्राप्त की। केन्द्रीय विधान परिषद में स्वराज दल के सदस्यों की पहल पर फ़रवरी, 1924 में उत्तरदायी सरकार की स्थापना पर विचार करने के लिए एक गोल मेज़ सभा के आयोजन हेतु एक प्रस्ताव पारित किया गया। स्वराजियों ने

असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बीच के काल में राजनीतिक गतिविधियों को जारी रख जनता में जागृति और उत्साह बनाए रक्खा और सविनय अवज्ञा आन्दोलन के लिए अनुकूल वातावरण तैयार किया।

3.3.3 मडीमैन कमेटी

भारतीयों द्वारा बार-बार यह मांग की जा रही थी कि 1919 के गवर्नमेन्ट आफ़ इण्डिया एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए एक आयोग की स्थापना की जाए और खासकर प्रान्तों में द्वैध शासन की भ्रामक व्यवस्था को बदला जाए। विधान परिषदों में स्वराज दल द्वारा दबाव डाले जाने पर सरकार ने 1924 में द्वैध शासन की कार्यप्रणाली की जांच-पड़ताल करने के लिए भारत सरकार के तत्कालीन होम मेम्बर सर एलेक्ज़ेण्डर मडीमैन की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की। उच्च सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त इस कमेटी में सर पी0 एस0 शिवस्वामी अय्यर, सर तेज बहादुर सप्रू, मोहम्मद अली जिन्ना तथा डॉक्टर आर0 पी0 परांजपे सम्मिलित थे। मार्च, 1925 में अपनी रिपोर्ट में इस कमेटी ने प्रान्तों में लागू की गई द्वैध शासन प्रणाली को नितान्त असफल बताया था।

3.4 साइमन कमीशन का गठन तथा भारतीयों द्वारा उसका विरोध

3.4.1 साइमन कमीशन का गठन

1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के एक प्रावधान के अनुसार अधिनियम के पारित होने के 10 साल बाद अर्थात् 1929 तक एक स्टेट्यूटरी कमीशन की नियुक्ति की जानी थी। इस कमीशन को 1919 के गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की कार्य प्रणाली की जांच कर उसका आकलन करना था और भविष्य के लिए आवश्यक सुधारों की संस्तुति भी करनी थी। ब्रिटेन की अनुदारवादी सरकार ने अपने देश में होने वाले चुनावों में अपनी हार की आशंका से और आगामी उदारवादी सरकार द्वारा भारतीयों को अधिक संवैधानिक सुधार दिए जाने की सम्भावना को रोकने के लिए इस अवधि से दो साल पहले ही 8 नवम्बर, 1927 को सर जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक कमीशन 1919 के एक्ट के प्रावधानों की समीक्षा और भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया। इस कमीशन के सदस्य थे -

1. सर जॉन साइमन
2. क्लीमेन्ट एटली
3. हैरी लेवी-लॉसन
4. एडवर्ड कैडोगन

5. वैरनॉन हार्टशोर्न

6. जॉर्जलेन फ़ॉक्स

7. डोनाल्ड हावर्ड

'ऑल इण्डिया काउंसिल ऑफ़ इण्डिया' द्वारा साइमन कमीशन के कार्य में सहयोग देने के लिए 'ऑल इण्डिया कमेटी स्थापित की गई। इसके लिए सदस्यों का चुनाव वाइसराय लॉर्ड इर्विन ने किया। इस कमेटी के अध्यक्ष सर सी0 शंकरन नायर थे और इसके अन्य सदस्य थे - सर आर्थर फ्रूम, राजा नवाब अली खान, सरदार शिवदेव सिंह ओबेराय, नवाब ज़ुल्फ़िकार अली खान, सर हरी सिंह गौड़, सर अब्दुल्ला अल-मामून सुहरावर्दी, कीकाभाई प्रेमचन्द तथा राव बहादुर एम0 सी0 राजा।

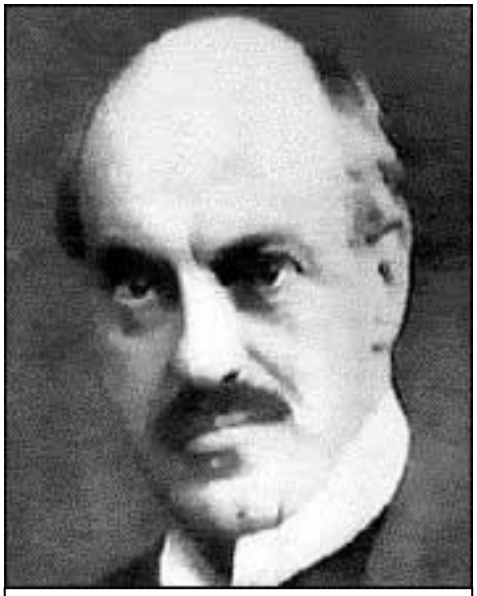

सर जॉन साइमन

3.4.2 सर्व-श्वेत साइमन कमीशन के गठन की भारतीयों द्वारा आलोचना

सर्व-श्वेत सात सदस्यों के इस कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। यदि इस कमीशन में ब्रिटिश सांसद ही रखे जाने थे तो भी इसमें प्रिवी काउंसिल के सदस्य लॉर्ड सिनहा जैसे विधि विशेषज्ञ को सम्मिलित किया जा सकता था। एम0 आर0 जयकर ने सर्व-श्वेत सदस्य गठित इस कमीशन को असंवैधानिक बताया। मोहम्मद अली जिन्ना ने इस कमीशन में भारतीय सदस्यों को शामिल किया जाना आवश्यक बताया। मदनमोहन मालवीय ने इस कमीशन के साथ सहयोग करना राष्ट्र का अपमान माना। केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष विठ्ठल भाई पटेल ने अपने इंग्लैण्ड दौरे में भारत सचिव को आगाह कर दिया था कि भारतीय इस सर्व-श्वेत कमीशन का बहिष्कार करेंगे। केन्द्रीय विधान सभा में साइमन कमीशन के पक्ष में 62 तथा उसके विरोध में 68 मत पड़े। स्टेट्यूटरी कमीशन में भारतीयों को शामिल करने की मांग पर भारत सचिव बर्कनहेड ने व्यंग्य कसा कि भारतीय किसी भी व्यावहारिक राजनीतिक ढांचे के अन्तर्गत सहमत होकर काम करने में अक्षम हैं। उन्होंने भारतीयों को एक सर्वसम्मत संविधान बनाने की चुनौती भी दे डाली क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मुसलमान किसी भी सर्वसम्मत संविधान के निर्माण की प्रक्रिया से खुद को दूर रखेंगे। शासन द्वारा अपनी मांग ठुकराए जाने तथा भारत सचिव की इस अपमानजनक टिप्पणी से सरकार के मन्तव्य प्रकट हो जाने पर भारतीयों ने इस कमीशन का बहिष्कार किया। नवम्बर, 1927 में कांग्रेस अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगार ने साइमन कमीशन का विरोध तथा उसका बहिष्कार करने की घोषणा

की। 16 नवम्बर, 1927 को मोहम्मद अली जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से साइमन कमीशन के साथ असहयोग करने की घोषणा की। 'आल-इण्डिया लिबरल फेडरेशन', 'फ़ेडरेशन ऑफ इण्डियन चैम्बर ऑफ़ कॉमर्स' 'मिल ओनर्स ऐसोसियेशन' तथा 'हिन्दू महासभा' ने भी इसका विरोध किया। बनारस से प्रकाशित राष्ट्रवादी पत्र आज के 19 नवम्बर, 1927 के अंक में सरकार की इस कपटपूर्ण नीति की कटु आलोचना करते हुए नस्लवाद पर आधारित इस कमीशन का विरोध करने के लिए भारतीयों को संगठित होने तथा नए सिरे एक और आन्दोलन करने का आवाहन किया गया था -

ब्रिटिश कमीशन की नियुक्ति करके भारत का जो अपमान किया गया है, उससे हमारा रक्त उबल पड़ा है और हृदय विदीर्ण हो उठा है। कमीशन में भारतीयों को निकालने के बारे में वाइसराय ने जो तर्क दिए हैं उनकी निष्कपटता और कर्तव्यपरायणता पर लगा धब्बा नहीं मिटता। ईश्वर ने हमें एक होने और दुगने उत्साह से देश की सेवा करने का एक अवसर प्रदान किया है।

लाला लाजपत राय ने इस कमीशन की सदाशयता पर प्रश्न चिह्न लगाया। उन्होंने फ़रवरी, 1928 में पंजाब लेजिसलेटिव एसेम्बली में साइमन कमीशन के विरुद्ध एक प्रस्ताव रखा।

3.4.3 साइमन कमीशन का बहिष्कार तथा विरोध कर रहे आन्दोलनकारियों पर पुलिस के अत्याचार

साइमन कमीशन का देश में हर स्थान पर काले झण्डे दिखाकर विरोध हुआ। 'साइमन कमीशन गो बैक' के नारों से पूरा देश गूंज उठा। साइमन कमीशन विरोधी आन्दोलन के दमन के लिए ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलनकारियों पर लाठियां बरसाई और उन्हें जेल में डाल दिया। 30 अक्टूबर, 1928 को कांग्रेस के प्रमुख नेता लाला लाजपत राय, लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध में जुलूस का नेतृत्व कर रहे थे। आन्दोलनकारी पूर्णतया शान्त थे किन्तु पुलिस अधीक्षक स्कॉट ने जुलूस को रुकने का आदेश दिया। लालाजी और अन्य आन्दोलनकारी इस आदेश की अवज्ञा करते हुए आगे बढ़ते रहे। स्कॉट ने लाठी चार्ज का आदेश दिया। लालाजी के सर पर और शरीर के अन्य अंगों पर लाठियों के भीषण प्रहार किए गए। घायल होकर लालाजी वहीं गिर पड़े। भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए उन्होंने आन्दोलनकारियों को लौट चलने के लिए कहा। उसी शाम एक सभा का आयोजन किया गया। घायल लाला लाजपत राय उस सभा में सम्मिलित हुए। उन्होंने सभा में उपस्थित डी0 एस0 पी0 नील से कहा -

मेरे ऊपर किया गया एक-एक प्रहार ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत में कील ठोकने का काम करेगा।

बाद में लाला जी की इन्हीं चोटों के कारण मृत्यु हो गई। पूरे देश में शोक और आक्रोश व्याप्त हो गया। लाहौर में 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' के सदस्य भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु आदि ने लाला लाजपत राय पर प्रहार करने वाले स्कॉट की हत्या करने की योजना बनाई किन्तु

उनके इस अभियान में 17 दिसम्बर, 1928 को सार्जेन्ट सॉन्डर्स की हत्या हो गई। सॉन्डर्स की हत्या के बाद 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन आर्मी' ने पोस्टर्स के माध्यम से देश के महान नेता की निर्मम हत्या के लिए ज़िम्मेदार लोगों में से एक अधिकारी की हत्या को सर्वथा उचित ठहराया।

नवम्बर, 1928 को पंडित जवाहर लाल नेहरू तथा गोविन्द बल्लभ पंत लखनऊ में पुलिस की लाठियों से घायल हुए। केवल मद्रास और कलकत्ते में साइमन कमीशन के वहां पहुंचने पर दंगे हुए बाकी स्थानों पर जनता ने इस दमन चक्र का शान्तिपूर्वक सामना किया।

3.4.4 भारत में साइमन कमीशन की कठिनाइयां

3 फ़रवरी, 1928 को बम्बई में साइमन कमीशन भारत पहुंचा और वह भारत में 31 मार्च, 1928 तक रहा। इस अवधि में कमीशन ने सरकारी दस्तावेज़ों का परीक्षण किया। दूसरी बार यह 11 अक्टूबर, 1928 से 13 अप्रैल, 1929 तक भारत में रहा और इसने मद्रास, लाहौर, कराची, पेशावर, दिल्ली, लखनऊ, पटना, कलकत्ता, आदि नगरों का दौरा किया। सभी जगहों पर इसने शासन की कार्य-प्रणाली का अध्ययन किया और लोगों से विचार-विमर्श किया। साइमन और उसके सहयोगियों को अपने भारत पहुंचने पर इतने प्रबल विरोध की स्वप्न में भी आशा नहीं थी। भारत के सभी प्रमुख राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का सामाजिक तथा राजनीतिक बहिष्कार किया। काले झण्डे से हर स्थान पर अपना स्वागत देखकर साइमन का विचार बना कि वह अपने कार्य को बीच में ही छोड़कर स्वदेश लौट जाए। अप्रैल, 1928 में उसके प्रथम भारत प्रवास के बाद इंग्लैण्ड लौटने पर भारत सचिव बर्केनहेड की उससे भेंट हुई। साइमन ने उससे भारतीय राजनीतिज्ञों, विशेषकर स्वराज पार्टी के सदस्यों के प्रति अपनी कटु भावनाओं को व्यक्त किया और बर्केनहेड ने भी इस बारे में अपनी सहमति जताई। अप्रैल, 1928 तथा अक्टूबर, 1928 को बर्केनहेड द्वारा भारत के गवर्नर जनरल इर्विन को लिखे पत्रों से यह साफ़ हो गया कि भारत सचिव (बर्केनहेड) तथा स्टेट्यूटरी कमीशन के अध्यक्ष (जॉन साइमन) दोनों ही भारतीयों की राजनीतिक आंकाक्षाओं को पूरा करने की कोई इच्छा नहीं रखते हैं। भारत के गवर्नर जनरल इर्विन के लिए भारत में स्थिति बहुत कठिन होने वाली थी। साइमन कमीशन की भारत विरोधी संस्तुतियां भारत में राजनीतिक असन्तोष का विस्फोट कर सकती थीं। इर्विन को यह ज्ञात हो गया कि सर्व-श्वेत सदस्य के स्टेट्यूटरी कमीशन का गठन और भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं की इतनी अधिक उपेक्षा एक बड़ी भूल थी। कांग्रेस के 1928 के कलकत्ता अधिवेशन के सरकार को अल्टीमेटम दिए जाने वाले प्रस्ताव से वह और भी अधिक चिन्तित हो गया था। 1929 में केन्द्रीय विधान सभामें'पब्लिक सेफ्टी बिल', 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' तथा कार्यकारी परिषद के बजट अनुदान के नामन्जूर होने और मोतीलाल नेहरू द्वारा सदन में पुनः राष्ट्र की राजनीतिक मांगों को दोहराए जाने से स्थिति और भी संकटपूर्ण हो गई थी। इर्विन इसका समाधान भारतीयों तथा उनकी आकांक्षाओं के साथ गृह सरकार द्वारा पहले से बेहतर बर्ताव को मानता था और वह संशोधनात्मक कार्यवाही की संस्तुति कर रहा था परन्तु इंग्लैण्ड में रैमेज़े

मैक्डोनाल्ड के नेतृत्व में लेबर पार्टी की सरकार बन जाने के बाद भी भारतीयों को सुधार दिए जाने की दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हुई।

3.5 सर्वदलीय सम्मेलन

साइमन कमीशन के विरोध किए जाने पर भारत सचिव बर्कनहेड ने व्यंग्य कसा था कि भारतीय किसी भी व्यावहारिक राजनीतिक ढांचे के अन्तर्गत सहमत होकर काम करने में अक्षम हैं। उसने भारतीयों को एक सर्वसम्मत संविधान बनाने की चुनौती भी दे डाली थी। भारत सचिव बर्केनहेड की चुनौती को स्वीकार करते हुए भारतीय राजनीतिक दलों ने एक सर्वमान्य संवैधानिक योजना बनाने का निश्चय किया। 1927 में कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में यह तय किया गया कि अन्य राजनीतिक दलों की सहमति से स्वतन्त्र भारत के लिए संविधान का मसौदा तैयार किया जाएगा। अखिल भारतीय सम्मेलन में एक उप-समिति का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष मोतीलाल बनाए गए। सर तेज बहादुर सप्रू भी इस समिति के सदस्य बनाए गए। उदारवादी सर तेज बहादुर सप्रू तथा मुस्लिम नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस के साथ मिलकर 'स्वशासित राज्य' के संविधान के निर्माण की योजना बनाई। 1927 के अन्त में मद्रास की जस्टिस पार्टी तथा पंजाब यूनियनिस्ट्स के अतिरिक्त सभी प्रतिष्ठित राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने तथा संविधान निर्माण के लिए सभी राजनीतिक दलों की एक सभा के आयोजन की तैयारी की। मुस्लिम लीग के दिसम्बर, 1927 के अधिवेशन में मोहम्मद अली जिन्ना ने साइमन कमीशन के बहिष्कार करने का आह्वान किया। एम0 ए0 अंसारी की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1927 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में सभी राजनीतिक दलों की सहमति से स्वतन्त्र भारत के संविधान का मसौदा बनाने का निश्चय किया गया। इस उद्देश्य से राजनीतिक दलों के फ़रवरी तथा मई, 1928 में अखिल भारतीय सम्मेलन में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक 10 सदस्यीय समिति का गठन किया गया। इस समिति को प्रस्तावित संविधान का मसौदा तैयार करना था। इसके सदस्यों में तेज बहादुर सप्रू, अली इमाम, शुएब कुरैशी, एन0 एम0 जोशी, एम0 आर0 जयकर, सुभाषचन्द्र बोस आदि सम्मिलित थे। बाद में एम0 आर0 जयकर इससे हट गए। अगस्त, 1928 में इस समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसे इसके अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू के नाम पर नेहरू रिपोर्ट कहा जाता है। नेहरू रिपोर्ट को लखनऊ में 28-31 अगस्त, 1928 में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में स्वीकृत कर लिया गया।

3.6 नेहरू रिपोर्ट

3.6.1 नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें

1. भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत अधिराज्य पद (डोमिनियन स्टेटस) प्रदान किया जाए।

2. भारत में संघीय शासन स्थापित किया जाए और केन्द्र में द्वि-सदनीय विधान परिषद का गठन किया जाए। मन्त्रिमण्डल केन्द्रीय विधान परिषद के प्रति उत्तरदायी हो।

3. गवर्नर-जनरल की शक्तियां एक संवैधानिक राजतन्त्र के प्रमुख की भांति सीमित हों।

4. किसी भी समुदाय को पृथक निर्वाचक मण्डल प्रदान न किया जाए।

5. गैर-मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में मुसलमानों को तथा उत्तर-पश्चिमोत्तर प्रान्त में गैर-मुस्लिमों को सुरक्षित स्थान दिए जाएं। पंजाब तथा बंगाल में मुसलमानों को सुरक्षित स्थान न दिए जाएं।

6. भारत के नागरिकों के मूल अधिकारों को लेखबद्ध किया जाए।

7. वयस्क मताधिकार को भारत में लागू किया जाए।

8. महिलाओं को भी वयस्क मताधिकार दिया जाए।

3.6.2 नेहरू रिपोर्ट का विरोध

1. इस रिपोर्ट में सिक्खों के लिए अलग से कोई व्यवस्था नहीं की गई। समिति के एक मात्र सिक्ख सदस्य मंगल सिंह ने नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया। कांग्रेस के सिक्ख सदस्यों ने भी इसका विरोध किया। 'सेन्ट्रल सिक्ख लीग के अध्यक्ष' बाबा खड़क सिंह द्वारा सिक्खों को पंजाब में 30 प्रतिशत स्थान दिए जाने की मांग की गई।

2. खिलाफ़त कमेटी के सदस्यों मौलाना शौकत अली, बेगम मोहम्मद अली आदि ने इसका विरोध किया। इस रिपोर्ट को मुस्लिम हितों की विरोधी बताकर मौलाना मोहम्मद अली जौहर ने कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया।

3. मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्ना द्वारा नेहरू कमेटी रिपोर्ट को इसलिए खारिज किया क्योंकि इसमें उनकी पृथकतावादी मांगों को शामिल नहीं किया गया था। वो केन्द्रीय व गैर-मुस्लिम बहुमत के प्रान्तों की विधानसभाओं में मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थान, और बंगाल, पंजाब तथा तीन नए मुस्लिम-बहुल राज्यों सिंध, बलूचिस्तान और उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में मुस्लिम आबादी के कुल प्रतिशत के अनुरूप मुस्लिम सीटें चाहते थे। 1929 में मुहम्मद अली जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से अपनी 14 सूत्री मांग प्रस्तुत कीं जिनमें प्रमुख मांगे थीं –

   लखनऊ समझौते की व्यवस्था का अनुपालन हो।

शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो तथा प्रान्तीय सरकारों को अधिक अधिकार दिए जाएं क्योंकि लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्र में अल्पसंख्यक मुसलमानों के हितों की रक्षा नहीं हो सकती।

4. कांग्रेस के युवा सदस्यों ने इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को अपर्याप्त माना था। नेहरू रिपोर्ट में डोमिनियन स्टेटस की मांग की गई थी जबकि सुभाष चन्द्र बोस पूर्ण स्वतंत्रता की मांग के पक्ष में थे। 1928 के कांग्रेस अधिवेशन में उनका पूर्ण स्वतंत्रता की मांग का प्रस्ताव बहुत थोड़े अंतर से पराजित हो गया।

3.6.3 नेहरू रिपोर्ट का आंकलन

कलकत्ते में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1928 के कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को बहुमत से अनुमोदित कर दिया गया तथा इसको सरकार के समक्ष इस अल्टीमेटम के साथ प्रस्तुत किया गया कि 31 दिसम्बर 1929 तक सरकार इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को स्वीकार कर ले नहीं तो कांग्रेस अपना जन-आन्दोलन प्रारम्भ कर देगी। नेहरू रिपोर्ट अपनी कमियों के बावजूद भारतीयों की राजनीतिक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने में सफल रही। इसकी अधिकांश सिफ़ारिशों को गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन तथा पूर्व प्रशासक मैल्कम हैली ने न्याय संगत माना। 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट में सरकार को इसकी अनेक सिफ़ारिशों को अमल में लाना पड़ा।

3.7 1929 तथा 1930 में भारत का राजनीतिक घटनाक्रम

3.7.1 कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का प्रारम्भ

सरकार ने नेहरू रिपोर्ट की सिफ़ारिशों पर कोई अमल नहीं किया। कांग्रेस द्वारा दिए गए 31 दिसम्बर, 1929 के ल्टीमेटम की सरकार ने पूर्ण उपेक्षा की। 1929 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में अध्यक्ष पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 31 दिसम्बर, 1929 पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया।

इस ऐतिहासिक घोषणा का हार्दिक स्वागत किया गया। बनारस से प्रकाशित हिन्दी पत्र आज के 2 जनवरी, 1930 के सम्पादकीय में भारत के इस स्वतन्त्रता को धर्मयुद्ध कहा गया-

स्वतन्त्रता, पूर्ण स्वतन्त्रता - हमारा ध्येय है, यह कहते कितना आनन्द होता है। अभी हम स्वतन्त्र नहीं हुए हैं, पर वही हमारे जीवन का उद्देश्य है, वही राष्ट्र का लक्ष्य है। इन दो निर्णयों के लिए हम राष्ट्र को बधाई देते हैं। आइए, आज हम सब मिलकर परमात्मा से नम्रतापूर्वक

प्रार्थना करें - भगवान! हम पर दया करो! हमें शक्ति दो, कर्तव्य पथ पर दृढ़ रखो, हमारे प्यार देश का उद्धार हमसे कराओ, यतोधर्मस्ततोजयः, इस वाक्य पर दृढ़ विश्वास रख सारा राष्ट्र एक बार स्वर से कहे - भारतमाता की जय, स्वतन्त्रता की जय।

सरकार ने पूर्ण स्वराज की मांग को स्वीकार किए जाने के कांग्रेस के अल्टीमेटम की जब नितान्त उपेक्षा की तो 26 जनवरी, 1930 को स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया गया तथा मार्च, 1930 में पूर्ण स्वराज की प्राप्ति के लिए गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया गया।

3.7.2 साइमन कमीशन की संस्तुतियां तथा उनका आंकलन

27 मई, 1930 को साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट तथा अपनी संस्तुतियां प्रस्तुत कीं जिनका कि प्रकाशन जून, 1930 में हुआ। इस कमीशन की दुर्भावना के विषय में भारतीयों की आशंकाए सही साबित हुई।

1. इस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारत में जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर लोग बटे हुए हैं और इन कारणों से भारतीयों को केन्द्र में स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है किन्तु प्रान्तीय स्तर पर लगभग उत्तरदायी सरकार दिए जाने की व्यवस्था की जा सकती है।

2. भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना के प्रसार हेतु मताधिकार की शर्तों में ढील तथा विधान सभाओं व विधान परिषदों को विस्तृत किए जाने की संस्तुति की गई किन्तु केन्दीय व्यवस्था में कोई आमूल परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं समझी गई। इस बात पर ज़ोर दिया गया कि केन्द्र में किसी भी मूल्य पर द्वैध शासन स्थापित न किया जाए।

3. इस कमीशन ने अपनी संस्तुतियों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी। यदि आगे चलकर हिन्दू-मुस्लिम तनाव में कमी आ जाए तो अवश्य मुसलमानों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की व्यवस्था को समाप्त किया जा सकता था।

4. कमीशन ने भारत में ब्रिटिश अधीन भारत तथा भारतीय रियासतों का एक संघ बनाए जाने की संस्तुति की।

   भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन तथा भारत में दीर्घकाल तक उच्च प्रशासनिक पद पर कार्यरत मैल्कम हेली ने इस रिपोर्ट की संस्तुतियों को भारत विरोधी माना और तुरन्त भारतीयों की सहमति से सुधार योजना तैयार किए जाने की सिफ़ारिश की।

प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय गोलमेज़ सभाओं में तथा 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में साइमन कमीशन की संस्तुतियों की ही भांति साम्प्रदायिक वैमनस्य की आड़ लेकर केन्द्र में उत्तरदायी शासन की स्थापना को अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय बताया गया। 1935 के एक्ट में प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना की साइमन कमीशन की संस्तुति को स्वीकार कर लिया गया और प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था की गई। साइमन कमीशन की एक और संस्तुति - ब्रिटिश भारत तथा भारतीय रियासतों के संघ की स्थापना को भी 1935 के एक्ट में स्वीकार कर लिया गया। किन्तु कुल मिलाकर साइमन कमीशन के गठन से लेकर उसके विरोध के दमन और उसकी संस्तुतियों के घटना चक्र में यह स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज़ फूट डालकर शासन करने की अपनी नीति से बाज़ नहीं आ रहे हैं और भारत में विघटनकारी शक्तियों को वह लगातार महत्व दे रहे हैं। अभी अंग्रेज़ शासक भारत की जनता की स्वशासन दिए जाने की मांग को पूर्णरूपेण स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं और भारतीयों को अपने राजनीतिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए एक और देश-व्यापी आन्दोलन करने की आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए।

1. भारतीयों की दृष्टि में साइमन कमीशन के गठन में क्या दोष थे?
2. नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।
3. साइमन कमीशन की संस्तुतियों के गुण-दोषों का परीक्षण कीजिए।

3.8 सारांश

1919 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था अत्यन्त भ्रामक एवं दोषपूर्ण थी। मडीमैन कमेटी ने प्रान्तों में द्वैध शासन की व्यवस्था को दोषपूर्ण स्वीकार किया था। स्वराज दल ने जन-प्रतिनिधि सभाओं में द्वैध शासन की कमियों को उजागर किया था तथा संवैधानिक सुधारों की मांग की थी। 1919 के एक्ट में 10 सालों के भीतर संवैधानिक सुधारों के लिए एक स्टेट्यूटरी कमीशन की स्थापना किए जाने का प्रावधान था। नवम्बर, 1927 में जॉन साइमन के नेतृत्व में ब्रिटिश सांसदों का एक कमीशन भविष्य में संवैधानिक सुधारों की योजना बनाने के लिए गठित कर दिया। सर्व-श्वेत सात सदस्यों के इस कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं था। साइमन कमीशन का देश में हर स्थान पर काले झण्डे दिखाकर विरोध हुआ। कांग्रेस के प्रमुख नेता, लाला लाजपत राय पुलिस की लाठियों से घायल हुए। बाद में लाला जी की इसी कारण मृत्यु हो गई।

भारतीय राजनीतिक दलों ने एक सर्वमान्य संवैधानिक योजना बनाने का निश्चय किया और मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। नेहरू रिपोर्ट की मुख्य सिफ़ारिशें थीं - भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत डोमिनियन स्टेटस प्रदान किया जाए। भारत के नागरिकों के मूल अधिकारों को लेखबद्ध किया जाए तथा वयस्क मताधिकार को भारत में लागू किया जाए।

मई, 1930 में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि भारतीयों को स्वशासन प्रदान किए जाने से अशान्ति फैलने का खतरा है। इस कमीशन ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को पूर्ववत लागू रखे जाने की सिफ़ारिश की थी।कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने 31 दिसम्बर, 1929 पूर्ण स्वराज को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया तथा मार्च, 1930 में पूर्ण स्वराज प्राप्ति के लिए गांधीजी के नेतृत्व में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरंभ किया गया। साइमन कमीशन की संस्तुति पर 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट 1935 में भारतीयों प्रान्तीय स्वायत्तता प्रदान कर दी गई।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

सर्व-श्वेत सदस्योंका कमीशन: सभी गोरे (यूरोपीय) सदस्यों का कमीशन

मुस्लिम बहुल राज्यः ऐसे राज्य जहां कि मुसलमानों का बहुमत हो

डोमिनियन स्टेटसः अधिराज्य पद (ब्रिटिश साम्राज्य का अंग रहते हुए स्वशासन का अधिकार)

स्टेट्यूटरीः वैधानिक

अल्टीमेटमः समय सीमाबद्ध चेतावनी

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 3.4.2 सर्व-श्वेत साइमन कमीशन के गठन की भारतीयों द्वारा आलोचना
2. देखिए 3.6 नेहरू रिपोर्ट
3. देखिए 3.7.2 साइमन कमीशन की संस्तुतियां तथा उनका आकलन

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम - इण्डिया विन्स फ्रीडम, बम्बई, 1959

सील, अनिल - दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म, कैम्ब्रिज, 1968

3.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

तेन्दुलकर, जी0 डी0 - महात्मा, भाग 2, बम्बई, 1965

नेहरू, जवाहर लाल - एन आटोबायोग्राफ़ी, लन्दन, 1936

सीतारमैया, पी0 - हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1936

3.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. साइमन कमीशन के बहिष्कार पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

इकाई चार

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

4.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन से पूर्व की स्थिति

4.3.2 नमक कानून के उल्लघंन हेतु डांडी मार्च

4.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

4.3.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विस्तार

4.3.3.2 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आर्थिक पक्ष

4.3.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का राजनीतिक प्रभाव

4.4 गांधी-इर्विन समझौता तथा उसके गुण-दोष

4.4.1 गांधी-इर्विन समझौता

4.4.2 गांधी-इर्विन समझौते के गुण-दोष

4.4.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद का राजनीतिक घटनाचक्र

4.4.4 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आंकलन

4.5 सारांश

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हम सभी भारतीय राजनीतिक दलों द्वारा साइमन कमीशन के बहिष्कार, सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा नेहरू रिपोर्ट की संस्तुतियों तथा सरकार द्वारा उनकी नितान्त उपेक्षा किए जाने की चर्चा कर चुके हैं। भारतीयों द्वारा डोमिनियन स्टेटस तथा पूर्ण स्वराज्य की मांग की ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा सर्वथा उपेक्षा किए जाने पर कांग्रेस ने 26 जनवरी, 1930 को स्वतन्त्रता दिवस मनाया।

पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने तथा दमनकारी एवं शोषक नमक कानून को तोड़ने के उद्देश्य से गांधीजी ने डांडी यात्रा कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया।

ब्रिटिश भारतीय सरकार ने इस शान्तिपूर्ण आन्दोलन को निर्ममता के साथ कुचलने के प्रयास किए और आन्दोलन को कमज़ोर करने के लिए विघटनकारी तत्वो को बढ़ावा देना प्रारम्भ कर दिया। 1930, 1931 तथा 1932 में आयोजित तीनों गोलमेज़ सभाओं में उसकी दुराशयता के स्पष्ट दर्शन हुए फिर भी सरकार सविनय अवज्ञा आन्दोलन में उठाई गई पूर्ण स्वराज की मांग को कमसे कम प्रान्तीय स्तर पर प्रदान करने के लिए बाध्य हुई। 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था इसका प्रमाण है।

यह आन्दोलन गांधीजी का सबसे अनुशासित आन्दोलन सिद्ध हुआ और इसने प्रेस के माध्यम से विश्व जनमत को अपनी ओर करने में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की। इस आन्दोलन के बाद गांधीजी सामाजिक असमानता, राजनीतिक दमन, साम्राज्यवाद, नस्लवाद और अलगाववाद के विरुद्ध अहिंसात्मक संघर्ष करने वालों के मार्ग दर्शक बन गए। अमेरिका के मार्टिन लूथर किंग जूनियर तथा दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन माण्डेला ने गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन से प्रेरणा लेकर अपने राजनीतिक और सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त किया।

इस इकाई में आपको ब्रिटिश भारतीय सरकार की चालों और कुचक्रों से अवगत कराया जाएगा और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा विश्व-राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के योगदान का आकलन किया जाएगा।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको कांग्रेस द्वारा पूर्ण स्वराज के लक्ष्य की घोषणा, सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह, गांधी-इर्विन समझौता, लन्दन में 1930, 31 तथा 32 में आयोजित तीनों गोल मेज़ सभाओं में उठाए गए मुद्दों, पूना पैक्ट तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व-राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के योगदान से अवगत कराया जाएगा। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप अग्रांकित के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे -

1. सविनय अवज्ञा आन्दोलन की पृष्ठभूमि के विषय में।
2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन अर्थात् नमक सत्याग्रह के परिप्रेक्ष्य में कांग्रेस की आकांक्षाओं, उसकी रणनीति तथा उसके देश-व्यापी प्रभाव के विषय में।
3. 1931 के गांधी-इर्विन समझौते के विषय में।
4. स्विनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन के बाद के राजनीतिक घटनाचक्र के विषय में।

5. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व विश्व-राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के योगदान के आकलन के विषय में।

4.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

4.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन से पूर्व की स्थिति

1929 से समस्त विश्व आर्थिक मन्दी के दौर से गुज़र रहा था। भारत में भी भुखमरी, बेरोज़गारी, औद्योगिक एव व्यापारिक अवनति का दौर था। इस संकट में अंग्रेज़ किसी भी मूल्य पर भारत पर अपनी पकड़ कमज़ोर नहीं करना चाहते थे इसलिए भारतीयों की स्वशासन की मांग को उनके द्वारा बार-बार अनसुना किया जा रहा था। साइमन कमीशन की विफलता ने सरकार और भारतीय राजनीतिक दलों के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। सरकार द्वारा नेहरू रिपोर्ट में भारतीयों को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने की संस्तुति की उपेक्षा करने से स्थिति और भी बिगड़ गई थी। कांग्रेस लन्दन में आयोजित की जाने वाली गोलमेज़ सभाओं में भारतीयों को डोमिनियन स्टेटस दिए जाने पर विचार-विमर्श करवाए जाने की मांग कर रही थी। सरकार ने यह साफ़ कर दिया कि भारत के राजनीतिक भविष्य का निर्णय ब्रिटिश पार्लियामेन्ट करेगी न कि स्वयं भारतीय जनता। यह साफ़ हो गया था कि एक विदेशी शासक और परतन्त्र प्रजा के मध्य उत्तरदायी सरकार की स्थापना के मुद्दे पर कोई समझौता नहीं हो सकता। साइमन कमीशन की कूटनीतिक चाल को नकारते हुए कांग्रेस ने 1929 के प्रारम्भ में ही ब्रिटिश शासन के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन करने का निश्चय कर लिया था। मार्च, 1929 में अपने पत्र नवजीवन में स्वराज्य प्राप्ति हेतु गांधीजी ने सविनय अवज्ञा के औचित्य पर दलील देते हुए लिखा था -

मैं भलीभांति जानता हूँ कि सविनय अवज्ञा कैसी भयंकर चीज़ है। लेकिन जो आदमी आज़ादी का भूखा हो, वह क्या करे? आज़ादी के लिए तड़पते हुए मनुष्य के लिए, आज़ादी के पीछे पागल बने हुए व्यक्ति के लिए अनेक जोखिमों को अपने सिर लेने के सिवा कोई रास्ता ही नहीं है।

29 दिसम्बर से 31 दिसम्बर, 1929 तक लाहौर में चले कांग्रेस के अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने 31 दिसम्बर को कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता घोषित कर दिया। इस ऐतिहासिक घोषणा का हार्दिक स्वागत किया गया । बनारस से प्रकाशित आज के 2 जनवरी, 1930 के अंक के सम्पादकीय में भारत के इस स्वतंत्रता संग्राम को धर्मयुद्ध कहा गया था -

स्वतन्त्रता, पूर्ण स्वतन्त्रता - हमारा ध्येय है, यह कहते कितना आनंद होता है। अभी हम स्वतन्त्र नहीं हुए हैं, पर वही हमारे जीवन का उद्देश्य है, वही राष्ट्र का लक्ष्य है। आइए, आज हम सब मिलकर परमात्मा से नम्रतापूर्वक प्रार्थना करें - भगवान! हम पर दया करो! हमें शक्ति दो, कर्तव्य पथ पर दृढ़ रखो, हमारे प्यार देश का उद्धार हमसे कराओ,

यतोधर्मस्ततोजयः, इस वाक्य पर दृढ़ विश्वास रख सारा राष्ट्र एक बार स्वर से कहे - भारतमाता की जय, स्वतंत्रता की जय।

कांग्रेस ने केन्द्रीय, प्रान्तीय विधान सभाओं तथा सरकार द्वारा आयोजित गोल मेज़ सभा के पूर्ण बहिष्कार का निर्णय लिया और 26 जनवरी, 1930 को स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया।

4.3.2 नमक कानून के उल्लघंन हेतु डांडी मार्च

ब्रिटिश सरकार ने नमक उद्योग तथा उसके व्यवसाय के लिए नमक कानून बनाया जिसमें नमक बनाने व बेचने का एकाधिकार सरकार का हो गया। इस व्यवसाय में पीढ़ियों से लगे लोग बेरोज़गार हो गए। सरकार ने बाज़ार में नमक को उसकी लागत से लगभग चालीस गुने मूल्य पर

बेचा। महंगे नमक के कारण गरीब न तो स्वयं अपने लिए पर्याप्त मात्रा में उसे खरीद सकता था और न ही अपने मवेशियों को उनकी खुराक के लिए ज़रूरी मात्रा में नमक दे सकता था। खुराक में नमक की मात्रा कम होने से शरीर में आयोडीन की कमी के कारण मनुष्यों और जानवरों को घेंघा जैसे कई जानलेवा रोग हो जाते थे। गांधीजी इस नमक कानून को ब्रिटिश शासन के सबसे बड़े कलंकों में से एक मानते थे इसलिए उन्होंने इसे तोड़ना अपना कर्तव्य माना। दूसरी बात यह थी कि नमक वफ़ादारी का प्रतीक था और इस कानून के कारण भारतीय अंग्रेज़ों का नमक खाने के लिए विवश थे। इस कानून को तोड़कर और खुद नमक बनाकर भारतवासी अंग्रेजों के प्रति वफ़ादारी के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकते थे।

कांग्रेस पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित कर चुकी थी। गांधीजी सत्याग्रह के माध्यम से इस लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे और अपने आन्दोलन का प्रारम्भ वो नमक कानून को तोड़कर ही करना चाहते थे। आन्दोलन आरम्भ करने से पहले गांधीजी ने वाइसराय को लिखे पत्र में 11 सूत्री मांगें रखीं। इसमें रुपये की विनिमय दर में कमी, लगान में कमी, नमक पर सरकार के एकाधिकार की समाप्ति, सैनिक तथा प्रशासनिक व्यय में कमी, भारतीय उद्योग को संरक्षण तथा राजनीतिक बन्दिओं की रिहाई की मांगें शामिल थीं। सरकार द्वारा इन मांगों की पूर्ति न किए जाने की स्थिति में आन्दोलन प्रारम्भ किया जाना था। सरकार द्वारा कांग्रेस की इन मांगों पर प्रतिक्रिया न मिलने पर 2 मार्च, 1930 को गांधीजी ने वाइसराय को सत्याग्रह करने के अपने निर्णय से अवगत कराने के लिए एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने सत्यागह के औचित्य पर प्रकाश डाला। वाइसराय ने सत्याग्रह के निर्णय को कानून का उल्लंघन तथा अशान्ति फैलाने वाला बताया। गांधीजी ने अपने वक्तव्य में कहा -

मैने घुटनों के बल झुक कर रोटी मांगी थी और मिला पत्थर। भारत एक विशाल कारागार की तरह है। मेरे कार्यक्रम के अनुसार न्याय प्रणाली और शान्ति एवं व्यवस्था का भंग होना स्वाभाविक है। कानून पर बहुत सी किताबें हैं लेकिन भारतीयों ने अब तक जो कानून जाना है वो है अंग्रेज शासकों की मर्जी। मैं कानून को नकारता हूँ और खुली हवा के अभाव में राष्ट्र का दम घोंटने वाली हम पर थोपी गई इस शान्ति की दुखदाई एकरसता को तोड़ना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

12 मार्च, 1930 को प्रातः साढ़े छह बजे अपने आश्रम के 78 अनुयायियों के साथ गांधीजी ने साबरमती आश्रम से अपनी पद यात्रा प्रारम्भ की, ऐसी यात्रा जो कि विश्व इतिहास में अनूठी थी। गांधीजी के विरोधियों ने उनका उपहास उड़ाया। सरकार ने इसको गांधीजी की सनक समझकर इस यात्रा को गम्भीरता से नहीं लिया। उनके शुभचिन्तकों ने चिन्ता और सन्देह व्यक्त किया। परन्तु रबीन्द्रनाथ टैगोर ने गांधीजी की डांडी यात्रा का समर्थन किया और उन्हें सन्देश दिया कि वो विरोधियों की चिन्ता न करें और सत्यमार्ग पर अकेले ही चलते रहें। इस सन्देश को उन्होंने अपने गीत ***एकला चलो रे*** के माध्यम से अमर कर दिया। जल्द ही विरोधियों का उपहास भय और क्रोध में परिवर्तित हो गया। मोतीलाल नेहरू जैसे आलोचक अब स्वयं नमक सत्याग्रही बन गए थे। उन्होंने अपना महल जैसा आनन्द भवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया और वह खुद इलाहाबाद की सड़कों पर प्रतिबन्धित नमक बेचने लगे। 241 मील की पद यात्रा के बाद 5 अप्रैल, 1930 को सूर्यास्त के समय गांधीजी डांडी के समुद्र तट पर पहुंचे। 6 अप्रैल, 1930 की सुबह समुद्र में स्नान कर गांधीजी ने मुठ्ठी भर नमक उठाकर नमक कानून तोड़ा और सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। श्रीमती सरोजिनी नायडू इस घटना की गवाह थीं। पूरे देश में उत्साह की लहर दौड़ पड़ी। हर जगह नमक कानून तोड़ा जाने लगा।

4.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन

4.3.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विस्तार

नमक सत्याग्रह में एक कुशल सेनापति के समान रणनीति तैयार की गई थी। इसमें आश्चर्य, विभिन्न शक्तियों की सार्वभौमिक गतिशीलता, अनुशासन, संगठन और दुश्मन को चारो तरफ़ से घेर कर उस पर प्रहार करने की रणनीति सभी का समावेश था। सरकार ने बड़े पैमाने पर गिरफ़्तारियां कीं, गैर कानूनी ढ़ग से निर्मित नमक को बड़ी मात्रा में ज़ब्त किया गया, पर्दानशीन महिलाओं तक की तलाशी ली गई, जन-सभाओं तथा जुलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जवाहरलाल नेहरू को गिरफ़्तार कर लिया गया। विधान सभा के अध्यक्ष विठ्ठल भाई पटेल तथा नेशनलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष मदनमोहन मालवीय ने त्यागपत्र दे दिए। खान अब्दुल गफ्फार खां को पेशावर में गिरफ़्तार कर लिया गया। पेशावर में गढ़वाल रेजीमेन्ट के चन्दन सिंह गढ़वाली और उसके साथियों ने निहत्थे आन्दोलनकारियों पर गोली चलाने से इंकार कर दिया जिसके कारण उनका कोर्टमार्शल हुआ। विरोध प्रदर्शन के दौरान सैकड़ों आन्दोलनकारी मारे गए और उससे कहीं अधिक घायल हो गए। 1930 में 25 अप्रैल से 5 मई तक पेशावर आन्दोलनकारियों के हाथों में रहा। गांधीजी ने वाइसराय को सूरत में धरसाना के नमक उद्योग पर कब्ज़ा करने की योजना से अवगत कराया पर इस योजना के क्रियान्वित होने से पहले ही 4 मई, 1930 की मध्य रात्रि में उन्हें गिरफ़्तार कर यर्वदा की केन्द्रीय जेल भेज दिया गया। गुजरात के धरसाना में शान्तिपूर्ण आन्दोलनकारियों ने अब्बास तैयबजी और कस्तूरबा गांधी के नेतृत्व में 'धरसाना साल्ट वर्क्स' के काम को रोकने का प्रयास किया। आन्दोलनकारियों पर पुलिस की ज़्यादतियों का मार्मिक विवरण न्यू फ्रीमैन के सम्वाददाता वेब मिलर ने किया है-

आन्दोलनकारियों ने अपने ऊपर लाठियों का प्रहार रोकने के लिए अपने हाथ भी नहीं उठाए और चोट खाकर गिरते रहे। जहांपर मैं खड़ा था वहां से लाठियों की चोट से खोपड़ियां चटकने की आवाज़े सुनाई दे रही थीं। दो-तीन मिनटों में ही मैदान घायलों से पट गया। जो लोग बाकी बचे थे वो भी आगे बढ़ते रहे, तब तक, जब तक कि पुलिसकर्मियों ने उन पर भी लाठियां बरसाना शुरू नहीं कर दिया।

मिलर के वृतान्त को सरकार ने दुनिया तक पहुंचने से रोकने की बहुत कोशिश की किन्तु वह 1350 समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका के सेनेट में भी सेनेटर जॉन जे0 ब्लेन द्वारा उसे पढ़ा गया। धरसाना में पुलिस के अत्याचार से 320 आन्दोलनकारी घायल हुए और 2 शहीद हुए।

महामना मदनमोहन मालवीय ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय ब्रिटिश दमन चक्र से भयभीत होकर अपने स्वतन्त्रता संग्राम में पीछे नहीं हटेंगे। उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अहिंसक स्वरूप

और सरकार के दमनचक्र के सामने किसी भी मूल्य पर घुटने न टेकने की आन्दोलनकारियों की दृढ़ इच्छाशक्ति के विषय में लिखा -

हमने तो जितने ज़ुल्म होंगे, उन्हें निश्चय कर ही यह आन्दोलन आरम्भ किया है। मारने का नहीं, मरने का ही निश्चय किया है। हमने तो यह ठान ही लिया है कि ज़िन्दा रहेंगे तो दुनिया के और राष्ट्रों की तरह आज़ाद होकर रहेंगे और नहीं तो अपने को मिटा देंगे। वे जो ईश्वर प्रदत्त हमारी स्वतन्त्रता को बलात् अपने कब्ज़े में रखना चाहते हैं और सम्भल जाएँ। वे जो हमारी राय से नहीं बल्कि हमें कुचलकर हमपर शासन करना चाहते हैं।

1910 का दमनकारी प्रेस एक्ट फिर से लागू किया गया। 67 समाचार पत्र और 55 छापेखाने बन्द कर दिए गए। गांधीजी ने इसकी तुलना में डायरशाही को भी फीका बताया। इस आन्दोलन में लगभग एक लाख गिरफ़्तारियां हुई। आन्दोलनकारियों ने नमक कानून का उल्लंघन करने के साथ-साथ विदेशी कपड़ों, ब्रिटिश बैंकों और बीमा कम्पनियों, जहाजरानी आदि का बहिष्कार किया। शराब की दुकानों पर महिला आन्दोलनकारियों ने धरने दिए ओर भारतीय सेना तथा भारतीय पुलिस से यह अपील की गई कि वो आन्दोलनकारियों को अपने बन्धु समझें।

गांधीजी ने अपने बहिष्कार और स्वदेशी अभियान में स्त्रियों को सबसे आगे रखा था। उनकी दृष्टि में इन आंदोलनों को सफल बनाने के लिए जिस त्याग, बलिदान और अनुशासन की आवश्यकता थी वह भारतीय स्त्रियों की प्रकृति में जन्मजात था। गांधीजी तथा देश के अन्य प्रमुख नेता भारतीय महिलाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन के सृजनात्मक कार्यक्रम में योगदान की अपेक्षा रखते थे। मद्यनिषेध, स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण, ग्रामोत्थान और स्वयं नारी-उत्थान के कार्यक्रम को सफल बनाने में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिकाएं निभा सकती थी।

चरखे को अपनाकर भारतीय महिलाएं स्वदेशी आंदोलन के आर्थिक आत्म-निर्भरता के लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कराने में सहायक हो सकती थीं और सोने पर सुहागा यह था कि इसे अपना कर स्त्रियां सम्मान के साथ, अपने सतीत्व की रक्षा करते हुए, यहाँ तक कि पर्दा प्रथा का पालन करते हुए भी अपने पैरों पर खुद खड़ी हो सकती थीं और देश को समृद्ध बनाने में अपना योगदान दे सकती थीं। सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका अत्यन्त सराहनीय रही। कांग्रेस की सबसे महत्वपूर्ण महिला नेत्री, प्रसिद्ध वक्ता एवं कवियित्री श्रीमती सरोजिनी नायडू गांधी जी की निकट सहयोगी थीं। श्रीमती सरोजिनी नायडू ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान सत्याग्रह का नेतृत्व किया। 5 अप्रैल, 1930 को नमक सत्याग्रह प्रारम्भ करने के लिए साबरमती आश्रम से डांडी पहुंचने पर उन्होंने गांधीजी का स्वागत किया। मई, 1930 में धरसाना सॉल्ट वर्क्स में 2000 आन्दोलनकारियों का नेतृत्व करते समय उन्हें गिरफ्तार किया गया। उर्मिला देवी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान 'देश सेविका संघ' और 'नारी सत्याग्रह समिति' जैसे राष्ट्रवादी महिला संघों की स्थापना की। 13 वर्ष की रानी गिडालू ने मणिपुर में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गांधीजी

के आवाहन पर विदेशी शासन के विरुद्ध खिलाफ़त का झण्डा बुलंद किया। पर्दानशीन महिलाएं भी आन्दोलन में कूद पड़ीं। कस्तूरबा गांधी, मधू बेन पेटिट, श्रीमती जमुना लाल बजाज, श्रीमती स्वरूप रानी नेहरू, श्रीमती कमला नेहरू आदि ने विदेशी सामानों की दुकानों तथा मादक पदार्थों की दुकानों पर सफलतापूर्वक धरने दिए। आगरा से प्रकाशित हिन्दी पत्र सैनिक के 1 दिसम्बर, 1933 के अंक में कुंवरानी गुणवंती महाराज सिंह का लेख - हमारी जागृति प्रकाशित हुआ था जिसमें कि उन्होंने गांधीजी आन्दोलनों महिलाओं की भूमिका की सराहना की थी -

महात्मा गाँधी का राजनैतिक आंदोलन कभी इतना सफल न होता, यदि भारतीय महिलाओं ने उसमें भाग न लिया होता। स्वदेशी आंदोलन की सफलता बहुत करके इसलिए सम्भव हो सकी कि भारतीय महिलाएं देश की सहायता के लिए कोमल विदेशी कपड़ों का व्यवहार छोड़ने को तैयार हो गईं।

कौंडा वैंकट पैया ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान गुंटूर जिले में नमक कानून तोड़ने के लिए तथा केलाप्पन ने मालाबार में नमक यात्रा (साल्ट मार्च) का नेतृत्व किया। आन्दोलन के प्रारम्भ होने के तीन महीने के अन्दर कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता बन्दी बना लिए गए। अब सविनय अवज्ञा आन्दोलन खुलेआम होने के स्थान पर भूमिगत हो गया।

4.3.3.2 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आर्थिक पक्ष

सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विदेश व्यापार पर व्यापक प्रभाव पड़ा। तीस करोड़ रुपयों का विदेशी सामान बम्बई नगर तथा उसके बन्दरगाह पर बिना बिका पड़ा रहा। भारत में कपड़े का आयात 31 प्रतिशत तथा धागे का आयात 45 प्रतिशत कम हो गया। सामान्य आयात एक तिहाई से भी कम हो गया। सिगरेटों का आयात तो पहले का छठवां हिस्सा ही रह गया, बम्बई में ब्रिटिश स्वामित्व के सोलह कपड़े के मिल बन्द करने पड़े, खादी के उत्पादन तथा उसकी बिक्री में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। 'स्पिनर्स एसोसियेशन' ने 140000 कताई वाले तथा 11500 बुनकर तथा 1000 धुनियों को काम पर रखा। खादी-उत्पादन को खुदा का काम बताते हुए गांधीजी ने यह कामना की कि भारत के सभी स्त्री-पुरुष इसमें जुट जाएँ -

जबतक हिन्दुस्तान में हर एक स्त्री पुरुष अपना चर्खा नहीं चलाता तब तक मैं संतुष्ट नहीं हो सकता। अगर चर्खे से कोई अच्छी चीज़ आपको मिले तो चर्खे को जला डालो। यही एक वह काम है जो करोड़ों की आवश्यकताएं उन्हें घर से हटाए बिना पूरी कर सकता है।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान आर्थिक मन्दी और भी अधिक अशान्ति का कारण बनी। कारखानों में हड़तालें हुईं और संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त तथा गुजरात में किसानों ने लगान देने से इंकार कर दिया। कर्नाटक तथा कनारा में भी किसान आन्दोलन कर रहे थे। सरकार ने हज़ारों एकड़ ज़मीन ज़ब्त कर ली और अनेक राजस्व कर्मचारियों को बर्खास्त कर दिया। मध्य प्रान्त तथा

महाराष्ट्र के आदिवासियों ने वन सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। बंगाल में ग्रामवासियों ने चौकीदार कर देने से इन्कार कर दिया।

4.3.3.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का राजनीतिक प्रभाव

भारत में नरमपंथ, चरमपंथ, मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा आदि अनेक दलों ने स्वशासन की मांग उठाना शुरू कर दिया। स्वराज, होमरूल, डोमिनियन स्टेटस और स्वतन्त्रता की मांग अब आम हो गई। जिन्ना जैसे प्रबल गांधी विरोधी और गोल मेज़ सभा का स्वागत करने वाले भी अब ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड जैसे देशों में स्थापित उत्तरदायी सरकार भारत में भी स्थापित करने की मांग करने लगे। राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए कांग्रेस समरूपता की पक्षधर थी जब कि मुस्लिम लीग संघीय शासन की स्थापना की पक्षधर थी। इन मतभेदों के कारण मुस्लिम लीग ने सत्याग्रह में भाग नहीं लिया परन्तु अब्बास तैयबजी, मौलाना आज़ाद, रफ़ी अहमद किदवई, डॉक्टर अंसारी, खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां और सैयद महमूद जैसे अनेक मुस्लिम नेता तथा जमैतुल उलेमा, अहरारुल इस्लाम, खुदाई खिदमतगार और नेशनलिस्ट मुस्लिम पार्टी जैसे मुस्लिम संघ तथा राजनीतिक दल कांग्रेस के साथ थे। नमक सत्याग्रह में लगभग 12000 मुसलमान जेल गए थे। कांग्रेस ने 1930 की गोल मेज़ सभा के बहिष्कार का निर्णय लिया। गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन ने आन्दोलन से पहले ही अक्टूबर, 1929 में डोमिनियन स्टेटस देने की दिशा में कार्य करने की योजना प्रस्तुत की थी और यह ब्रिटिश पार्लियामेन्ट की संस्तुति के बिना लागू नहीं की जा सकती थी लेकिन कांग्रेस उस पर तुरन्त अमल चाहती थी।

खान अब्दुल गफ़्फ़ार खान

सरकार ने एक ओर जहां आन्दोलनकारियों का निर्ममता से दमन किया वहीं दूसरी ओर वह नरमपंथियों, मुसलमानों, ज़मींदारों आदि को रियायतें देकर अपने साथ मिलाने के लिए प्रयत्नशील

हो गई। आन्दोलन की व्याप्ति तथा उसकी पैठ देखकर गवर्नर जनरल लॉर्ड इर्विन को स्वीकार करना पड़ा कि अब केवल दमन से राजनीतिक असन्तोष को थाम पाना सम्भव नहीं है और सरकार को सुधार की प्रक्रिया जल्द आरम्भ करनी पड़ेगी। अब यह स्पष्ट हो गया कि सरकार जेल में बन्द गांधीजी से जब तक समझौते की बात नहीं करेगी तब तक स्थिति में सुधार नहीं आ सकता।

4.4 गांधी-इर्विन समझौता तथा उसके गुण-दोष

4.4.1 गांधी-इर्विन समझौता

26 जनवरी, 1931 को गांधीजी तथा उनके सहयोगियों को रिहा कर दिया गया। गांधीजी सम्मान के साथ शान्ति वार्ता के लिए तैयार थे। 17 फ़रवरी से 5 मार्च, 1931 तक गांधीजी तथा लॉर्ड इर्विन में वार्ता चली। 5 मार्च को गांधी-इर्विन समझौता हुआ जिसके अन्तर्गत सविनय अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लिया गया, स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन को प्रोत्साहित करना स्वीकार किया गया किन्तु विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को और शराब बन्दी के लिए धरना देने को राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग किया जाना बन्द कर दिया गया। राजनीतिक बन्दी रिहा हुए, भारत में संघीय व्यवस्था का अनुमोदन कर दिया गया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान पारित अध्यादेशों को वापस ले लिया गया और राजनीतिक संगठनों पर लगी पाबन्दी हटा ली गई। हिंसा में लिप्त घटनाओं के अतिरिक्त सभी राजनीतिक बन्दियों को रिहा कर दिया गया। ज़ब्त की गई सम्पत्तियों को वापस कर दिया गया। गांधीजी द्वारा पुलिस की ज़्यादतियों पर जांच बैठाने की मांग को ठुकरा दिया गया। नमक कानून को भी रद्द नहीं किया गया, मात्र उसमें कुछ सुधार किए गए। कांग्रेस ने द्वितीय गोलमेज सभा में सुधार हेतु बातचीत में भागीदारी करने का निश्चय किया। 29 मार्च, 1931 को कराची में बुलाए गए सम्मेलन में कांग्रेस ने इस समझौते पर अपनी सहमति दे दी।

4.4.2 गांधी-इर्विन समझौते के गुण-दोष

जवाहरलाल नेहरू इस समझौते पर अपनी सहमति जताते हुए भी इससे बहुत निराश हुए किन्तु सरदार वल्लभ भाई पटेल की दृष्टि में गांधीजी शेर की मांद में जाकर उसका मुकाबला कर कुछ भी खोने वाले नहीं थे। वामपंथी इतिहासकारों ने गांधीजी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन को वापस लिया जाना भारतीय उद्योगपतियों तथा बड़े व्यापारियों के दबाव में आकर लिया फैसला माना है। एक साल तक चले आन्दोलन के दौरान आर्थिक परिस्थितियां बदल चुकी थीं। साल भर से लगातार चली आ रही हड़तालों से भारतीय उद्योगपतियों को नुक्सान हो रहा था और विदेश व्यापार से जुड़े व्यापारी विदेशी सामान के बहिष्कार से परेशान थे। जहां यही वर्ग विदेशी व्यापार से दूर रहने की शपथ खा रहा था और इस आन्दोलन को संचालित करने में अपना आर्थिक सहयोग दे रहा था वहीं अब यह इस आन्दोलन को स्थगित किए जाने के पक्ष में होने लगा था और फिर विदेश व्यापार की ओर उन्मुख हो रहा था। मारवाड़ी व गुजराती व्यापारी तथा भारतीय मिल मालिक गांधीजी पर

आन्दोलन को स्थगित करने के लिए दबाव डाल रहे थे। ज़मींदार वर्ग भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत होने वाले किसान आन्दोलनों से परेशान होकर इस आन्दोलन की समाप्ति चाहता था। इधर एक साल तक आन्दोलन कर आन्दोलनकारियों का उत्साह भी मन्द पड़ चुका था। इन परिस्थितियों में गांधीजी का सरकार से बिना किसी ठोस सुधार प्राप्त किए समझौता करना आश्चर्यजनक नहीं था। विठ्ठल भाई पटेल और सुभाषचन्द्र बोस ने इस निर्णय को जनता के साथ विश्वासघात मानते हुए कांग्रेस में गांधीजी की जगह युवा नेतृत्व की मांग की थी।

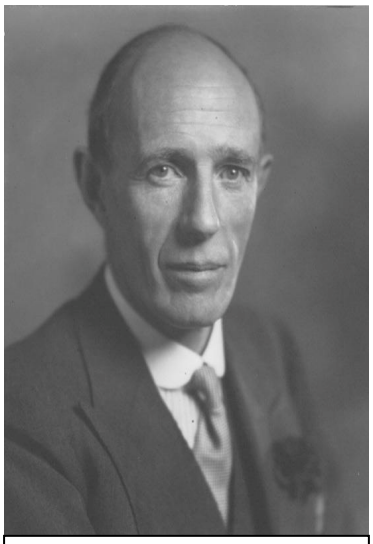

लॉर्ड इर्विन

4.4.3 सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद का राजनीतिक घटनाचक्र

12 नवम्बर, 1930 को प्रथम गोलमेज़ सभा का आरम्भ हुआ। कांग्रेस ने 1930 की गोल मेज़ सभा के बहिष्कार का निर्णय लिया था। द्वितीय गोल मेज़ सभा 7 सितंबर, 1931 से लन्दन में हुई जिसमें कांग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि के रूप में गांधी जी शामिल हुए। कांग्रेस संवैधानिक सुधारों का प्रारूप तैयार करने की इस प्रक्रिया में इस आशा के साथ सम्मिलित हुई थी कि भारत में संघीय व्यवस्था के अन्तर्गत स्वशासन स्थापित किया जाएगा और रक्षा, विदेश सम्बन्ध, अल्पसंख्यक विषयक मामले, भारतीय ऋण आदि विषयों में भारतीय हितों को सर्वोपरि रखा जाएगा। अब तक इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की सरकार गिर चुकी थी। प्रधानमन्त्री रैमज़े मैक्डोनाल्ड को अनुदारवादियों को सन्तुष्ट करके ही सरकार चलानी थी। विश्व-व्यापी आर्थिक मन्दी के इस दौर में अनुदारवादी किसी भी मूल्य पर भारतीयों को स्वशासन प्रदान कर अपने आर्थिक हितों की बलि नहीं चढ़ाना चाहते थे इसलिए साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर अमल करने तक ही द्वितीय गोलमेज़ सभा सीमित रही। इसमें राजनीतिक व संवैधानिक सुधारों के स्थान पर साम्प्रदायिक समस्याओं पर चर्चा हुई और साम्प्रदायिक मांग रखने वाले दलों ने राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा की गई।

10 अगस्त, 1932 को इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री रैमज़े मैक्डोनाल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा की। यह पंचाट इस अवधारणा पर आधारित था कि भारत एक राष्ट्र नहीं अपितु विभिन्न राष्ट्रों का समूह है। इस पंचाट में अंग्रेजी सरकार ने मुसलमानों, सिक्खों, दलितों, पिछड़ी जातियों, भारतीय इसाइयों, एंग्लो इण्डियनों, यूरोपियनों, व्यापारियों, उद्योगपतियों, ज़मींदारों, श्रमिकों और विश्वविद्यालयों को पृथक प्रतिनिधत्व दिया गया था।

गांधीजी ने दलितों को साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की व्यवस्था को हिन्दू समाज को विभाजित करने की साज़िश बताया व इसके विरोध में 20 सितम्बर, 1932 को उन्होंने आमरण अनशन किया। सितम्बर, 1932 में गांधीजी तथा डॉक्टर अम्बेडकर के मध्य हुए पूना समझौते में साम्प्रदायिक पंचाट की दलितों को पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को भंग कर सभी समुदायों के मतदाताओं द्वारा सुरक्षित स्थानों पर दलित प्रतिनिधि चुनने की व्यवस्था की गई। सरकार ने इस व्यवस्था को स्वीकार कर लिया।

17 नवम्बर, 1932 से 24 दिसम्बर, 1932 तक तीसरी गोल मेज़ सभा का आयोजन हुआ। इसमें सरकार ने भारत के विभिन्न राजनीतिक दलों से विचार-विमर्श को महत्व नहीं दिया बल्कि सभी निर्णय स्वयं लेने का निश्चय प्रकाशित किया गया। कांग्रेस ने इस सभा का बहिष्कार किया। कुल मिलाकर तीनों गोलमेज़ सभाओं में साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर ही अमल हुआ। 15 मार्च, 1933 को संविधान की रूपरेखा तैयार कर व्हाइट पेपर प्रकाशित किया गया। इसमें भारत में संघीय शासन की व्यवस्था की गई पर इसको लागू करने के लिए राज्यों को इसमें शामिल होने की शर्त भी थी। प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना इसकी बड़ी उपलब्धि थी। इसी के आधार पर 4 अगस्त, 1935 को गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया एक्ट पारित हुआ।

4.4.4 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आंकलन

इस आन्दोलन में महिलाओं, किसानों तथा श्रमिकों ने उल्लेखनीय भूमिका निभाई थी। इसमें पहली बार सरकार को कांग्रेस के साथ बराबरी के स्तर पर समझौते की बात करने के लिए झुकना पड़ा था। सरकार ने नमक कानून को भंग नहीं किया किन्तु उसमें संशोधन अवश्य किए और भारतीयों को स्वशासन दिए जाने की दिशा में कदम उठाए गए। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सृजनात्मक पक्ष में राष्ट्रीय एकता, आर्थिक आत्मनिर्भरता, नारी-उत्थान, अस्पृश्यता निवारण, मद्य-निषेध तथा ग्राम स्वराज्य के स्वप्न को साकार करने का ठोस प्रयास किया गया था।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन सरकार की फूट डालकर शासन करने की नीति पर नियन्त्रण कर पाने में और मुस्लिम लीग, साम्यवादी दल, हिन्दू महासभा आदि राजनीतिक दलों का सहयोग पाने में असफल रहा। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगन के बाद काग्रेस संगठन पर गांधीजी की पकड़ कमज़ोर पड़ने लगी। कांग्रेस में साम्प्रदायिकतावादी, समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा ज़ोर पकड़ने लगी। 1931 के कराची अधिवेशन में कांग्रेस प्रस्तावों में किसानों को अपना संघ बनाने के अधिकार को सम्मिलित किया गया। 1936 के फ़ैजपुर के अधिवेशन में मज़दूरों को हड़ताल करने का अधिकार और किसानों को संघ बनाने का अधिकार देने का प्रस्ताव रखा गया।

द्वितीय गोलमेज़ में कांग्रेस की विफलता सविनय अवज्ञा आन्दोलन की ही विफलता कही जा सकती है किन्तु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि इस आन्दोलन की मांगों को सरकार देर तक

अनसुना नहीं कर सकी और 1935 के गवर्नमेन्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में प्रान्तीय स्वायत्तता की व्यवस्था लागू करने से इस आन्दोलन के द्वारा उठाई गई मांगों को आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। गांधीजी के सभी आन्दोलनों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन सबसे अधिक अनुशासित था। गांधीजी के इस आन्दोलन को पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस ने महत्व दिया था जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश भारतीय सरकार पर भारतीयों को सुधार दिए जाने के लिए चारों ओर से दबाव पड़ने लगा था।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की रणनीति को मार्टिन लूथर किंग ने अमेरिका में तथा नेल्सन माण्डेला ने दक्षिण अफ्रीका में अपनाकर रंगभेद तथा जातिभेद के विरुद्ध सफल अभियान चलाया था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद गांधीजी समस्त विश्व में दलितों और शोषितों के मसीहा तथा विश्व-शान्ति के दूत के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे।

अभ्यास प्रश्न

निम्नांकित पर चर्चा कीजिए-

1. डान्डी मार्च।
2. सविनय अवज्ञा आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका।
3. गांधी-इर्विन समझौता।

4.5 सारांश

साइमन कमीशन से व्याप्त असंतोष और डोमिनियन स्टेटस का वादा करके सरकार द्वारा उसे पूरा न करना कांग्रेस के असंतोष का प्रमुख कारण था। सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया कि भारत के राजनीतिक भविष्य का फैसला ब्रिटिश पार्लियामेन्ट करेगी न कि स्वयं भारतीय जनता। दिसम्बर, 1929 में लाहौर में हुऐ कांग्रेस के अधिवेशन में तत्कालीन अध्यक्ष जवाहर लाल नेहरू ने कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वराज घोषित कर दिया। गांधीजी ने पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के उद्देश्य से साबरमती आश्रम से डांडी के समुद्र तट तक पद यात्रा कर दमनकारी नमक कानून तोड़कर 6 अप्रैल, 1930 को सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया। इस आन्दोलन में महिलाओं की तथा उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त में खान अब्दुल गफ्फ़ार खां की सराहनीय भूमिका रही। विदेशी व्यापार को इस आन्दोलन से भारी क्षति पहुंची और स्वदेशी उत्पादन में वृद्धि हुई। मार्च, 1931 के गांधी-इर्विन समझौते से सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया और गांधीजी कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में दूसरी गोलमेज़ सभा में भाग लेने के लिए 1931 में लन्दन गए परन्तु वहां उन्हें निराशा ही हाथ लगी। साम्प्रदायिकता की समस्या का कोई हल नहीं निकला।

1930, 1931 तथा 1932 में आयोजित तीन गोल मेज़ सभाओं में मूलतः साइमन कमीशन की संस्तुतियों पर ही अमल किया गया। फिर भी कुल मिलाकर सरकार को सुधार करने पड़े। 1935 के एक्ट में केन्द्र में उत्तरदायी सरकार की स्थापना नहीं की गई किन्तु प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना कर दी गई। गांधीजी के सभी आन्दोलनों में सविनय अवज्ञा आन्दोलन सबसे अधिक अनुशासित था। गांधीजी के इस आन्दोलन को पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस ने महत्व दिया था जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश भारतीय सरकार पर भारतीयों को सुधार दिए जाने के लिए चारों ओर से दबाव पड़ने लगा था। इस आन्दोलन के बाद गांधीजी समस्त विश्व में दलितों और शोषितों के मसीहा तथा विश्व-शान्ति के दूत के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

नमक कानूनः नमक कानून के अन्तर्गत नमक बनाने और उसको बेचने का एकाधिकार सरकार का था।

एकला चलो रेः अकेले ही चलो।

खुदाई खिदमतगारः खान अब्दुल गफ़्फ़ार खां के अनुयायी जो अहिंसात्मक आन्दोलन कर भारत के लिए पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे।

आर्थिक मन्दीः 1929 से 1931 तक पूरे विश्व में आर्थिक मन्दी का दौर चला जिसके कारण गरीबी, भुखमरी और बेरोज़गारी फैल गई।

शेर की मांद में घुसनाः खुद दुश्मन के घर में घुसकर उसका सामना करने का साहस करना।

अल्प संख्यकः ऐसे समुदाय जिनका कुल आबादी में कम भाग हो।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. देखिए 4.3.2 नमक कानून के उल्लघंन हेतु डांडी मार्च।
2. देखिए 4.3.3.1 सविनय अवज्ञा आन्दोलन का विस्तार।
3. देखिए 4.4.1 गांधी-इर्विन समझौता तथा 4.4.2 गांधी-इर्विन समझौते के गुण-दोष।

4.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

ताराचन्दः भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (भाग 4), नई दिल्ली, 1984

मजूमदार, आर0 सी0 (सम्पादक) - स्ट्रगल फा़र फ्रीडम, बम्बई, 1969

चन्द्रा, बिपन - नेशनलिज़्म एण्ड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इण्डिया, नई दिल्ली, 1979

सिंह, अयोध्या - भारत का मुक्ति संग्राम, दिल्ली, 1977

आज़ाद, अबुल कलाम - इण्डिया विन्स फ्रीडम, बम्बई, 1959

सील, अनिल - दि एमरजेन्स ऑफ़ इण्डियन नेशनलिज़्म, कैम्ब्रिज, 1968

तेन्दुलकर, जी0 डी0 - महात्मा, भाग 2 तथा 3, बम्बई, 1965

नेहरू, जवाहर लाल - एन आटोबायोग्राफ़ी, लन्दन, 1936

सीतारमैया, पी0 - हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन नेशनल कांग्रेस, बम्बई, 1936

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

अली, अरुणा आसफ़ - दि रिसर्जेन्स ऑफ़ इण्डियन वीमेन, लन्दन, 1991

काश्यप, सुभाष - भारत का सांविधानिक विकास और संविधान, दिल्ली, 1997

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में सविनय अवज्ञा आन्दोलन के महत्व का आकलन कीजिए।

ब्लाक चार: राष्ट्रवाद का गॉधी युग: दो

इकाई एक: 1935 का भारत सरकार अधिनियम

इकाई दो: भारत छोड़ो आन्दोलन

इकाई तीन: देशी राज्यों में राष्ट्रीय आन्दोलन

इकाई चार: वेवल योजना और शिमला सम्मेलन

इकाई – एक

1935 का भारत सरकार अधिनियम

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 1935 का भारत सरकार अधिनियम की पृष्ठभूमि
1.4 1935 का भारत सरकार अधिनियम
1.4.1 प्रस्तावना रहित अधिनियम
1.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना
1.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.4.3 प्रान्तीय स्वायत्तता
1.4.3.1 प्रांतीय कार्यपालिका
1.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ
1.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
1.4.3.4 प्रांतीय स्वायत्ता का मूल्यांकन
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
1.4.4 केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना
1.4.5 विषयों का विभाजन
1.4.6 विधानमण्डलों का विस्तार
1.4.7 साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली
1.4.8 मताधिकार का विस्तार
1.4.9 संघीय न्यायालय की स्थापना
1.4.10 संरक्षण एवं आरक्षण के प्रावधान
1.4.11 भारतीय व्यवस्थापिका का सत्तारहित स्वरूप प्रदान
1.4.12 ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता
1.4.13 भारत परिषद का अंत
1.4.14 1935 का अधिनियम का मूल्यांकन
1.5 सारांश
1.6 तकनीकी शब्दावली
1.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

1935 का भारत सरकार अधिनियम भारत में अंग्रेजी शासन द्वारा बनाये गये विधिक नियमों का अगला कदम था। 1935 का भारत सरकार अधिनियम विभिन्न आयोगों, रिपोर्टों एवं विचार विमर्श के बाद अस्तित्व में आया। 1935 का भारत सरकार अधिनियम 2 अगस्त, 1945 ई॰ को पारित हुआ। इसके साथ ही, इस अधिनियम में बर्मा के संविधान का भी प्रावधान था। जिन्हें बाद में 20 दिसम्बर, 1945 ई॰ को अलग कर दिया गया। इससे इस भारत सरकार अधिनियम, 1935 में कुल 321 धाराएँ तथा 10 परिशिष्ट रह गये थे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी 1935 का भारत सरकार अधिनियम की पृष्ठभूमि को समझ सकेगें।
2. विद्यार्थी अखिल भारतीय संघ के बारे में जानेंगे।
3. विद्यार्थी प्रांतीय स्वायत्तता के बारे में जान सकेंगे।
4. विद्यार्थी शक्तियों के विभाजन को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी संघीय सूची, प्रांतीय सूची तथा समवर्ती सूची के विषयों के बारे में जान सकेंगे।
6. विद्यार्थी कार्यपालिका, न्यायपालिका एवं व्यवस्थापिका को समझ सकेगें।
7. विद्यार्थी साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली के बारे में जान सकेंगे।
8. विद्यार्थी द्वैध शासन को जान सकेंगे।
9. विद्यार्थी गवर्नर - जनरल एवं भारत सचिव के बारे में जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी 1935 का भारत सरकार अधिनियम के महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जान सकेंगे।

1.3 1935 का भारत सरकार अधिनियम की पृष्ठभूमि

1935 का अधिनियम ब्रिटिश सरकार द्वारा 1919 के अधिनियम के बाद की परिस्थितियों को संतुलित करने के लिए बनाया था। 1919 के बाद अनेक राजनैतिक एवं प्रशासनिक घटनाक्रमों ने एक नवीन अधिनियम की आवश्यकता को जरूरी बना दिया था। 1919 से 1935 के मध्य अनेक राजनैतिक आंदोलन हुए असहयोग आंदोलन सविनय अवज्ञा एवं छोटे - मोटे आंदोलन जिन्होंने लगातार अंग्रेजी सरकार की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाये। स्वराज्य दल ने तो अपनी कार्यप्रणाली से सरकारी व्यवस्था को ही धता बता दिया था। अंग्रेज स्वराज दल की रीति - नीति से हतप्रद रह गये थे।

1935 में अधिनियम से पूर्व भारतीयों को संयुक्त करने के लिए विभिन्न आयोगों का भी गठन किया गया था। 1927 - 30 का साइमन कमीशन, 1928 की नेहरू रिपोर्ट, 1929 की लार्ड इर्निन की अभिनियम स्टेट्स की घोषणा 1930 - 32 तक के तीन गोलमेज सम्मेलन, संयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट, लोथियाँ रिपोर्ट आदि ने 1935 के अधिनियम की पूर्व पीठिका तैयार की थी। अंग्रेजों को भी लगने लगा था कि समय की आवश्यकता के अनुसार भारतीयों को संतुष्ट करने के लिए नये कदम उठाने आवश्यक है, किन्तु वे यह भी जानते थे कि भारतीयों को ऐसे अधिकार नहीं प्रदान किये जाने चाहिए। जिनसे ब्रिटिश साम्राज्य पर आंच आती हो।

1.4 1935 का भारत सरकार अधिनियम

1935 का अधिनियम भारत की आजादी से पूर्व ब्रिटिश सरकार का सबसे बड़ा संवैधानिक विकास था। यह अधिनियम एक विस्तृत अभिलेख था, जिसमें सभी आवश्यक विषयों पर विस्तृत विवरण दिया गया था। 1935 के इस विस्तृत अधिनियम मुख्यतः संघ की स्थापना, प्रांतीय स्वायत्तता , शक्तियों का विभाजन आदि प्रमुख विशेषताएँ थी।

1.4.1 प्रस्तावना रहित अधिनियम

1935 का अधिनियम प्रस्तावना रहित था। वह इसीलिए कि, अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों के लिए ऐसी कोई नई नीति की घोषणा नहीं की थी, जो प्रस्तावना का हिस्सा बन सके। संभवतः ब्रिटिश सरकार भारतीयों को यह संदेश देना चाहती थी कि ब्रिटिश सरकार का अंतिम उद्देश्य भारत में उपनिवेशक स्वराज्य की स्थापना करना हैं। इसी कारण 1935 के अधिनियम की प्रस्तावना में 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना को ही रखा गया।

1.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना

1935 के अधिनियम के अंतर्गत अंग्रेजी साम्राज्य के अधीन अखिल भारतीय संघ की स्थापना की योजना का प्रावधान किया गया था। अधिनियम में यह पवित्र विचारधारा व्यक्त की गयी थी, कि समस्त भारत को एक संघात्मक ढाँचें में गठित किया जाये और इसमें भारत के सभी ब्रिटिश क्षेत्र एवं रियासतों को सम्मिलित किया जाये। 1935 के अधिनियम का वास्तव में यह अद्भुत प्रावधान था, जिसमें सर्वप्रथम भारत को एकसूत्र में बांधकर एक संघ का रूप देने का प्रस्ताव किया गया था। 1935 के अधिनियम की इस योजना के अंतर्गत ब्रिटिश भारतीय प्रांत, चीफ कमिश्नरों के प्रांत एवं भारत की देशी रियासतों को सम्मिलित किया जाना था। प्रस्तावित संघ पूर्णतः स्पष्ट नियमों पर आधारित होना था, इसके प्रावधानों में संघ के निर्माण की प्रक्रिया को लिख दिया गया था।

शक्तियों के बंटबारें को स्पष्ट कर दिया गया था तथा एक संघीय न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया था। ब्रिटिश भारतीय ग्यारह प्रांत - मद्रास, बंबई, मध्य प्रांत, सिन्ध, असम संयुक्त प्रांत, बिहार, उत्तर - पश्चिमी सीमा प्रांत, बिहार, बंगाल, उड़ीसा तथा चीफ कमिश्नरों के प्रांत - दिल्ली, बलूचिस्तान, मेवाड़, अजमेर, कुर्ग, अण्डमान - निकोबार एवं देशी रियासतों से अखिल भारतीय संघ की स्थापना होनी थी। प्रस्तावित संघ में ब्रिटिश भारतीय प्रांतों तथा चीफ कमिश्नरों के प्रांतों का अनिवार्यतः संघ में शामिल होना था, देशी रियासतों को उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया। अर्थात् जो रियासत संघ से अलग रहना चाहे, वह संघ से अलग रहकर अपनी पहली वाली अवस्था में रह सकती थी।

देशी रियासतों को प्रस्तावित संघ में सम्मिलित होने के लिए निश्चित निर्धारित एवं स्पष्ट नियमों पर आधारित स्वीकृति पत्र पर हस्ताक्षर करने अनिवार्य थे, यह स्वीकृति लेख एक प्रकार का विलय प्रपत्र ही था, जिसमें समस्त शर्तों एवं सीमाओं का उल्लेख किया गया था। इस स्वीकृति पत्र में उन सभी विषयों का भी उल्लेख किया गया था, जो कि रियासतों संघ के अधीन स्वीकार करने थे, अर्थात् देशी रियासतों को यह अधिकार था कि, वह अपनी इच्छा के अनुसार उन विषयों पर स्वीकृति दे सकती थी, जो वह संघ के अधीन रखना चाहती थी, शेष विषयों पर रियासतें अपनी इच्छा के अनुसार अपने पास रखने को स्वतंत्र थी। कुल मिलाकर प्रस्तावित संघ में देशी रियासतों को पर्याप्त स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त थे।

इस अधिनियम में यह भी स्पष्ट किया गया था कि संघ की सत्ता में अन्य स्वीकृति पत्र से बढ़ोत्तरी की जा सकती थी, किन्तु संघ की सत्ता को कम नहीं किया जा सकता था, अर्थात् संघ की सत्ता में बढ़ोत्तरी स्वीकृति लेख से संभव थी, किन्तु संघ के अधिकारों और सत्ता को कम नहीं किया जा सकता था। इसके साथ ही, संघ में शामिल होने के लिए यह भी आवश्यक था कि रियासतें अधिकांश संघीय विषयों पर संघ की सत्ता को स्वीकृति प्रदान करें। अधिनियम में प्रावधान किया गया था कि, इस स्वीकृति पत्र में संघ की व्यवस्थापिका को बीस वर्ष तक परिवर्तन का कोई

अधिकार नहीं दिया गया थ। जबकि, ब्रिटिश सम्राट पर स्वीकृति पत्र को स्वीकारने की कोई बाध्यता नहीं थी।

अधिनियम के द्वारा विषयों की शक्तियों का स्पष्ट विभाजन तीन सूचीयों - संघीय राज्य एवं समवर्ती सूची में कर दिया गया था। संघीय सूची, जिसमें 59 विषय रखे गये थे, ये विषय समस्त भारत पर एक समान लागू होने थे। प्रांतीय सूची में 54 विषय रखे गये थे तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गये थे। इन विषयों पर संघीय सूची के विषयों पर संघ, प्रांतीय सूची के विषयों प्रांत तथा समवर्ती सूची पर संघ और प्रांत दोनों कानून बना सकते थे, किन्तु विवाद की स्थिति में समवर्ती सूची पर बनाये गये कानून पर संघ के कानून को मान्यता प्रदान करने का प्रावधान था।

देशी रियासतों को संघ विधान मण्डल के दोनों सदनों (संघीय असेम्बली एवं कौंसिल ऑफ स्टेट) में क्रमशः 375 में से 125 एवं 260 में से 104 सदस्य नियुक्त करने का अधिकार था। इसके साथ ही, देशी रियासतों को अपने सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया था अर्थात्, देशी रियासतों के सदस्य संघीय विधायिका में लोकमत के आधार पर निर्वाचित होके नहीं आने थे। इस प्रकार उच्च सदन (संघीय असैम्बली) में 2/5 और निम्न सदन (कौंसिल ऑफ स्टेट) में 1/3 के अनुपात में देशी रियासतों को प्रतिनिधत्व प्रदान किया गया था। संघ को अस्तित्व में आने के लिए अधिनियम की आवश्यक शर्ते निम्नलिखित थीं -

1. संघ केवल तब ही अस्तित्व, जब कम से कम आधी जनसंख्या कुछ रियासतों की शामिल हो। अर्थात् संघ में शामिल होने वाली रियासतों की जनसंख्या कुल रियासतों की जनसंख्या की आधी होनी चाहिए थी।

2. ऐसी रियासतें जोकि संघीय कौंसिल ऑफ स्टेट में 52 प्रतिनिधि भेजती हो।

3. जब संसद के दोनों द्वारा इसे पारित करने के लिए सम्राट से प्रार्थना की जाये।

1935 का अधिनियम अपने आप में विशिष्ट एवं विलक्षण था। इस प्रस्तावित संघ के घटकों में भारी असमानता थी। ब्रिटिश प्रांतों पर संघ का सर्वाधिक प्रभाव रहता , जबकि देशी रियासतों पर सबसे कम देशी रियासतों पर भी अलग - अलग प्रभाव रहता, क्योंकि यह इस बात पर निर्भर करता की कि, देशी रियासतें किन - किन विषयों को संघ के दायरे में लाती है। इसके साथ ही, यह भी असमानता थी कि, संघीय विधानमंडलों में ब्रिटिश प्रांतों से तो निर्वाचित प्रतिनिधि आते, किन्तु देशी रियासतों से मनोनीत प्रतिनिधि आते। क्योंकि ब्रिटिश प्रांतों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था लागू थी और देशी रियासतों में निरंकुश स्वेच्छाचारी व्यवस्था थी।

1.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन

अधिनियम में संघीय विधानमण्डल का अधिकार संघीय विधान मण्डल के स्थान पर ब्रिटिश संसद को सौंप दिया गया था। इससे संघीय विधानमण्डल पंगु हो गया था। अधिनियम ने गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव को इतने विशेषाधिकार दे रखे थे कि, वे संघ की वास्तविक मूल आत्मा को कभी भी कुचल सकते थे। वस्तुतः संघ की व्यवस्था के माध्यम से अंग्रेज भारतीयों को यह बता रहे थे कि, उन्होंने भारतीयों को सब कुछ दे दिया और ब्रिटिश जनता और प्रशासन को बताया गया कि, उन्होंने भारतीयों को कुछ नहीं दिया है।

ब्रिटिश जनता को यह बताया गया कि, प्रस्तावित संघ में देशी रियासतों के ऊपरी सदन में 40 प्रतिशत तथा निचले सदन में 33 प्रतिशत सदस्य होगें, इससे रियासतें अंग्रेजों की मित्र रहेगी और कांग्रेस अपने उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकेगी। फिर भी देशी रियासतों ने संघ के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। तर्क दिया गया कि, इससे देशी रियासतों के उन गैर संघीय अधिकारों का पर्याप्त संरक्षण नहीं होता था, जो उन्हें विभिन्न संधियों के माध्यम से प्राप्त है। उधर कांग्रेस, मुस्लिम लीग आदि ने भी संघीय योजना को नकार दिया।

पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने तो इसे 'अत्यधिक प्रतिक्रियावादी, प्रगतिहीन एवं विकास की संभावनाओं को नष्ट करने वाला कहा।' जिन्ना ने भी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा कि, 'यह योजना पूर्णतः सड़ी हुई, मौलिक रूप से खराब तथा पूर्णतः अस्वीकार योग्य थी।' इस प्रकार संघीय योजना अस्तित्व में नहीं आ सकी। जिसका उद्घाटन सम्राट की घोषणा से होना था। लागू होने से पहले ही यह योजना मृत हो गयी। गवर्नर जनरल ने भी 11 सितम्बर, 1939 की घोषणा से संघीय योजना को लागू नहीं करने की घोषणा कर दी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. गवर्नर जनरल ने संघीय योजना को कब लागू नहीं करने की घोषणा की ?

   (क) 5 सितम्बर, 1939 ई0 को (ख) 10 सितम्बर, 1939 ई0 को

   (ग) 11 सितम्बर, 1939 ई0 को (घ) 25 सितम्बर, 1939 ई0 को

2. संघीय सूची में कितने विषय थे ?

   (क) 23 (ख) 39

   (ग) 20 (घ) 59

3. ब्रिटिश भारत में कितने प्रांत थे ?

(क) दस (ख) ग्यारह

(ग) आठ (घ) पाँच

4. संघीय योजना को किसने 'अत्यधिक प्रतिक्रियावादी, प्रगतिहीन एवं विकास की संभावनाओं को नष्ट करने वाला कहा' था ?

(क) महात्मा गांधी ने (ख) पटेल ने

(ग) पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने (घ) जिन्ना ने

5. संघीय योजना को किसने कहा 'यह योजना पूर्णतः सड़ी हुई, मौलिक रूप से खराब तथा पूर्णतः अस्वीकार योग्य थी' ?

(क) महात्मा गांधी ने (ख) पटेल ने

(ग) पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने (घ) जिन्ना ने

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) संघीय योजना के अस्तित्व में आने के लिए क्या शर्तें थीं ?

(ख) 1935 का अधिनियम प्रस्तावना रहित क्यों था ?

2. **नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:**

(अ) अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन कीजिये ?

1.4.3 प्रान्तीय स्वायत्तता

1935 के अधिनियम का सबसे महत्वपूर्ण प्रावधान प्रानतीय स्वायत्ता थी। अधिनियम ने ब्रिटिश भारतीय प्रान्तों को वैधानिक दर्जा देकर प्रान्तों को महत्वपूर्ण इकाई बना दिया था। प्रानतों को स्वायत्ता देकर ब्रिटिश सारे संसार को और भारतीय को यह बताना चाहते थे कि, वे भारतीयों के सच्चे हितैषी हैं। वे शनैः - शनैः प्रशासन की बागडोर भारतीयों को सौंपने का पवित्र विचार रखते हैं तथ उनकी मंशा भारतीयों के प्रति सकारात्मक हैं।

1935 के अधिनियम से प्रांतों को स्वशासित राजनीतिक इकाई का दर्जा मिल जाने से प्रान्त अब अपने आंतरिक मामलों में स्वनिर्णय लेने में सक्षम हो गये थे। प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत

प्रांतीय सरकारों को निश्चित निर्धारित और सुस्पष्ट क्षेत्र में विशेष अधिकार प्रदान किये गये थे। प्रांतीय सरकारें इस निश्चित निर्धारित क्षेत्र से संबंधित विषयों पर कानून बनाने और लागू करने के लिए स्वतंत्र थी। प्रांतीय स्वायत्तता योजना के अन्तर्गत प्रांतीय सूची के 54 विषयों में प्रांतीय सरकारों की विशिष्ट अधिकार प्राप्त थे, इन विषयों पर प्रांतीय सरकारें, संघीय सरकार एवं विधानमण्डल के हस्तक्षेप से मुक्त थी।

प्रांतीय स्वायत्तता के अंतर्गत की योजना में प्रत्येक प्रान्त के लिए एक कार्यपालिका तथा विधानमण्डल का प्रावधान किया गया था। ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रांतों में से छः विधानमण्डलों में दो सदनों की व्यवस्था की गयी थी। प्रांतीय स्वायत्तता को विद्वानों ने व्याख्यामित करने का प्रयास किया है। उन्होंने प्रांतीय स्वायत्तता से तात्पर्य प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायी सरकारों की स्थापना तथा प्रान्तों को एक निश्चित निर्धारित क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने के अधिकार से माना है। अतः प्रांतीय स्वायत्तता से मतलब ऐसी स्वायत्तता से है, जिसमें प्रांतों को उनके लिए निर्धारित विषयों में पूर्ण स्वतंत्रता जिसमें कोई बाह्य हस्तक्षेप न हो और प्रांतीय सरकारें स्वतंत्रतापूर्वक कार्य कर सके तथा समस्त प्रांतों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना होना।

1.4.3.1 प्रांतीय कार्यपालिका

1935 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय कार्यपालिका की संरचना गवर्नर और प्रंातीय मंत्रिपरिषद से मिलकर बनती थी। प्रांतीय कार्यपालिका की शक्ति गवर्नरों में समाहित होती थी उसे प्रशासन में सहयोग देने के लिए एक मंत्रीपरिषद होती थी। इस प्रकार प्रांतों का शासन मंत्रिपरिषद के सहयोग से गवर्नर चलाता था। गवर्नर प्रान्तों की कार्यपालिका का अध्यक्ष होता था। गवर्नरों की नियुक्ति भारत सचिव एवं गवर्नर जनरल की अनुशंसा पर ब्रिटिश समा्रट करता था। भारत सचिव की अनुशंसा पर बंगाल, बम्बई एवं मद्रास के गवर्नरों की तथा शेष अन्य प्रान्तों के गवर्नरों की नियुक्ति गवर्नर जनरल की अनुशंसा पर सम्राट करता था। प्रांतीय गवर्नर प्रांतों में ब्रिटिश सम्राट का प्रतिनिधि होता था। गवर्नर का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता था।

1.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ

1935 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय स्वायत्तता की योजना में गवर्नर को तीन प्रकार की कार्यपालिका शक्तियाँ प्रदान की गयी थी - स्वेच्छाचारी शक्तियाँ, व्यक्तिगत निर्णात्मक शक्तियाँ तथा मंत्रियों की सलाह से प्रयोग में होने वाली शक्तियाँ। प्रांतीय गवर्नरों को असीम स्वेच्छाचारी शक्तियाँ प्राप्त थी, यह गवर्नर की इच्छा पर ही निर्भर था कि, वह किन शक्तियों का प्रयोग स्वेच्छाचारी ढंग से करना चाहता है और किन की सलाह से प्रयोग करना चाहता था, अर्थात गवर्नर को ही यह निर्णय लेना होता था कि, वह कब स्वेच्छाचारी बने और कब नहीं बने। गवर्नरों को मंत्रीपरिषद की बैठक की अध्यक्षता का वैधानिक अधिकार था। प्रान्तीय विधानमण्डलों को बुलाने और भंग करने का

अधिकार भी गवर्नर को था। प्रान्तीय मंत्रियों की नियुक्ति एवं बर्खास्तगी का अधिकार उसे था। प्रान्तीय विधानमण्डलों की संयुक्त बैठक बुलाना तथा अध्यादेश जारी करने का अधिकार गवर्नर में निहित था इस प्रकार गवर्नर को अनेक स्वेच्छाचारी शक्तियाँ प्राप्त थी।

1935 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय गवर्नर को व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ प्रदन की गयी थी। जिनक प्रयोग वह प्रांतीय मंत्रियों की सलाह से करता था। गवर्नर प्रांतीय मंत्रियों की सलाह को मानने के लिए बाध्य नहीं था, अर्थात् प्रांतीय मंत्रियों की सलाह एवं परामर्श गवर्नर की इच्छा पर निर्भर था। प्रांतीय गवर्नर को प्रांतीय शक्ति और सुरक्षा रियासतों और उनके शासकों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करना, महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) की नियुक्ति करना, सार्वजनिक सेवाओं और पुलिस नियमों में संशोधन करना अल्पसंख्यकों की सुरक्षा सुनिश्चित करना आदि व्यक्तिगत निर्णय की शक्तियाँ प्राप्त थी।

1935 के अधिनियम से गवर्नर को अनेक ऐसी शक्तियाँ प्राप्त थी, जिनका प्रयोग वह मंत्रियों की सलाह से करता था। स्वेच्छाचारी शक्तियों और व्यक्तिगत निर्णयों संबंधी अधिकारों के अतिरिक्त जो भी अधिकार शेष थे, उनका प्रयोग गवर्नर मंत्रियों की सलाह पर करता था। ऐसी बहुत कम शक्तियाँ अधिनियम द्वारा प्रदत्त थी।

गवर्नर को 1935 के अधिनियम ने व्यवस्थापन शक्तियाँ भी प्रदान की थी। व्यवस्थापन शक्तियों से तात्पर्य ऐसी संवैधानिक शक्तियों से जिसमें विधानमण्डलों से संबंधित शक्तियाँ होती है। प्रांतीय सदनों की बैठक बुलाना, स्थगित करना एवं भंग करना संयुक्त बैठकें बुलाना तथा बैठकों को संबोधित करना, प्रांतीय विधानमण्डल की क्रिया विधि के लिए नियम कायदे बनाना, बिल पास करना तथा बिल को पुनर्विचार के लिए विधानमण्डल को वापस भेजना, आंतरिक शांति व्यवस्था तथा रियासतों से संबंधित मामलों पर बहस पर पाबंदी लगा सकता था, अध्यादेश जारी करने का अधिकार गवर्नर का था तथा विधानमण्डलों की परवाह किये बिना भी वह नियम कानून बनाना आदि शक्तियाँ उसे प्राप्त थी।

गवर्नर को 1935 के अधिनियम ने वित्तीय शक्तियों से भी परिपूर्ण कर रखा था विधानमण्डल गवर्नर के निर्देश पर बजट तैयार करते थे। विधानमण्डल की अस्वीकृति बाबजूद भी गवर्नर अपने विशेषाधिकार से विशेष धन स्वीकृत कर सकता था। विधानमण्डलों को अनुदान की मांग प्रस्तुत करने के लिए गवर्नर से अनुमति लेनी होती थी। इस प्रकार अनेक वित्तीय शक्तियाँ भी गवर्नर को प्राप्त थी। 1935 के अधिनियम के तहत गवर्नर को असीमित शक्तियाँ प्राप्त थी। गवर्नर को अधिनियम ने अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया था। समस्त शक्तियाँ गवर्नर में निहित थी और गवर्नर की शक्तियाँ पर अंकुश लगाने का कोई प्रावधान नहीं किया गया था। गवर्नर को इतनी शक्तियाँ प्राप्त थी कि, वह गवर्नर की इच्छा शक्ति पर ही निर्भर करता था कि, वह प्रान्तीय सरकार को कितना स्वायत्तशाली होने देता है। किसी भी स्वायत्तशासी शासन को कार्यपालिका के प्रमुख को इतने

अधिकार नहीं प्रदान किये जाते। गवर्नर को प्रदत्त इतनी शक्तियों को देखते हुए विद्वानों ने कहा है कि स्वायत्तता मंत्रिमण्डल को नहीं, अपितु गवर्नर को प्रदान की गयी है।

1935 के अधिनियम के प्रावधानों में प्रांतीय गवर्नर को शासन में सहयोग के लिए मंत्रिपरिषद् के गठन की बात कही गयी थी। मंत्रीपरिषद गवर्नर को विवेकाधीन विषयों के अतिरिक्त विषयों पर सलाह देती थी। यह सलाह भी गवर्नर के लिए बाध्यतापूरक नहीं थी। गवर्नर बहुमत दल के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करता था तथ उसी की सलाह पर मंत्रियों की नियुक्ति करता था। मंत्री का विधानमण्डल में अविश्वास होने पर हराया जा सकता था। मंत्रिपरिषद् सम्मिलित रूप से सदन के प्रति उत्तरदायी होती थी। किन्तु मंत्रिपरिषद् की स्थिति गवर्नर की शक्तियों के कारण अत्यन्त कमजोर हो गयी थी।

1.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल

प्रान्तीय विधानमण्डलों की व्यवस्था 1935 के अधिनियम के अंतर्गत की गयी थी। अधिनियम ने ब्रिटिश भारत के ग्यारह प्रान्तों में से छः प्रान्तों में द्विसदनीय विधानमण्डलों का प्रावधान किया गया था, जिसमें उच्च सदन विधानपरिषद तथा निम्न सदन विधानसभा कहलाता था। अधिनियम में प्रान्तों की विधानसभाओं के लिए सदस्यों की संख्या इस प्रकार थी, मद्रास में 215 बंगाल में 250, संयुक्त प्रांत में 228, बम्बई में 175, पंजाब में 175, बिहार में 152, मध्यप्रांत में 112, सिन्ध में 60, उड़ीसा में 60, असम में 108, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में 50। विधानसभाओं का कार्यकाल पाँच वर्ष का था, विशेष परिस्थिति में विधानसभा को निर्धारित करने का भी प्रावधान था। जबकि, विधानपरिषद एक विधानपरिषद स्थायी सदन था। विधानपरिषद के सदस्यों का कार्यकाल 9 वर्ष का होता था तथा विधानपरिषद के एक तिहाई सदस्य प्रति वर्ष तीन वर्ष में रिटायर हो जाते थे।

प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं को प्रान्तीय और समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्रदान किया गया था। अधिनियम में प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों को प्रश्न करने, पूरक प्रश्न पूंछने, काम रोकों प्रस्ताव लाने, आलोचना करो आदि का अधिकार प्रदान किया गया था। प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं के सदस्य निरंकुश प्रशासन पर अंकुश लाने का भी प्रयास करते थे। प्रांतीय विधानसभा अविश्वास प्रस्ताव से मंत्रियों को हटा सकती थी।

1.4.3.4 प्रांतीय स्वायत्ता का मूल्यांकन

प्रांतीय स्वायत्तता पर विचार करने पर विदित होता है कि 1935 के अधिनियम द्वारा प्रदत्त प्रांतीय स्वायत्तता मात्र एक डकोसला था। प्रांतीय स्वायत्तता नाममात्र की थी। गवर्नर को असीमित शक्तियाँ प्रदान की गयी थी। गवर्नर कभी भी प्रांतीय सरकारों का गला घोंट सकता था।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. ब्रिटिश भारत के कितने प्रांतों में दो सदनों की व्यवस्था की गयी थी ?

   (क) दस (ख) ग्यारह

   (ग) छः (घ) पाँच

2. प्रांतीय सूची में कितने विषय थे ?

   (क) 23 (ख) 54

   (ग) 20 (घ) 59

3. विधानसभाओं का कार्यकाल कितने वर्ष का था ?

   (क) दस (ख) ग्यारह

   (ग) छः (घ) पाँच

4. विधानपरिषद के सदस्यों का कार्यकाल कितने वर्ष का था ?

   (क) दस (ख) ग्यारह

   (ग) नौ (घ) पाँच

5. प्रांतीय गवर्नर को कितने प्रकार की कार्यपालिका शक्तियाँ प्राप्त थीं ?

   (क) तीन (ख) चार

   (ग) छः (घ) पाँच

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) प्रान्तीय विधानमण्डल।

   (ख) प्रांतीय कार्यपालिका।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) प्रांतीय गवर्नर की शक्तियों का विवरण दीजिये ?

1.4.4 केन्द्र में द्वैध शासन की स्थापना

1935 के अधिनियम से केन्द्र में द्वैध शासन स्थापित कर दिया गया था। द्वैध शासन अर्थात्, केन्द्र में गवर्नर जनरल और संघीय विधान मण्डल दो अलग - अलग प्रशासनिक ईकाईयों को शासन के अधिकार प्रदान किये गये थे। अधिनियम के अंतर्गत केन्द्रीय विषयों में से रक्षा, विदेश, धार्मिक मामले एवं कबाइली क्षेत्र आदि विषय, जिन्हें संरक्षित विषय कहा गया को गवर्नर - जनरल के अधीन कर दिया गया। इन विषयों पर गवर्नर जनरल अपनी परिषद् की सहायता से अपने विवेकानुसार शासन करेगा। गवर्नर जनरल एवं उसकी परिषद् के पार्षद केन्द्रीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थे।

इन विषयों के अलावा अन्य विषयों, जिन्हें हस्तान्तरित विषय कहा गया पर केन्द्रीय विधान मण्डलों के मंत्रियों द्वारा शासित होगें तथा ये मंत्री अपने कार्यों और उत्तरदायित्वों के लिए केन्द्रीय विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होंगे। इस प्रकार केन्द्र में दो शासन गवर्नर जनरल एवं केन्द्रीय विधानमण्डल बना दिये गये। इस द्वैध शासन की स्थापना के पीछे तर्क यह दिया गया कि, रक्षित विषय अत्यन्त महत्वपूर्ण है, साम्राज्य के लिए ये संवेदनशील है और साम्राज्य की स्थापना के लिए भी आवश्यक है तथा साम्राज्य की सुरक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही यह भी तर्क दिया गया कि, भारतीय इतने योग्य और अनुभवी नहीं है कि, ऐसे संवेदनशील विषयों को उन्हें सौंपा जाये।

1.4.5 विषयों का विभाजन

1935 के अधिनियम के द्वारा शासन के विषयों का स्पष्ट रूप से विभाजन कर दिया गया था। ताकि, शासन संचालन में कोई खिंचाव न पैंदा हो।अधिनियम के द्वारा विषयों का स्पष्ट विभाजन तीन सूचीयों - संघीय राज्य एवं समवर्ती सूची में कर दिया गया था। संघीय सूची, जिसमें 59 विषय रखे गये थे, ये विषय समस्त भारत पर एक समान लागू होने थे। प्रांतीय सूची में 54 विषय रखे गये थे तथा समवर्ती सूची में 36 विषय रखे गये थे। इन विषयों पर संघीय सूची के विषयों पर संघ, प्रांतीय सूची के विषयों प्रांत तथा समवर्ती सूची पर संघ और प्रांत दोनों कानून बना सकते थे, किन्तु विवाद की स्थिति में समवर्ती सूची पर बनाये गये कानून पर संघ के कानून को मान्यता प्रदान करने का प्रावधान था।

1.4.6 विधानमण्डलों का विस्तार

1935 के अधिनियम के द्वारा विधानमण्डलों का विस्तार कर दिया गया। इसका उद्देश्य अधिक से अधिक लोगों को विधानमण्डलों में स्थान प्रदान करना तथा विभिन्न क्षेत्रों को विधानमण्डलों में अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान करना भी था। इसके द्वारा ब्रिटिश सरकार भारतीयों में

अपनी स्वीकारता को भी बढ़ाना चाहती थी तथा यह भी दर्शाना चाहती थी कि, हम भारतीयों को शासन में अधिक से अधिक भागीदारी प्रदान कर रहे है। संघीय विधानमण्डल के उच्च सदन में 260 तथा निम्न सदन में 375 सदस्य प्रस्तावित किये गये थे। इसके साथ ही, प्रांतीय विधानमण्डलों के सदस्यों की संख्या भी पहले से विधानमण्डलों की भी व्यवस्था की गयी थी। इससे प्रान्तों में भी भारतीयों का प्रतिनिधित्व बड़ा दिया गया था।

1.4.7 साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली

1935 के अधिनियम ने साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को और अधिक विस्तृत एवं सुदृढ़ बना दिया। साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को अंग्रेजों ने साम्राज्य के हित में कायम किया था तथा भारतीयों में वैमनस्यता को और अधिक बढ़ाने के लिए था। मुसलमानों को उनकी जनसंख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इसके साथ ही, हरिजनों के लिए भी आरक्षित निर्वाचन प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। इसका उद्देश्य हिन्दुओं का हिन्दुओं के साथ प्रतितोलन करना तथा हिन्दुओं में आपस में फूट डालना था।

1.4.8 मताधिकार का विस्तार

1935 में इस अधिनियम से मताधिकार का भी विस्तार कर दिया गया था। अब ग्यारह प्रतिशत भारतीय मताधिकार का प्रयोग कर सकते थे। इससे भारतीयों को अधिक संख्या में मताधिकार का अधिकार मिल सका।

1.4.9 संघीय न्यायालय की स्थापना

1935 के अधिनियम के अंतर्गत एक संघीय न्यायालय के स्थापना का प्रावधान भी किया गया था। संघीय न्यायालय की स्थापना इस उद्देश्य से करने का प्रावधान किया गया था कि, यह न्यायालय संघ और प्रान्तों के मध्य होने वाले विवादों को सुलझाने का कार्य करेगा। यह न्यायालय भारत के न्यायालयों में उच्च था, किन्तु यह न्यायालय भारत का सर्वोच्च न्यायालय नहीं था, इसके विरूद्ध इंग्लैण्ड की प्रिवी कौंसिल में अपील की जा सकती थी। फिर इस न्यायालय का अपना विशिष्ट महत्व था, कम से कम भारत में इस तरह का न्यायालय तो स्थापित किया गया। जो भारत में सभी न्यायालय पर उच्च था और इससे भविष्य के भारत के लिए भविष्य के उच्चतम न्यायालय का रास्ता तो साफ हुआ ही। इस संघीय न्यायालय को 1935 के अधिनियम की व्याख्या करने का भी अधिकार प्रदान किया गया था। अर्थात् यह न्यायालय जिस अधिनियम के तहत बना उस अधिनियम की व्याख्या भी कर सकता था।

1.4.10 संरक्षण एवं आरक्षण के प्रावधान

1935 के अधिनियम में विशिष्ट संरक्षण एवं आरक्षण के प्रावधान भी किये गये थे। इस अधिनियम में गवर्नर जनरल को अनेक विशेषाधिकार प्रदान किये गये थे। यह विशेषाधिकार थे - संघीय विधानमण्डल के रक्षित विषयों जैसे - रक्षा, विदेश, धार्मिक मामलें एवं कबाइली क्षेत्रों का प्रावधान गवर्नर जनरल को प्रशासन के लिए संरक्षित और आरक्षित किये गये थे, जिनका प्रशासन गवर्नर जनरल अपने पार्षदों के माध्यम से चलता था।

गवर्नर - जनरल को प्रदत्त ये विशेषाधिकार बहुत ही वृहद परिप्रेक्ष्य में लागू होते थे, जैसे अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करना, अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करना, अन्य अल्पमतों के हितों एवं अधिकारों की रक्षा करना, सार्वजनिक सेवाओं का समुचित तरीके से कार्य करना, आंतरिक एवं बाह्य सुरक्षा की व्यवस्था करना, शांति और व्यवस्था बनाये रखना, देशी रियासतों के शासकों के पदों एवं अधिकारों की सुरक्षा, साम्राज्य के आर्थिक हितों की रक्षा करना आदि थे। कुल मिलाकर गवर्नर - जनरल को प्राप्त संरक्षण और आरक्षण के विशेषाधिकार ब्रिटिश साम्राज्य के भारत में हितों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रदान किये गये थे।

गवर्नर जनरल को इन प्रावधानों के अंतर्गत असीम शक्तियाँ प्राप्त थी, वह अपने स्वविवेक से जो उसे उचित लगता कर सकता था। संरक्षण और आरक्षण के इन प्रावधानों से गवर्नर जनरल अधिनियम की मूल भावना को भी कुचल सकता था। वह इन प्रावधानों के माध्यम से मनमाने ढंग से निरंकुश शक्ति की तरी कार्य सकता था। आपातकाल के समय तो संपूर्ण शक्ति को वह अपने हाथों में लेकर स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक की तरह कार्य करता था। गवर्नर जनरल को प्राप्त इन विशेषाधिकारों को ही संरक्षण और आरक्षण की संबा प्रदान की गयी थी।

1.4.11 भारतीय व्यवस्थापिका का सत्तारहित स्वरूप प्रदान

1935 के अधिनियम के प्रावधानों के कारण भारतीय व्यवस्थापिका पंगु बन गयी थी। अधिनियम में जानबूझकर ऐसा प्रावधान किया गया था, जिससे भारतीय व्यवस्थापिका कोई ऐसा निर्णय न ले सके, जिससे साम्राज्य को हानि हो। 1935 के अधिनियम के तहत भारतीय व्यवस्थापिका जो कानून बनाती उसकी स्वीकृति ब्रिटिश संसद से लेना अनिवार्य था अर्थात् भारतीय व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित कानून ब्रिटिश संसद की स्वीकृति के बाद ही कानून बन सकते थे। इस प्रकार 1935 के अधिनियम ने भारतीय व्यवस्थापिका को सत्तारहित स्वरूप प्रदान कर दिया था।

1.4.12 ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता

1935 के अधिनियम से ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता स्थापित हो गयी थी। 1935 के अधिनियम में संशोधन की शक्ति ब्रिटिश संसद में निहित कर दी गयी थी। भारतीय व्यवस्थापिका 1935 के अधिनियम में संशोधन नहीं कर सकती थी। संशोधन की शक्ति तो ब्रिटिश संसद को सौंप दी गयी थी अर्थात् 1935 के अधिनियम में संशोधन का अधिकार ब्रिटिश संसद को ही था। इस प्रकार 1935 के अधिनियम ने ब्रिटिश संसद की सर्वोच्चता स्थापित कर दी थी।

1.4.13 भारत परिषद का अंत

1935 के अधिनियम ने भारत परिषद का अंत कर दिया था। इससे गृह सरकार में आमूलचूल परिवर्तन आया भारत सचिव का अब उन विषयों पर नियंत्रण नहीं रहा, जिन विषयों पर गवर्नर जनरल अपने मंत्रियों की सलाह पर कार्य करता था। अर्थात् रक्षित विषयों पर भारत सचिव का नियंत्रण अब समाप्त हो गया। 1935 के अधिनियम ने भारत परषिद् को समाप्त कर दिया। उसके स्थान पर सलाहकारों की नियुक्ति कर दी गयी।

1.4.14 1935 का अधिनियम का मूल्यांकन

1935 का अधिनियम, अंग्रेजी सरकार द्वारा भारतीय प्रशासन के लिए जारी अधिनियमों एवं विधिक कानूनों की एक श्रृंखला था। 1935 के अधिनियम के अनेक प्रावधान अपना वास्तविक रूप नहीं ले सके। 1935 के अधिनियम की संघीय योजना कार्यरूप लेने से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गयी। यह इतनी उलझी हुई थी कि, वह अस्तित्व में आ ही नहीं सकती थी। इसी कारण केन्द्रीय सरकार 1919 के अधिनियम के कानूनों के आधार पर ही चलती रही। सामुदायिक एवं प्रतिक्रियावादी तत्वों को अधिनियम ने और उभारा। अधिनियम में गवर्नर जनरल एवं प्रांतीय गवर्नरों को अत्यधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी थी, जिससे अधिनिमय की वास्तविक आत्मा को कुचल दिया गया था। प्रांतीय स्वायत्तता तो नाममात्र की ही रह गयी थी। 1935 के अधिनियम के कुछ प्रावधान लागू हो गये थे, जैसे संघीय न्यायालय 1935 में स्थापित हो गया, संघीय बैंक भी 1935 में स्थापित हो गया तथा 1937 ई0 में प्रांतों में सरकारों ने अपना कार्यभार संभाल लिया था।

1.5 सारांश

1935 का अधिनियम अपने आप में अभिनव था। यह अधिनियम अब तक के सभी अधिनियमों विशेष था। अधिनियम में संघीय योजना और प्रांतीय स्वायत्ता अपने आप में विशिष्ट प्रावधान थे। इस अधिनियम के द्वारा भारत के भावी संविधान की एक तरह से आधारशिला रख दी गयी थी और स्वतंत्र भारत का आधुनिक संविधान बहुत हद तक 1935 के अधिनियम पर ही आधारित है। 1935 के अधिनियम से भारत में संघीय न्यायालय एवं संघीय बैंक स्थापित हो सके।

हालाँकि, 1935 के अधिनियम में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली, प्रांतीय गवर्नरों को अत्यधिक शक्तियाँ आदि दोष निहित थे।

1.6 तकनीकी शब्दावली

साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली:- धर्म के आधार पर सदस्यों के चुनाव की व्यवस्था।

वैमनस्यता :- बैरभाव रखना।

स्वेच्छाचारी:- मनमाना आचरण करने वाला, नियम कानून को न मानने वाला निरंकुश शासक।

अपरिवर्जित क्षेत्र:- प्रांतीय गवर्नर को शासक के लिए दिये गये क्षेत्र। जिन पर प्रांतीय मंत्रीपरिषद् का कोई हस्तक्षेप नहीं होता था।

वैधानिक:- कानूनी

निरंकुश शासक:- जिस पर कोई अंकुश नहीं हो। अर्थात् ऐसा शासक जिसके कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता हो।

1.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 1.4.2 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 1.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन
2. देखिए 1.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना
3. देखिए 1.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना
4. देखिए 1.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन
5. देखिए 1.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) देखिए 1.4.2 अखिल भारतीय संघ की योजना

   (ख) देखिए 1.4.1 प्रस्तावना रहित अधिनियम

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 1.4.2.1 अखिल भारतीय संघ की योजना का मूल्यांकन

इकाई 1.4.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 1.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
2. देखिए 1.4.3 प्रान्तीय स्वायत्ता
3. देखिए 1.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
4. देखिए 1.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल
5. देखिए 1.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए

1. (क) देखिए 1.4.3.3 प्रान्तीय विधानमण्डल

   (ख) देखिए 1.4.3.1 प्रांतीय कार्यपालिका

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देखिए 1.4.3.2 प्रांतीय गवर्नर की शक्तियाँ

1.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, आर॰ सी॰ - भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, संवैधानिक विकास तथा आधुनिक संविधान का तुलनात्मक अध्ययन, नई दिल्ली, 1965
2. बसु, डी॰ डी॰ - भारत का संविधान, नागपुर, 2001
3. परांजपे, एन॰ वी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2003
4. पाण्डेय, जय नारायण - भारत का संविधान, इलाहाबाद, 1996
5. राय, सत्या एम॰ (संपा॰) - भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, 1990
6. ताराचंद - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, नई दिल्ली, 2007

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1971

2. फड़िया, बी॰ एल॰ - भारत का राष्ट्रीय आंदोलन तथा सांविधानिक विकास, जयपुर,1991

3. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1999

4. पाठक,सुशीलमाधव-भारतीयस्वाधीनतासंग्रामकाइतिहास(1857-1947),वाराणसी, 1993

5. त्रिपाठी, जी॰ पी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2001

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 1935 के अधिनियम की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिये ?

प्रश्न 2. अखिल भारतीय संघ की योजना का सविस्तार वर्णन कीजिये ? यह क्यों असफल हो गयी

प्रश्न 3. 1935 के अधिनियम के तहत प्रांतीय स्वायत्ता का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

इकाई दो

भारत छोड़ो आन्दोलन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि
  2.3.1 द्वितीय विश्व युद्ध
  2.3.2 भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में शामिल करना
  2.3.3 डोमिनियन स्टेट्स की घोषणा
  2.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा
  2.3.5 अगस्त प्रस्ताव
  2.3.6 व्यक्तिगत सत्याग्रह
  2.3.7 द्वितीय विश्व युद्ध की भयानकता एवं अंतर्राष्ट्रीय दबाव
  2.3.8 क्रिप्स मिशन
2.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव
  2.4.1 भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम
  2.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ
2.5 सारांश
2.6 तकनीकी शब्दावली
2.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भारत की स्वतंत्रता के लिए भारतीयों ने अपना सर्वस्व त्यागकर अंग्रेजों का सामना किया। भारतीयों ने अपने प्राण - प्रण से स्वतंत्रता संग्राम की बेदी पर स्वयं न्यौछावर कर दिया था। स्वतंत्रता संग्राम की ओर अंतिम कदम बढ़ाते हुए भारतीयों ने 1942 ई0 में 'भारत छोड़ो आन्दोलन' चलाया। इस

आन्दोलन में भारतीयों ने घोर संघर्ष किया। यह आंदोलन अपने आप में अभिनव आंदोलन था, जिसमें देश का प्रत्येक नागरिक स्वयं अपना नेता था और उसका अपना स्वयं का कार्यक्रम था तथा उसे स्वयं तय करना था कि वह किस प्रकार के साधनों का प्रयोग करेगा। किन्तु उद्देश्य निश्चित था, अंतिम सांस तक संघर्ष करना और भारत को स्वतंत्रता दिलाना।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी स्वतंत्रता संग्राम के महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जान सकेंगे।
2. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझ सकेगें।
3. विद्यार्थी द्वितीय विश्व युद्ध के बारे में जानेंगे।
4. विद्यार्थी अगस्त प्रस्ताव के बारे में जान सकेंगे।
5. विद्यार्थी व्यक्तिगत सत्याग्रह को समझ सकेगें।
6. विद्यार्थी क्रिप्स मिशन को समझ सकेगें।
7. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव के बारे में जान सकेंगे।
8. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों को समझ सकेगें।
9. विद्यार्थी भारत छोड़ो आन्दोलन की प्रगति एवं घटनाओं को जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी भूमिगत आंदोलन, समानान्तर सरकारों आदि के बारे में जान सकेंगे।

2.3 भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि

भारत की आम जनता की स्वतंत्रता के लिए तृष्णा ने आंदोलन को विकराल रूप प्रदान किया। जिससे अंग्रेजी सरकार की चूँलें हिल गयी और अंत में भारत छोड़ो आन्दोलन भारत की स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि बन गया।

2.3.1 द्वितीय विश्व युद्ध

भारत छोड़ो आंदोलन उन सभी आंदोलनों की अंतिम कड़ी था, जो आजादी के लिए किये गये थे। भारत छोड़ो आंदोलन से पहले भारतीय राजनैतिक पटल पर ऐसी पृष्ठभूमि बनने लगयी थी, जिनके कारण आन्दोलन अवश्यसंभावी बन गया था। ऐसी परिस्थिति में 1 सितम्बर, 1939 ई0 में

द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ हो गया। इंग्लैण्ड और उसके सहयोगियों ने द्वितीय विश्व की तार्किकता को प्रगट करने के लिए कहा कि वे तो विश्व में प्रजातंत्र की सुरक्षा की सद्भावना से युद्ध कर रहे हैं।

2.3.2 भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में शामिल करना

इंग्लैण्ड ने युद्ध का पवित्र आदर्श बताते हुए युद्ध छेड़ा। किन्तु इसी बीच भारत में वायसराय लिनलिथगों ने 3 सितंबर, 1939 को विश्व युद्ध में इंग्लैण्ड की ओर से भारत के सम्मिलित होने की एक तरफा घोषणा कर दी तथा समस्त आपातकालीन शक्तियों को अपने हाथों में ले लिया। वायसराय के इस कृत्य से सारा देश सन्न रहा गया। भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं ने कहा कि वायसराय न किसी सलाह से यह कदम उठाया है और भारत को किस पवित्र आदर्श के लिए युद्ध में झौंक दिया है? वायसराय का भारतीय जनमानस की इच्छा के विरूद्ध भारत को युद्ध में सम्मिलित करने के निर्णय के विरूद्ध गहरा आक्रोश भारतीयों में व्याप्त हो गया। प्रारंभ में तो गांधीजी ने भी इंग्लैण्ड का नैतिक समर्थन किया। किन्तु कालान्तर में उन्होंने अपना विचार बदल दिया। वायसराय के निर्णय ने भारतीय राजनैतिक धरातल में भूचाल ला दिया था, चारों ओर राजनैतिक सरगर्मी तेजी से बढ़ती जा रही थी, ऐसी दशा में कांग्रेस ने भारतीयों को आत्मनिर्णय का अधिकार की मांग कर डाली।

2.3.3 डोमिनियन स्टेट्स की घोषणा

वायसराय लिनलिथगों ने बढ़ते राजनैतिक तापमान को देखते हुए 17 अक्टूबर 1939 की घोषणा की कि युद्ध के बाद भारतीयों को डोमिनियन स्टेट्स (औपनिवेशिक अधिराज्य) प्रदान किया जायेगा। वायसराय की इस घोषणा से कांग्रेस के नेता तिलमिला गये और उन्होंने कहा कि 'औपनिवेशिक अधिराज्य' की बात अब बहुत पुरानी हो चुकी है और अब वक्त आ गया है कि, जब इंग्लैण्ड को भारतीयों के लिए अगले प्रगतिशील कदम उठाने चाहिए और भारत को आजादी देने की प्रक्रिया प्रारंभ करने की बात करना चाहिए।

2.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा

बहरहाल, वायसराय लिनलिथगों के डोमिनियन स्टेट्स के प्रस्ताव को कांग्रेस ने ठुकरा दिया और अपनी लगातार की जा रही अनदेखी पर 23 अक्टूबर, 1939 ई0 को कांग्रेस के आठों प्रांतों की सरकारों ने इस्तीफा दे दिया। इससे निश्चित रूप से अंग्रेजों और कांग्रेस के मध्य खिचाव और बढ़ गया। ऐसी दशा में भी गाँधी - नेहरू इंग्लैण्ड का सहयोग करने की भावना रखते थे और अंग्रेजी सरकार से तार्किक वार्ता की इच्छा रखते थे, किन्तु अंग्रेजी सरकार कांग्रेसियों की एक भी बात सुनने को तैयार नहीं थी। इससे कांग्रेस और अंग्रेजी सरकार के बीच मतभेद और गहरे होते चले गये।

2.3.5 अगस्त प्रस्ताव

अंग्रेजी सरकार ने बढ़ते गतिरोध को समाप्त करने की दृष्टि से और युद्ध में भारतीयों के सहयोग लेने की गर्ज से तथा भारतीय राजनैतिक हलचल को शांत करके युद्ध पर ध्यान देने की दृष्टि से कोई न कोई रास्ता निकालने का निर्णय लिया और 8 अगस्त, 1940 ई0 को एक मसौदा प्रस्तुत किया, जोकि भारतीय इतिहास में 'अगस्त प्रस्ताव' (अगस्त ऑफर) के नाम से जाना जाता है। अगस्त प्रस्ताव के प्रस्तावों में कुछ नया नहीं था, इसमें भी डोमिनियन स्टेट्स की बात कही गयी थी, इसके साथ ही विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद संविधान पीठ के गठन की बात कही गयी थी।

प्रस्ताव में वायसराय की कार्यकारिणी परिषद एवं सलाहकार परिषद में भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने की बात कही गयी थी और जुलाई 1941 ई0 में अंग्रेजी सरकार ने प्रगतिशील कदम उठाते हुए वायसराय की कार्यकारिणी में विस्तार करते हुए आठ सदस्यों को नियुक्त किया। अब वायसराय की कार्यकारिणी के 12 में से 8 सदस्य भारतीय थे, जो कि अब तक के इतिहास में सर्वाधिक होने के साथ ही, भारतीयों के बहुमत वाली परिषद थी। किन्तु अंग्रेजों का 'अगस्त प्रस्ताव' कांग्रेस को संतुष्ट न कर सका। क्योंकि इसमें देश के विभाजन की भावना छिपी थी, क्योंकि सत्ता हस्तांतरण अन्य वर्गो सम्प्रदायों की संतुष्टि के बिना संभव न था।

2.3.6 व्यक्तिगत सत्याग्रह

अंग्रेजी सरकार और कांग्रेस के बीच लगातार मतभेद और मतभेद गहरी खायी का रूप लेता जा रहा था। ऐसे समय में जब कांग्रेस, अंग्रेजी सरकार के साथ सहयोगात्मक रवैया अपना रही थी, तब भी अंग्रेजी सकरार कोई सकारात्मक पहल नहीं कर रही थी। अब कांग्रेस ने आगे की रणनीति बनाते हुए आगामी आंदोलन के लिए देश की जनता में चेतना जागृत करने की अंग्रेजों के विरूद्ध एक सीमित आंदोलन चलाने का विचार किया। 15 अगस्त, 1940 कें बंबई अधिवेशन में कांग्रेस ने व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारंभ करने का निर्णय ले लिया। महात्मा गाँधी इस आंदोलन के प्रमुख सूत्रधार थे, उन्होंने विनोवा भावे को प्रथम एवं पं. जवाहर लाल नेहरू को द्वितीय व्यक्तिगत सत्याग्राही चुना।

इस आंदोलन का प्रमुख उद्देश्य देशभर में अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध अहिंसात्मक ढंग से विनोध प्रगट करना एवं युद्ध के विरूद्ध अपना सकारात्मक विरोध प्रगट करना था। ज्ञातव्य रहे कि कांग्रेस ने बड़ी ही रणनीतिक चपलता से इस आंदोलन को बड़े ही सीमित ढंग से चलाया। वह अंग्रेजी सरकार को किसी भी प्रकार से दमन का अवसर नहीं देना चाहती थी। कांग्रेसी बड़ी संख्या में अंग्रेजी सरकार और विश्व युद्ध के खिलाफ आवाज बुलंद करके शांति से अपनी गिरफ्तारी देने लगे और बड़ी संख्या में लोग जेल में जा चुके थे, किन्तु 1941 के अंत में आंदोलन कमजोर पड़ने लगा

और कांग्रेसियों को जेल से मुक्त कर दिया गया। किन्तु कांग्रेस का राजनैतिक वातावरण को गर्माये रखने का उद्देश्य सफल रहा।

2.3.7 द्वितीय विश्व युद्ध की भयानकता एवं अंतर्राष्ट्रीय दबाव

विश्व युद्ध की भयानकता लगातार बढ़ती जा रही थी ब्रिटेन एवं उसके मित्रों पर लगातार जर्मनी एवं जापान का दबाव बढ़ता जा रहा था। न केवल यूरोप में अपितु एशिया में भी ब्रिटेन और उसके मित्रों की स्थिति बिगड़ रही थी। जापान लगातार पूर्व से भारत की ओर आगे गढ़ता जा रहा था। ऐसी स्थिति में ब्रिटेन को लगने लगा था कि भारतीयों का सकारात्मक सहयोग आवश्यक है। उधर अंतर्राष्ट्रीय दबाव भी लगातार ब्रिटेन पर बनता जा रहा था कि, वह भारतीयों से सकारात्मक वार्ता करे और कोई सकारात्मक कदम उठाये। जिससे विश्व युद्ध में भारतीयों का सक्रिय सहयोग मिल सके। अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट की तो स्पष्ट धारणा थी कि, भारतीयों को युद्ध के बाद स्वतंत्रता देने का वचन देने के साथ ही विश्व युद्ध में उनका सहयोग ले लेना चाहिए।

उधर चीनी राष्ट्रपति च्यांग काई शेक भी भारतीयों की आजादी की मांग का समर्थन कर रहे थे और इस बारे में उन्होंने अमरीकी राष्ट्रपति से भी बात की थी। साथ ही उनका मानना था कि, यदि भारत को स्वतंत्र कर दिया जायेगा, तो जापान के आक्रमण का खतरा भारत पर नहीं मंडरायेगा। बहरहाल, विश्व युद्ध की तीव्रता और उसमें बिगड़ती ब्रिटेन की स्थिति और अंतर्राष्ट्रीय जनमत का भारत की आजादी के पक्ष में होने का लाभ कांग्रेस उठाना चाहती। कांग्रेस का मानना था कि ऐसे समय में जब अंतर्राष्ट्रीय स्थिति भारत के पक्ष में बनती जा रही, का 'भारत की आजादी' की मांग के लिए उपयुक्त है अतः कांग्रेस ने एक बड़े आंदोलन की रूपरेखा का विचार पनपने लगा।

2.3.8 क्रिप्स मिशन

राजनैतिक गतिरोध को समाप्त करने एवं अंतर्राष्ट्रीय दवाब के चलते ब्रिटेन ने भारत में एक संवैधानिक आयोग 23 मार्च, 1942 को भेजा। इस आयोग के अध्यक्ष प्रधानमंत्री चर्चिल के युद्ध मंत्रीमण्डल के सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स थे और उन्हीं के नाम से इसे 'क्रिप्स मिशन' के नाम से जाना गया। चर्चिल ने क्रिप्स को एक निश्चित निर्धारित प्रारूप के साथ भारत भेजा था, जिसके अतिक्रमण अनुमति क्रिप्स को नहीं थी। क्रिप्स को भारत में सभी धर्मो, वर्गो एवं जातिगत समूहों का ध्यान रखने की हिदायत दी गयी थी और सभी की सहमति एवं संतुष्टि का ध्यान क्रिप्स को रखना था। इन सब से ऊपर क्रिप्स को ब्रिटिश हितों की सर्वोपरीयता का ध्यान रखना था।

भारत पहुंचते ही क्रिप्स ने अपनी पवित्र धारणा व्यक्त करते हुए कहा कि, हमारी नीति का अंतिम उद्देश्य 'शीघ्रातिशीघ्र परिषद' के विचार विमर्श के लिए 'प्रस्ताव' प्रस्तुत किया और ठीक दो दिन बाद उन्होंने इसे भारतीयों के सामने विचार विमर्श के लिए प्रस्तुत कर दिया। क्रिप्स 29 मार्च,

1942 में प्रगतिशील पहल करते हुए प्रस्ताव को 'आम जनता' के विचार विमर्श के लिए पत्रकारों के सामने प्रस्तुत किया। क्रिप्स का प्रस्ताव अब तक के प्रस्तावों में सबसे अधिक प्रगतिशील एवं अनुगामी थे। क्रिप्स के मंसूबों पर लिनलिथगों को विश्वास नहीं था। यहाँ तक कि, उसने त्याग पत्र देने तक की धमकी चर्चिल को दे डाली थी। किन्तु, चर्चिल ने लिनलिथगों को समझाया कि ऐसे विकट समय में इसका गलत संदेश जायेगा। हमारी नीति और नियत पूर्णतः स्पष्ट है। भारतीय इसे स्वीकार नहीं करते तो भी संपूर्ण विश्व में हमारे प्रयासों की निष्पक्षता एवं ईमानदारी सिद्ध हो जायेगी।

क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रावधानों में स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स), संवैधानिक सभा का गठन तथा कॉमनवेल्थ से पृथक होने का अधिकार सम्मिलित था। क्रिप्स ने स्पष्ट किया कि, विश्व युद्ध के बाद भारत को स्वशासन दे दिया जायेगा। भारतीय अपना संविधान स्वयं बनाये, जिसकी संविधान सभा का गठन निर्वासित सदस्यों से होगा। प्रांतों एवं रियासतों को संविधान को स्वीकार ने एवं अस्वीकारने का अधिकार होगा तथा जातीय एवं अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान रखा जायेगा। कुल मिलाकर क्रिप्स के प्रस्तावों में प्रांतीय स्वायत्तत्ता, शक्ति हस्तांतरण के समय अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिए संधि और अंत में भारत के विभाजन के बीज विद्यमान थे।

क्रिप्स के प्रस्तावों पर लगातार 15 दिनों तक गंभीर चर्चा होती रही और अंत में प्रतिरक्षा संबंधी विषयों पर कांग्रेस से बात नहीं बनी और क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों को भारतीयों ने ठुकरा दिया। बहुत से भारतीय नेताओं ने इन प्रस्तावों को देर से उठाया गया कदम बताया और गांधीजी ने तो क्रिप्स के प्रस्तावों को 'उत्तरतिथीय चैक' की संज्ञा' तक दे डाली थी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. द्वितीय विश्व युद्ध कब प्रारंभ हुआ ?

   (क) 5 सितम्बर, 1939 ई0 को (ख) 10 सितम्बर, 1939 ई0 को

   (ग) 1 सितम्बर, 1939 ई0 को (घ) 25 सितम्बर, 1939 ई0 को

2. कांग्रेस के प्रांतीय मंत्रीमण्डलों ने इस्तीफा कब दिया ?

   (क) 23 अक्टूबर, 1939 ई0 को (ख) 13 अक्टूबर, 1939 ई0 को

   (ग) 20 अक्टूबर, 1939 ई0 को (घ) 25 सितम्बर, 1939 ई0 को

3. कांग्रेस के कितने प्रांतीय मंत्रीमण्डलों ने इस्तीफा दिया था ?

   (क) दस (ख) सात

(ग) आठ (घ) पाँच

4. भारत छोड़ो आन्दोलन के समय भारत का वायसराय कौन था ?

(क) कर्जन (ख) लिनलिथगों

(ग) रिपन (घ) सर स्टेफर्ड क्रिप्स

5. उत्तरतिथीय चैक किसे कहा गया था ?

(क) अगस्त प्रस्ताव को (ख) व्यक्तिगत सत्याग्रह को

(ग) क्रिप्स मिशन को (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) अगस्त प्रस्ताव।

(ख) व्यक्तिगत सत्याग्रह।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) क्रिप्स मिशन भारत क्यों आया था ?

2.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव

क्रिप्स मिशन की असफलता के बाद भारत के राजनैतिक पटल पर हलचल अत्यधिक होने लगी और उधर जापान लगातार भारत की ओर बढ़ रहा था। ऐसे समय में भारत में खलबली मची हुई थी। महात्मा गाँधी भी अंग्रेजो की रीति - नीति से खफा होते जा रहे थे। उन्होंने तल्ख लहजे में कहा कि, अब समय आ गया है जब अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए महात्मा गाँधी ने 3 मई, 1942 को 'हरिजन' में लिखा कि ***'यदि अंग्रेज भारत छोड़ देगे तो जापानी खतरा टल जायेगा।'*** उन्होंने आगे 10 मई 1942 को 'हरिजन' में लिखा कि 'भारत में अंग्रेजों की उपस्थिति जापानियों को आमंत्रित कर रहा है।'

महात्मा गाँधी लगातार अंग्रेजो को भारत छोड़ देने की नसीहत देते हुए, अपनी आगे की रणनीति पर शनैः - शनैः आगे बढ़ते जा रहे थे। इसके लिए वैचारिक पृष्ठभूमि वे अपने वक्तव्यों एवं लेखों से तैयार कर रहे थे। इसी तारतम्य में उन्होंने 'हरिजन' में लिखा कि, ***अंग्रेजो भारत को ईश्वर के हवाले या अराजकता के भंवर में छोड़ जाओ।*** इस प्रकार महात्मा गाँधी का अंग्रेजो से मोहभंग होता जा रहा था और वे देश की जनता को संघर्ष के लिए तैयार होने का संदेश दे रहे थे। 27

अप्रैल - 1 मई, 1942 ई0 में कांग्रेस कार्य समिति की इलाहाबाद बैठक में महात्मा गाँधी की इच्छा के आधार पर एक प्रस्ताव पारित किया गया। कार्य समिति ने जोर देकर कहा कि ब्रिटिश सरकार भारत की रक्षा करने में असमर्थ है, अतः अंग्रेजों को भारत छोड़ देना चाहिए।

महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' में 5 जुलाई, 1942 में लिखा कि, अंग्रेजों भारत को भारतीयों के लिए व्यवस्थित रूप से छोड़ जाओं। महात्मा गाँधी देश की जनता को जुझारू संघर्ष के प्रेरित करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे, वे लगातार आम जनता को कड़े संघर्ष और कठिन राहों पर चलने की हिदायत दे रहे थे। महात्मा गाँधी आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने के बाद अपने कार्यक्रम को कार्यरूप देने के लिए कांग्रेस कार्य समिति की बैठक वर्धा में 7 से 14 जुलाई, 1942 के मध्य आयोजित की जिसमें 'भारत छोड़ो' आंदोलन का प्रस्ताव पारित किया गया। इससे पूर्व महात्मा गाँधी ने बड़े तल्ख लहजे में कांग्रेस के नेताओं से कहा कि, ***अब हमें संघर्ष और केवल संघर्ष करना होगा। इसमें देर करना आत्मघाती होगा और यदि कांग्रेस मेरे प्रस्ताव पर राजी नहीं हुई तो मैं देश की रेत (बालू) से ही कांग्रेस से भी बड़ा आंदोलन खड़ा कर दूंगा।***

अंतोगत्वा, कांग्रेस ने अपने वर्धा सम्मेलन में महात्मा गाँधी के प्रस्तावों को हरी झण्डी दे दी। महात्मा गाँधी के प्रस्तावों पर अंतिम स्वीकृति देने एवं आंदोलन की व्यापक रणनीति बनाने और विचार - विमर्श के लए 7 अगस्त, 1942 ई0 को बम्बई के ग्वालिया टैंक मैदान में बैठक प्रारंभ हुई। बंबई के इस अधिवेशन में कांग्रेस कार्य समिति ने अपने प्रस्ताव में अंग्रेजों को भारत छोड़ने और अपना शासन समेटकर ब्रिटेन लौटने का आव्हाहन किया। कांग्रेस ने अपने प्रस्ताव में आगे स्पष्ट रूप से कहा कि, यदि प्रस्ताव को अंग्रेजी सरकार ने नहीं माना तो कांग्रेस महात्मा गाँधी के नेतृत्व में मजबूर होकर बड़े पैमाने पर अहिंसक जन आंदोलन करेगी।

कांग्रेस ने प्रस्ताव में स्पष्ट रूप से कहा कि, आंदोलन अहिंसक रहेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपना नेता, मार्गदर्शक, पथ प्रदर्शक रहेगा। इन सब बातों से स्पष्ट है कि, कांग्रेस यह मान चुकी थी कि, जैसे ही आंदोलन की घोषणा होगी, सरकार सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लेगी और किसी भी महत्वपूर्ण नेता के अभाव में आंदोलन में बिखर जायेगा। अतः कांग्रेस ने मानसिक रूप से देश की जनता को जागृत करते हुए कहा कि, ***सभी आंदोलनकारी स्वयं अपने मार्गदर्शक होगें तथा स्वयं अपनी योजना पर चलकर आंदोलन करेगें।***

कांग्रेस का प्रस्ताव और उसकी आम जनता से अपील दोनों एक बड़े और व्यापक जन आंदोलन की रूपरेखा की ओर इशारा कर रहे थे तथा अंग्रेजी सरकार भी इसे कुचलने के पूरी मानसिक स्थिति बना चुकी थी, अतः कांग्रेस और अंग्रेजी सरकार दोनों व्यापक आंदोलन और उसे दबाने का क्रमशः इंतजाम कर चुकी थी। कांग्रेस अब निर्णायक कदम उठाने के रास्ते पर चल चुकी थी, अब न कोई आश्वासन लेना था और न कोई वादा करना था। पं0 जवाहर लाल नेहरू ने 8 अगस्त, 1942 के अपने भाषण में इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा कि ***'हमने अपने***

आप को आग में धकेल दिया है, इसमें या तो हम सफलतापूर्वक बाहर निकल आएंगे या इसी आग में समाप्त हो जायेगें। 8 अगस्त की रात कांग्रेस इस अगस्त क्रांति की रूपरेखा और कार्यक्रम पर चर्चा करती रही।

महात्मा गाँधी ने आंदोलन को व्यापक बनाने और आम जनता को आंदोलित करने के लिए कहा कि, 'यह आंदोलन अब तक का सबसे बड़ा और व्यापक आंदोलन होगा।' इसे हम चरम सीमा तक ले जायेगें। यह अहिंसक क्रांति होगी। किन्तु आवश्यकता के अनुसार आम जनता सभी प्रकार के साधनों का उपयोग कर सकती है। महात्मा गाँधी ने इस आंदोलन को 'खुली बगावत' की संज्ञा दी और कहा कि, ***'यह आंदोलन हमारा अंतिम प्रयास है और हम देश को स्वतंत्र करायेगे या ऐसा करते मर जायेगें। किन्तु पीछे नहीं हटेगें।'*** कांग्रेस ने प्रबुद्ध वर्ग एवं विद्यार्थियों से आशा प्रगट की कि, वह इस आंदोलन की भावना का प्रसार - प्रचार भारत की आम जनता में करेगें।

2.4.1 भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम

कांग्रेस ने भारत छोड़ो आंदोलन के लिए एकदम सीसे की तरह स्पष्ट उद्देश्य निर्धारित करते हुए कहा कि, आंदोलन का मुख्य उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता और भारत से अंग्रेजी सत्ता की समाप्ति। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सभी प्रकार के तरीकों और साधनों के प्रयोग की अनुमति देती है।

कांग्रेस ने बंबई के इस सम्मेलन में भारत छोड़ो आंदोलन की व्यापक योजना बनायी थी। कांग्रेस ने आंदोलन के लिए छः चरणों वाला प्रारूप तैयार किया था, अर्थात् आंदोलन को विभिन्न स्तरों के छः चरणों में चलाने की योजना कांग्रेस ने बनायी थी और इसके लिए स्पष्ट कार्यक्रम भी बनाया था, किन्तु यह कार्यक्रम आम जनता तक नहीं पहुंच सका क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने 9 अगस्त के सारे अखबार जप्त कर लिये थे। कांग्रेस ने भारत छोड़ों आंदोलन के कार्यक्रम में बहिष्कार, कानूनों का उल्लंघन कर अदायगी न करना विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, हड़ताल आदि का प्रावधान किया था, जिनको अमलीय जामा आंदोलन के दौरान क्रमशः कांग्रेस पहनाने वाली थी।

इन सब कार्यक्रमों के अतिरिक्त महात्मा गाँधी ने बंबई के ग्वालिया टैंक मैदान में 9 अगस्त, 1942 की ओर में प्रातः पाँच बजे अपना प्रसिद्ध 'करो या मरो' का मंत्र आम जनता को दिया। महात्मा गाँधी आजादी के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहते थे उनका दृढ़ संकल्प था कि या तो हम आजादी प्राप्त कर लेगे या इस प्रयास में मर जायेगें। महात्मा गाँधी ने स्पष्ट कहा कि हम गुलामी को देखने के लए जिंदा नहीं रहेगे, हम हर हाल में आजादी प्राप्त करेगें। जैसी की आशंका थी, सभी कांग्रेसी नेताओं को 9 अगस्त, 1942 ई0 को अंग्रेजी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया। महात्मा गाँधी को बंबई के आगा खाँ महल तथा नेहरू सहित अन्य बहुत से नेताओं को अहमद नगर किले में नजरबंद रखा गया। अंग्रेजी सरकार पहले ही कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार करने एवं आंदोलन को

कुचलने की योजना बना चुकी थी, जैसा कि वायसराय ने प्रांतीय राज्यपालों को अपने 8 अगस्त, 1942 के पत्र में लिखा था। अंग्रेजी सरकार के इस कृत्य से आम जनता भड़क गयी और लाखों लोगों का हुजूम बंबई के ग्वालिया टैंक की ओर उमड़ पड़ा।

2.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

9 अगस्त, 1942 ई0 के अंग्रेजी सरकार के इस कृत्य से आम जनता भड़क गयी और लाखों लोगों का हुजूम बंबई के ग्वालिया टैंक की ओर उमड़ पड़ा। भारत छोड़ों आंदोलन सारे देश में तीव्रता के साथ फैलने लगा। पूरा देश आजादी की आकांक्षा में कुलांचे मारने लगा। भारत में पहली बार महानगरों से लेकर गांवों तक राजनैतिक जागृति का अद्भुत दृश्य देखने को मिला। अब भारत के लोग अपना स्वराज प्राप्त करने के लिए स्वतंत्रता की बलिबेदी पर अपने प्राणों की आहूति देने के लिए अपने घरों से बाहर निकले और अपने सिर पर कफन बांधकर अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध विद्रोह का ताण्डव करने लगे। चारो ओर नारे गूंज रहे थे, अंग्रेजों भारत छोड़ो।

सारा देश तन कर आजादी के संघर्ष में कूद चुका था। आंदोलनकारी नेतृत्व विहीन थे, वे स्वयं अपने विवके से कार्य कर रहे थे, उन्होंने सरकारी प्रतीकों और अंग्रेजी सत्ता के चिन्हों को सर्वप्रथम अपना निशाना बनाया। पुलिस थानों, डाकघरों, रेल्वे स्टेशनों, प्रशासनिक भवनों आदि को अपना निशाना बनाया। साथ ही रेल्वे लाईनों, पुलों, टेलीफोन एवं तार की लाइनों तथा यातायात के अन्य साधनों को ध्वस्त करने के प्रयास किये गये। भारत की आम जनता की इस प्रतिक्रिया से अंग्रेजी सरकार सकते में आ गयी। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, इस खुली वगावत को कुचलने के लिए अंग्रेजी सरकार ने कठोरतम् दमन चक्र चलाया और सारे देश में एक प्रकार से पुलिस राज्य की स्थापना कर दी गयी थी।

आंदोलन इतना भयानक था कि, आंदोलन प्रारंभ होने के प्रथम हफ्ते में ही 500 डाकघर, 150 पुलिस थाने तथा 250 रेल्वे स्टेशनों को निशाना बनाया गया। 1942 के अंत तक 60,000 लोगों को गिरफ्तार किया गया, 26000 को सजा दी गयी तथा 18000 लोगों को भारत रक्षा नियमों के अंतर्गत जेलों ठूंस दिया गया।

1943 के अंत तक अंग्रेजी सरकार ने 91,836 लोगों को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया था तथा 945 डाकघरों, 208 पुलिस स्टेशन तथा 332 रेल्वे स्टेशनों को निशाना बनाया गया, 538 बार आम जनता पर पुलिस और सेना ने गोलियाँ चलायी। जिनमें एक हजार से अधिक आंदोलनकारी मारे गये थे।

अंग्रेजी सरकार ने अनेक अवसरों पर वायुयानों से आंदोलनकारियों पर गोलियाँ चलवायी। भगतपुर, मुगेर, नदिया, तामलुक, तल्छर आदि स्थलों पर अंग्रेजी सरकार ने आंदोलनकारियों पर हवाई जहाज से गोलीबारी करवायी। इसके साथ ही अंग्रेजी सरकार ने दमन चक्र के हथियार के रूप

में 90 लाख रूपये का सामूहिक जुर्माना भी वसूला। साथ ही, अंग्रेजो ने लोगों को प्रताड़ित करने के लिए गांवो के गाँव आग के हवाले कर दिये थे।

भारत छोड़ों आंदोलन के कार्यक्रम मे हड़तालों को भी सम्मिलित किया गया था। ज्ञातव्य रहे कि भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान ही महात्मा गाँधी ने प्रथम बार राजनैतिक हड़तालों का समर्थन किया था। भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हड़तालों में विद्यार्थियों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। विद्यार्थियों ने स्कूल, कॉलेजों, शहरी क्षेत्रों में दुकाने एवं व्यावसायिक संस्थानों को हड़तालों के द्वारा बंद करवाया। हड़ताले आंदोलन के हथियार के तौर पर संपूर्ण आंदोलन के दौरान कारगर साबित हुई थी।

9 से 14 अगस्त तक बंबई में तथा 10 से 17 अगस्त तक कलकत्ता में, दिल्ली एवं पटना में सचिवालयों के सामने हड़ताले की गयी। लखनऊ, कानपुर, बंबई, नागपुर, अहमदाबाद में श्रमिकों ने कारखानों में हड़ताले की। टाटा इस्पात कारखानों में 20 अगस्त से 13 दिनांक तक हड़ताल रही। भारत छोड़ो आंदोलन में सबसे बड़ी श्रमिक हड़ताल अहमदाबाद के कपड़ा कारखाने में हुई, जो तीन महीने से अधिक समय तक बंद रहा। इसे बुद्धिजीवी 'भारत का स्तालिनग्राद' कहने लगे थे। इस प्रकार भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान श्रमिकों विद्यार्थियों एवं मध्यमवर्गीय लोगों ने हड़तालों में उत्साह से सक्रिय भूमिका निभायी।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान भूमिगत आंदोलन ने आंदोलन को दिशा देने एवं आंदोलन को सक्रिय बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भूमिगत आंदोलन बिहार, केरल, कर्नाटक संयुक्त प्रांत, बंबई, दिल्ली, पूना आदि में सक्रिय रहा। जयप्रकाश नारायण, बीजू पटनायक, सुचेता कृपलानी, राममनोहर लोहिया, छोटूभाई पुराणिक, अच्युत पटवर्धन आदि ने भूमिगत रहकर आंदोलन की ज्वाला को प्रज्वलित बनाये रखा। भूमिगत आंदोलनकारियों की गतिविधियों की खबर लेने में अंग्रेजी सरकार भी नाकाम रही थी, वे बड़ी तीव्रता से अपना कार्य करके भूमिगत हो जाते थे।

भूमिगत आंदोलनकारियों ने आंदोलन की खबरे सारे देश में पहुंचाने का काम बड़ी तत्परता से किया था। इसके साथ ही, भूमिगत आंदोलनकारियों ने गुप्त रेडियों स्टेशन स्थापित करके अंग्रेजी सरकार की नीतियों और अत्याचारों का विवरण सारे देश में पहुंचाया साथ ही, आंदोलन की प्रगति एवं आंदोलनकारियों को प्रोत्साहित करने का कार्य ये रेडियों स्टेशन अपने प्रसारण में करते थे। ये रेडियों स्टेशन मुख्यतः बंबई और नासिक में अधिक सक्रियता से कार्य कर रहे थे। अंग्रेजी सरकार ने इन रेडियों स्टेशनों को नवम्बर, 1942 में खोजने में सफलता पायी और इन्हें जप्त कर लिया गया।

भारत छोड़ो आंदोलन निश्चित रूप से अब तक के आंदोलन में अभिनव एवं विशिष्ट था, क्योंकि इस आंदोलन के दौरान अनेक ऐसी विशिष्टाएँ दिखी, जो पूर्व के आंदोलनों में नहीं थी। इसकी सबसे विशिष्ट बात आंदोलन के दौरान 'समानांतर सरकारों' का गठन होना था। ऐसी पहली

समानांतर संयुक्त प्रांत के बलिया जिले में गठित हुई थी। बंगाले के मिदनापुर जिले के तामलुक तथा महाराष्ट्र के सतारा जिले में 'समानांतर सरकारें' बनी। समानांतर सरकारों ने अपने क्षेत्रों में भारतीय पद्धति से शासन किया तथा अंग्रेजी शासन की प्रतिनिधित्वकारी संस्थाओं और वस्तुओं को ध्वस्त कर दिया था।

अंग्रेजी सरकार ने बड़ी बेदर्दी से आंदोलन को कुचल दिया था। समस्त भारत में अंग्रेजी सत्ता की शक्ति का नंगा नाच हुआ और छः से सात सप्ताहों में ही आंदोलन को कुचल दिया गया। अंग्रेजों के अत्याचार एवं हिंसक होते आंदोलन से गांधीजी द्रवित हो गये। इसी कारण उन्होंने 'आत्म शुद्धि' के लिए 10 फरवरी, 1943 से 21 दिनों का उपवास प्रारंभ कर दिया। 13 वे दिन महात्मा गाँधी की हालत अत्यधिक बिगड़ गयी। फिर भी अंग्रेजी सरकार ने उनकी सुध नहीं ली, बल्कि ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने बड़ी ही धृष्टता दर्शाते हुए कहा कि ***''जब दुनिया में हम हर कहीं जीत रहे है, ऐसे वक्त में हम एक कमबख्त बुड्डे के सामने कैसे झुक सकते हैं, जो हमेशा से हमारा दुश्मन रहा है।''*** सभी लोग महात्मा गाँधी की जिंदगी के लिए प्रार्थना कर रहे थे, उधर अंग्रेजी सरकार उनके मरने की प्रतिक्षा कर रही थी अंग्रेजो ने महात्मा गाँधी की शवयात्रा और भस्म ले जाने के लिए वायुयान की व्यवस्था कर ली थी तथा आधे दिन के अवकाश की व्यवस्था सारे देश में करने की योजना थी।

किन्तु, लोगों की प्रार्थना ईश्वर ने सुन ली और महात्मा गाँधी ने अपना 21 दिनों का 7 मार्च 1943 को उपवास पूर्ण किया। महात्मा गाँधी के स्वास्थ्य को देखते हुए 6 मई, 1944 को उन्हें जेल से रिहा कर दिया। आगे की राजनैतिक गतिविधियों को संचालित करने एवं किसी एकमत निर्णय पर पहुंचने के लिए सरकार ने राजनैतिक कदम उठाने प्रारंभ कर दिये थे और इसीलिए 15 जून, 1945 को अन्य कांग्रेस के नेताओं को भी जेलों से मुक्त कर दिया गया। भारत छोड़ो आंदोलन तत्कालीन परिस्थिति में अवश्य असफल दिखायी दिया। किन्तु इस आंदोलन से सरकार हिल गयी थी, उसे 1857 की क्रांति के बाद सबसे महान खुली जन वगावत का सामना करना पड़ा था, जिसकी अंतिम 1947 में आजादी के साथ आयी।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. ग्वालिया टैंक मैंदान कहाँ है ?

   (क) दिल्ली में (ख) अहमदाबाद में

   (ग) बम्बई में (घ) वर्धा में

2. महात्मा गाँधी ने 'खुली बगावत' की संज्ञा किस आन्दोलन को दी ?

(क) व्यक्तिगत सत्याग्रह को (ख) भारत छोड़ो आन्दोलन को

(ग) क्रिप्स मिशन को (घ) इनमें से कोई नहीं

3. 'भारत का स्तालिनग्राद' किसे कहा गया ?

(क) बम्बई को (ख) दिल्ली को

(ग) अहमदाबाद को (घ) इनमें से कोई नहीं

4. भारत छोड़ो आन्दोलन के समय पं॰ जवाहर लाल नेहरू कहां नजरबंद थे ?

(क) अहमद नगर किले में (ख) दिल्ली के किले में

(ग) बम्बई में (घ) इनमें से कोई नहीं

5. महात्मा गाँधी ने 21 दिनों का उपवास कब प्रारंभ किया ?

(क) 05 फरवरी, 1943 से (ख) 25 फरवरी, 1943 से

(ग) 10 फरवरी, 1943 से (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) भूमिगत आंदोलन।

(ख) समानांतर सरकारें।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) भारत छोड़ो आन्दोलन के उद्देश्य एवं कार्यक्रम क्या थे ?

2.5 सारांश

भारत छोड़ों आंदोलन भारत के राजनैतिक पटल पर होने वाला सबसे बड़ा एवं आम जनता के राजनैतिक रूप से आजादी के लए तन - मन - धन से राष्ट्र के प्रति समर्पण को सर्वोच्च अभिव्यक्ति था। इस आंदोलन ने आम जनता को अपने घरो से खींच कर सड़क पर ला खड़ा किया और ऐसा घनघोर रूप से आंदोलित किया कि संपूर्ण भारत में अंग्रेजों भारत छोड़ो का जयघोष गूंजने लगा। जिसकी अंतिम और तार्किक परिणति भारत की 1947 को आजादी के रूप में हुई।

2.6 तकनीकी शब्दावली

डोमिनियन स्टेट्स :- ऐसा राज्य जिसमें आंतरिक स्वतंत्रता हो, किन्तु बाह्य परतंत्रता हो।

कॉमनवेल्थ :- इंग्लैण्ड की अगुआयी में बना, स्वतंत्र देशों का संगठन।

द्वितीय विश्व युद्ध :- द्वितीय विश्व युद्ध 1939 से 1945 ई॰ तक चला। इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि मित्र देश तथा जर्मनी, जापान आदि धुरी देश सम्मिलित थे।

पूर्ण स्वतंत्रता :- सार्वभौमिक आंतरिक एवं बाह्य स्वतंत्रता, किसी भी अन्य राष्ट्र की गुलामी नहीं। परतंत्रता से पूर्ण मुक्ति।

उत्तरतिथीय चैक :- समय निकल जाने के बाद दिया गया प्रस्ताव।

भूमिगत आंदोलन :- गुप्त आंदोलन

2.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 2.3 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(प) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिएः

1. देखिए 2.3.1 द्वितीय विश्व युद्ध
2. देखिए 2.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा
3. देखिए 2.3.4 प्रांतीय मंत्रीमण्डलों से इस्तीफा
4. देखिए 2.3.2 भारत को द्वितीय विश्व युद्ध में शामिल करना
5. देखिए 2.3.8 क्रिप्स मिशन

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिएः

1. (क) देखिए 2.3.5 अगस्त प्रस्ताव

   (ख) देखिए 2.3.6 व्यक्तिगत सत्याग्रह

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

   (अ) देखिए 2.3.8 क्रिप्स मिशन

इकाई 2.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 2.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव
2. देखिए 2.4 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रस्ताव
3. देखिए 2.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ
4. देखिए 2.4.1 भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम
5. देखिए 2.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 2.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

   (ख) देखिए 2.4.2 भारत छोड़ो आन्दोलन का प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाएँ

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देखिए 2.4.1भारत छोड़ो आन्दोलन का उद्देश्य एवं कार्यक्रम

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बिपिन चन्द्र एवं अन्य - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, 1998
2. भूयान, ए॰ सी॰ - द क्विट इण्डिया मूवमेंट: द सेकेण्ड वर्ड वॉर एण्ड इण्डियन नेशनालिज्म, नई दिल्ली, 1957
3. माथुर, वाई॰ बी॰ - क्विट इण्डिया मूवमेंट, नई दिल्ली, 1972
4. राय, सत्या एम॰ (संपा॰) - भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, 1990
5. सरकार, सुमित - आधुनिक भारत (1885 - 1947), नई दिल्ली, 1992
6. ताराचंद - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2007

2.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1971

2. बिपिन चन्द्र, त्रिपाठी, अमलेश, डे, बरूण - स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली,1972

3. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1999

4. पाठक, सुशील माधव - भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (1857 - 1947), वाराणसी, 1993

5. शुक्ल, रामलखन (संपा०) - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1998

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठभूमि का सविस्तार वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 2. भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रस्ताव एवं तत्कालीन राजनैतिक हलचल का विवरण दीजिये ?

प्रश्न 3. भारत छोड़ो आन्दोलन के प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाओं का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये ?

इकाई तीन

देशी राज्यों में राष्ट्रीय आन्दोलन

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि
3.3.1 आधुनिक शिक्षा का प्रभाव
3.3.2 प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव
3.3.3 देशी राज्यों में नवीन मध्यम वर्ग का उदय
3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण का प्रभाव
3.3.5 निरंकुश एवं विलासी शासक
3.3.6 देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व
3.3.7 राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.4 देशी राज्यों में आन्दोलन
3.4.1 देशी राज्यों का भारत में विलय
3.4.1.1 जूनागढ़ राज्य का भारत में विलय
3.4.1.2 हैदराबाद राज्य का भारत में विलय
3.4.1.3 कश्मीर राज्य का भारत में विलय
स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
3.5 सारांश
3.6 तकनीकी शब्दावली
3.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

देशी राज्यों में आन्दोलन शेष भारत में हुए स्वतंत्रता के आंदोलन का अभिन्न अंग था। अंग्रेजी वर्चस्व वाले क्षेत्रों की जनता में राष्ट्रवाद की भावना का विकास पहले हुआ। क्योंकि अंग्रेजी राज के प्रति भारतीयों में नफरत की भावना थी। अंग्रेजी राज के अत्याचारों और भेदभाव की नीतियों ने भारतीयों को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाया। शनैः - शनैः भारतीयों ने अपनी माँगों को अंग्रेजों के सामने रखना प्रारंभ किया और जब माँगें ठुकरायी जाने लगीं, तो शीघ्र ही भारतीयों ने आंदोलन करने प्रारंभ करने शुरू कर दिये। कांग्रेस ने भी देशी राज्यों की जनता को कांग्रेस की सदस्यता देनी प्रारंभ की और शनैः - शनैः देशी राज्यों की जनता को अभिन्न रूप से राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ लिया। इसके कारण देशी राज्यों को अपनी जनता को राजनैतिक अधिकारों को देने के लिए कदम उठाने पड़े।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी देशी राज्यों में आन्दोलन के महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जान सकेंगे।
2. विद्यार्थी देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि को समझ सकेगें।
3. विद्यार्थी देशी राज्यों में आन्दोलन के बारे में जानेंगे।
4. विद्यार्थी विभिन्न देशी राज्यों में आन्दोलन की प्रकृति को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी देशी राज्यों के स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान के बारे में जानेंगे।
6. विद्यार्थी देशी राज्यों के भारत में विलय को समझ सकेगें।
7. विद्यार्थी देशी राज्यों की भारत के प्रति नीति के बारे में जानेंगे।
8. विद्यार्थी हैदराबाद, जूनागढ़ एवं कश्मीर रियासत की स्थिति को समझ सकेगें।
9. विद्यार्थी विभिन्न देशी राज्यों में आन्दोलन की प्रगति एवं घटनाओं को जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी देशी राज्यों के आन्दोलन और अंग्रेजी शासित क्षेत्रों के आंदोलन की प्रकृति कोसमझ सकेगें।

3.3 देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि

देशी राज्यों में आंदोलन आंतरिक राजनैतिक स्थिति, शासकों की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता, अत्यधिक भू - राजस्व तथा किसान समस्याएँ एवं रियाया के राजनैतिक अधिकारों ने आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार की। इसमें आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवीन मध्यम वर्ग ने, प्रेस एवं समाचार पत्रों आदि ने देशी राज्यों में आंदोलनों को हवा और खाद प्रदान की।

3.3.1आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव

आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा के भारत में आगमन से भारतीयों का बड़ा लाभ हुआ। अंग्रेजों ने भले ही शासन की आवश्यकताओं के कारण अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार - प्रचार किया हो। किन्तु, इसका प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष लाभ भारतीयों को हुआ। पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय जनमानस में क्रांतिकारी बदलावों का सूत्रपात किया। शीघ्र ही राजनैतिक चेतना और उभरते राष्ट्रवाद की वाहक बन गयी। यह शनैः - शनैः राष्ट्रीय आंदोलन का एक हथियार बन गयी। शिक्षित भारतीयों का संपर्क भारतीय सीमाओं से निकलकर विश्वव्यापी विचारों से हुआ। भारतीय सांस्कृतिक विचारों से ओतप्रोत भारतीयों का साम्य विदेशी स्वतंत्र, उन्मुक्त विचारधारा से हुआ। जिसका उपयोग भारतीयों ने समय - समय पर अपने हितों के लिए किया। इससे अंग्रेज हतप्रद रह गये। आधुनिक शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने अंग्रेजों को अंग्रेजी तौर - तरीकों से जबाब देना प्रारंभ किया, जो शीघ्र ही सीधे संघर्ष में बदल गया। अंग्रेजी ने भारतीयों के लिए एक सामान्य संपर्क भाषा का कार्य किया। अंग्रेजी ने भारतीय आबादी के विभिन्न वर्गो एवं धर्मों को एक सूत्र में पिरोने का काम किया। इससे विभिन्न भाषाभाषी लोग अंग्रेजी में अपने विचारों एवं समस्याओं का आदान - प्रदान कर सके तथा अपनी योजनाओं को बेहतर तरीके से क्रियान्वित कर सके।अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय अंग्रेजों के दोहरे चरित्र को समझ चुके थे, उन्होंने अंग्रेजों की नीति और नीयत को खुली आंखों से देखा। जिससे देशी राज्यों की जनता ने अपने विभिन्न अधिकारों और समस्याओं के समाधान के लिए जोरदार आंदोलन करने प्रारंभ कर दिये। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा ने देशी राज्यों की जनता को जागृत किया।

3.3.2 प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव

देशी राज्यों में आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में प्रेस एवं समाचार पत्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भारत में जे॰ के॰ हिक्की ने *1780* ई॰ में सर्वप्रथम *'द बंगाल गजट'* नामक समाचार पत्र प्रकाशित किया। पं. जुगल किशोर ने *1826* ई॰ में कानपुर से सर्वप्रथम हिन्दी का समाचार पत्र *'उदन्त मार्तण्ड'* प्रकाशित किया। देशी राज्यों और भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रेस एवं समाचार पत्रों ने आधारभूत भूमिका निभायी। प्रेस एवं समाचार पत्रों के माध्यम से भारत के नवीन बौद्धिक वर्ग ने सोये हुए भारत में राजनैतिक चेतना का अलख जगाया।

वस्तुतः देशी राज्यों और भारत को राजनैतिक दृष्टि से चेतन अवस्था प्रदान करने का श्रेय समाचार पत्रों को जाता है। राजनैतिक रूप से देश की जनता को जागरूक कर, उनमें राष्ट्र के प्रति अपनत्व पैंदा करने तथा मर मिटने का भाव समाचार पत्रों ने जगाया। वास्तव में राष्ट्रीयता के बीज को अंकुरण से पौधा बनाने का श्रेय प्रेस एवं समाचार पत्रों को जाता है। समाचार पत्रों ने बड़ी ही चतुरायी से देश में राष्ट्रीय भावना का प्रचार - प्रसार करके अंग्रेजी सत्ता के शोषण तंत्र का पर्दाफास किया। इससे भारतीयों की आंखे खुली की खुली रह गयी। वो अंग्रेजों के वास्तविक उद्देश्यों को समझ गये और प्राण-पण से आजादी के लिये संघर्षरत् हो उठे।

देशी राज्यों में प्रेस एवं समाचार पत्रों को विशेष आजादी प्राप्त नहीं थी। देशी राज्यों में फिर भी समाचार पत्र प्रकाशित होते थे। बड़ी ही सावधानी से राष्ट्रवादी नेता अपनी बात जनता तक पहुंचाते थे। उन्होंने शनैः - शनैः देशी राज्यों की जनता में राजनैतिक चेतना के भावांकुरण पैंदा किये। देशी राज्यों की जनता को अंग्रेजी सत्ता की वास्तविकताओं से परिचित कराया तथा देशी राज्यों और अंग्रेजों के गठबंधन की वास्तविकताओं को भी समझाया। देशी राज्यों में प्रेस एवं समाचार पत्रों ने अंग्रेजी सत्ता के प्रशासन एवं नागरिक अधिकारों के बारें में भी बताया। इससे देशी राज्यों की जनता में अपने अधिकारों की बहाली के लिए आन्दोलन प्रारंभ कर दिये।

3.3.3देशी राज्यों में नवीन मध्यम वर्ग का उदय

देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में नवीन मध्यम वर्ग के उदय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। शेष ब्रिटिश भारत की तरह ही देशी राज्यों में भी नवीन मध्यम वर्ग का उदय हुआ। अंग्रेजी शिक्षित इस वर्ग में प्रशासक, डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक, वकील आदि सम्मिलित थे। इस नवीन मध्यम वर्ग ने देशी राज्यों और अंग्रेजी प्रशासन एवं उसकी नीतियों का नजदीकी से मूल्यांकन किया और पाया कि, देशी राज्यों और शेष ब्रिटिश भारत में नागरिकों के अधिकारों में भारी अंतर है। भू - राजस्व भी शेष ब्रिटिश भारत से अधिक है। इस नवीन मध्यम वर्ग ने देशी राज्यों में राष्ट्रीयता का शंख, पत्र - पत्रिकाओं, पुस्तकों, नवीन संगठनों का निर्माण करके एवं जनता को राजनैतिक रूप से जागरूक करके फूंका। देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में इस नवीन मध्यम वर्ग का महत्वपूर्ण योगदान रहा

3.3.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागरण का प्रभाव

सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण ने देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण का बहुत गहरा प्रभाव देशी राज्यों की जनता पर पड़ा। सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण के व्यक्तियों एवं संस्थाओं ने देशी राज्यों की जनता के ज्ञान चक्षु खोले एवं वह रास्ता दिखाया, जो आत्म सम्मान, आत्म गौरव, आत्म निर्भरता की ओर ले जाता था। सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण ने सदियों से निरंकुशता एवं

स्वेच्छाचारिता से परिपूर्ण देशी राज्यों के शासकों के विरूद्ध तन कर खड़े होने का साहस प्रदान किया।

3.3.5 निरंकुश एवं विलासी शासक

सामाजिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण ने देशी राज्यों के निरंकुश एवं विलासी शासकों ने देशी राज्यों के आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाला। देशी राज्यों के अधिकांश शासक निरंकुश एवं विलासी थे, उन्हें आम जनता दुःख - दर्दों से कोई लेना देना नहीं था। आम जनता के धन को यह शासक रंग - रेलियों एवं विलासिता में उड़ाते थे। आम जनता की भलाई के लिए ये शासक कोई काम नहीं करते थे। देशी राज्यों और शेष ब्रिटिश भारत में नागरिकों के अधिकारों में भारी अंतर था। भू - राजस्व भी शेष ब्रिटिश भारत से अधिक था तथा भू - राजस्व भी अत्यधिक कठोरता से वसूला जाता था। इससे देशी राज्यों की आम जनता प्रजा मण्डल के रूप में संगठित हुई और उसने निरंकुश एवं विलासी शासकों ने विरूद्ध आन्दोलनों की राह पकड़ ली।

3.3.6 देशी राज्यों में अत्यधिक भू-राजस्व

देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व ने आन्दोलनों की पृष्ठभूमि तैयार करने में सबसे बड़ी भूमिका निभायी। देशी राज्यों में भू - राजस्व और अन्य करों में कृषकों का लगभग *70 - 80* प्रतिशत उत्पाद चला जाता था। इस कारण अत्यधिक गरीबी और भुखमरी का जीवन कृषक जी रहे थे। समय - समय पर होने वाली भू - राजस्व वृद्धि ने कृषकों के लिए मुशीबत खड़ी कर दी थी। देशी राज्यों में बेगार प्रथा भी प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त श्रमिकों को उनके श्रम के अनुरूप भुगतान नहीं किया जाता था। देशी राज्यों में भू - राजस्व जमींदार और जागीरदार अत्यधिक कठोरता के साथ वसूलते थे। देशी राज्यों के आन्दोलनों में भू - राजस्व सबसे बड़ा मुद्दा था। देशी राज्यों में अनेक आन्दोलन भू - राजस्व के कारण हुए।

3.3.7 राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव

राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। इससे देशी राज्यों की जनता राष्ट्रीय आन्दोलनों के सीधे संपर्क में आयी। देशी राज्यों की जनता में भी इससे राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। इसके कारण देशी राज्यों के अनेक लोग ब्रिटिश भारत में होने वाले आन्दोलनों में भाग लेने लगी। इससे देशी राज्यों की जनता राजनैतिक रूप से प्रशिक्षित भी होने लगी और जब आवश्यकता पड़ी तो स्वयं देशी राज्यों की जनता ने आन्दोलनों का रूख करना प्रारंभ कर दिया।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देशी राज्यों के शासक कैसे थे ?

(क) जनता के हितैषी (ख) निरंकुश एवं विलासी

(ग) प्रजातांत्रिक (घ) इनमें से कोई नहीं

2. देशी राज्यों में भू - राजस्व की दरें थीं ?

(क) अत्यधिक कम (ख) ब्रिटिश भारत से कम

(ग) अत्यधिक ऊँच (घ) इनमें से कोई नहीं

3. राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का कैसा प्रभाव पड़ा?

(क) सकारात्मक (ख) नकारात्मक

(ग) कुछ भी नहीं (घ) इनमें से कोई नहीं

4. सर्वप्रथम समाचार पत्र किसने प्रकाशित किया था ?

(क) जे॰ के॰ हिक्की ने (ख) के॰ के॰ बिरला ने

(ग) पं. जुगल किशोर ने (घ) सर स्टेफर्ड क्रिप्स ने

5. हिन्दी में सर्वप्रथम समाचार पत्र किसने प्रकाशित किया था ?

(क) जे॰ के॰ हिक्की ने (ख) के॰ के॰ बिरला ने

(ग) पं. जुगल किशोर ने (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव।

(ख) देशी राज्यों में भू - राजस्व का प्रभाव।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देशी राज्यों के आन्दोलनों में प्रेस एवं समाचार पत्रों की क्या भूमिका थी?

3.4 देशी राज्यों में आन्दोलन

आजादी के पूर्व भारत में अनेक देशी राज्य थे। *1941* ई॰ में इनकी कुल संख्या *562* थी। इन देशी राज्यों के अधीन देश का *45* प्रतिशत क्षेत्रफल भाग तथा देश की कुल जनसंख्या का *24* प्रतिशत भाग निवास करता था। देशी राज्यों में आंदोलन आंतरिक राजनैतिक स्थिति, शासकों की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता, अत्यधिक भू - राजस्व तथा किसान समस्याएँ एवं रियाया के राजनैतिक अधिकारों की बहाली को लेकर प्रारंभ हुए। ब्रिटिश भारत की राजनैतिक स्थिति एवं राजनैतिक आंदोलनों ने देशी राज्यों को सीधे तौर पर प्रभावित किया। इससे देशी राज्यों की जनता ने अपने विभिन्न अधिकारों और समस्याओं के समाधान के लिए जोरदार आंदोलन करने प्रारंभ कर दिये। ब्रिटिश भारत में राजनैतिक सुधारों और उनकी प्रतिक्रिया स्वरूप होने वाले आंदोलनों से देशी राज्यों की जनता भी अछूती नहीं रह सकी।

देशी राज्यों की जनता भी ब्रिटिश भारत के आंदोलनों में सक्रिय रूप से भाग लेनी लगी। जिससे देशी राज्यों की जनता में भी अपनी रियासतों में राजनैतिक एवं अन्य सुधारों की भावना जागृत होने लगी। उन्होंने भी शनैः - शनैः अपनी आवाज राजा - महाराजाओं तक दबी जुबान से करनी प्रारंभ कर दी। ब्रिटिश भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना के प्रयासों का प्रभाव देशी राज्यों की जनता पर भी पड़ा। उन्होंने भी देशी राज्यों में उत्तरदायी सरकारों के गठन की ओर कदम उठाने के लिए मांग करनी प्रारंभ कर दी।

देशी राज्यों की जनता और ब्रिटिश भारत की जनता के मध्य मेल - मिलाप और राजनैतिक जागरण का कार्य ब्रिटिश सरकार और देशी राज्यों की नीतियों ने भी किया। दोनों की नीतियों में भारी अंतर था तथा दोनों ही राजनैतिक आंदोलनों के समय एक - दूसरे की मदद करते थे अर्थात् जब किसी भी प्रश्न पर देशी राज्यों की जनता आंदोलन करती थी, तब उस आंदोलन को दबाने के लिए ब्रिटिश सरकार फौजी मदद प्रदान करके आंदोलन को कुचल देती थी और इसी प्रकार ब्रिटिश भारत में होने वाले आंदोलनों को आंतरिक रूप से ध्वस्त करने तथा प्रत्यक्ष रूप से कुचलने के लिए देशी राज्यों की फौजें ब्रिटिश शासन का भरपूर सहयोग करती थी। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की इस जुगबंदी को आम जनता समझ गयी और इसी कारण ब्रिटिश भारत की जनता और देशी राज्यों की जनता एक दूसरे के नजदीक आ गयी तथा उनमें राजनैतिक मेल - मिलाप का सिलसिला प्रारंभ होने से साझा उद्देश्यों ने एक - दूसरे को एकजुट होने के लिए प्रेरित किया।

देशी राज्यों में राजनैतिक हलचल को स्पष्ट देखा जाने लगा और *1921* ई*0* के बाद देशी राज्यों में प्रजा मण्डल आंदोलन आकार लेने लगे। प्रजा मण्डल आंदोलनों की सक्रियता ने देशी राजाओं के कान खड़े कर दिये। उन्होंने बड़ी बेदर्दी से इन आंदोलनों को कुचलना प्रारंभ किया। जिसमें अंग्रेजों ने उनका पूरा सहयोग किया। प्रजा मण्डल आंदोलन फिर भी विभिन्न देशी राज्यों में

जोर शोर से चलने लगे। जिनका उद्देश्य रियाया के राजनैतिक अधिकारों की बहाली तथा देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन की स्थापना करना था।

प्रजा मण्डल आंदोलनों की सक्रियता ने देशी राज्यों को राजनैतिक सुधारों के लिए मजबूर कर दिया। शनैः - शनैः अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डलों का गठन हुआ और उन्हें राजनैतिक मान्यता भी प्रदान कर दी गयी। कतिपय देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन के गठन की ओर कदम भी उठाये। हालांकि देशी राज्यों के शासक स्वभाव एवं कर्म से निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासक थे। उत्तरदायी शासन की स्थापना करना उन्हें मंजूर नहीं था। अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डलों की स्थापना होने के बाद भी उन्हें पर्याप्त राजनैतिक मर्यादा प्रदान नहीं थी। अनेक देशी राज्यों में प्रजा मण्डल राजा - महाराजाओं के मात्र सलाहाकार बनकर रह गये थे। फिर भी इन प्रजा मण्डलों ने देशी राज्यों की रियाया के अधिकारों और सुविधाओं के लिए संघर्ष किया।

देशी राज्यों में मैंसूर, त्रावणकोर, पोरबंदर, कोचीन ने प्रगतिशील कदम उठाते हुऐ अपने राज्यों में रियाया के चुने हुए प्रतिनिधियों को शासन में पर्याप्त अधिकार प्रदान किये। इन देशी राज्यों ने अपने यहाँ होने वाले सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का पर्याप्त सम्मान करते हुए उनकी मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया। इन देशी रियासतों ने अपनी रियाया की धार्मिक समानता की मांगोे को भी पूर्ण किया। त्रावणकोर में *1921* ई0 से, पुडुकोट्टाई में *1924* ई0 से तथा कोचीन में *1925* ई0 से विधान परिषदों में जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य बहुमत से कार्य कर रहे थे। इन देशी राज्यों की वैधानिक कार्य विधि ब्रिटिश भारत की वैधानिक कार्य विधि के समान ही थी।

ग्वालियर इन्दौर, बड़ौदा, बीकानेर, हैदराबाद आदि देशी राज्यों के शासकों ने विधान मण्डलों का गठन किया था तथा जनता के प्रतिनिधियों को परिषदों में नियुक्त भी किया था, किन्तु इन्हें अधिक आजादी प्राप्त नहीं थी। इनकी बैठकें भी अनियमित होती थीं तथा ये स्वतंत्र कार्य करने की अपेक्षा राजा - महाराजाओं की सलाहकार परिषदों के रूप में ही कार्य कर रही थी। देश के अधिकांश देशी राज्य परिपाला, कश्मीर, हैदराबाद आदि अपनी जनता को राजनैतिक अधिकार देना नहीं चाहते थे, वे निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन के पक्षधर थे। इन रियासतों में जो भी राजनैतिक परिवर्तन हुए वे मात्र दिखावे के लिए ही थे वास्तविक सत्ता यहाँ राजा - महाराजाओं में ही विद्यमान रही।

देशी राज्यों के आंतरिक मामलों में अंग्रेजी सरकार मात्र अपने हितों को छोड़कर कभी हस्तक्षेप नहीं करती थी और नहीं किसी प्रकार के राजनैतिक सुधारों से ही उसे कोई मतलब था। फिर भी कुछ गवर्नर - जनरलों एवं अंग्रेजों ने देशी राज्यों को अपनी रियाया को सुविधाएँ देने और आधुनिक संसाधनों के विकास के लिए प्रेरित किया। लॉर्ड मेयो, नॉर्थबूक, रिपन, कर्जन हार्डिंग, चेम्सफोर्ड, रीडिंग, इर्बिन आदि ने देशी राज्यों के राजा - महाराजाओं को अपने राज्यों में प्रशासनिक सुधार करने तथा आधुनिक शिक्षा आवागमन के साधनों संचार की व्यवस्था के लिए प्रेरित किया।

कुछ ने तो राजा - महाराजाओं की फिजुलखर्ची एवं देश - विदेश में पर्यटन की प्रवृत्ति की आलोचना तक की तथा कहा कि राजा-महाराजाओं को जनता के धन का अपव्यय नहीं करना चाहिए। लॉर्ड कर्जन तो इस मामले में शासन सख्त था। कुछ गवर्नरों ने देशी राज्यों में सभी जनता को समान अवसर देने तथा समान प्रगति का अधिकार देने तक की बात कही।

बहरहाल, *1921* ई*0* के बाद देशी राज्यों में राजनैतिक जागृति पैदा होने लगी। देशी राज्यों की जनता ने प्रजा मण्डल आन्दोलनों के द्वारा राजनैतिक जनजागरण का शंखनाद किया। कतिपय राजनीतिज्ञों ने देशी राज्यों के प्रजा मण्डलों को अखिल भारतीय आधार प्रदान करने के प्रयास करते हुए दिसंबर, *1927* ई*0* में बम्बई में *'*ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस*' (*ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0)* का गठन किया। इस संस्था के द्वारा देशी राज्यों के प्रजा मण्डल आंदोलनों को संगठित करने वैचारिक आधार प्रदानकरने तथा राजनैतिक नेतृत्व प्रदान करने की मंशा प्रगट की गयी। ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0* को *''*अखिल भारतीय राज्य जन कॉन्फ्रेन्स*''* के नाम से भी जाना जाता है। इसके गठन में मणिलाल कोठारी, जी*0* आर*0* अभ्यंकर, बलबंतराय मेहता आदि ने प्रमुख भूमिका निभाई।

दिसंबर, *1927* ई*0* में बम्बई अखिल भारतीय राज्यजन कॉन्फ्रेन्स का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमें *700* से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस प्रथम अधिवेशन में ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0* के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को निर्धारित किया गया। जिनमें प्रमुख थे देशी राज्यों के प्रशासन में सुधार प्रशासन में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का हस्तक्षेप, देशी राज्यों में उत्तरदायी प्रतिनिधि शासन की स्थापना जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों का वित्त एवं प्रशासन पर नियंत्रण, देशी राज्यों के राजस्व का राजा के निजी व्यय एवं राज्य में स्पष्ट विभाजन स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना देशी राज्यों एवं अंग्रेजी सरकार के मध्य स्पष्ट संवैधानिक संबंध हो। देशी राज्यों की जनता को भावी भारतीय संविधान में उचित स्थान प्रदान करने की बात भी की गयी।

ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0* ने नेताओं ने संस्था को मान्यता दिलाने के लिए आवेदन किया। किन्तु अंग्रेजी सरकार ने इसे मान्यता देने से यह कहकर मना कर दिया कि, देशी राज्यों के राजनैतिक संगठनों को हम मान्यता नहीं दे सकते हैं, इसका अधिकार देशी राज्यों के राजे - महाराजाओं का है। अब संस्था के नेताओं ने अपना पक्ष रखने एवं समर्थन जुटाने के लिए लंदन (इंग्लैण्ड) का रूख किया। जुलाई, *1928* ई*0* को संस्था के प्रमुख नेता दीवान बहादुर रामचंद्र राव (अध्यक्ष), अमृतलाल सेठ, पी*0* एल*0* चुदगर, जी*0* आर*0* अभ्यंकर आदि लंदन पहुंचे। संस्था के इस प्रतिनिधि मण्डल ने ब्रिटिश जनता और संसद को अपनी बात प्रभावी ढंग से बतायी। किन्तु इसका कोई विशेष सकारात्मक परिणाम नहीं निकला।

देशी राज्यों में आंदोलनों का प्रमुख कारण भूमि और भू - राजस्व संबंधित समस्याओं से प्रारंभ हुए। कृषि प्रधान देशी राज्यों में भूमि और भू - राजस्व आम आदमी को सीधे प्रभावित करते थे। ज्ञातव्य रहे कि देशी राज्यों में भूमि और भू - राजस्व की दशा ब्रिटिश भारत की अपेक्षा

अत्यधिक खराब थी। देशी राज्यों में भू - राजस्व की दर ब्रिटिश भारत की अपेक्षा काफी ऊँची थी तथा भू-राजस्व को कठोरता से बसूलने की भी प्रथा थी। भूमि और भू - राजस्व संबंधी मामलों पर ब्रिटिश भारत की अपेक्षा देशी राज्यों का रूख सख्त था और इस विषय पर ब्रिटिश भारत में अपेक्षाकृत अधिक अच्छी व्यवस्था थी। देशी राज्यों में भू - राजस्व की ऊँची दरों और राजस्व वृद्धि के प्रश्न पर आंदोलन प्रारंभ हुए। देशी राज्यों में कृषक आंदोलनों के माध्यम से जन जागरण हुआ।

कृषक आंदोलनों में बिजौलियां कृषक आंदोलन ने सर्वाधिक प्रसिद्धी पायी। राजस्थान के मेवाड़ में बिजौलियाँ एक बड़ी देशी जागीर थी। बिजौलिया में कृषकों ने जागीरदार की भू - राजस्व वृद्धि एवं कठोर वसूली के विरूद्ध एक लंबा घोर संघर्ष किया। *1905 ई0* में प्रारंभ यह कृषक आंदोलन, समय - समय पर एक लंबे समय तक चलता रहा। *1913 ई0* में बिजौलिया के कृषकों ने राज्य द्वारा आरोपित सामूहिक कृषि की प्रथा के विरूद्ध आक्रोश प्रगट करते हुए सामूहिक कृषि करने से मना कर दिया और अपने ग्रामों को छोड़कर चले गये। इस समय बिजौलियाँ के इस कृषक आंदोलन को नेतृत्व सीताराम दास ने प्रदान किया। इसके कारण आंदोलन ने बड़ा जोर पकड़ा। आंदोलन को अधिक दशा - दिशा विजय सिंह पाथिक के नेतृत्व ने प्रदान की। *1915 ई0* में विजय सिंह पाथिक ने आंदोलन का नेतृत्व संभाला और राज्य में तीव्र और सशक्त कृषक आंदोलन खड़ा कर दिया। *1916 ई0* में विजय सिंह पाथिक ने उदयपुर राज्य के विरूद्ध कर नहीं अदायगी का आंदोलन चलाया। बिजौलियाँ कृषक आंदोलन असहयोग आंदोलन के समय भी चलता रहा और इसी कारण शीघ्र ही महात्मा गाँधी का ध्यान इस आंदोलन की ओर गया और बहुत से आंदोलनकारियों ने महात्मा गांधी से मुलाकात करके अपनी व्यथा उन्हें बतायी।

असहयोग आंदोलन के बाद मेवाड़ के बिजौजियाँ में पुनः संघर्ष प्रारंभ हुआ। इस बार माणिकलाल वर्मा एवं विजय सिंह पाथिक ने संयुक्त नेतृत्व ने बिजौजियाँ के कृषकों के संघर्ष को आगे बढ़ाया। इस आंदोलन का कृषकों को खासा लाभ हुआ। इससे कृषि भूमि पर चुंगियों और बेगार प्रथा में कमी आयी। *1927 ई0* में बिजौजियाँ में फिर से माणिकलाल वर्मा, हरिभाऊ उपाध्याय, विजय सिंह पथिक ने कृषक आंदोलन छेड़ा। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप चुंगी की नई दरों और बेगार के विरूद्ध घोर जन संघर्ष हुआ और सीधा लाभ कृषकों को मिला।

वर्तमान राजस्थान की अनेक देशी राजपूत राज्यों में कृषकों ने अपने भूमि संबंधी अधिकारों तथा भू - राजस्व संबंधित समस्याओं को लेकर घोर संघर्ष किये। गांधी जी के असहयोग आंदोलन से इन्हें खासी ऊर्जा मिली। क्योंकि संघर्ष का अब नया तरीका आम जनता को पता चल गया था। अलवर राज्य में भील आंदोलन एवं कृषक आंदोलन ने सभी का ध्यान खींचा। अलवर राज्य के नीमूचना में भू - राजस्व की दुगनी वृद्धि पर कृषकों में भयानक रोष व्याप्त हो गया। राज्य प्रशासन और कृषकों में भारी संघर्ष छिड़ गया। जिसमें एक हजार से अधिक लोग मारे गये तथा छः सौ से अधिक घायल हो गये। अलवर राज्य में ही मोतीलाल तेजावत ने भील आंदोलन को अपना नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने भीलों की भेशभूषा धारण करके भीलों को संगठित किया। इस आंदोलन ने

भारी जनसमर्थन जुटाया और गंभीर रूप से बड़ते आंदोलन को दबाने के लिए अलवर राज्य को अंग्रेजी फौजों का सहयोग प्राप्त हुआ। तब जाकर कहीं आंदोलन को कुचला जा सका।

उधर राजस्थान के मेवाड़ में भील आन्दोलन को संगठित मोतीलाल तेजावत ने किया। उन्होंने अपने आपको महात्मा गाँधी का प्रतिनिधि बताया। जिससे इन्हें भारी जन समर्थन मिला। मेवाड़ राज्य की पुलिस ने बड़ी बेदर्दी से आंदोलन को कुचलना प्रारंभ किया। भीलों के गांवों में आग लगा दी गयी। किन्तु फिर भी भील आंदोलन ने अपनी प्रचंडता का परिचय दिया और राज्य सरकार को अपनी ताकत का एहसास करा दिया तथा स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस आंदोलन का खास प्रभाव अन्य राज्यों पर पड़ा तथा जन जागृति का अलख आंदोलन की प्रमुख उपलब्धि थी। राजस्थान के मारवाड़ में कृषक आंदोलन को नेतृत्व जयनारायण व्यास ने प्रदान किया। जयनारायण व्यास ने कर न देने का आंदोलन चलाया। जिससे कृषकों में भारी जन आक्रोश फूटा और सारे मारवाड़ में कृषि कर न देने का आंदोलन व्याप्त हो गया।

देशी राज्यों में कृषक आंदोलन मात्र राजस्थान तक ही सीमित नहीं था, यह आंदोलन देश के अन्य देशी राज्यों में भी व्याप्त था। इनसे पंजाब भी अछूता नहीं रहा। पंजाब की फरीदकोट मालेर, कोटला, कालसिया आदि देशी राज्यों में कृषकों की समस्याओं को लेकर आंदोलन राज्य प्रजा मण्डल के द्वारा किये गये। राज्य प्रजा मण्डल ने अपनी प्रगतिशील मांगों को लेकर आंदोलन किये। भू-राजस्व में कमी जनता पर अन्य करों को कम करना ग्रामों में शिक्षा के प्रचार के लिए विद्यालयों की स्थापना आधुनिक अस्पतालों की ग्रामों में स्थापना, ग्रामों को यातायात के साधनों से जोड़ना कृषकों के ऋण माफ करना आदि मांगों को लेकर आंदोलन किये। प्रजा मण्डल राज्य में उत्तरदायी सरकार की स्थापना तथा राजा की निरंकुश सत्ता की समाप्ति भी चहते थे।

कश्मीर में भी विभिन्न मांगों को लेकर आंदोलन हुए। इनमें सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीति सभी प्रकार की मांगें सम्मिलित थी। कश्मीर की डोंगर देशी राज्य के विरूद्ध बहुसंख्यक मुसलमान जनता ने धार्मिक प्रश्नों को उठाकर आंदोलन किया। शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में 'नेशनल कॉन्फ्रेंस' ने जुलाई, *1931 ई0* को घोर संघर्ष छेड़ा। सारे कश्मीर राज्य में तीव्र साम्प्रदायिक आंदोलन फैलाने लगा। मुसलमानों ने श्रीनगर जेल पर आक्रमण कर दिया। जिसके फलस्वरूप गोलियाँ चली और अनेक लोग मारे गये। साम्प्रदायिक रंग में रंगें लोगों ने सरकारी कर्मचारियों पर हमले करना प्रारंभ कर दिये। मजबूरी में कश्मीर नरेश को ब्रिटिश फौज बुलाकर आंदोलन को शांत करना पड़ा। कश्मीर राज्य ने आंदोलनकारियों की मांगों पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करते हुए एक आयोग गठित किया। जिसकी सिफारिश पर मुस्लिम शिक्षा के राज्य में प्रसार-प्रचार धार्मिक भवनों को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करना, चराई कर निलंबित करना, श्रमिकों का बकाया भुगतान करना आदि को मंजूर किया गया। कश्मीर राज्य में आंदोलनकारियों का दृष्टिकोण राष्ट्रीय न होकर साम्प्रदायिक दायरे तक ही सीमित था।

दक्षिण के देशी राज्यों में भी राजनैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक प्रश्नों को लेकर जन आंदोलन हुए। मैसूर राज्य में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जन आंदोलन हुआ। अप्रैल, *1938 ई0* को मैसूर राज्य के विदुरास्वथ ग्राम में उग्र राजनैतिक आंदोलनकारियों एवं राज्य शासन के मध्य घोर तनाव उत्पन्न हो गया और इसी प्रक्रिया में आंदोलनकारियों को नियंत्रित करने के लिए पुलिस ने गोलियाँ चलायी। जिसमें अनेक आंदोलनकारी मारे गये। सरदार पटेल के सक्रिय हस्तक्षेप के बाद ही आंदोलन शांत हो सका था।

पूर्वी भारत के उड़ीसा प्रान्त के देशी राज्यों में भी आंदोलनों ने जोर पकड़ा। यहाँ भी आंदोलनकारी महात्मा गांधी के असहयोग एवं सविनय अवज्ञा आंदोलनों से वैचारिक उर्वरा शक्ति प्राप्त कर रहे थे। उड़ीसा के देशी राज्य में *1938-39 ई0* में समाजवादी कांग्रेस के नेताओं ने खासा प्रभाव आम जनता पर डाला और सारे उड़ीसा राज्य में आम जनता एवं जनजातियों को जागृत कर घोर आंदोलन किया। उड़ीसा राज्य में आंदोलनकारियों की प्रमुख मांगों में बेगार प्रथा समाप्त करना वनोत्पादों पर कर माफी उपहार कर से मुक्ति किराया संबंधी अधिकार उत्तरदायी सरकार जनता के राजनैतिक अधिकारों की बहाली आदि थी। उड़ीसा में समाजवादी एवं साम्यवादी दोनों आम जनता के लिए संघर्ष कर रहे थे, कृषकों की मांगों को लेकर भी भारी संघर्ष हुआ और इस संघर्ष से देशी राज्यों में राजनैतिक एवं कृषक समस्याओं को लेकर भारी जनांदोलन हुए।

दक्षिण भारत में त्रावणकोर, कोचीन और मालाबार में भारी राजनैतिक आंदोलन हुए। यहाँ *1935 - 38 ई0* में मध्य कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने सक्रिय राजनैतिक भूमिका का निर्वहन किया। *1938 ई0* में त्रावणकोर राज्य के दीवान के विरूद्ध भारी राजनैतिक आंदोलन हुआ। आंदोलन इतना प्रबल था कि, सारे केरल के लोग इसमें कूद पड़े। केरल के छात्रों ने भी भारी संख्या में इस आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभायी।

दक्षिण भारत के ही त्रावणकोर राज्य में सामाजिक समानता के लिए निम्न जातियों ने जबरदस्त आंदोलन किये। निम्न जातियों के सामाजिक एवं शैक्षणिक उत्थान, सार्वजनिक मांगों पर निम्न जातियों को चलने का अधिकार, हिन्दू मंदिरों में निम्न जातियों के प्रवेश संबंधी अनेक ऐसी समस्याओं और अधिकारों को लेकर त्रावणकोर के वायकोम नामक ग्राम से आंदोलन प्रारंभ हुआ। इसी कारण इस आंदोलन को वायकोम सत्याग्रह का नाम दिया गया। त्रावणकोर राज्य के वायकोम ग्राम में एक बड़ा मंदिर था और मंदिर की चार दीवारों के चारों ओर मंदिर की ही सड़के थीं। इन सड़कों पर और मंदिर पर निम्न जातियों के लोग प्रवेश नहीं कर सकते थे। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए केरल राज्य कांग्रेस ने छुआछूत के विरूद्ध सशक्त आंदोलन छेड़ने का निर्णय लिया। मार्च, *1924 ई0* को केरल कांग्रेस के नेतृत्व में संवर्ण और अछूत हिन्दुओं ने मिलकर एक जूलूस लेकर मंदिर में पहुंचे। इसकी खबर से सारा राज्य सन्न रह गया। तुरंत ही अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक संगठनों ने इसको अपना समर्थन देना प्रारंभ कर दिया। मंदिर प्रबंध को एवं सरकार ने

आंदोलनकारियों की गतिविधियों पर रोक लगाने का प्रयास किया। अनेक सत्याग्राहियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

अगस्त, *1924* ई*0* में महाराजा की मृत्यु के बाद महारानी ने सिंहासन संभाला और वायकोम आंदोलन के सत्याग्राहियों को मुक्त कर दिया। अक्टूबर, *1924* ई*0* में पुनः मंदिर प्रवेश के लिए आंदोलन प्रारंभ हुआ और अनेक लोगों ने जत्थों में एकत्रित होकर महारानी से मंदिर प्रवेश की मांग की किन्तु महारानी ने इन्कार कर दिया। मार्च, *1925* ई*0* में महात्मा गांधी ने केरल पहुंचकर एक मध्यम मार्गीय समझौता कराया और निम्न वर्ग के लोगों के लिए मंदिर की सड़कों पर चलना स्वीकार कर लिया। किन्तु मंदिर प्रवेश की इजाजत अभी निम्न वर्गो को नहीं मिली।

केरल में ही 'केरल कांग्रेस' ने के*0* केलप्पण की मांग पर *1931* ई*0* में मंदिर प्रवेश आंदोलन प्रारंभ करने का निर्णय लिया। यह आंदोलन गुरूवायूर में मंदिर प्रवेश को लिए सत्याग्रह छेड़ने से प्रारंभ होना था। इसीलिए इस आंदोलन को 'गुरूवायूर सत्याग्रह' आंदोलन के नाम से जाता है। केरल के अनेक भागों से जत्थों और जुलूसों के रूप में अनेक नेताओं ने मंदिर प्रवेश के लिए पैदल यात्राऐं निकालना प्रारंभ कर दिया। सारे केरल में सभी जातियों ने इसका समर्थन किया और आंदोलन में भाग लिया। आंदोलन लगातार पकड़ता गया और *21* सितम्बर, *1932* ई*0* को के*0* केलप्पण आमरण अनश्न पर बैठ गये। महात्मा गांधी के अनेक बार अनुरोध करने पर ही *2* अक्टूबर, *1932* को केलप्पण ने अनशन तोड़ा इसके बाद भी आंदोलन जारी रहा। इन प्रयासों के बाद भी निम्न जातियों के लिए मंदिरों के द्वार नहीं खुले। किन्तु फिर भी यह आंदोलन सकारात्मक प्रभाव छोड़ने में सफल रहा। जिसके परिणाम कालान्तर में सकारात्मक निकले।

दक्षिण भारत में ही देश का सबसे बड़ा देशी राज्य हैदराबाद राजनैतिक आंदोलनों का केन्द्र बना। यहाँ के निजाम शासकों ने अपनी बहुसंख्यक हिन्दू जनता को जबरन धार्मिक एवं भाषायी रूप से प्रताड़ित किया। हिन्दुओं पर जबरन इस्लाम और उर्दू भाषा लादी गयी। इसके विरूद्ध जोरदार धार्मिक एवं राजनैतिक आंदोलन हैदराबाद राज्य में हुए।

3.4.1 देशी राज्यों का भारत में विलय

आजादी के पूर्व ही यह तय हो गया था कि, भारतीय देशी राज्यों का भारत में विलय अवश्यांभावी है। जून, *1947* ई*0* को कांग्रेस ने कहा कि, वह किसी भी देशी राज्य की भारत से पृथक स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं करेगी। जुलाई, *1947* ई*0* को ''भारतीय रियासत विभाग'' की स्थापना की। जिसका प्रमुख सरदार वल्लभभाई पटेल को बनाया गया। सरदार वल्लभभाई पटेल ने चमत्कार किया और देश का एकीकरण कर सभी देशी राज्यों का भारत में विलय कर दिया। मात्र जूनागढ़, हैदराबाद और कश्मीर के प्रश्न पर कुछ समस्याएँ आयी।

3.4.1.1 जूनागढ़ राज्य का भारत में विलय

भारतीय देशी राज्यों की महात्वाकांक्षाओं एवं निरंकुशता की पराकाष्ठा का एक उदाहरण जूनागढ़ रियासत ने दिया। स्वेच्छाचारी मुस्लिम शासक ने समस्त जनता की भावनाओं की अवहेलना करते हुए जूनागढ़ रियासत को पाकिस्तान में विलय करने की घोषणा सितम्बर, *1947* ई*0* में कर दी। ज्ञातव्य रहे कि, जूनागढ़ रियासत का शासक मुस्लिम था, किन्तु अधिकांश जनता हिन्दू थी, जो भारत में विलय चाहती थी। जूनागढ़ रियासत की जनता ने अपने मुस्लिम नवाब के विरूद्ध घोर संघर्ष किया और एक स्वतंत्र अस्थायी हुकुमत की स्थापना कर ली। संपूर्ण जूनागढ़ रियासत में जबरदस्त आंदोलन प्रारंभ हो गया। जनता की मांग थी कि, जूनागढ़ का भारत में विलय किया जाये। जनता के आंदोलन ने इतना जोर पकड़ा कि, जूनागढ़ के तत्कालीन नबाव को जूनागढ़ छोड़कर पाकिस्तान भागना पड़ा। जनता के आंदोलन की विजय हुई और जूनागढ़ रियासत के दीवान शाहनबाज भुट्टों ने *8* नवम्बर, *1947* ई*0* को जूनागढ़ के भारत में विलय का प्रार्थना पत्र भारत सरकार के पास भेजा। जिसे *9* नवम्बर, *1947* ई*0* को भारत सरकार ने स्वीकारते हुए। जूनागढ़ रियासत का भारत में विलय कर लिया।

3.4.1.2 हैदराबाद राज्य का भारत में विलय

हैदराबाद भारत की सबसे बड़ा देशी राज्य था। यहाँ का मुस्लिम शासक निजाम स्वतंत्रता के सपने देखने लगा था। उसके इस सपने को हवा पाकिस्तान दे रहा था। *29* नवम्बर, *1947* ई*0* को भारत सरकार के साथ एक वर्ष के लिए *''*यथास्थिति संधि*''* की। किन्तु हैदराबाद के निजाम ने संधि का पालन नहीं किया और पाकिस्तान सह पर स्वतंत्र अस्तित्व के लिए हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार करने प्रारंभ कर दिये। मजबूरन भारत सरकार को सैन्य कार्यवाही करके हैदराबाद को भारतीय संघ में मिला लिया।

3.4.1.3 कश्मीर राज्य का भारत में विलय

भारतीय देशी राज्यों के भारत में विलय के प्रश्न पर कश्मीर का प्रश्न सबसे पृथक था। यहाँ का शासक हिन्दू था और जनता मुस्लिम। हिन्दू शासक अपने राज्य का भारत में विलय चाहता था। किन्तु मुस्लिम जनता की आस्था और कहीं थी। पाकिस्तान के अत्यधिक दबाब के कारण एक समझौता कर लिया। किन्तु पाकिस्तान की मंशा और हरकतों से कश्मीर नरेश हरि सिंह डर गये और *22* अक्टूबर, *1947* ई*0* को पाकिस्तान ने कबालियों की आड़ में कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। तब महाराजा कश्मीर नरेश हरि सिंह ने *26* अक्टूबर, *1947* ई*0* को भारत में विलय पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। तभी से कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न:

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. के*0* केलप्पण आमरण अनशन पर कब बैठे थे *?*

   (क) *5* सितम्बर, *1932* ई*0*को (ख) *10* सितम्बर, *1932* ई*0* को

   (ग) *1* सितम्बर, *1932* ई*0* को (घ) *21* सितम्बर, *1932* ई*0*

2. भारतीय रियासत विभाग की स्थापना कब हुई *?*

   (क) जुलाई, *1947* ई*0* को (ख) अगस्त, *1947* ई*0* को

   (ग) सितम्बर, *1947* ई*0* को (घ) इनमें से कोई नहीं

3. देश का सबसे बड़ा देशी राज्य कौनसा था *?*

   (क) हैदराबाद (ख) जूनागढ़

   (ग) कश्मीर (घ) इनमें से कोई नहीं

4. कश्मीर का भारत में विलय हुआ *?*

   (क) अक्टूबर, *1947* ई*0* (ख) जुलाई, *1947* ई*0* को

   (ग) अगस्त, *1947* ई*0* को (घ) सितम्बर, *1947* ई*0* को

5. *'*ऑल इण्डिया स्टेट्स पीपुल्स कॉन्फ्रेंस*' (*ए*0* आई*0* एस*0* पी*0* सी*0)* का गठन कब हुआ *?*

   (क) सितम्बर, *1927* ई*0* को (ख) अक्टूबर, *1927* ई*0*

   (ग) दिसंबर, *1927* ई*0* में (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) वायकोम सत्याग्रह।

   (ख) गुरूवायूर सत्याग्रह।

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) बिजौलियां कृषक आंदोलन के बारे में आप क्या जानते हो *?*

3.5 सारांश

देशी राज्यों में आन्दोलन ब्रिटिस भारत में हुए अंग्रेजों के विरूद्ध हुए आन्दोलनों का अभिन्न अंग था। देशी राज्यों में आन्दोलन प्रमुखतः अत्यधिक भू - राजस्व की दरों के कारण हुए जो बाद में आगे चलकर राष्ट्रीय आन्दोलन से अभिन्न से जुड़ गये। देशी राज्यों में आन्दोलन सामाजिक समानता एवं धार्मिक अधिकारों को लेकर भी हुए। इन्हीं देशी राज्यों के आन्दोलनों के फलस्वरूप देशी राज्यों की जनता में एकीकरण का भाव जगा और *1947* ई॰ में देश की आजादी के साथ ही, इन देशी राज्यों का भारत में विलय हो गया।

3.6 तकनीकी शब्दावली

देशी राज्य :- भारतीय रियासतें।

ब्रिटिस भारत :- भारत का वह भाग जो अंग्रेजों के अधीन था।

विलय करना :- मिला लेना।

उत्तरदायी शासन :- जनता के प्रति जवाव देह शासन।

निरंकुश शासक:- जिस पर कोई अंकुश नहीं हो। अर्थात् ऐसा शासक जिसके कार्यों में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता हो।

स्वेच्छाचारी:- मनमाना आचरण करने वाला, नियम कानून को न मानने वाला निरंकुश शासक।

3.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर:

इकाई *3.3* के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(1 *)* निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए *3.3.5* निरंकुश एवं विलासी शासक
2. देखिए *3.3.6* देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व
3. देखिए *3.3.7* राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव
4. देखिए *3.3.2* प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव
5. देखिए *3.3.2* प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव

(2) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए *3.3.7* राष्ट्रीय नेताओं एवं क्रांतिकारियों का देशी राज्यों में शरण लेने का प्रभाव

(ख) देखिए *3.3.6* देशी राज्यों में अत्यधिक भू - राजस्व

नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए *3.3.2* प्रेस एवं समाचार पत्रों का प्रभाव

इकाई 3.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

(3) निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए *3.4* देशी राज्यों में आन्दोलन
2. देखिए *3.4.1* देशी राज्यों का भारत में विलय
3. देखिए *3.4.1.2* हैदराबाद राज्य का भारत में विलय
4. देखिए *3.4.1.3* कश्मीर राज्य का भारत में विलय
5. देखिए *3.4* देशी राज्यों में आन्दोलन

(4) निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए *3.4* देशी राज्यों में आन्दोलन

(ख) देखिए *3.4* देशी राज्यों में आन्दोलन

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

(अ) देखिए *3.4* देशी राज्यों में आन्दोलन

3.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. Ashton, S.R. – British polish towarts the Indian States, 1905 – 1939, New Delhi, 1985
2. Menon, V. P. – The Story of the Integration of the Indian States, Madras, 1961

3. Phadnis, Urmila - Towarts the Integration of the Indian States, 1919-1947, Bombay, 1968

4. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, *1999*

5. शुक्ल, रामलखन (संपा०) - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, *1998*

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री:

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, *1971*

2. बिपिन चन्द्र, त्रिपाठी, अमलेश, डे, बरूण - स्वतंत्रता संग्राम, नई दिल्ली,*1972*

3. बिपिन चन्द्र एवं अन्य - भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, *1998*

4. पाठक, सुशील माधव - भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (*1857 - 1947),* वाराणसी, *1993*

5. सरकार, सुमित - आधुनिक भारत (*1885 - 1947),* नई दिल्ली, *1992*

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न *1.* देशी राज्यों में आन्दोलन की पृष्ठभूमि का सविस्तार वर्णन कीजिये *?*

प्रश्न *2.* देशी राज्यों में हैदराबाद, जूनागढ़ एवं कश्मीर रियासत की स्थिति का विवरण दीजिये *?*

प्रश्न *3.* देशी राज्यों में आन्दोलन के प्रारंभ, प्रगति एवं घटनाओं का विस्तृत रूप से विवरण दीजिये

इकाई चार

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 वेवल योजना की पृष्ठभूमि
- 4.3.1 भारत छोड़ो आन्दोलन और उसका प्रभाव
- 4.3.2 क्रिप्स मिशन और उसकी असफलता
- 4.3.3 भारत में भयानक अकाल
- 4.3.4 द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता
- 4.3.5 अंतर्राष्ट्रीय दबाव
- 4.3.6 वैधानिक गतिरोध समाप्त करना:
- 4.3.7 इंग्लैण्ड में होने वाले चुनाव

4.4 वेवल योजना
- 4.4.1 गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन
- 4.4.2 प्रतिनिधत्व निर्धारण
- 4.4.3 स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स)
- 4.4.4 कार्यकारी परिषद् के संचालन का स्पष्टीकरण
- 4.4.5 भारतीय सदस्यों के विभाग
- 4.4.6 गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव
- 4.4.7 हाई कमिश्नर की नियुक्ति
- 4.4.8 संविधान निर्माण
- 4.4.9 प्रांतीय सरकारें
- 4.4.10 वेवल योजना का मूल्यांकन

4.5 शिमला सम्मेलन
- 4.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता
- 4.5.2 शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन

4.6 सारांश
4.7 तकनीकी शब्दावली

4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.11 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ ही, प्रशासन के लिए अनेक विधिक नियमों का निर्माण किया। इनमें से अधिकांश विधिक नियमों का निर्माण अंग्रेजों ने अपनी आवश्यकता के अनुसार किया। किन्तु शनैः - शनैः भारत जागरूक हुआ और भारत ने अपने अधिकारों की मांग करनी प्रारंभ कर दी। भारत की जागरूकता के प्रतिफल स्वरूप अंग्रेजों ने भारतीयों के हितों के अनुरूप अनेक आयोग और योजना बनायीं। इनमें वेवल योजना भी एक थी। वेवल योजना को कार्यरूप प्रदान करने के लिए शिमला सम्मेलन आयोजित किया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उद्देश्य निम्नलिखित है -

1. विद्यार्थी गवर्नर - जनरल वेवल के बारे में जानेंगे।
2. विद्यार्थी भारत में पड़े भयानक अकाल के बारे में जान सकेंगे।
3. विद्यार्थी वैधानिक गतिरोध को समझ सकेगें।
4. विद्यार्थी इंग्लैण्ड में होने वाले चुनावों को समझ सकेगें।
5. विद्यार्थी गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के बारे में जान सकेंगे।
6. विद्यार्थी हाई कमिश्नर के बारे में जान सकेंगे।
7. विद्यार्थी वेवल योजना के बारे में जान सकेंगे।
8. विद्यार्थी वेवल योजना का समग्र मूल्यांकन कर सकेंगे।
9. विद्यार्थी शिमला सम्मेलन के बारे में जान सकेंगे।
10. विद्यार्थी शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन कर सकेंगे।
11. विद्यार्थी वेवल योजना और शिमला सम्मेलन की प्रासंगिकता को समझ सकेगें।

4.3 वेवल योजना की पृष्ठभूमि

लॉर्ड वेवल अक्टूबर, 1943 ई0 में भारत के गवर्नर - जनरल बनकर भारत आये। आते ही, उन्होंने भारत के राजनैतिक एवं वैधानिक गतिरोध समाप्त करने के प्रयास करने प्रारंभ कर दिये। क्योंकि, तत्कालीन परिस्थितियाँ अंग्रेजों के विरूद्ध होती जा रहीं थी। भारत का राजनैतिक वातावरण अत्यधिक गर्माया हुआ था तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक दबाव भी इंग्लैण्ड पर अत्यधिक बना हुआ था।

4.3.1 भारत छोड़ो आन्दोलन और उसका प्रभाव

9 अगस्त, 1942 ई0 से भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन सारे देश को आंदोलित कर दिया था। भारत छोड़ो आंदोलन तीव्रता के साथ सारे देश में फैल गया था। देश में पहली बार महानगरों से लेकर गांवों तक राजनैतिक जागृति का अद्भुत दृश्य देखने को मिला। सारा देश तन कर आजादी के संघर्ष में कूद चुका था। आंदोलनकारियों ने सरकारी प्रतीकों और अंग्रेजी सत्ता के चिन्हों को जमींदोज कर दिया था। पुलिस थानों, डाकघरों, रेल्वे स्टेशनों, प्रशासनिक भवनों आदि आंदोलनकारियों के निशाने बने। साथ ही, रेल्वे लाईनों, पुलों, टेलीफोन एवं तार की लाइनों तथा यातायात के अन्य साधनों को ध्वस्त करने के प्रयास किये गये।

भारत की आम जनता की इस प्रतिक्रिया से अंग्रेजी सरकार सकते में आ गयी। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, इस खुली बगावत को कुचलने के लिए अंग्रेजी सरकार ने कठोरतम् दमन चक्र चलाया और सारे देश में एक प्रकार से पुलिस राज्य की स्थापना कर दी गयी थी। स्वयं गवर्नर जनरल ने स्वीकार किया कि, हम 1857 की क्रांति के बाद सबसे महान् खुली जन बगावत का सामना कर रहे है। भारत छोड़ो आंदोलन ने सारे देश को राजनैतिक रूप से जागृत कर दिया था। अब अंग्रेजों को लगने लगा था कि, भारतीयों को शांत करने के लिए प्रयास करने पड़ेगे। इन्हीं प्रयासों के तारतम्य में वेवल योजना और शिमला सम्मेलन थे।

4.3.2 क्रिप्स मिशन और उसकी असफलता

वेवल योजना और शिमला सम्मेलन की पृष्ठभूमि में 'क्रिप्स मिशन' और उसकी असफलता भी थी। भारतीयों का द्वितीय विश्व युद्ध में सहयोग लेने और राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने के उद्देश्य से भारत में एक संवैधानिक आयोग 23 मार्च, 1942 ई0 को भेजा। इस आयोग के अध्यक्ष प्रधानमंत्री चर्चिल के युद्ध मंत्रीमण्डल के सदस्य सर स्टेफर्ड क्रिप्स थे और उन्हीं के नाम से इसे 'क्रिप्स मिशन' के नाम से जाना गया। क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रावधानों में स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स), संवैधानिक सभा का गठन तथा कॉमनवेल्थ से पृथक होने का अधिकार सम्मिलित था।

क्रिप्स के प्रस्तावों पर लगातार 15 दिनों तक गंभीर चर्चा होती रही और अंत में प्रतिरक्षा संबंधी विषयों पर कांग्रेस से बात नहीं बनी और क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों को भारतीयों ने ठुकरा दिया। बहुत से भारतीय नेताओं ने इन प्रस्तावों को देर से उठाया गया कदम बताया और गांधीजी ने तो क्रिप्स के प्रस्तावों को **'उत्तरतिथीय चैक'** की संज्ञा' तक दे डाली थी। इस प्रकार भारत का राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने का एक और प्रयास असफल हो गया। अब अंग्रेजी सरकार ने 'क्रिप्स मिशन' की असफलता के बाद राजनैतिक गतिरोध को तोड़ने के उद्देश्य से वेवेल योजना प्रस्तुत की और शिमला सम्मेलन के द्वारा राजनैतिक सहमति बनाने के प्रयास किये।

4.3.3 भारत में भयानक अकाल

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भारत में भयानक अकाल पड़ा। अकाल का यह दौर 1943 - 1944 ई0 तक चला। इस दौरान लाखों लोग मारे गये। अंग्रेजी सरकार ने अकाल की भयानकता को कम करने के कोई प्रयास नहीं किये। इससे भारतीयों में भारी असंतोष व्याप्त हो गया। उधर द्वितीय विश्व युद्ध के कारण मंहगाई भी अत्यधिक बढ़ गयी थी। इससे लोगों की परेशानियाँ और अधिक बढ़ गयीं थी। बढ़ते असंतोष को संतुलित करना आवश्यक था। अतः भारतीयों का ध्यान आकर्षित करने और उन्हें यह बताने की कि, हम उनके लिए आवश्यक कदम उठा रहे है को दिखाने के लिए वेवल योजना को जनता के समक्ष रखा।

4.3.4 द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता

वेवल योजना के मूल में द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता भी थी। 1 सितम्बर, 1939 ई0 से प्रारंभ द्वितीय विश्व युद्ध 1945 ई0 तक भयानक रूप के चुका था। द्वितीय विश्व युद्ध ने इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों की अर्थव्यवस्था को चकनाचूर कर दिया था। साथ ही, इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों की जनता भी युद्ध से त्रस्त हो चुकी थी। उधर सेना भी लगातार युद्ध करते - करते परेशान हो गयी थी। द्वितीय विश्व युद्ध का इतना अधिक वर्षों तक चलना निश्चित रूप से परेशानी का सबब बनने लगा था। हालाँकि, 1943 ई0 में इटली और 1945 ई0 में जर्मनी परास्त हो चुके थे। किन्तु, जापान अभी भी मैंदान में डटा हुआ था और वह अंग्रेजों के भारतीय सम्राज्य के लिए लगातार खतरा बनता जा रहा था। अंग्रेजों को लग रहा था कि, जापान से अभी एक - दो वर्षों तक और चलेगा। लॉर्ड वेवल, जो स्वयं सेनापति रह चुका था ने अंग्रेजी सरकार को समझाया कि, भारत की समस्या सुलझाना आवश्यक है नहीं तो गम्भीर समस्या खड़ी हो जायेगी।

वेवल ने इसी मंशा से भारत का राजनीतिक गतिरोध दूर करने का प्रयास करना प्रारंभ किया। इसके पीछे ब्रिटिश सरकार और वेवेल की सोची समझी रणनीति थी। वे द्वितीय विश्व युद्ध में भारतीय राजनीतिक दलों का सहयोग चाहते थे। उनका सोचना था कि, यदि किसी बिन्दु पर एक राय बन जाती है, तो भारत में चल रहा राजनीतिक गतिरोध समाप्त हो जायेगा और भारत में राजनीतिक

शांति स्थापित हो जायेगी। इसका लाभ ब्रिटिश सरकार द्वितीय विश्व युद्ध में ले सकती थी। इसी कारण वेवेल ने अपनी योजना के अंतर्गत शिमला सम्मेलन आयोजित किया और राजनैतिक एकराय बनाने का प्रयास भी हुआ।

4.3.5 अंतर्राष्ट्रीय दबाव

अंग्रेजी सरकार पर लगातार अंतर्राष्ट्रीय दबाव बन रहा था कि, वह भारत की समस्या को सुलझाये। जापान के एशिया में बढ़ते कदमों से इंग्लैण्ड और उसके मित्र देशों में खलबली मची हुई थी कि, कहीं जापान भारत पर कब्जा न कर ले। इंग्लैण्ड के मित्र देश उस पर भारी दबाव बना रहे थे कि, वह भारतीयों से सकारात्मक वार्ता करे और कोई सकारात्मक कदम उठाये। जिससे विश्व युद्ध में भारतीयों का सक्रिय सहयोग मिल सके। अमरीका, रूस, चीन आदि देशों ने इंग्लैण्ड पर भारी दबाव बना रखा था। इसी दबाव के चलते वेवल योजना प्रस्तुत की गयी।

4.3.6 वैधानिक गतिरोध समाप्त करना

लार्ड वेवल ने भारत का वायसराय (गवर्नर जनरल) बनने के बाद वैधानिक गतिरोध समाप्त करने की मंशा से नवीन रचनात्मक तथा सकारात्मक कदम उठाने का प्रयास किया। लार्ड वेवल की स्पष्ट धारणा थी कि, भारत में लगातार बढ़ता वैधानिक गतिरोध इंग्लैण्ड के भारतीय साम्राज्य के हित में नहीं है। साथ ही, वह यह भी जानता था कि, वैधानिक गतिरोध ब्रिटिश साम्राज्य के हित में भी नहीं है। क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियाँ लगातार ब्रिटिश साम्राज्य के लिए समस्या खड़ी करती जा रही थी। 1935 के अधिनियम के बाद से वैधानिक गतिरोधों ने नया रूप धारण कर लिया था। इसका प्रमुख कारण 1935 के अधिनियम के प्रावधान ही थे, संघीय योजना लागू होने से पहले ही खत्म हो गयी।

अंग्रेजों ने बड़े सोच - विचार के साथ संघीय योजना बनायी थी। उनका उद्देश्य सभी राजनीतिक इकाईयों को एक सूत्र में पिरोना था, किन्तु संघीय योजना के प्रारूप में ही इसकी असफलता छिपी हुई थी, देशी रियासतों को अत्यधिक महत्व देने के कारण योजना की अकाल मृत्यु हो गयी। इससे ब्रिटिश शासन की अत्यधिक किरकिरी हुई। 1935 के अधिनियम की प्रांतीय स्वायत्तता भी मात्र एक समझाइस ही थी, क्योंकि इसमें प्रांतीय गवर्नर को अत्यधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी थी। 1935 के अधिनियम ने भारतीयों को अत्यधिक असंतुष्ट कर दिया था। इससे भारतीय संतुष्ट होने की अपेक्षा लगातार असंतुष्ट होने लगे थे। उसके बाद द्वितीय विश्व युद्ध तथा कांग्रेसी मंत्री मण्डल के त्याग पत्र ने वैधानिक गतिरोध को बड़ा दिया।

ब्रिटिश शासन वैधानिक गतिरोध को तोड़ने के प्रयास जारी रखे और इसी तारतम्य में वायसराय लिनलिथगों (1938 - 43 ई0) ने अगस्त 1940 ई0 से 'अगस्त प्रस्ताव' (ऑगस्ट ऑफर) द्वारा वैधानिक गतिरोध तोड़ने का प्रयास किया। भारतीयों को मनाने के लिए अनेक प्रावधान

रखे। जिनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण भारत का संविधान भारतीयों द्वारा ही बनाना तथा प्रादेशिक स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स) का उल्लेख किया गया था। किन्तु, लिनलिथगों का अगस्त प्रस्ताव भी वैधानिक गतिरोध को नहीं तोड़ सका। फिर भी लगातार बढ़ते दवाब से मुक्त होने के लिए ब्रिटिश सरकार ने लगातार प्रयास करने जारी रखे। 1942 ई0 में क्रिप्स को वैधानिक गतिरोध तोड़ने के लिए भेजा गया किन्तु क्रिप्स मिशन भी असफल रहा।

1943 ई0 को ब्रिटिश सरकार ने लार्ड वेवल को भारत का वायसराय नियुक्त किया तथा ब्रिटिश सरकार ने वेवल को भारत का वैधानिक गतिरोध तोड़ने के उद्देश्य से भारत भेजा था। ब्रिटिश ने आशा की कि वेवल भारतीय नेताओं को समझाकर वैधानिक गतिरोध तोड़ने में सफल होंगे तथा लंबे समय से चली आ रही खींचतान अंततः समाप्त हो जायेगी। वेवल ने भी वायसराय बनते ही भारत में आते ही घोषणा की वे भारतीयों के लिए सौंगातों का समुन्दर लेकर आये हैं। वस्तुतः स्वयं वेवल भी वैधानिक गतिरोध को तोड़ने की इच्छा रखते थे। कार्यभार संभालते हुए ही वेवल ने ऐसे संकेत दिये कि वे भारत का वैधानिक गतिरोध समाप्त करने की इच्छा रखते है। अपनी इच्छा के अनुसार वेवल ने प्रयास किये और 1945 में एक योजना प्रस्तुत की। जिसे 'वेवल योजना' के नाम से जाना जाता है। लॉर्ड वेवल भारत के विभिन्न विचारधारा वाले राजनीतिक दलों को एक मंच पर लाने का प्रयास कर रहे थे। उनकी मंशा थी कि, भारत के राजनीतिक दल विचार - विमर्श के लिए पहले एक मंत्र पर तो आये, तब कहीं जाकर कोई आमराय विकसित की जा सकती है।

4.3.7 इंग्लैण्ड में होने वाले चुनाव

ब्रिटेन में होने वाले चुनाव 'वेवल योजना' की पृष्ठभूमि का प्रमुख कारण था। ब्रिटेन में चुनाव होने वाले थे और चुनावों में 'श्रमिक दल' (लेबर पार्टी) की विजय की संभावनाएँ लगातार बनती जा रही थी। ब्रिटिश जनता का झुकाव लगातार श्रमिक दल की ओर बढ़ता जा रहा था, जिससे सत्तारूढ़ दल (अनुदार दल) में घबराहट पैंदा होने लगी थी। सत्तारूढ़ दल को लगने लगा था कि, भारत नीति के बारे में श्रमिक दल ब्रिटिश जनता को अधिक प्रभावित कर रहा है। उधर श्रमिक दल भी जोर शोर से चर्चिल की भारत नीति की अत्यधिक आलोचना कर रहा था तथा चर्चिल की भारतीय समस्याओं को सुलझाने वाले नीतियों की घोर निन्दा कर रही थी। ऐसे समय में जब ब्रिटेन का राजनीतिक वातावरण चर्चिल के विरूद्ध हो रहा था, तब चर्चिल और उनकी सरकार ने भारतीय समस्याओं का तर्कसंगत हल निकालने के लिए उपाय करना आवश्यक समझा।

ब्रिटेन में चुनाव अभियानों के दौरान श्रमिक दल के नेता लगातार यह कह रहे थे कि, वे भारतीयों के हित में काम करेगें। श्रमिक दल के नेता ग्रीनबुड, बैविन एवं लॉस्की ने चुनावों में ब्रिटेन की आम जनता के सामने कहा कि यदि हमारी सरकार बनती है तो, हम भारत में जारी राजनीतिक गतिरोध को समाप्त कर देंगे। श्रमिक दल के इन दावों से चर्चिल के अनुदारदल की स्थिति खराब होती जा रही थी। अनुदार दल के नेता आम जनता को उचित जबाव नहीं दे पा रहे थे। अनुदार दल

के नेता चर्चिल अब यह बताना चाहते थे कि, हमारी सरकार भारतीयों के हित में काम करने का प्रयास कर रही है। हम भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने में प्रयत्नशील है।

ब्रिटेन की जनता को चर्चिल यह बताना चाह रहे थे कि, हम भारतीयों की समस्यायें श्रमिक दल की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सुलझा सकते हैं और हम इसके लिए लगातार प्रयास भी कर रहे है और इसी प्रयास में हम लगातार भारतीय नेताओं से वार्ताकर रहे हैं तथा उनके सामने नये - नये विकल्प भी प्रस्तुत कर रहे हैं हमारे प्रयास भारत और भारतीयों के हित में ही तो है। चर्चिल की इन बातों का विशेष प्रभाव ब्रिटेन की जनता पर नहीं पड़ा और ब्रिटिश जनता चर्चिल के प्रयासों को सार्थक नहीं मान रही थी। उधर श्रमिक दल के नेताओं के प्रभावशाली वक्तव्य ब्रिटेन की जनता को खासे प्रभावित कर रहे थे।

ब्रिटेन की जनता श्रमिक दल के भारत संबंधी भावी विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हो रही थी। श्रमिक दल के नेता ऐटली भारत संबंधी अपने विचारों के कारण अधिक विश्वसनीय होते जा रहे थे। ऐटली ने घोषणा की कि, यदि उनकी सरकार सत्ता में आती है, तो शीघ्रातिशीघ्र हम भारत को आजाद कर देगें। ऐटली की इस प्रभावशाली घोषणा से अनुदार दल में हलचल मच गयी। अनुदार दल नही चाहता था कि, भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने का श्रेय श्रमिक दल को जाये। इसी कारण चर्चिल ने बड़ी ही चपलता से वेवल को भारतीयों की समस्याओं को सुलझाने के लिए निर्देशित किया। वेवल ने भारत आते ही आशावादी वक्तव्य देने प्रारंभ कर दिये तथा ऐसा वातावरण निर्मित करने का प्रयास किया कि, अंग्रेजी सरकार भारतीयों की सच्ची हितैषी तथा भारतीयों के हित में कार्य करना चाहती है।

4.4 वेवल योजना

लॉर्ड वेवल अक्टूबर, 1943 ई0 को गवर्नर - जनरल बनकर भारत आये। भारत में गवर्नर जनरल का पद संभालते ही, वेवल ने भारत में जारी संवैधानिक एवं राजनीति गतिरोध समाप्त करने के प्रयास करने प्रारंभ कर दिये। वेवल भारतीय राजनीति एवं भारत के बारे में अच्छी तरह से जानते थे। भारत के बारे में उनका ज्ञान पूर्ण था, क्योंकि वे भारत में ब्रिटिश सेना के सर्वोच्च सेनापति के पद पर रह चुके थे इसीलिए वेवल तत्कालीन परिस्थितियों का अच्छी तरह से आंकलन भी कर सकते थे। वेवल ने भारत में गवर्नर - जनरल के रूप में तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति का गहन अवलोकन किया और वैधानिक गतिरोध दूर करने के प्रयास प्रारंभ कर दिये।

भारत के गवर्नर जनरल का पद ग्रहण करने के बाद वेवल ने कहा कि, 'वह भारत के लिए अद्भुत भेटों से भरा थैला लेकर आये हैं।' वेवल ने बड़े सोच विचार कर एक मसौंदा तैयार किया और इस मसौदें पर विचार - विमर्श के लिए मार्च, 1945 में लॉर्ड वेवल लंदन गये। उन्होंने ब्रिटिश सरकार से भारत की भावी संवैधानिक व्यवस्था पर गहन विचार - विमर्श किया। उधर विश्व युद्ध में

नित नवीन घटनाएँ घट रही थी। ब्रिटेन कड़े संघर्ष में फंसा हुआ था। ऐसे समय में वेवल सामने यह समस्या भी थी कि, कहीं कुछ ऐसा न घट जाये जिससे स्थिति और खराब हो जाये। वेवल को ध्यान में रखना था कि, किसी भी प्रकार से ऐसा मसौंदा बन सके, जिस पर राजनीतिक गतिरोध थम सके और भारतीयों का द्वितीय विश्व युद्ध में सहयोग प्राप्त किया जा सके।

ज्ञातव्य रहे कि, इन सारी प्रक्रियाओं के मध्य वेवल को ब्रिटेन के हितों की भी रक्षा करनी थी, क्योंकि ब्रिटिश अपने साम्राज्य को खोना नहीं चाहते थे। वे साम्राज्य के अंदर ही समस्याओं का समाधान चाहते थे। 4 जून, 1945 ई0 को वेवल लंदन से विचार - विमर्श करके लौटे। भारत लौटने के बाद वेवल ने अपने संभावित मसौंदे को जारी करने में दस दिनों का समय लिया। इन दस दिनों में भी वेवल लगातार संभावित मसौंदे के प्रावधानों पर विचार - विमर्श करते रहे। ठीक दस दिनों के उपरांत 14 जून, 1945 को वेवल ने रेडियो प्रसारण द्वारा अपना प्रस्ताव जनता के सामने रखा। वेवल ने कहा कि, इन प्रस्तावों से भारत का राजनीति गतिरोध शनैः - शनैः कम होगा तथा भारत शनैः - शनैः पूर्ण स्वराज की ओर बढ़ेगा। चूंकि, ये प्रस्ताव वेवल द्वारा बनाये एवं तैयार किये गये थे, इसी कारण इन प्रस्तावों को वेवल के नाम पर ही 'वेवल योजना' का नाम दिया गया। 'वेवल योजना' में प्रावधान निम्नलिखित थे -

4.4.1 गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन

गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन वेवल योजना का प्रमुख प्रावधान गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी का पुनर्गठन करना था। वेवल अपनी योजना के अंतर्गत गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारतीयों को अधिक प्रतिनिधित्व दिया। उनका मानना था कि, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारतीयों के अधिक प्रतिनिधित्व से भारतीय संतुष्ट होंगे तथा वैधानिक संकट को खत्म करने में सहायता मिलेगी। वेवल ने अपनी योजना में प्रावधान किया कि, गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में वायसराय (गवर्नर जनरल) और मुख्य सेनापति को छोड़कर सभी सदस्य भारतीय होगें। वेवेल के इस प्रावधान का मतलब था कि, सर्वोच्च कार्यकारिणी (गवर्नर जनरल) में सभी सदस्य भारतीय होने थे, स्वयं गवर्नर जनरल एवं प्रधान सेनापति ही हो विदेशी सदस्य होने थे। वेवल योजना के इस प्रावधान से पहली बार गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारतीयों का दबदबा बड़ सकता था तथा भारतीय प्रशासनिक निर्णयों को प्रभावित करने एवं उन्हें भारतीयों के हित में लागू करने के लिए दबाव बना सकते थे।

4.4.2 प्रतिनिधत्व निर्धारण

वेवल योजना में गवर्नर जनरल की नई कार्यकारिणी में स्पष्ट रूप से भारतीयों के लिए किस प्रकार का प्रतिनिधित्व होगा निर्धारित कर दिया गयाथा। वेवल ने कार्यकारिणी में संगठित राजनैतिक दलों को अधिक महत्व दिया था। वेवल योजना में संगठित विचारों को अधिक महत्व दिया गया था।

वेवल ने अपनी योजना में भारत के मुख्य समुदायों का प्रतिनिधित्व निर्धारित कर दिया था। भारत के मुख्य समुदाय हिन्दू और मुसलमान थे, वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में दोनों को बराबर - बराबर प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया था। वेवल अपनी योजना के अंतर्गत गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में भारत के दोनों समुदायों बराबर प्रतिनिधित्व देकर गतिरोध समाप्त करना चाहता था। वेवल योजना में हिन्दू के लिए 'सवर्ण हिन्दू' (कॉस्ट हिन्दू) शब्द का प्रयोग किया गया था।

वेवल चाहता था कि, भारत में किसी भी प्रकार से राजनीतिक शांति स्थापित हो जाये। साथ ही, वेवल चाहता था कि, इससे हिन्दू और मुसलमान दोनों को संतुष्ट करने में सफलता मिलेगी। संगठित नवीन कार्यकारिणी को 1935 के अधिनियम के अंतर्गत ही कार्य करना था। अतः स्पष्ट है कि, नियम और कायदे 1935 के अधिनियम के अनुसार ही चलने थे तथा उन्हीं नियमों पर भारतीयों को कार्य करना था। इससे यह तो तय था कि, भारतीय सदस्य नियमों से बाहर कोई काम नहीं कर सकते थे और नियमों से बाहर काम रकने का समय भी नहीं था। वेवल की योजना में दोनों समुदायों को बराबर स्थान देकर 'चैक एण्ड बैलेन्स' की नीति भी अंतर्निहित थी। वेवल जानते थे कि, मुसलमान सदस्य साम्राज्य के हितों का ध्यान रखेगें और वे हिन्दुओं को शांति से कार्य नहीं करने देंगे।

4.4.3 स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स)

वेवल की योजना का उद्देश्य भारत को स्वशासन (डोमिनियन स्टेट्स) की ओर शनैः - शनैः ले जाना था। वेवल भारतीयों को यह बताना चाहते थे कि, वे भारत को स्वशासन की ओर ले जा रहे है। मेरी योजना भारत को स्वशासन प्रदान करेगी तथा भारतीय आंतरिक मामलों में पूर्ण स्वतंत्र रहकर अपने निर्णय ले सकेगें। भारतीयों को सत्ताधिकार प्रदान कर दिये जायेंगे तथा समस्त प्रमुख पदों पर भारतीय आसीन रहेगें। भारतीय अपने निर्णय स्वयं ले सकेंगे तथा उन्हें स्वयं लगू भी कर सकेगें। अन्य डोमिनियन स्टेटों की तरह ही ब्रिटेन का संबंध भारत से रहेगा। स्वशासन के इस प्रावधान में भारतीय आंतरिक मामलों में कुछ सीमाओं के सम्य लगभग पूर्ण स्वतंत्र रहना था तथा बाह्य मामले ब्रिटेन के अधीन रहेगें। कुल मिलकार स्वशासन में भारतीय सम्प्रभु नहीं होने थे, इंग्लैण्ड के उपनिवेश के रूप में आंतरिक स्वतंत्रता का प्रावधान था।

4.4.4 कार्यकारी परिषद् के संचालन का स्पष्टीकरण

वेवल योजना के प्रावधानों के अंतर्गत गवर्नर - जनरल की कार्यकारिणी परिषद के संचालन का खाका भी स्पष्ट कर दिया गया था। वेवल योजना के तहत गवर्नर - जनरल की कार्यकारिणी को युद्ध संचालन भारत सरकार का संचालन, ऐसा रास्ता निकालना जिससे गतिरोध दूर हो और नया संविधान बन सके। जो सभी की सहमति से बने जो स्थायी संविधान सिद्ध हो। भारत में चल रहे

गतिरोध का शांतिपूर्वक हल निकालना। इस प्रकार वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के संचालन के तौर - तरीकों को स्पष्ट कर दिया था, ताकि किसी भी प्रकार का गतिरोध उत्पन्न न हो सके।

4.4.5 भारतीय सदस्यों के विभाग

वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल के भारतीय सदस्यों के विभागों को स्पष्ट रूप अलिखित कर दिया गया था। वेवल ने अपनी योजनाओं में समस्त विभागों को भारतीयों के हाथों में सौंपने का प्रावधान किया था, वेवल ने मात्र सीमान्त एवं कबाइली मामलों को छोड़कर शेष सभी वैदेशिक विभाग भारतीयों के हाथों में रहेगें। इस प्रकार वेवल ने अपनी योजना में भारतीयों को बहुत अधिक अधिकार प्रदान किये थे, यहाँ तक कि विदेशी मामले भी भारतीयों के हाथों में सौंपने का प्रावधान कर दिया था।

4.4.6 गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव

वेवल ने अपनी योजना में गवर्नर जनरल एवं भारत सचिव के निरंकुश अधिकारों एवं दिन - प्रतिदिन के हस्तक्षेपों को कम करने का प्रावधान किया था। वेवल योजना में गवर्नर जनरल से अपेक्षा की गयी थी कि वह कार्यकारिणी परिषद के निर्णयों पर अकारण वीटों का प्रयोग न ही करेगा। वेवल ने भारत सचिव के कम से कम नियंत्रण का भी प्रावधान किया था तथा अपेक्षा की कि, भारत सचिव भारत के हितों में कार्य करें।

4.4.7 हाई कमिश्नर की नियुक्ति

वेवल ने अपनी योजना में भारत में एक ब्रिटिश उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) की नियुक्ति प्रावधान किया था। ताकि वह भारत में ब्रिटेन के वाणिज्य तथा अन्य हितों की देखरेख करता रहे। यह नियुक्ति ब्रिटेन द्वारा अन्य डोमिनियन स्टेट्स वाले देशों के समान होनी थी। वेवल योजना में उच्चायुक्त की नियुक्ति महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होनी थी, यह ठीक वैसे ही होता जैसे किसी स्वतंत्र देश में उच्चायुक्त का होना। अतः वेवल की येाजना में भविष्य की आजादी के गुण अंतर्निहित थे।

4.4.8 संविधान निर्माण

वेवल ने अपनी योजना में भारत के भावी संविधान के निर्माण के बारे में उल्लेख किया था। वेवल ने स्पष्ट किया कि, युद्ध के बाद बनने वाले संविधान पर इन प्रस्तावों से कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। युद्ध के बाद भारतीय अपना संविधान स्वयं बनायेगें। इस प्रकार वेवेल ने अपने प्रस्तावों में स्पष्ट कर दिया था कि मेरे प्रस्तावों से भारत के बनने वाले संविधान पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा तथा संविधान बनाना सिर्फ और सिर्फ भारतीयों द्वारा ही किया जायेगा।

4.4.9 प्रांतीय सरकारें

वेवल ने अपनी योजना में प्रांतीय सरकारों के शासन के बारें में उल्लेख किया था। वेवल ने अपनी योजना में कहा कि, यदि भारतीय इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लेते है तो 1935 के अधिनियम की धारा 93 को समाप्त कर दिया जायेगा और राज्यपाल का शासन समाप्त कर दिया जायेगा। प्रांतों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना की जायेगी तथा प्रांतों में सभी दलों की मिली - जुली सरकारों का गठन कर दिया जायेगा।

4.4.10 वेवल योजना का मूल्यांकन

वेवल योजना अब तक के संवैधानिक प्रयासों में सबसे उत्तम थी। पहली बार अंग्रेजों के प्रस्ताव ऐसे थे, जो भारतीयों के हित में अधिक झुके हुए थे। गवर्नर - जनरल और प्रधान सेनापति के पद को छोड़कर सभी पद भारतीयों को देने की बात की गयी थी। यहाँ तक कि, पहली बार किसी संवैधानिक प्रस्ताव में भारतीयों के हाथों में विदेशी मामलों का पद देने की पेशकश की गयी थी, जो अपने आप में विशिष्ट थी। संविधान बनाने की स्वतंत्रता भारतीयों को प्रदान की गयी थी। इस प्रकार वेवेल योजना में अनेक सकारात्मक तथ्य सम्मिलित थे। वेवल योजना में अनेक विसंगतियाँ भी विद्यान थी।

महात्मा गाँधी ने वायसराय वेवल से योजना के बारे में जानना चाहा कि, योजना में स्वतंत्रता का उल्लेख क्यों नहीं है? इसके जवाब में वेवल ने कहा कि, योजना में डोमिनियन स्टेट्स का उल्लेख है। साथ ही, भारत की इच्छा है कि वह चाहे राष्ट्रमण्डल में रहे न रहे और इसका मतलब स्वतंत्रता से ही है। महात्मा गाँधी ने योजना में 'सवर्ण हिन्दू' (कॉस्ट हिन्दू) शब्द के प्रयोग पर विरोध किया। उन्होंने वायसराय से कहा कि, इस प्रकार का विभाजन हमें किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं है। महात्मा गांधी ने अंग्रेजों की भारतीय समस्या को सुलझाने में धार्मिक एवं साम्प्रदायिकता के आधार पर सुलझाने पर ऐतराज व्यक्त किया। महात्मा गांधी ने हिन्दू और मुसलमानों के मध्य समानता को स्वीकार नहीं किया। गवर्नर - जनरल वेवेल ने महात्मा गांधी की चिंताओं का जबाव देने का प्रयास किया तथा कहा कि, सवर्ण हिन्दू से मतलब मात्र अनुसूचित जातियों के अतिरिक्त हिन्दुओं से है। हिन्दू और मुसलमानों के बराबर प्रतिनिधित्व का प्रश्न है, तो यह केवल सुझाव मात्र है। कांग्रेस चाहे तो इसे अस्वीकार कर सकती है।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. लॉर्ड वेवल कब गवर्नर - जनरल बनकर भारत आये ?

(क) अगस्त, 1943 ई0को (ख) सितम्बर, 1943 ई0 को

(ग) अक्टूबर, 1943 ई0 को (घ) नवम्बर, 1943 ई0 को

2. वेवल योजना के अंतर्गत प्रांतीय सरकारों को किस आधार पर शासन करना था?

(क) 1935 के अधिनियम के आधार पर (ख) वेवल योजना के आधार पर

(ग) संघीय योजना के आधार पर (घ) इनमें से कोई नहीं

3. लॉर्ड वेवल ने वेवल योजना को कब प्रस्तुत किया था ?

(क) 4 जून, 1945 ई0 को (ख) 14 जून, 1945 ई0 को

(ग) 24 जून, 1945 ई0 को (घ) इनमें से कोई नहीं

4. किस गवर्नर - जनरल ने कहा कि, 'वह भारत के लिए अद्भुत भेटों से भरा थैला लेकर आये हैं' ?

(क) लिनलिथगों ने (ख) लॉर्ड वेवल ने

(ग) ऐटली ने (घ) इनमें से कोई नहीं

5. किस योजना द्वारा भारत में एक ब्रिटिश उच्चायुक्त (हाई कमिश्नर) की नियुक्ति का प्रावधान किया गया था ?

(क) ऑगस्ट ऑफर द्वारा (ख) क्रिप्स मिशन द्वारा

(ग) वेवल योजना द्वारा (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) वेवल योजना के अंतर्गत प्रतिनिधित्व निर्धारण।

(ख) वेवल योजना के अंतर्गत प्रांतीय सरकारों का संचालन।

2. **नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:**

(अ) वेवल योजना का मूल्यांकन कीजिये ?

4.5 शिमला सम्मेलन

गवर्नर जनरल वेवल ने अपनी योजना (वेवल योजना) को कार्य रूप प्रदाय करने के लिए शिमला में भारत के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों का 25 जून 1945 ई0 को सम्मेलन बुलाया। शिमला सम्मेलन वेवल योजना पर राजनैतिक दलों के विचार विमर्श और राजनैतिक गतिरोध को समाप्त करने तथा राजनैतिक सहमति बनाने के उद्देश्य से आयोजित किया गया था। वेवेल ने शिमला सम्मेलन में कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के अध्यक्षों, विधानसभाओं में कांग्रेस दल के नेता तथा मुस्लिम लीग दल के अपनेता, विधानमण्डलों के राष्ट्रीय दल तथा यूरोपियन गुट के नेता, कौंसिल ऑफ स्टेट के अंग्रेजी एवं लीगी नेता एक प्रतिनिधि अनुसूचित जातियों का तथा एक सिक्खों का तथा वे सभी भूतपूर्व मुख्यमंत्री, जिन्होंने 1939 में इस्तीफा दे दिया था को आमंत्रित किया।

इस प्रकार वेवल ने बड़े ही योजनाबद्ध तरीके से विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधियों की शिमला सम्मेलन में आमंत्रित किया था। शिमला सम्मेलन गवर्नर जनरल के भाषण से प्रारंभ हुआ। गवर्नर जनरल ने कहा कि, यह संवैधानिक हल नहीं है तथा न ही यह अंतिम अवसर। किन्तु यह प्रयास सफल रहा तो आगे रास्ता निकालने में सहयोगी रहेगा। शिमला सम्मेलन में कांग्रेस अध्यक्ष अबुल कलाम आजाद ने बहस प्रारंभ करते हुए कहा कि, कांग्रेस एक राष्ट्रीय संस्था है तथा सम्मेलन में यह किसी सम्प्रदाय की प्रतिनिधि नहीं है, अपितु सारे राष्ट्र की प्रतिनिधि के रूप सम्मिलित माना जाये। जिन्ना ने बड़े ही कड़े शब्दों में कहा कि, हमें ऐसी कोई योजना मंजूर नहीं है, जिसमें पाकिस्तान का उल्लेख न हो। मुस्लिम लीग ने स्पष्ट किया कि, काम चलाऊ सरकार के गठन में मुस्लिम लीग और कांग्रेस को बराबर माना जाये। जिन्ना का कहना था कि, कांग्रेस भारत के सभी सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व नहीं करती है, कांग्रेस 90 प्रतिशत हिन्दुओं की प्रतिनिधि और मुस्लिमलीग 90 प्रतिशत मुसलमानों की।

सम्मेलन में लगातार विभिन्न विषयों पर विचार - विमर्श चलता रहा। वेवेल ने कार्यकारिणी कौंसिल और उसकी शक्तियों और सदस्यता के बारे में विचार विमर्श किया। विविध चर्चाओं के सहमति और असहमति के दौर चलते रहे। अंत में वेवल ने सुझाव दिया कि, कांग्रेस और अन्य दल अपने सदस्यों की एक सूचियाँ प्रस्तुत करें। वेवल ने कार्यकारिणी परिषद् का निर्माण 14 सदस्यों से करने का प्रस्ताव दिया। जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग के 5 - 5 सदस्य तथा 4 सदस्यों के नाम वेवल अपनी स्वेच्छा देगें। कांग्रेस ने अबुल कलाम आजाद, सरदार बल्लभ भाई पटेल, जवाहर लाल नेहरू, एक पारसी और एक भारतीय ईसाई का नाम दिया। वेवल ने एक सिक्ख, दो अनुसूचित जातियों के सदस्य तथा पंजाब के मुख्यमंत्री खिजिर हयात का नाम दिया।

किन्तु, मोहम्मद अली जिन्ना का स्पष्ट वक्तव्य था कि, मुस्लिम लीग के अतिरिक्त मुसलमानों का प्रतिनिधि कोई और नहीं है तथा कौंसिल में सभी मुसलमानों के नाम मुस्लिम लीग

देगी। मुस्लिम लीग को किसी और दल के मुस्लिम प्रतिनिधि स्वीकार नहीं है। जिन्ना के साथ वेवल ने चर्चा की, किन्तु जिन्ना नहीं माने उन्होंने कहा कि, मुसलमान प्रतिनिधि तो हमारी ही और से भेजे जायेगें। गवर्नर जनरल ने जिन्ना की बात मानने से इंकार कर दिया। इस प्रकार वार्ता टूट गयी और वेवल ने 14 जुलाई 1945 ई0 को योजना को असफल घोषित करके शिमला सम्मेलन भंग कर दिया।

4.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

शिमला सम्मेलन की असफलता का प्रमुख कारण जिन्ना की हठधर्मिता तथा उसकी साम्प्रदायिक सोच थी। जिन्ना ने कहा कि, कांग्रेस और वेवल चाहते है कि, मुस्लिम लीग अपने सिद्धांत को छोड़कर आत्म समर्पण कर दे और अपनी मौत मर जाए। जिन्ना ने कहा कि, यदि हम इस योजना को मान लेते है, तो पाकिस्तान का प्रश्न सदा के लए दफन हो जायेगा। जिन्ना अपने रूख पर अत्यधिक अडिग रहे। उन्होंने किसी की नहीं सुनी इसी कारण सम्मेलन विफल हो गया। वस्तुतः मुस्लिम लीग और जिन्ना को सम्मेलन की सफलता और विफलता से कोई लेना देना नहीं था और न ही उन्हें भारत की आजादी से कोई मतलब था उनका एकमात्र उद्देश्य देश का विभाजन और पाकिस्तान का निर्माण करवाना था।

जिन्ना को कौंसिल के दो सदस्यों मौलाना आजाद तथा खिजिर हयात खाँ से शिकायत थी, वह चाहता था कि, मुस्लिम सदस्य सिर्फ मुस्लिम लीग से होगें। मौलाना आजाद ने शिमला सम्मेलन को एक दुर्घटना बताया और कहा कि, पहली बार कोई वार्ता भारत के सम्प्रदायों को विभाजित करने के प्रश्न पर टूटी। मौलाना आजाद ने सम्मेलन की असफलता का ठीकरा जिन्ना के सिर पर फोड़ते हुए कहा कि, चौदह सदस्यों की कार्यकारिणी परिषद् में सात सदस्य मुसलमान होते, वहीं भारत में मुसलमानों की जनसंख्या एक चौथाई ही थी, जबकि उन्हें आधे स्थान मिलने थे। यह कांग्रेस की महान् उदारता तथा मुस्लिम लीग की मूर्खता का परिचायक था।

शिमला सम्मेलन की असफलता में अंग्रेजों की सोची समझी रणनीति का भी हिस्सा था। वेवल की योजना से चर्चिल घृणा करते थे क्योंकि, इससे भारतीयों के हाथों में शक्ति आने वाली थी। चर्चिल को वेवल के प्रस्तावों का औचित्य ही समझ में नहीं आ रहा था, बड़ी मान मुनव्वल के बाद एमरी एवं क्रिप्स के आग्रह पर वह अनिच्छा से सम्मेलन के प्रश्न पर राजी हुआ था, वह भी तब जब एमरी और क्रिप्स ने उसे समझाया कि, 'आखिरकार हम कुछ दे थोड़ी ही रहे है।' इस प्रकार अंग्रेजों की मंशा पवित्र नही थी, वे भारतीयों को आपस में ही उलझाये रखना चाहते थे। उधर जब सम्मेलन चल रहा था, तब वायसराय की कार्यकारिणी का एक सदस्य जिन्ना को सलाह दे रहा था कि, अपनी बात पर डटे रहो। अतः अंग्रेज ही जिन्ना को हवा दे रहे थे। फिर सम्मेलन सफल कैसे होता? उसे तो असफल होना ही था।

4.5.2 शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन

गवर्नर जनरल वेवल ने अपनी योजना (वेवल योजना) को कार्य रूप प्रदाय करने के लिए शिमला सम्मेलन बुलाया था। किन्तु, राजनैतिक खिंचाव के कारण सम्मेलन असफल हो गया। गवर्नर जनरल वेवल की योजना वस्तुतः भारत के राजनैतिक दलों को एक टेबल पर लाकर राजनैतिक सहमती बनाना था। ताकि, भारत के राजनैतिक गतिरोध को स्थायी रूप से समाधान करना था। किन्तु, वास्तविकता यह थी कि, स्वयं अंग्रेज भारतीयों को शक्ति हस्तांतरित नहीं करना चाहते थे, वे तो मात्र दिखावा कर रहे थे और भारतीय राजनैतिक दलों के मतभेद उभार रहे थे।

स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

2. शिमला सम्मेलन किस गवर्नर - जनरल ने कराया था ?

   (क) लिनलिथगों ने (ख) लॉर्ड वेवल ने

   (ग) ऐटली ने (घ) इनमें से कोई नहीं

3. शिमला सम्मेलन कब कराया गया था ?

   (क) 4 जून, 1945 ई0 को (ख) 14 जून, 1945 ई0 को

   (ग) 25 जून, 1945 ई0 को (घ) इनमें से कोई नहीं

3. शिमला सम्मेलन को कब असफल घोषित किया गया था ?

   (क) 4 जुलाई, 1945 ई0 को (ख) 10 जुलाई, 1945 ई0 को

   (ग) 14 जुलाई, 1945 ई0 को (घ) इनमें से कोई नहीं

4. शिमला सम्मेलन को किसने एक दुर्घटना बताया था ?

   (क) मौलाना आजाद ने (ख) पटेल ने

   (ग) पं॰ जवाहर लाल नेहरू ने (घ) जिन्ना ने

5. किसने कहा था कि, मुस्लिम लीग अपने सिद्धांत को छोड़कर आत्म समर्पण कर दे और अपनी मौत मर जाए ?

   ((क) मौलाना आजाद ने (ख) खिजिर हयात खाँ ने

(ग) जिन्ना ने (घ) इनमें से कोई नहीं

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) शिमला सम्मेलन में जिन्ना की भूमिका।

(ख) शिमला सम्मेलन और अंग्रेजों की मंशा।

2. **नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:**

(अ) शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन कीजिये ?

4.6 सारांश

1945 में भारत का राजनैतिक वातावरण अत्यधिक गर्माया हुआ था। भारत में राजनैतिक और वैधानिक खिंचाव भारतीयों और अंग्रेजी साम्राज्य के बीच बना हुआ था। द्वितीय विश्व युद्ध और उसकी भयानकता ने विश्व युद्ध में भारतीयों का सहयोग लेना आवश्यक बना दिया था और इसी कारण अंग्रेजी साम्राज्य ने 14 जून, 1945 को वेवल योजना प्रस्तुत की। वेवल योजना अब तक के संवैधानिक प्रयासों में सबसे उत्तम थी। निश्चित रूप से पहली बार अंग्रेजों के प्रस्ताव ऐसे थे, जो भारतीयों के हित में अधिक झुके हुए थे। वेवल योजना को कार्य रूप प्रदाय करने के लिए शिमला सम्मेलन बुलाया गया था। किन्तु, भारत के राजनैतिक दलों के आपसी मतभेद और अंग्रेजों की कूटनीति के कारण वेवल योजना और शिमला सम्मेलन असफल हो गया।

4.7 तकनीकी शब्दावली

डोमिनियन स्टेट्स :- ऐसा राज्य जिसमें आंतरिक स्वतंत्रता हो, किन्तु बाह्य परतंत्रता हो।

द्वितीय विश्व युद्ध :- द्वितीय विश्व युद्ध 1939 से 1945 ई॰ तक चला। इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि मित्र देश तथा जर्मनी, जापान आदि धुरी देश सम्मिलित थे।

वैधानिक:- कानूनी

लॉर्ड वेवल:- लॉर्ड वेवल 1943 - 1947 ई0 तक भारत के गवर्नर - जनरल रहे। लॉर्ड वेवल ने ही शिमला सम्मेलन कराया था

मौलाना आजाद:- प्रख्यात स्वतंत्रता सेनानी मौलाना अबुल कलाम आजाद (1888 - 1958 ई॰) कांग्रेस पार्टी के 1940 - 1946 तक अध्यक्ष रहे।

जिन्ना:- बम्बई में जन्मे मोहम्मद अली जिन्ना (1876 - 1948 ई०)मुस्लिम लीग के सबसे बड़े नेता थे। जिन्ना मुस्लिम लीग के 1916, 1920तथा 1934 - 48 ई० तक अध्यक्ष रहे। ये पाकिस्तान के जनक थे।

शिमला:- भारत का प्रसिद्ध पर्यटक शहर, वर्तमान में हिमाचल प्रदेश की राजधानी।

4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 4.4 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 4.4 वेवल योजना
2. देखिए 4.4.9 प्रांतीय सरकारें
3. देखिए 4.4 वेवल योजना
4. देखिए 4.4 वेवल योजना
5. देखिए 4.4.7 हाई कमिश्नर की नियुक्ति

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 4.4.2 प्रतिनिधत्व निर्धारण

   (ख) देखिए 4.4.9 प्रांतीय सरकारें

2. नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिए:

   (अ) देखिए 4.4.10 वेवल योजना का मूल्यांकन

इकाई 4.5 के स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न

निम्नलिखित वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के उत्तर दीजिए:

1. देखिए 4.5 शिमला सम्मेलन
2. देखिए 4.5 शिमला सम्मेलन
3. देखिए 4.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता
4. देखिए 4.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता
5. देखिए 4.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए:

1. (क) देखिए 4.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

(ख) देखिए 4.5.1 शिमला सम्मेलन की असफलता

2.नीचे लिखे प्रश्न का उत्तर दीजिएः

(अ) देखिए 4.5.2 शिमला सम्मेलन का मूल्यांकन

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, आर॰ सी॰ - भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, संवैधानिक विकास तथा आधुनिक संविधान का तुल्नात्मक अध्ययन, नई दिल्ली, 1965
2. बसु, डी॰ डी॰ - भारत का संविधान, नागपुर, 2001
3. परांजपे, एन॰ वी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2003
4. पाण्डेय, जय नारायण - भारत का संविधान, इलाहाबाद, 1996
5. ताराचंद - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, चतुर्थ खण्ड, नई दिल्ली, 2007
6. त्रिपाठी, जी॰ पी॰ - भारत का वैधानिक एवं संवैधानिक इतिहास, इलाहाबाद, 2001

4.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बिपिन चन्द्र - आधुनिक भारत, नई दिल्ली, 1971
2. फड़िया, बी॰ एल॰ - भारत का राष्ट्रीय आंदोलन तथा सांविधानिक विकास, जयपुर,1991
3. ग्रोवर, बी॰ एल॰ एवं यशपाल - आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, 1999
4. पाठक, सुशील माधव - भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास (1857 -1947), वाराणसी, 1993
5. राय, सत्या एम॰ (संपा॰) - भारत में उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद, नई दिल्ली, 1990

4.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. वेवल योजना की पृष्ठभूमि और वेवल योजना के प्रमुख प्रावधानों कासविस्तार वर्णन कीजिये ?

प्रश्न 2. शिमला सम्मेलन और उसकी असफलता पर प्रकाश डालिये ?

ब्लाक पॉच- राष्ट्रीय आन्दोलन का अन्तिम चरण

इकाई एक- 1945-47 के जन-आन्दोलन

इकाई दो- 1945-47 के बीच राजनीतिक गतिविधियां

इकाई तीन- राष्ट्रीय आन्दोलन और समाजवादी विचारधारा

इकाई चार- देश का विभाजन और स्वतन्त्र भारत की चुनौतियां

1945- 47 के जन आन्दोलन

1.1 भूमिका
1.2 उद्देश्य
1.3 राजकीय भारतीय नौसेना का विद्रोह
1.4 तेभागा आंदोलन
1.5 वर्ली का विद्रोह
1.6 पुन्नप्रा-वायलर
1.7 बाकाश्त किसान आंदोलन
1.8 तेलंगाना आंदोलन
1.9 सारांश
1.10 तकनीकी शब्दावली
1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न
1.12 पुस्तकों की सूची/ग्रंथ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 भूमिका

पिछले कुछ अध्यायो में हम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के उस दौर के बारे में पढ़ चुके हैं। जिसमें हमें द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हो रहे राजनीतिक, आर्थिक तथा अन्य प्रकार के विरोधी आन्दोलनों की जानकारी प्राप्त हो चुकी है। भारत छोड़ो आन्दोलन और लोगों का सरकार विरोधी रवैया का हम अध्ययन कर चुके हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद किन-किन पहलुओं पर भारतीय राजनीतिज्ञों का घ्यान गया और लोगों ने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ किस प्रकार संघर्ष जारी रखा इसी बात को इस इकाई में बताया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको 1945-1947 के बीच हुए जन आन्दोलनों के बारे में जानकारी देना है। इस इकाई में हम 1945-1947 के बीच हुए जन आन्दोलन की चर्चा करेंगे जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में महत्वपूर्ण है। वर्ली, बाकाश्त, ट्रावनकोर, तेभागा तथा तेलंगाना आन्दोलन इत्यादि सभी आन्दोलन किसानों, सैनिकों और मजदूरों द्वारा चलाये गए। उनकी

अपनी अलग अलग शिकायतें थीं। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप निम्नांकित आंदोलनों से संबंधित जानकारियों से परिचित हो सकेंगे :

- राजकीय भारतीय नौसेना का विद्रोह
- तेभागा आंदोलन
- वर्ली का विद्रोह
- पुन्नप्रा-वायलर
- बाकाशत किसान आंदोलन
- तेलंगाना आंदोलन

1.3 राजकीय भारतीय नौसेना का विद्रोह

अंग्रेज 1945 के मध्य से ही भारत में एक उथल-पुथल की आशा करते आ रहे थे लेकिन जिस बात ने उन्हें परेशान किया, वह सेना की वफादारी पर आजाद हिंद फौज के मुकद्दमों का प्रभाव थी, और भारत छोड़ो आंदोलन के बाद तो यह सेना ही उनके शासन का एकमात्र भरोसेमन्द सहारा थी। युद्ध के दौरान और बाद में सैरयरकर्मियों में बढ़ती राजनीतिक चेतना अधिकारियों के लिए पहले ही चिंता का विषय बनी हुई थी। उसमें आजाद हिन्द फौज के मुकद्दमों ने और योगदान किया। जनवरी 1946 में वायु सेना के लोग अपनी विभिन्न शिकायतों और तकलीफों को

लेकर हड़ताल में उतरे। लेकिन अंग्रेजी राज के लिए सचमुच गंभीर खतरा फरवरी 1946 में राजकीय भारतीय नौसेना की खुली बग़ावत ने किया। सबसे बड़ा खतरा, राजकीय भारतीय नौसेना की बग़ावत था जो बम्बई में 18- 23 फरवरी 1946 में हुआ। औपनिवेशिक सरकार के खिलाफ द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह सबसे खतरनाक बग़ावत थी। दुर्भाग्य से भरतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इसे समुचित महत्व नहीं मिला हैं। युद्ध के समय राजकीय भारतीय नौसेना का विस्तार किया गया जिसमें देश के हर भाग से लोगों को इसमें नियुक्त किया गया।जिससे पुराने सैनिक रिवाज कमज़ोर हुआ। क्योंकि पहले राजनीतिक रूप से अविकसित सैनिक नस्लों की सेना में भर्ती की जाती थी। इस विद्रोह की शुरूआत 18 फरवरी 1946 में हुई जो कि जलयान में समुद्र से बाहर स्थित नौसेना के ठिकानों पर भी हुआ। यद्यपि यह बम्बई से आरम्भ हुआ किन्तु करांची से लेकर कलकत्ता तक पूरे ब्रिटिश भारत में इसे भरपूर समर्थन मिला। यह विद्रोह एच0 एम0 आई0 एस0 तलवार के नौसेनिकों ने खराब भोजन और नस्ली भेदभाव के खिलाफ भूख हड़ताल द्वारा शुरू किया । हड़ताल

के अगले ही दिन हैसल फोर्ट बैरकों और बम्बई बन्दरगाह के 22 जहाजों तक फैल गयी। 19 फरवरी को एक हड़ताल कमेटी का चुनाव किया गया। नाविकों की माँग निम्न थी-

- बेहतर खाना,
- भारतीय और अंग्रेज नौसेनिक के लिए समान वेतन,
- आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों की रिहाई,
- राजनीतिक बन्दियों की रिहाई,
- सैनिकों के साथ सभ्य बर्ताव एवं व्यवहार,
- हिन्द-चीन तथा जावा से सैनिकों की वापसी इत्यादि,

विद्रोही बेड़े के मस्तूलों पर कम्यूनिस्ट पार्टी, कांग्रेस और मुस्लिम लीग के झंडे एक साथ फहरा दिये गये। 20 फरवरी को विद्राहे को कुचलने के लिए सैनिक टुकड़िया बम्बई लाई गयीं। नौसेनिकों ने अपनी कार्रवाईयों के तालमेल के लिए पांच सदस्यीय कार्यकारिणी चुनी। 20 फरवरी को उन्होंने अपने अपने जहाजों पर लौटने के आदेश का पालन किया जहां सेना गार्डो ने उन्हें घेर लिया। अगले दिन कैसल बैरको में नाविकों द्वारा घेरा तोड़ने की कोशिश करने पर लड़ाई शुरू हो गई और दोपहर चार बजे युद्ध विराम घोषित कर दिया गया। एडमिरल गॉडफ्रे अब बम्बारी करके नौसेना को नष्ट करने की धमकी दे रहा था। इसी समय लोगों की भीड़ गेटवे ऑफ इण्डिया पर नौसैनिकों के लिए खाना तथा अन्य मदद लेकर उमड़ पड़ी। विद्रोह की खबर फैलते ही कराची, कलकता, मद्रास और विशाखापटनम के भारतीय नौसैनिकों तथा दिल्ली, ठाणे और पूणे स्थित कोस्ट गार्ड भी हड़ताल में शामिल हो गये। 22 फरवरी हड़ताल का चरम बिन्दु था, जब 78 जहाज 120 तटीय प्रतिष्ठान और 20000 नौसैनिक इसमें शमिल हो चुके थे। इसी दिन कम्युनिस्ट पार्टी के आह्वान पर बम्बई में आम हड़ताल हुई। नौसैनिकों के समर्थन में शान्तिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे मजदूर प्रदर्शनकारियों पर सेना और पुलिस की टुकडियों ने बर्बर हमला किया, जिससे करीब तीन सौ लोग मारे गये और 1700 घायल हुए। इसी दिन सुबह कराची में भारी लड़ाई के बाद ही 'हिन्दुस्तान' जहाज से आत्मसमर्पण कराया जा सका। ठीक इसी समय बम्बई के वायु सेना के पायलट और हवाई अड्डे के कर्मचारी भी नस्ली भेदभाव के विरूद्ध हड़ताल पर थे तथा कलकता और दूसरे कई हवाई अड्डों के पायलटों ने भी उनके समर्थन में हड़ताल कर दी थी। कैन्टोनमेंट क्षेत्रों में सेना के भीतर भी असन्तोष और विद्रोह की सम्भावना की खुफिया रिपोर्टो ने अंग्रेजों को भयाक्रान्त कर दिया था। ऐसे हालात में कांग्रेस तथा लीग के नेता आगे आये, क्योंकि सेना के सशस्त्र विद्रोह, मजदूरों द्वारा उसके समर्थन तथा कम्युनिस्टों की सक्रिय भूमिका से भारतीय पूँजीपति वर्ग और राष्ट्रीय आन्दोलन का बुर्जुआ नेतृत्व स्वयं

आतंकित हो गया था। जिन्ना की सहायता से पटेल ने काफी कोशिशों के बाद 23 फरवरी को नौसैनिकों को समर्पण के लिए तैयार कर लिया। इन्हें आश्वासन दिया गया कि कांग्रेस और लीग उन्हें अन्याय व प्रतिशोध का शिकार नहीं होने देंगें। बाद में पटेल ने यह वादा तोड़ दिया। सेना में अनुशासन पर बल देने के कारण पटेल ने यह कहा था कि स्वतन्त्र भारत में भी हमें सेना की आवश्यकता होगी। उल्लेखनीय है कि 22 फरवरी को कम्युनिस्ट पार्टी ने जब हड़ताल का आह्वान किया था तो कांग्रेसी समाजवादी अच्युत पटवर्धन और अरूणा आसफ अली ने तो उसका समर्थन किया था लेकिन पटेल ने लोगों से सामान्य ढंग से काम करने की अपील की थी। नेहरू और गाँधी ने सेना द्वारा हिंसात्मक रवैये की निन्दा की ।कांग्रेस और लीग के नौसेना विद्रोह के प्रति रवैये ने उनके वर्ग चरित्र को उजागर कर दिया। साम्राज्यवादियों के द्वारा इस विद्रोह के दमन पर लीग और कांग्रेस खामोश रहे। जन आन्दोलनों की जरूरत उन्हें बस साम्राज्यवाद पर दबाव बनाने के लिए और समझौते की बेहतर शर्त हासिल करने के लिए थी। इस प्रकार नौसैनिकों का विद्रोह ज्यादा दिन नहीं चल पाया इसके दो प्रमुख कारण सम्भवत समझे जा सकते हैं । प्रथम, ब्रिटिश सरकार की पूर्ण सेना की ताकत इनसे कहीं ज्यादा थी। द्वितीय, बल्लभ भाई पटेल और जिन्ना ने 23 फरवरी को नौसैनिकों को समर्पण के लिए तैयार कर लिया। इस विद्रोह ने ब्रिटिश शासकों को यह बात समझा दी कि अब सेना की वफादारी पर भारत में ज्यादा समय तक शासन नहीं कर सकते। दूसरी तरफ नौसैनिक इस विद्रोह को लेकर गौर्वान्वित थे राष्ट्र के जीवन में यह एक ऐतिहासिक घटना है पहली बार सेना और आम आदमी का खून राष्ट्रहित में एक थे और एक साथ बहाया गया था ।

1.4 तेभाग आंदोलन सितम्बर 1946

बंगाल प्रांतीय किसान सभा ने सितम्बर 1946 में फलाउड़ कमीशन की सिफारिश को लागू करने के लिए जन-आंदोलन का आहवान किया। जिसमें उपज में परंपरागत आधे की जगह दो-तिहाई भाग के लिए बटाईदारों की मांग रखी गई। युद्ध के अंत के बाद बढ़ते जन-असंतोष के बीच, कम्युनिस्ट पार्टी भी अपना रुख बदलने लगी और उसने एक अधिक जुझारू लाइन अपना ली। 5 अगस्त 1946 को पारित एक प्रस्ताव में उसने ऐलान किया कि 'भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन अन्तिम चरण में प्रवेश कर चुका है।' इसलिए आवश्यकता है तो 'जनता के लिए समस्त सत्ता' सुनिश्चित करने वाली एक ''राष्ट्रीय जनवादी क्रांति'' को संपन्न करने के लिए ''सभी देशभक्त लोगों से एक संयुक्त मोर्चे'' की। इसी पृष्ठ भूमि में बंगाल प्रान्तीय किसान सभा ने तेभाग आन्दोलन शुरू करने का फैसला किया, जो जल्द ही एक बड़े क्षेत्र में फैल गया।

बटाईदार , ग्रामीण जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा बन चुके थे जो मन्दी और अकाल के कारण गरीब तथा अपनी जमीन खो चुके थे ।उनकी आबादी तेभाग आन्दोलन के मजबूत इलाकों में 60 प्रतिशत थी। इस आन्दोलन ने फसल की कटाई के समय (नवम्बर) से और तेजी पकड़ ली । किसान धान काटकर अपने खलिदान तक ले जाने लगे और फिर जमींदारों को बुलाने लगे कि

आकर अपना एक तिहाई हिस्सा ले जाएँ। बटाईदारों के इस आन्दोलन से हालांकि उत्तरी बंगाल के जिले (ठाकुर गाँव, रंगपुर, माल्दा) सबसे बुरी तरह प्रभावित हुए पर, जैसा कि ऐडीन कपूर ने दिखाया है आम धारणा के विपरीत तेभाग आन्दोलन ने एक अधिक व्यापक क्षेत्र को भी प्रभावित किया तथा पूर्वी मध्य और पश्चिमी बंगाल के लगभग हर जिले को समेटा। सुमीत सरकार ने कुछ और क्षेत्रों का नाम बताया है जहाँ तेभाग आन्दोलन का प्रभाव पड़ा जैसे मिमेन सिंह, मिदनापुर और 24 पगरना। किसानों ने अपने तेभाग इलाके (मुक्त आंचल) बना लिए जहां उन्होंने वैकल्पिक प्रशासन और मध्यस्थता के न्यायालय स्थापित किए। तब बंगाल में सत्ताधारी मुस्लिम लीग सरकार ने प्रतिक्रिया स्वरूप जनवरी 1947 में एक बरगादार विधेयक लाने का प्रस्ताव किया जिसमें लगता था कि बरगादारों (बटाईदारों) की माँग मान ली जाएगी, पर मुस्लिम लीग के अन्दरूनी विरोध और कांग्रेस के विरोध के कारण इसका इरादा जल्द ही छोड़ दिया गया। फरवरी के बाद आन्दोलन तेजी से फैलने लगा और सरकार की उसपर उग्र प्रतिक्रिया रही। किसानों ने पुलिस दमन का बहादुरी से सामना किया और जमींदारों के लठैतों का मुकाबला किया। पर जल्द ही यह लड़ाई इतनी ना बराबरी की हो गई कि बंगाल प्रान्तीय किसान सभा ने पीछे हटने का फैसला किया। हालांकि कुछ इलाकों में किसानों ने अपने नेताओं के बिना भी लड़ाई जारी रखने का फैसला किया। इस लड़ाई में 20 संथाल मारे गये। इस किसान आन्दोलन में सामुदायिक उपस्थिति का पता चलता है। मुसलमानों ने बड़ी संख्या में हिस्सा लिया। हाजी मोहम्मद दानिश, नियामत अली और कुछ मौलवियों ने कुरान के हवाले से जोतेदारों के शोषण को दिखाया। इस आन्दोलन में बटाईदार मुख्यतः आदिवासी और दलित समुदाय के थे, जैसे राज वंशी और नामशूद्ध समुदायों के। इस आन्दोलन में बड़ी संख्या में बटाईदार और गरीब किसानों ने भाग लिया, मंझोले किसान इसे समर्थन दे रहे थे और कभी इसका नेतृत्व भी किया। बंगाल कृषि संबंधों पर इसका दूरगामी प्रभाव पड़ा। लेकिन सबसे बड़ी बात यह थी कि उसने यह दिखा दिया कि सांप्रदायिक दंगों के कारण पहले से ही दूषित राजनीतिक वातावरण में भी किसान धर्म से आगे बढ़कर हाथ मिलाने में समर्थ थे।

1.5 वर्ली का विद्रोह

पश्चिमी भारत में महाराष्ट्र किसान सभा ने थाणे जिले के अंबर गांव और दहान तालुकों के वर्ली जनजातीय किसान अंबरगांव, दनानु, पालधर एवं जवाहर तालुक में अधिकतम संख्या में थे। लोन की भरपाई नहीं करने की वजह से उनकी ज्यादातर जमीन भूस्वामियों के हाथ चली गयी थी । उनसे 50 प्रतिशत से 200 प्रतिशत तक का व्याज लिया जाता था। धीरे धीरे उनकी हालत एक मजदूर की तरह हो गई जो अपने मालिक की मर्जी पर काम करता था, दूसरे भूमिहीन, खेतीहर मजदूर हो गए जो भुस्वामियों की खेती करने योग्य भूमि पर छोटे-मोटे रकम पर काम करने लगे। वे लोग खवाती या अनाज के लिए लोन लेते थे और नहीं लौटाने की हालत में बेगारी (वेठी) करनी पड़ती थी। 1945 में वर्ली को प्रथम बार महाराष्ट्र किसान सभा ने संगठित किया और बाहरी नेताओं जैसे गोदावरी पारूलेकर ने वर्ली को वेठ (बेगार) देने से इनकार के लिए प्रेरित किया। वर्ली अपनी

मजदूरी बढ़ाने की मांग भी कर रहे थे। लेकिन शीघ्र ही पुलिस की दमन प्रक्रिया शुरू हो गयी। । अक्तूबर 1946 में आन्दोलन फिर शुरू हुआ। इस बार जंगलाती कामों के लिए रोजाना सवा रूपये की न्यूनतम मजदूरी की एक अतिरिक्त मांग की गई थी। 10 नवम्बर को किसान सभा से एक समझौता करके टिंबर मर्चेन्ट न्यूनतम मजदूरी देने पर तैयार हो गये । यह आन्दोलन बंगाल जैसा हिंसक नहीं था।

1.6 पुन्नप्रा-वायलर

कम्युनिस्टों के नेतृत्व में सबसे हिंसक जन विद्रोह और भी दक्षिण में स्थित त्रावणकोर के औद्योगिक नगर अलेप्पी के पास पुन्नप्रा-वायलर में अक्तूबर 1946 में फूटा। यह एक मजदूरों का विद्रोह था यहां प्रथम विश्वयुद्ध के बाद नारियल रेशा उघोग के विकास के कारण एक बड़ा मजदूर वर्ग अस्तित्व में आया और 1940 के दशक के मध्य तक कम्युनिस्ट नेत्तृव में वह यूनियन में संगठित हो चुका था।अंग्रेजों के जाने की खबर सुनते ही रजवाड़े की सरकार ने 1946 में एक अलोकतांत्रिक संविधान थोपकर त्रावणकोर को स्वाधीन जताने की कोशिश आरम्भ कर दी। इस संविधान का मॉडल अमेरिकी मॉडल पर आधारित था , जहां स्थानीय कांग्रेस दीवान के प्रति नर्म दिखाई पड़ती थी कम्युनिस्ट पार्टी ने इसको मुद्दा बनाया क्योंकि इसी समय अनाज की कमी की स्थिति आरम्भ हो गई और साथ नारियल रेशा उद्योग में तालाबन्दी हो गई, इसीलिए खेत-मजदूरों, मल्लाहों, मछुआरों और दूसरे व्यवसायिक समूहों ने उनका साथ दिया।

24 अक्तूबर को उन्होनें पुन्नप्रा में एक पुलिस चौकी पर हमला किया। इसके बाद हिंसा तेजी से दूसरे क्षेत्रों में फैल गई। उसके बाद सरकार ने जवाबी हमला किया जिसमें वायलर के एक शिविर में 150 और मेनेसरी में 120 कम्युनिस्ट स्वयंसेवकों को मार डाला। इसके बाद आन्दोलन तेजी से खत्म हो गया, क्योंकि कम्युनिस्ट नेतृत्व भूमिगत हो गया और दमन शुरू हो गया। यह आन्दोलन एक संगठित और अनुशासित मजदूर वर्ग की पैदावार था।

1.7 बाकाश्त किसान आंदोलन

बिहार में बाकाश्त किसानों का भूमि से बेदखली ने एक नया मुद्दा खड़ा कर दिया और इस मुद्दे ने 1946 के प्रान्तीय चुनाव में जान डाल दी। चुनाव के कारण कांग्रेस ने वादा किया कि वे जमींदारी व्यवस्था को समाप्त करेंगें। अपनी जमींदारी प्रथा के अधिकार को खोने के डर से जमींदारी भयभीत हो गये। उन्होंने सोचा कि कम से कम अपनी निजी जमीन को सुरक्षित करने के लिए अपनी बाकाश्त जमीन को किरायेदारों से खाली कराना आवश्यक हो गया और इसको खास जीरात बनाने के लिए प्रयास करने लगे। इस बेदखली के खिलाफ किसानों ने प्रतिरोध शुरू कर दिया। इस आन्दोलन में किसानों का समर्थन वामपंथी दलों जैसे स्वामी सहजानन्द और उनके अनुयायी, कांग्रेस सोशलिस्ट, फारवर्ड ब्लाक, राइटिस्ट और कम्युनिस्ट ने किया। उनका आन्दोलन एक साथ

मुंगेर, गया तथा शाहाबाद जिलों में चल रहा था। जमींदार न्यायालय के आदेश (फर्जी आदेश) और लठैतों के साथ बाकाश्त जमीन को खाली कराने के लिए पहुँचे। लेकिन किसानों ने खाली करने से इन्कार कर दिया और जमींदारों के लठैतों का मुकाबला किया। उन्होंने सत्याग्रह की पेशकश की और हिंसात्मक लड़ाई में भी शामिल हुए। इस बीच आगजनी, लूट, मृत्यु, चोट, और कैद और सज़ा भी हुई। जल्द ही यह आन्दोलन दरभंगा, मधुबनी, भागलपुर और मुजफ्फरपुर तक फैल गया और सबसे भयंकर रूप इस आन्दोलन का फसल की कटाई के समय देखने को मिला ।पटना और गया में भावली जमीनों पर खेती करने वाले इस आन्दोलन में शामिल हो गये और नकद किराये की मांग करने लगे। महिलाओं और बालकों ने इस आन्दोलन में बड़ी संख्या में भाग लिया। किसानों की स्वयंसेवक टुकड़ी का गठन किया गया जो जमींदार के आक्रमण से किसानों को सुरक्षा प्रदान करे। सरकार द्वारा आधे मन से प्रयास किया गया जिससे इस संघर्ष पर कोई असर नहीं पड़ा। सरकार ने बिहार विवाद समझौता अधिनियम 1947 में पारित किया जिसका कोई लाभ नहीं हुआ। इस समस्या का समाधान 1948 में हुआ जब कांग्रेस सरकार ने बिहार जमींदारी उन्मुलन अधिनियम पारित किया।

1.8 तेलंगाना आंदोलन

भारतीय इतिहास में सबसे उग्र किसान आन्दोलन 1946 के मध्य हैदराबाद राजवड़े में कम्यूनिस्टों के नेतृत्व में प्रारम्भ हुआ। यहां निजाम के निरंकुश शासन के तहत खेतिहर संबंध मध्यकालीन सामंती इतिहास से मेल रखता है जिससे ग्रामीण समाज पर जागीरदारों, पट्टेदारों (भू-स्वामियों), देशमुखों और देशपांडेयों (माल गुजारी केअमीनों) का पूरा पूरा वर्चस्व था। कृषि के व्यवसायीकरण और नकदी फसलों के प्रचलन के कारण साहूकारों (सूदखोरों) का दौर आया, जमीनों का स्वत्वहरण बढ़ा और खेत मजदूरों की संख्या बढ़ी। खासकर 1940 के दशक के दौरान मंदी के कारण दामों की गिरावट जारी रहने के कारण छोटे भूस्वामी पट्टेदार और धनी किसान भी प्रभावित हुए, जबकि गरीब किसान बेगार (वेट्टी) की दमनदारी प्रथा और युद्ध के बाद अनाजों की दुर्लभता से त्रस्त थे। इससे एक हथियार बन्द किसान विद्रोह का आधार तैयार हुआ, यह विद्रोह तेलंगाना में (हैदराबाद के आठ तेलुगूभाषी जिलों) चला और पास में ब्रिटिश अधिकार क्षेत्र की मद्रास प्रेसीडेंसी का आन्ध्रा डेलटा उसके लिए एक सुरक्षित आधार का काम कर रहा था। यहां कम्यूनिस्टों ने 1930 के दशक के मध्य से ही तेलंगाना में आन्ध्र कांग्रेस और डेल्टा क्षेत्र में आन्ध्र महासभा जैसे मोर्चे और संगठनों के माध्यम से किसानों को लामबन्द करना शुरू कर दिया था। आन्दोलन की शुरूआत जुलाई 1946 में नालगोंडा जिले में एक कुख्यात जमींदार पर हमले के साथ हुयी और महीने भर के अन्दर नालगोंडा, वारंगल और खम्मम जिलों के एक व्यापक क्षेत्र में फैल गया। इस आन्दोलन की अनेक मांगे थीं,क्योंकि उनका उद्देश्य कम्युनिस्ट नेतृत्व के छोटे लोग और रेड्डी पट्टेदार और धनीकिसान नेतृत्व तथा गरीब, अघत माला, माडिगा और आदिवासी किसानों व भूमिहीन मजदूरों के बीच एक वर्गीय गठबंधन तैयार करना था, जो आंदोलन में धीरे-धीरे खींचते आ

रहे थे। इन मांगों में मजदूरी में वृद्धि वेट्टी के उन्मूलन गैर-कानूनी वसूलियों पर प्रतिबन्ध, बेदखलियों पर प्रतिबन्ध और हाल में आरोपित अनाज उगाही कर का खात्मा जैसी मांगे शामिल थीं। लेकिन इस आरम्भिक चरण में आन्दोलन कम संगठित और अधिक ऐंठनदार प्रकृति का था। जुलाई 1947 में निजाम ने ये ऐलान कर दिया कि अंग्रेजों के जाने के बाद हैदराबाद एक स्वतन्त्र राज्य रहेगा और भारतीय संध में शामिल नहीं होगा। इसलिए कांग्रेस ने एक सत्याग्रह के आरम्भ करने का फैसला किया और मतभेदों के बावजूद कम्युनिस्ट उसमें शामिल होकर रजवाड़े के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय ध्वज लहराते रहे। लेकिन यह गठबंधन जल्द ही भंग हो गया, क्योंकि आंदोलन किसी दिशा में बढ़ नहीं रहा था। जबकि मुस्लिम कुलीनों के संगठन मजलिस इत्तेहादुल-मुसलेमीन ने अब रज़ाकारों के अपने हथियारबन्द दस्ते और निजाम के समर्थन से तेलंगाना के गांवों में एक आतंक राज कायम कर दिया। फिर कम्युनिस्ट के नेतृत्व में किसान अपने स्वयंसेवक छापामार दस्ते (दलम्) बनाने लगे, बड़े जमीनदारों की परती और फालतू जमीनों पर कब्जा करके उनका पुनर्वितरण करने लगे और मुक्त समझे जा रहे अंचलों में ग्राम पंचायतों या ''सोवियतें'' बना ली। 13 दिसंबर 1948 को भारतीय सेना हैदराबाद में प्रवेश कर गई उसके पश्चात निजाम की सेना और रजाकार ने समर्पण कर दिया और इस तरह हैदराबाद राजवाड़े का भारतीय संघ में विलय हो गया। पर यह तेलंगाना आन्दोलन का अन्त नहीं था बल्कि यह अपने दूसरे चरण में प्रवेश कर गया। आगे हम इसके बारे में स्वतन्त्र भारत पर लिखे गये अध्यायों में पढ़ेंगे।

1.9 सारांश

इस अध्याय में आप लोग दितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश भारत और रजवाड़ों में चल रहे जन आंदोलनों का अध्ययन कर चुके हैं जिससे आपको अंदाजा हो गया होगा की युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार को भी एहसास हो गया था कि उनकी सत्ता बहुत दिन तक नही टिकने वाली है। अंग्रेजों के खिलाफ ही नहीं बल्कि उनके समर्थकों के विरूद्ध भी आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। प्रसिद्ध घटनायें तेभागा, राजकीय नौसेना,तेलंगाना एवं कय्युर विद्रोह इस तरफ इंगित करता है कि अब अंग्रेजों के खिलाफ सेना,किसान, मजदूर इत्यादि सब ने विद्रोह शुरू कर दिया था।

1.10 तकनीकी शब्दावली

बरगादार: बटाईदार

बटाईदार: खेती हर किसान जो उपज का आधा हिस्सा लेता है।

बाकश्त: जमीन जिस पर उसका मालिक खेती कर रहा हो।

पट्टेदार: भुस्वामी

1.11 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. 1945 से 1947 के बीच जन आंदोलनों के प्रमुख कारणों को बताऐं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात भारत में बढ़ती महंगाई ने किस तरह अलग-अलग जगहों पर जन आन्दोलनों में भूमिका अदा की।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. तेलंगाना आन्दोलन पर लेख लिखे।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4. निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही और ग़लत का निशान लगाऐं।

(क) क्या तेभाग आन्दोलन दक्षिण भारत में हुआ था?

(ख) बाकाश्त आन्दोलन में जमींदारों ने किसानों को बेदखल करने का प्रयास किया।

(ग) 1945 के बाद भारत में जन आन्दोलन कमजोर थे।

1.12 पुस्तकों की सूची/ग्रंथ सूची

1. विपिन चन्द्र, इण्डिया स्ट्रगल फार इंडिपेन्डेंस
2. सुमित सरकार, आधुनिक भारत
3. शेखर बंधोपाध्याय, पलासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास।
4. पर्सपेक्टीवस आफ माडर्न इण्डियन हिस्ट्री
5. वी0 एल0 ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास
6. रामलखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास
7. रमेश चन्द्र मजूमदार, भारत का बृहत् इतिहास आधुनिक भारत

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जन आन्दोलनों के स्वभाव पर चर्चा करें।
2. तेलंगाना आन्दोलन को विस्तारपूर्वक समझाएं
3. राजकीय नौसेना और उसके उपरान्त जन आन्दोलनों पर लेख लिखें।

1945 – 47 के बीच राजनितिक गतिविधियाँ

2.1 - भूमिका

2.2 - उद्देश्य

2.3- शिमला कान्फ्रेंस

2.4- 1946 का चुनाव

2.5- कैबिनेट मिशन

2.6- सीधी कार्यवाही तथा अंतरिम सरकार

2.7- एटली की घोषणा

2.8- माउन्ट बेटन योजना

2.9- विभाजन और साम्प्रदायिक दंगे

2.10- सारांश

2.11- पारिभाषिक शब्दावली

2.12- स्वमूल्यांकित प्रश्न

2.13- ग्रंथ सूची

2.14- निबंधात्मक प्रश्न

2.1 भूमिका

द्वितीय विश्व युद्ध के शुरू होने से ही भारतीय राजनिति अनिश्चितता के काल से गुजर रही थी। कांग्रेस मंत्रीमण्डल का त्याग पत्र, कम्युनिष्ट पार्टी का ब्रिटिश साम्राज्य विरोध रवैया, अधिकतर नेताओं को जेल में कैद और भारत सरकार संशोधन कानून को सरकार ने पास कर दिया जिसके तहत किसी को भी बिना वारंट गिरफ्तार करने और मुकद्दमा चलाए बिना अजिवन निर्वासन तथा मौत तक की सजा देने का अधिकार शामिल था। राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों ने ब्रिटिश शासकों के मुकद्दमों का विरोध किया और युद्ध को साम्राज्यवादी बताया।

1940 से लेकर 1945 तक कांग्रेस अंग्रेजी सरकार के विरोध में लगी रही। मुस्लिम लीग ने न केवल अंग्रेजी सरकार को लड़ाई में मदद दी बल्कि 1940 में पाकिस्तान प्रस्ताव पारित कर दिया और एक अलग मुस्लिम राष्ट्र का डिमांड करते रहे। 1945 के अन्त तक भारत में खाद्य परिस्थिति बहुत बिगड़ गई। बहुत सारे कारखानों में मजदूरों की छटनी प्रारम्भ हो गई मालिकों ने वेतन छटोन,

बोनस कम करने अर्थात समाप्त करने की कोशिश शुरू कर दी। 1945 में हड़ताल की लहर प्रायः सभी उद्योगों में फैल गई उसके बाद आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों के साथ अंग्रेजी सरकार का बर्ताव और मुकद्दमा और सजा सुनाये जाने की घटना ने पूरे भारत में एक लहर पैदा कर दी। लोग उनके बचाव में भारी संख्या में आ गये। फिर नौसैनिकों का विद्रोह, तेभागा आन्दोलन, कय्युर विद्रोह और तेलंगाना इत्यादि ने यह साबित कर दिया कि ''अब भारत का स्वतंत्रता संग्राम अपने अन्तिम चरण में प्रवेश कर गया है'' (कम्युनिस्टों के अनुसार)

1945 के पूर्व 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन का भी ब्रिटिश सरकार पर गहरा असर पड़ा। युद्ध समाप्त होते ही जब इंगलैण्ड में लेबर पार्टी जीत गई फिर एटली ने चुनाव पूर्व अपने वादों के अनुसार लार्ड वेवेल को बुलाया और कहा कि युद्ध के कारण जहाँ चुनाव नहीं हुए थे वहां चुनाव कराया जाए। उसके बाद कैबिनेट मिशन को भारत भेजा गया कि यह जाकर भारत के लिए योजना बनाए कि किस तरह संविधान प्रक्रिया वहां शुरू की जाएगी। लेकिन अपनी आन्तरिक खराबियों की वजह से यह विफल हो गया। इस के बाद अंतरिम सरकार का गठन, लीग द्वारा सीधी कार्यवाही, एटली का घोषणा और माउन्टवेटेन प्लान अन्ततः भारत के स्वतन्त्रता को ऐलान किया कि 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतन्त्रता कर दिया जाएगा। आजादी मिली लेकिन विभाजन के साथ, भारत और पाकिस्तान।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बादः-

- आपको 1945.47 के बीच हुई राजनितिक उथल-पुथल के बारे में जानकारी हासिल हो जाएगी।
- उन सभी तत्थ्यों का मूल्यांकन और उसके पश्चात भारतीया स्वतन्त्रता प्राप्ति का अन्तिम दौर समझ में आ जाएगा।
- आप उन सारी राजनितिक गतिविधियों के बारे में विस्तार पूर्वक समझ जाएगें जो इस समय घटित हुए।
- ब्रिटिश सरकार की तमाम कोशिशों के बावजूद देश का विभाजन और कांग्रेस और मुस्लिम लीग की अपनी अपनी सोच भी आपके सामने जाहिर हो जाएगी।

2.3 शिमला कान्फ्रेंस

वेवेल योजना पर विचर-विमर्श करने के लिए वायसराय वेवेल ने भारतीय नेताओं के एक सम्मेलन के विषय में घोषणा की और 25 जून से शिमला सम्मेलन में भारतीय नेताओं को वार्ता के

लिए बुलाया। साथ ही कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों को जेल से छोड़ने के आदेश भी प्रसारित कर दिए। सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य थाः

1. सांप्रदायिक समस्या का हल जो भारत की संवैधानिक प्रगति में मुख्य बाधा थी।

2. गवर्नर-जनरल का एक नई कार्यकारिणी कौंसिल का गठन, जिसमें सभी राजनैतिक विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व हो। इस कौंसिल में मुसलमानों और हिन्दुओं (हरिजनों को छोड़कर) की समान प्रतिनिधित्व दिया जाएगा। गवर्नर-जनरल और सेनाध्यक्ष को छोड़कर शेष सभी सदस्य भारतीय होंगे। विदेश विभाग भी भारतीय सदस्यों तथा नए संविधान की निमार्ण-पद्धति का निर्णय करना होगा।

शिमला कॉन्फ्रेंस और मुसलिम लीग के अध्यक्षों, परिगणित जातियों और सिक्खों के प्रतिनिधियों, केंद्रीय विधान सभा में कांग्रेस दल के नेता और मुसलिम लीग के उपनेता केंद्रीय राज्य परिषद में कांग्रेस दल और मुसलिम लीग के नेता, विधान सभा में सोशलिस्ट पार्टी एवं उस समय की प्रांतीय सरकारों के मुख्यम्रत्री निमंत्रित किए गए थे। दूसरे दिन तक सम्मेलन ने सर्वसम्मति से अल्पमत वालों के प्रतिनिधित्व, युद्ध-प्रयासों का तहेदिल से समर्थन और भारत सरकार कानून के अंतर्गत पुनर्गठित कार्यकारिणी परिषद् ;म्गमबनजपअम ब्वनदबपसद्ध का जारी रखना स्वीकार कर लिया, लेकिन कार्यकारिणी परिषद् के गठन को लेकर कांग्रेस और लीग के बीच मतभेद हो गए। वेवेल ने 14 सदस्यों की कार्यकारिणी परिषद् का प्ररस्ताव रखा जिसमें पाँच-पाँच नाम लीग और कांग्रेस से थे और चार नाम वेवेल स्वयं देंगे। कांग्रसे ने आजाद, नेहरू, पटेल, एक पारसी और एक भारतीय ईसाई का नाम देना चाहा। वेवेल ने एक सिक्ख, दो परिगणित जातियों और पंजाब के मुख्य मंत्री खिजर हयात का नाम देना चाहा। जिन्ना ने यह दावा प्रस्तुत किया कि समस्त मुसलमानों के नाम, लीग द्वारा ही मनोनीत होने चाहिए। इस आधार पर कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद भी कौंसिल के सदस्य नहीं हो सकते। कांग्रेस मुसलिम लीग के इस दावे को किस प्रकार स्वीकार कर सकती थी, क्योंकि ऐसा स्वीकार करने का अर्थ होता कि कांग्रेस हिन्दू संस्था है और वह केवल हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करती है। सम्मेलन की असफलता के लिए जिन्ना की अपेक्षा वेवेल मुख्य रूप से उत्तरदायी था। यदि वेवेल जिन्ना के दृष्टिकोण को इतना अधिक महत्तपूर्ण मानता था तो उसे पहले जिन्ना और कांग्रेस अध्यक्ष से समझौता कर लेना चाहिए था। जिस प्रकार शिमला सम्मेलन में विचार-विमर्श हुआ उसका परिणाम जिन्ना को एक ऐसे 'वीटो' का अधिकार प्रदान करना था जिससे उसका महत्व अत्यधिक बढ़ा। इस सम्मेलन से केंद्र में हिंदू-मुसलिम समानता भी जिन्ना को उपलब्ध हो गई। अब भारत-विभाजन और निकट दिखाई देने लगा। वेवेल ने मुसलमानों के नामों की सूची स्वयं तैयार की और इसमें कांग्रेस का एक भी मुसलमान सदस्य नहीं था। इसमें मुसलिम लीग के चार सदस्य थे और यूनियनिस्ट दल का एक। जिन्ना ने इसे स्वीकार नहीं किया। सम्मेलन असफल रहा। शिमला सम्मेलन के निर्णय को, लीग द्वारा अस्वीकृत कर दिए जाने पर वेवेल ने सम्मेलन को समाप्त घोषित कर दिया। जिन्ना का दावा था कि मुसलमानों के एकमात्र और

सबसे बड़े शुभ-चिंतक सिर्फ वह और उनकी लीग के नेता हैं। शिमला सम्मेलन में अगर जिन्ना ने मुसलमानों के प्रतिनिधित्व की 'सोल एजेंसी' के लिए जिद न की होती और अपने पाँच नाम देकर कार्यकारिणी परिषद् (एक्जिक्यूटिव कौंसिल) बन जाने देते तो उसके चौदह सदस्यों में से सात अर्यात् पचास प्रतिशत मुसलमान होते। लेकिन जिन्ना की जिद के कारण यह न हो सका। इस सम्मेलन में जिन्ना और मुसलिम लीग के नेताओं का असली रूप सामने आ गया कि ये नेता मेहनतकश मुसलमानों के नहीं, मुट्ठी भर मुसलिम सरमाएदारों और जमीनदारों के आदमी हैं। वे इन सरमाएदारों और जमीनदारों के लिए पाकिस्तान चाहते हैं।

1945 के उत्तरार्ध में दो घटनाऐं ऐसी घटीं जो भारतवासियों और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के बीच बड़े संघर्ष का कारण बन गईं। पहली घटना थी हिंद एशिया और हिंद चीन के राष्ट्रीय मुक्ति-आन्दोलनों को दबाने के लिए भारतीय सेना का भेजा जाना और दूसरी आजाद हिंद फौज के अफसरों पर मुकद्दमा चलाया जाना। 1945 में ब्रिटिश शासकों ने आजाद हिंद फौज के अफसरों पर फौजी अदालत में मुकद्दमा चलाया यह अभियोग लगाकर कि उन्होंने जापान के हाथ में कैद भारतीयों पर बड़ा जुल्म किया था। दिल्ली के लाल किले में यह मुकद्दमा आजाद हिंद फौज के सेना प्रमुख (चीफ ऑफ स्टाफ) कर्नल शाहनवाज, कैप्टेन ढिल्लों और लेफ्टीनेंट सैनिकों और अफसरों को भारत के लोग देशभक्त समझते थे। अताः सभी भारतीयों ने एक स्वर से ब्रिटिश शासकों के इस काम का विरोध किया। मुसलिम लीग ने इस मुकद्दमे के संबंध में चुप्पी साधकर ब्रिटिश शासकों को नाखुश न करने की नीति अपनाई थी, लेकिन मुसलिम जनसाधारण ने, यहाँ तक कि लीग के साधारण कार्यकर्ताओं ने भी, हिंदुओं के साथ मिलकर साम्राज्यवादियों के इस काम का विरोध किया था। तीनों अफसरों की सजा का समाचार ज्योंही पहुंचा, कलकत्ता में ब्रिटिश शासकों के खिलाफ सड़कों पर मोर्चा लग गया। छात्रों, दुकानदारों, मजदूरों और ऑफिस कर्मचारियों ने जुलूस निकाला। कई दिन तक हड़ताल जारी रही। कलकत्ता कारपोरेशन के मजदूर भी हड़ताल में शामिल थे। बंगाल के गर्वनर ने सड़कों पर फौज तैनात कर दी। ब्रिटिश शासकों के बीच सड़कों पर इन मुठभेड़ों को देखकर कांग्रेस नेता चौंके। सुभाष बोस के बड़े भाई शरतचंद्र बोस ने कांग्रेस की तरफ से छात्रों और मजदूरों से अपील की कि वे सरकार-विरोधी कार्य बंद कर दें। उन्होंने विश्वास दिलवाया कि कांग्रेस आजाद हिंद फौज के अफसरों की रिहाई के लिए प्रयत्न करेगी।

2.4 1946 का चुनाव

1945 में इंग्लैंड में हुए चुनावों में लेबर पार्टी को भारी बहुमत मिला। यह पार्टी भारत को स्वतंत्र करने के लिए वचनबद्ध थी। चुनाव की घोषणापत्र में लेबर पार्टी ने यह आश्वासन दिया था कि यदि वह सरकार बनाएगी तो भारत को अवश्य ही डोमिनियन स्टेटस देगी। लेबर पार्टी के एक सम्मेलन में, जो चुनाव के पूर्व हुआ था, बेबिन ने कहा था कि ''यदि हम विजयी होते हैं तो हम भारतमंत्री का कार्यालय बंद कर देंगे और इनका कार्य डोमिनयिनों को दे देंगे।''

सत्तारूढ़ होने के बाद प्रधानमंत्री एटली ने भारत के वाइसराय लॉर्ड वेवेल को परामर्श के लिए बुलाया लॉर्ड वेवेल ने घोषणा की कि केंद्रीय तथा प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं के चुनाव, जो युद्ध के कारण न हो सके, आगामी शीतकाल में होंगे और उस चुनाव के बाद भारतीय राजनीति की समस्या के लिए प्रयास किया जाएगा। दिसंबर 1945 में केंद्रीय विधान सभा के चुनाव का परिणाम आ गया। कांग्रेस को सामान्य स्थानों पर और लीग को मुसलमानों के लिए आरक्षित स्थानों पर भारी सफलता मिली। 1934 में हुए चुनाव की तुलना में नेशनलिस्ट मुसलमानों तथा स्वतंत्र सदस्यों को करारी हार मिली। इन चुनावों से एक बात भलीभांति स्पष्ट हो गई कि कांग्रेस अथवा नेशनलिस्ट दल का मुसलमानों में कोई विशेष प्रभाव नहीं था और भारतीय मुसलमानों का वास्तविक प्रतिनिधित्व मुसलिम लीग ही करती थी।

18 फरवरी, 1946 को भारतीय नौसेना के एक भाग ने प्रजातीय विभेद तथा अन्य असुविधाओं के लिए विद्रोह कर दिया। यह हड़ताल बैरिकों के नाविकों से शुरू हुई और दोपहर तक सारे नाविक हड़ताल में शामिल हो गए। हड़ताल के मुख्य नारों में 'अंग्रेजों भारत छोड़ों' 'हिंदुस्तान जिन्दाबाद' आदि शामिल थे। 19 फरवरी को हड़तालियों ने एक बहुत बड़ा जुलूस निकालां उनके प्रदर्शनों में तीन झंडे एक साथ चलते थे। कांग्रसे का तिरंगा, लीग का हरा और बीच में कम्युनिस्ट पार्टी का लाल झंडा। उनके नारे थेः 'जयहिंद', 'इनकलाब जिन्दाबाद', 'हिन्दु-मुसलिम एक हों', 'ब्रिटिश साम्राज्य मुर्दाबाद', 'आजाद हिंद फौज के कैदियों को रिहा करो' और 'हिंदेशिया से भारतीय सेना वापस बुलाओ' यह हड़ताल मद्रास और कराची के नौसैनिकों में भी फैल गई।

क्रांति की इस लहर से हमारे देश के किसान भी अलग न रहे। 1945 के अंत और 1946 के आरंभ से किसानों का संग्राम जोर पकड़ता गया और कम से कम तीन संघर्ष तेभागा, तेलंगाना और पुन्नप्रा-वायालार ऐतिहासिक संघर्ष बन गए। तेलंगाना उस वक्त निजाम द्वारा शासित हैदराबाद रियासत का अंग था। यहाँ के तेलगुभाषी किसानों का आंदोलन वस्तुतः दूसरे महायुद्ध के समय से हो शुरू हो गया था जब उनसे कम दाम पर जबरदस्ती गल्ला वसूल किया जा रहा था। तेलंगाना के किसानो के विद्रोह का तात्कालिक कारण पुलिस द्वारा कमरय्या की हत्या था कमरय्या कम्युनिस्ट थे और स्थानीय किसान सभा के संगठनकर्ता थे। किसानों के इस विचार का नेतृत्व हैदराबाद के कम्युनिस्टों और आंध्र महासभा ने किया।

पुन्नप्रा वायालार का संघर्ष किसानों और मजदूरों का मिला जुला संघर्ष था जो सामंतों और शोषण के विरुद्ध था। यह रियासत अब केरल राज्य का अंग है। तेभागा आंदोलन बंगाल में उस समय आरंभ हुआ जब साम्राज्वादी, प्रतिक्रियावादी शक्तियों को उभार रहे थे और कलकत्ता, नोआखाली वगैरह में सांप्रदायिक दंगों की आग लगा रहे थे। बंगाल के किसानों का यह आंदोलन एकता का प्रतीक बनकर आरंभ हुआ, जहाँ हिंदू, मुसलमान और आदिवासी थे। इसके अलावा पंजाब, संयुक्त प्रदेश, बिहार और महाराष्ट्र में भी किसान आंदोलन ने काफी जोर पकड़ा। जिस समय बंबई शहर में नौसेना का विद्रोह तथा भारत के अन्य हिस्सों में हड़तालें, जुलूस तथा किसान संघर्ष

चल रहे थे, इ्रग्लैंड में लेबर दल के नेताओं ने उच्चस्तरीय मंत्रिमंडल का एक शिष्टमंडल (केबिनेट मिशन) भारतीय नेताओं से विचार विमर्श के लिए भारत भेजने की घोषणा की। भारतीय नौसेनिकों की समस्या को वल्लभ भाई पटेल ने बड़ी कुशलता से सुलझा लिया। कैबिनेट मिशन योजना की घोषणा ब्रिटेन की भारतीय नीति में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कैबिनेट मिशन कार्य 1946 में भारत पहुंचा। इस मिशन के सदस्य थे स्टेफर्ड किप्स (अध्यक्ष बोई ऑफ टे◌ंड), पेथिक लारेंस (भारत सचिव) और ऐ0 वी0 एलेक्जेंडर (नौसेना मंत्री)। इस मिशन के स्वागत के लिए भारत में उचित वातावरण था। प्रधानमंत्री एटली ने मार्च 1946 में हाऊस ऑफ कॉमंस में कहा, ''हमें अल्पसंख्यकों के हितों का ध्यान है। उन्हें भय से मुक्त रहने का अवसर मिलना चाहिए लेकिन बहुसंख्यकों की प्रगति को रोकने का अल्पसंख्यकों को अधिकार नहीं दिया जा सकता। भारतीय स्वतंत्रता की समस्या इतनी जटिल ही नहीं होती यदि इंगलैंड की सरकार अल्पसंख्यकों को इतना अधिक महत्व नहीं देती।

2.5 कैबिनेट मिशन

19 फरवरी, 1946 को बंबई में नौसेना विद्रोह के आरंभ के अगले दिन ही कलेमेंट एटली ने एक कैबिनेट मिशन की प्रस्तावित यात्रा का ऐलान कर दिया कि कैबिनेट मिशन भारत जाएगा। ताकि वाइसराय की सहायता से भारतीय नेताओं से राजनितिक मामलों पर बातचीत कर सके।

मार्च और जून 1946 के बीच तीन सदस्यों वाले जिस मिशन ने भारत का दौरा किया, उसका नेतृत्व भारत सचिव सर पेथिक लारेंस कर रहा था और बोर्ड ऑफ टे◌ंड के अध्यक्षा सर स्टैफर्ड क्रिप्स और फर्स्ट लार्ड एडमिरैल्टी ए. वी. एलेक्जेंडर उसके सदस्य थे। कैबिनेट मिशन दिल्ली पहुंचने के उपरांत पहले तीन सप्ताहों में विभिन्न राजनैतिक पक्षों, सरकार के अधिकारियों आदि से विचार-विमर्श करता रहा। इसी घोषणा पर वाद-विवाद में बोलते हुए प्रधानमंत्री एटली ने कहा कि हम अल्पसंख्यकों के अधिकारों से भली-भांति जागरुक हैं और चाहते हैं कि अल्पसंख्यक बिना भय के रह सके। परन्तु हम यह भी स्वीकार नहीं करेंगे कि अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यक लोगों की उन्नति में आड़े आए। जिन्ना को पहली बार यह अनुभव हुआ कि अंग्रेजी सरकार उसकी सहमति के बिना भी सत्ता हस्तांतरित करने को तैयार थी। चूंकि लीग और कांग्रेस में भारत की एकता अथवा विभाजन के विषय पर समझौता नहीं हो सका इसलिए कैबिनेट मिशन ने अपनी ओर से संवैधानिक समस्या का हल प्रस्तुत किया और उसे प्रकाशित कर दिए। मिशन ने सुझाया कि भारतीय संविधान इस प्रकार का होना चाहिएः-

1. भारतीय संघ की स्थापना की जाए जिसमें ब्रिटिश भारत और रियासत सम्मिलित हो और इस संघ के पास प्रतिरक्षा, विदेशी संबंध तथा संचार व्यवस्था का उत्तरदायित्व रहे। संघ को स्पष्ट रूप से दिए हुए विभागों के अतिरक्ति समस्त अधिकार प्रांतो अथवा राज्यों को उपलब्ध रहेंगे। तथा राज्यों को इन कार्यो के लिए राजस्व उगाही का अधिकार रहेगा।

2. संविधान निर्माण के लिए एक संविधान सभा का गठन किया जाए। प्रॉतीय विधान सभाएँ प्रत्येक दस लाख जनसंख्या पर एक सदस्य के अनुपात में प्रतिनिधि चुने।

3. प्रान्तों को पृथ्क समूह (ग्रुप) बनाने का अधिकार हो। प्रत्येक समूह को यह निर्णय करने का अधिकार हो कि कौन-कौन विषय समूह के आधिकार में रखे जाएँ।

4. प्रान्तों को केन्द्रीय विषयों को छोड़कर शेष सभी मामलों में पूर्ण स्वायतता प्राप्त हो और शेष शक्तिया उन्हीं के पास हो।

5. मद्रास, बम्बई, मध्य प्रांत, संयुक्त प्रान्त, बिहार और उड़ीसा के छः हिन्दू बहुसंख्यक प्रांत गुट (अ) में होंगे और उत्तर पश्चिम के बहुसंख्यक मुस्लिम प्रान्त, पंजाब, सीमा प्रांत और सिंध, गुट (ब) में और बंगाल तथा आसाम गुट (स) में। मुख्य आयुक्त (चीफ कमीश्नर) के प्रांत, दिल्ली, अजमेर-मारवाड़, कुर्ग गुट (अ) में, और वलुचिस्तान गुट (ब) में सम्मिलित होंगे।

6. इस प्रस्ताव के अनुसार दस साल के अन्तराल के बाद संविधान पर पुनर्विचार भी कर सकते थे। इस बीच एक अन्तरिम सरकार रोजमर्रा का प्रशासन चलाएगी। जैसा कि पेथिक लारेंस का ऐलान था, अंतिम लक्ष्य भारतवासियों की अपनी स्वतंत्रता की इच्छा के अनुसार ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के अंदर हो या बाहर उन्हें स्वतन्त्रता प्रदान करना था।

कैबिनेट मिशन ने कांग्रेस तथा लीग दोनों के दृष्टिकोण से मध्यम मार्ग निकालने का प्रयत्न किया। कांग्रेस को संतुष्ट रखने के लिए संगठित भारत की व्यवस्था की गई और मुस्लिम लीग तथा भारतीय नरेशों को संतुष्ट करने के लिए उस संघ को दुर्बल रखा गया। संविधान-सभा का जनसंख्या के अनुपात मे गठन किया गया। अन्तरिम सरकार में समस्त उत्तरदायित्व भारतीयों को सौंप दिया गया और संविधान सभा को पूर्ण स्वतंत्रता और अधिकार दिए गए। इस योजना का सबसे बड़ा दोष यह था कि प्रान्तों के समूहों के बारे में प्रस्ताव प्रर्णतया स्पष्ट न थे। इसी कारण आगे चलकर कांग्रेस और मुसलिम लीग में गहरा मतभेद हुआ। इन्हीं कारणों की वजह से कैबिनेट मिशन योजना भारत में कभी लोकप्रिय नहीं हो सकती थी। कांग्रेस ने प्रांतो के समूहीकरण और केन्द्र में अस्थायी सरकार के सम्बंध में खेद प्रकट किया। जिन्ना को इस बात का दुःख था कि इस योजना में 'बँटकर रहेगा हिन्दुस्तान और लेकर रहेंगे पाकिस्तान' की मांग को जो लीग की मांग थी अस्वीकृत कर दिया। लेकिन इन दोषों के बावजूद कांग्रेस और लीग ने मिशन की दीर्धकालीन योजना स्वीकार कर ली, यद्यपि अंतरिम सरकार के संबंध में मतभेद बना ही रहा

2.6 सीधी कार्यवाही तथा अंतरिम सरकार

जब कैबिनेट मिशन योजना पर विभिन्न राजनैतिक दल विचार-विमर्श कर रहे थे, तभी वाइसराय ने अंतरिम सरकार की स्थापना का प्रयत्न किया। वाइसराय की यह धारणा थी कि अंतरिम सरकार

की स्थापना में कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। मुसलिम लीग द्वारा यह घेषणा की गई कि अंतरिम सरकार में कांग्रेस और मुसलिम लीग के सदस्य समान होंगे और कांग्रेस केवल, सवर्ण जातियों में से ही अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन करें। इसका यह अर्थ था कि वह मुसलमानों तथा परिगणित जातियों में से किसी प्रतिनिधि को नहीं चुन सकती थी। कांग्रेस और लीग के इस सुझाव को मानने के लिए तैयार नहीं थी। जब कांग्रेस और लीग में किसी प्रकार का समझौता नहीं हो सका तब 16 जून 1946 को वाइसराय ने कांग्रेस के छः सदस्य (जिसमें एक अनुसूचित जाति का था), मुसलिम लीग के पांच तथा दूसरे अल्पसंख्यक वर्गों के तीन (1सिक्ख, 1पारसी, 1भारतीय ईसाई) प्रतिनिधियों को अंतरिम सरकार में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया। मुसलिम लीग ने 16 जून की घेषणा को स्वीकार कर लिया, लेकिन कांग्रेस ने मांग की कि उसे अपने प्रतिनिधियों में एक राष्ट्रवादी मुसलमान को सम्मिलित करने का अधिकार मिलना चाहिए। लीग ने कांग्रेस की इस मांग का डटकर विरोध किया। फलतः कैबिनेट मिशन ने उसे अस्वीकार कर दिया। परिणामस्वरूप, कांग्रेस ने अंतरिम सरकार में शामिल होना नामंजूर किया। लीग ने मांग की कि कांग्रेस के बिना ही सरकार का निमार्ण होना चाहिए। लेकिन वाइसराय दोनों ही दलों का प्रतिनिधित्व करने वाली सरकार के निर्माण के लिए वचनबद्ध था अस्थायी रूप में वाइसराय ने राज्य कर्मचारियों की एक रक्षक सरकार की स्थापनी की। इस पर जिन्ना ने ब्रिटिश सरकार पर विश्वासघात का आरोप लगाया। 29 जुलाई को मुसलिम लीग ने कैबिनेट मिशन के प्रस्ताओं पर अपनी स्वीकृति वापस ले ली और भारत तथा पाकिस्तान के लिए क्रमशः पृथक् संविधान सभाओं की अपनी पुरानी मांग फिर से दुहराई। जिन्ना ने मुसलमानों से अनुरोध किया कि वे अपनी पदवियाँ त्याग दें तथा अपनी कार्यसमिति को अधिकार दिया कि वह 'पाकिस्तान प्राप्त करने तथा अंग्रेजों की वर्तमान दासता' और हिंदुओं के भावी प्रभुत्व से छुटकारा पाने के लिए तत्काल 'प्रस्यक्ष कार्यवाही' का एक कार्यक्रम तैयार करें।

जब मुसलिम लीग ने मिशन योजना के अधीन दोनों प्रकार की व्यवस्थाएँ अस्वीकृत कर दीं, तब अगस्त 1946 में वाइसराय ने कांग्रेस को केंद्र में अंतरिम सरकार का निमार्ण हो गया। अंतरिम सरकार में शामिल होने वाले कांग्रेस सदस्य-पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, राजेंद्र प्रसाद, आसफ अली, राजगोपालचारी, शरतचंद्र बोस, डॉ. जौन मथाई, सरदार बलदेव सिंह, सर शफात अहमद खाँ, जगजीवनराम, सैयद अली जहीर और सी. एच. भाभा थे। वाइसराय ने यह घोषित किया कि दो मुसलमान और भी नियुक्त किए जाएंगे। इस बीच मुसलिम लीग के नेताओं को मनाने का भी प्रयत्न किया जा रहा था, किन्तु लीग ने सरकार में सम्मिलित होने से साफ-साफ इन्कार कर दिया।

मुसलिम लीग के लिए अब स्थिति और गंभीर हो गई। पाकिस्तान की प्राप्ति के लिए 'प्रस्यक्ष कार्यवही' करने का निश्चय किया गया। कांग्रेस के अंतरिम सरकार में प्रवेश को लीग ने 'हिंदू राज्य का अत्याचार' बताया और उससे मुक्ति पाने के लिए लीग ने 16 अगस्त 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' ;क्पतमबज ।बजपवद क्ंलद्ध मनाने की घोषणा की। वस्तुतः लीग की यह घोषणा

कांग्रेस के विरुद्ध थी ताकि वह दबाव में आकर पाकिस्तान की मांग स्वीकार कर ले। सर्वप्रथम 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' कलकत्ता में मनाया गया। उस समय वहाँ मुसलिम लीग की सरकार थी (बंगाल के मुख्यमंत्री श्री शहीद सुहरावर्दी थे)। सुहरावर्दी ने 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' दिवस के ग्यारह दिन पहले ही समाचारपत्रों में कई लेखों द्वारा मुसलमानों का सबसे प्रिय लक्ष्य 'पाकिस्तान' पर जोर दिया। कलकत्ता में जोर की मारकाट मची। बंगाल में मुसलमानों ने हिंदुओं के साथ बड़ा बुरा व्यवहार किया और बंगाल की सरकार ने इसे रोकने के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं किए। इसके उपरांत बंगाल के नोआखाली में दंगा हुआ। वहाँ ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी गई कि हिंदुओं का वहाँ रहना अंसभव हो गया। अस्थायी सरकार जो इस समय केंद्र में थी। परिस्थिति पर काबू पाने में असफल रही। मुसलमानों ने कानून का अपने हाथ में ले लिया और मुसलिम लीग ने उनके विरुद्ध एक शब्द भी न कहा।

जब देश की स्थिति ऐसी थी, लॉर्ड वेवेल के बहुत कहने सुनने पर लीग अंतरिम सरकार में शामिल होने के लिए राजी हो गई। अक्टूबर में लीग के पांच सदस्य सरकार में शामिल हो गए। लेकिन लीग के प्रवेश का लक्ष्य अंतरिम सरकार को असफल बनाना था। सरकार के कार्यों में अवरोध डालकर, वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करना चाहती थी। लीग ने पूरा असहयोग किया और सांप्रदायिक दंगों को प्रोत्साहित किया। लीग को महत्वपूर्ण विभागों में वित विभाग दिया गया था। नया बजट प्रस्तुत करते समय लियाकत अली ने उद्योगपतियों और व्यापारियों पर अत्यधिक कर लगाए। अधिकांश व्यापारी और उद्योगपति हिंदू थे। इसके अतिरिक्त भाषा तथा आंतरिक व्यवस्था के संबंध में दोनों दलों में भारी मतभेद था। यह स्पष्ट हो चुका था कि कांग्रेस तथा लीग मिलकर कार्य नहीं कर सकती थीं। इस अनुभव से बहुत सीमा तक कांग्रेस में देश-विभाजन के लिए जनमत बनना आरंभ हुआ। लीग और कांग्रेस नेताओं के बीच कटूता बढ़ती गई। गतिरोध दूर करने के लिए 3.6 दिसंबर 1946 को लंदन में एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें ब्रिटेन के प्रधान मंत्री एटली, वाइसराय वेवेल, कांग्रेस अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू और मुसलिम लीग के अध्यक्ष जिन्ना ने हिस्सा लिया। यह सम्मेलन भी कांग्रेस और लीग के बीच मतभेद दूर करने में असफल रहा। लेकिन सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार ने संकेत कर दिया कि वह देश के बंटवारे की तरफ आगे बढ़ेगी। दिसंबर 1946 में संविधान सभा की बैठकर हुई, जिसमें कांग्रेस, हिंदू महासभा और कुछ अन्य पार्टियों ने हिस्सा लिया। मुसलिम लीग और राजाओं ने इस सभा का बहिष्कार किया।

जब कांग्रेस और लीग के नेता एक-दूसरे को नीचा दिखाने में व्यस्त थे, देश का राष्ट्रीय आंदोलन सशस्त्र क्रांति का रूप धारण कर रहा था। कांग्रेस नेताओं ने राजाओं और लीग को संतुष्ट कर संविधान-सभा में ले आने का प्रयत्न किया। जनवरी 1947 में उन्होंने राजाओं से समझौते की बात के लिए एक विशेष समिति नियुक्त की। अब तक कांग्रेस मांग करती आ रही थी कि संविधान-सभा में रियासतों का प्रतिनिधित्व करने वाले वे लोग होंगे जिन्हें जनता ने चुना है। लेकिन समझौते

के द्वारा कांग्रेस यह मान गई कि रियासतों के 50 प्रतिनिधि विधान सभाओं द्वारा चुने जाएंगे और बाकी राजाओं द्वारा मनोनीत किए जाएंगे।

2.7 एटली की घोषणा

25 फरवरी, 1947 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने हाउस ऑफ कॉमंस में भारत-संबंधी नीति के बारे में बयान दिया। ब्रिटेन का मंत्रिमण्डल भारत की बिगड़ती हुई दशा को भली-भांति समझता था। एटली ने समस्या को हल करने का एकमात्र तरीका यह निकाला कि ब्रिटेन को भारत से अपना अधिकार समाप्त करने की एक निश्चित तिथि निर्धारित कर देनी चाहिए। उन्होंने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार जून 1948 के अंदर भारत की सत्ता जिम्मेदार भारतीयों के हाथ सौंप देना चाहती है। इस कार्य के लिए माउंटबेठन को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। एटली की इस नीति की कंजर्वेटिव दल ने संसद में भारी आलोचना की लेकिन अंततः यह नीति स्वीकृत हुई। 24 मार्च, 1947 को माउंटबेटन ने गवर्नर-जनरल का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। भारत आते ही माउंटबेटन ने यहाँ की राजनैतिक स्थिति पर काबू पाने के लिए देश के विभिन्न नेताओं से विचार विमर्श शुरू किया। किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले माउंटबेटन ने 24 मार्च से 15 अप्रैल तक विभिन्न राजनैतिक दलों और नेताओं से बातचीत की तथा प्रांतों के गवर्नरों की एक सभा बुलाई। कांग्रेस के प्रमुख नेताओं में नेहरू और पटेल माउंटबेटन से कई बार मिले। गाँधी की प्रथम मुलाकात माउंटबेटन से 31 मार्च 1947 को हुई। गाँधी का यह सुझाव था कि अंतरिम सरकार पूर्ण रूप से लीग के नेता जिन्ना के हाथों सौंप दिया जाए, जिससे भारत में सांप्रदायिक दंगों को रोका जा सके। परंतु गाँधी का यह सुझाव कांग्रेस नेताओं तथा वर्किंग कमेटी को मान्य नहीं था। जिन्ना की पहली मुलाकात गवर्नर-जनरल से 6अप्रैल को हुई जिसमें जिन्ना ने गाँधी के सुझाव का विरोध किया। इसी बीच माउंटबेटन की मुलाकात कांग्रेस नेता आजाद, कृपलानी, कृष्णमेनन तथा मुसलिम लीग के सचिव लियाकत अली खाँ से हुई। सिख प्रतिनिधियों में बलदेव सिंह, मास्टर तारा सिंह और अन्य सिख नेताओं के अतिरिक्त बीकानेर और भोपाल की भारतीय रियासतों के राजाओं से भी बातचीत की। इस सिलसिले में माउंटबेटन इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारतीय समस्या का एकमात्र समाधान का विभाजन और पाकिस्तान की स्थापना है। अतः माउंटबेटन ने बड़ी आसानी से पहले पटेल को देश के बँटवारे के पक्ष में किया। उसके बाद जवाहरलाल नेहरू की तरफ ध्यान दिया। उन्होंने और उनसे ज्यादा लेडी माउंटबेटन ने समझा-बुझाकर नेहरू को भी बँटवारे के पक्ष में कर दिया। अबुल कलाम आजाद देश विभाजन के खिलाफ थे। पटेल ही नहीं, नेहरू को भी विभाजन का पक्षघर बन जाते देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ था। आजाद विभाजन के प्रश्न को लेकर गाँधी से मिले। आजाद के शब्दों में ''मैं बँटवारे के खिलाफ रहा हूँ और अब भी हूँ। बँटवारे के खिलाफ जितना मैं आज हूँ उतना पहले कभी नहीं था। लेकिन मुझे यह देखकर अफसोस है कि नेहरू और पटेल ने हार मंजूर कर ली है। अगर आप भी मंजूर कर लेते हैं, तो मुझे डर है कि हिंदुस्तान का सर्वनाश हो जाएगा।'' गाँधी ने कहा, ''अगर कांग्रेस बँटवारा मंजूर करेगी तो उसे मेरी लाश के ऊपर करना पड़ेगा। जब तक मैं जिंदा हूँ

भारत के बँटवारे के लिए कभी राजी न हूंगा। और अगर मेरा वश चला तो कांग्रेस को भी इसे मंजूर करने की इजाजत न दूंगा।'' 2अप्रैल के दिन गाँधी लार्ड माउंटबेटन से मिले। उन्होंने लॉर्ड माउंटबेटन को सुझाव दिया था कि जिन्ना को सरकार बनाने दी जाए और उन्हें अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों का चुनाव करने दिया जाए। माउंटबेटन को यह सुझाव कुछ हद तक मंजूर था परंतु इस सुझाव का जबरदस्त विरोध नेहरू और पटेल दोनों ने किया और इसे वापस लेने के लिए गाँधी को बाध्य किया। गाँधी का यह सुझाव देश की एकता बचाए रखने के लिए था। परंतु कुछ दिनों बाद गाँधी का कहना था कि देश की हालत अब ऐसी है कि बँटवारा अवश्यंभावी लगता है। मौलाना अबुल कलाम आजाद का ख्याल था कि गाँधी सरदार पटेल के प्रभाव के कारण बँटवारे का विरोध न कर सके और समर्थक बन गए।

2.8 माउन्ट बेटन योजना

कांग्रेस और लीग नेताओं से बात करने के बाद माउंटबेटन लंदन गए और ब्रिटिश सरकार के सामने देश-विभाजन की अपनी योजना पेश की। ब्रिटिश सरकार की सम्मति पाकर वे 31 मई को वापस आए और कांग्रेस तथा लीग नेताओं से बातचीत की। इन नेताओं की स्वीकृत पाकर ब्रिटिश सरकार ने 3जून 1947 को भारत-विभाजन की योजना प्रकाशित कर दी। माउंटबेटन योजना जनसाधारण के शब्दों में 'मन-बाटन' योजना के नाम से प्रसिद्ध है। उसी दिन एटली ने इस योजना को इंग्लैंड की संसद में प्रस्तुत कर दिया। इस योजना के अनुसारः

1. हिंदुस्तान को दो हिस्सों, भारतीय संघ और पाकिस्तान में बाँट दिया जाएगा।
2. संविधान-सभा द्वारा पारित संविधान भारत के उन भागों में लागू नहीं किया जाएगा जो इसे मानने के लिए तैयार न हों।
3. बंगाल और पंजाब में हिंदू तथा मुसलमान बहुसंख्यक जिलों के प्रांतीय विधान सभा के सदस्यों की अलग-अलग बैठक बुलाई जाए और उसमें यदि कोई भी पक्ष प्रांत विभाजन चाहेगा तो विभाजन कर दिया जाएगा।
4. उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत में जनमत द्वारा यह पता लगाया जाए कि वह भारत के किस भाग के साथ रहना चाहेगा।
5. असम के सिलहट जिले से भी इसी प्रकार जनमत द्वारा निर्णय कराया जाए।
6. भारतीय नरेशों के प्रति पुरानी नीति रहेगी कि सर्वोच्चसत्ता के अधिकार उन राज्यों को वापस लौटा दिए जाएंगे।

इस योजना को कांग्रेस तथा मुसलिम लीग दोनों ने स्वीकार कर लिया और देश-विभाजन की तैयारी आरंभ हो गई। बंगाल और पंजाब मे जिलों के विभाजन तथा सीमा-निर्धारण का कार्य एक कमीशन के अधीन सौंपा गया जिसकी अध्यक्षता रेडक्लिफ ने की। स्पष्ट है कि माउंटबेटन योजना देश के दो टुकड़े कर देने की योजना थी। साथ ही यह देशी रियासतों को अधिकार देती थी कि अगर वे चाहें तो भारतीय संघ या पाकिस्तान किसी में शामिल न होकर ब्रिटेन के अधीन बनी रह सकती थीं।

माउंटबेटन योजना को कांग्रेस कार्य समिति (कांग्रेस वर्किंग कमेटी) की 3 जून 1947 की बैठक में स्वीकार कर लिया गया था। ऐसी स्थिति में पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के खानबधु और खुदाई खिदमतगार, जो बराबर कांग्रेस का साथ दे रहे थे, बड़ी मुसीबत में पड़ गए। जब कार्य समिति (वर्किंग कमेटी) की बैठक में गाँधी ने भी माउंटबेटन की योजना का अर्थात् देश के बँटवारे की योजना का समर्थन किया तो सीमांत गाँधी अब्दुल गफ्फार खाँ आशचर्यचकित रह गए।

14 जून 1947 को कांग्रेस महासमिति की बैठक में गोविन्द बल्लभ पंत ने देश के विभाजन की माउंटबेटन योजना का स्वीकार करने का प्रस्ताव पेश किया। पंत ने कहा कि यह देश की स्वतंत्रता और स्वाधीनता प्राप्त करने का एकमात्र उपाय है। इससे सुनिश्चित हो जाएगा कि भारतीय संघ में केंद्र को अधिक शक्तिशाली रखा जाएगा। कांग्रेस ने हिंदू, मुसलिम एकता के लिए बड़ी कोशिश की। इस प्रस्ताव का समर्थन आजाद ने किया जो बँटवारे का विरोध करते आ रहे थे। आजाद ने कहा, ‘‘कांग्रेस कार्य समिति का फैसला सही फैसला नहीं है। लेकिन कांग्रेस के सामने कोई और प्रस्ताव का पास होना मुश्किल था। ऐसी हालत में गाँधी ने हस्तक्षेप किया और प्रस्ताव को स्वीकार करने की सलाह दी। इस प्रस्ताव का विरोध करने वाले सिंध कांग्रेस के नेता चौथराम, भिडवानी, पंजाब कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ. किचलू, पुरुषोत्तम दास टंडन, मौलाना हफीजुर्रहमान आदि थे। प्रस्ताव का विरोध करने वालों में कुछ ऐसे लोग भी थे जो सही मायने में हिंदू-मुसलिम एकता के लिए प्रयत्न करते आ रहे थे और इस एकता के जरिए देश की एकता को बचाना चाहते थे। लेकिन प्रस्ताव के विरोधियों में कुछ ऐसे लोग भी थे जो हिंदुओं और मुसलमानों की एकता को असंभव समझते थे और हिंदू सांप्रदायिकता को गले लगाए फिरते थे।

गाँधी, नेहरू और पटेल के समर्थन के बावजूद कांग्रेस कार्य समिति का प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में सर्वसम्मति से पास न हो सका। 161 सदस्यों ने या तो खिलाफ वोट दिया था या वे तटस्थ रहे। मुसलिम लीग की कौंसिल की बैठक माउंटबेटन योजना पर विचार करने के लिए 10 जून 1947 को नई दिल्ली में बुलाई गई। लीग ने भारी बहुमत से योजना को स्वीकार किया। लीग की बैठक में उपस्थित 400 सदस्यों में से 10 सदस्यों ने उसका विरोध किया।

कांग्रेस द्वारा माउंटबेटन योजना को स्वीकार कर लेने के बाद पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत के राष्ट्रवादी खुदाई खिदमतगार के नेता अब्दुल गफ्फार खाँ बड़े संकट में पड़ गए। गफ्फार खाँ के नेतृत्व में मांग

की गई कि सिर्फ पाकिस्तान या भारतीय संघ में शामिल होने ही के बारे में नहीं बल्कि अलग पठानिस्तान या पख्तूनिस्तान की स्थापना के बारे में भी सीमांत के निवासियों का जनमत लिया जाए। संघ में शामिल होने के बारे में जनमत लेने के समय उन्होंने बहिष्कार ;इवलबवजजद्ध का नारा दिया। लीग ने घोर सांप्रदायिकता का प्रचार कर और अनेक जाली वोट डलवाकर पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत को पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला करवाया। पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान और असम के सिलहट जिले ने पाकिस्तान में शामिल होने का फैसला किया।

5 जुलाई 1947 को ब्रिटिश संसद में भारतीय स्वाधीनता विधेयक पेश किया गया। 15 जुलाई को वह बिना किसी संशोधन के हाउस ऑफ कॉमंस द्वारा और 16 जुलाई को हाउस ऑफ लॉर्डस् द्वारा पास कर दिया गया। 18 जुलाई 1947 को उस पर ब्रिटिश सम्राट के हस्ताक्षर हो गए। इसके अनुसार देश को 15 अगस्त 1947 को दो डोमिनियनों भारत और पाकिस्तान में बाँट दिया जाएगा। दोनों डोमिनियनों को पूरी स्वतंत्रता तथा प्रभुसत्ता सौंप दी जाएगी। 14 अगस्त को पकिस्तान अधिराज्य और 15 अगस्त को भारतीय अधिराज्य की स्थापना होगी। 14 अगस्त 1947 को पाकिस्तान की स्थापना हुई। मुहम्मद अली जिन्ना उसके गवर्नर-जनरल और लियाकत अली प्रधानमंत्री बने। भारतीय संघ की बैठक संविधान सभा की 14 अगस्त का आधी रात को हुई। रात के बारह बजे और 15 अगस्त आरंभ होते ही जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा को संबोधित करते हुए कहा, ***''आधी रात इस घड़ी में जब दुनिया सो रही है, भारत जागकर जीवन और स्वतंत्रता प्राप्त कर रहा है। एक क्षण ऐसा आता है जो इतिहास में बहुत ही कम आता है जब हम पुराने युग से नए युग में कदम रखते हैं जब एक युग खत्म होता है और जब एक राष्ट्र की अरसे से दबी आत्मा बोल उठती है। यह बहुत ही अच्छी बात है कि इस पवित्र क्षण मे हम भारत उसकी जनता की सेवा और उससे भी बढ़कर मानवता की सेवा करने की सौगंध लेते हैं।''***

इसी संविधान-सभा ने लॉर्ड माउंटबेटन को स्वतंत्र भारत का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया और जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बने।

2.9 विभाजन और साम्प्रदायिक दंगे

भारत विभाजन भारतीय इतिहास की एक दुभाग्यपूर्ण घटना है और जिन परिस्थितियों में यह घटना हुई वह अत्यंत दुखपूर्ण है। कांग्रेस और लीग के नेताओं ने देश का बँटवारा स्वीकार कर लिया था परंतु क्या भारत की जनता इससे खुश थे? सच तो यह था कि भारत का बँटवारा कांग्रेस और मुसलिम लीग के बीच हुआ। भारत के मजदूर तथा जनता यह कभी नहीं चाहती थी कि भारत के दो टुकड़े किए जाएँ। उच्च पूंजीपति वर्ग और सामतवर्ग के लोग राजसत्ता को पाने के लिए तथा अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए हरचंद कोशिश कर रहे थे कि भारत का बँटवारा किया जाए। देश के बँटवारे से लोगों के मन दुःखी थे, लेकिन फिर भी दिल्ली, कराची आदि स्थानों पर खुशियाँ मनाई जा रही

थीं। भारत विभाजन के चंद घंटों के अंदर पूर्वी पंजाब और पश्चिमी पंजाब में भयंकर सांप्रदायिक दंगों की आग भड़क उठी। भारत और पाकिस्तान दोनों ही देशों में सांप्रदायिक उपद्रव शुरू हो गए। सांप्रदायिक दंगों की आग सिर्फ जनता तक ही सीमित न रही बल्कि सेना के अंदर भी यह धारण बढ़ती गई। सेना और प्रशासन के अंग्रेज अधिकारियों ने इन हंगामों को हर तरह से प्रोत्साहन दिया। इसका एक उदाहरण पाकिस्तान के ब्रिटिश गवर्नर-जनरल मुहम्मद अली जिन्ना के नाम 5 सितंबर 1947 का पत्र है जिसमें सर फ्रांसिस मूडी ने इस बात पर जोर दिया है कि उन्हें इस बात की फिक्र नहीं कि सिक्ख सरहद कैसे पार कर रहे हैं। उनका जोर इस बात पर था कि जितनी जल्दी हो उतनी जल्दी सिक्खों से पिंड छुड़ाना चाहिए। इन संप्रदायिक दंगों में पाकिस्तान और भारत दोनों में कितने आदमी मारे गए, कितने शरणार्थी बनाए गए, कितनी औरतों का अपहरण किया गया। इसका सही हिसाब देना असंभव है। पंजाब और बंगाल दो स्थानों पर ऐसी घटनाएँ कई दिनों तक चलती रहीं। भारत के राष्ट्रीय नेताओं में गाँधी, नेहरू, आजाद जैसे महान नेता थे जो सांप्रदायिकता से बिल्कुल दूर थे तथा सांप्रदायिक दंगों की आग को बुझाना चाहते थे।

2.10 सारांश

इस इकाई में आप 1945.47 के बीच हुई राजनितिक गतिविधियों का अध्ययन कर चुके हैं। स्वतंत्रता प्राप्ती में इन सारी गतिविधियों की भूमिका जान चुके हैं। परन्तु किन परिस्थितियों में यहाँ तक हम पहुंचे उसके दो प्रमुख कारण थे। बाहरी और आन्तरिक, जैसे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद का अंतरराष्ट्रीय चेतना तथा दबाव और भारत में राजनितिक चेतनाओं के अलावा जन आन्दोलनों का अंग्रेजी सरकार पर दबाव।

2.11 पारिभाषिक शब्दावली

उपनिवेशवाद - Colonialism

घोषणा पत्र - Declaration

दंड विधि- Penal Code

प्रत्यक्ष/सीधा कार्यवाही – Direct Action

भारत सचिव – Secretary of State for India

2.12 स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. कैबिनेट मिशन योजना क्या था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. माउन्टबेटन प्लान के मुख्य विशेषता बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3. अंग्रेजी सरकार ने शिमला कॉन्फ्रेंस क्यों बुलाया?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.13 ग्रंथ सूची

1. विपिन चन्द्र, इण्डिया स्ट्रगल फार इंडिपेन्डेंस
2. सुमित सरकार, आधुनिक भारत
3. शेखर बंधोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक आधुनिक भारत का इतिहास।
4. वी0 एल0 ग्रोवर, आधुनिक भारत का इतिहास
5. रामलखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास
6. रमेश चन्द्र मजूमदार, भारत का बृहत् इतिहास आधुनिक भारत

2.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. द्वितीय विश्व युद्ध क बाद विश्व राजनिति में क्या परिवर्तन आये?
2. द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार का भारत के प्रति क्या रवैया था?
3. कैबिनेट मिशन क्यों विफल हुआ। आलोचना करें?
4. भारत के स्वतंत्रता में 1945.47 के बीच जन आन्दोलनों का क्या योगदान था?

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और समाजवादी विचारधारा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारत में समाजवादी विचारधारा का उदय

3.3.1 समाजवाद क्या है

3.3.2 समाजवाद का उदय कब और कैसे हुआ

3.3.3 भारत में समाजवाद का उदय

3.4 कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

3.4.1 1920-1934 तक

3.4.2 1934-1942 तक

3.4.3 1942 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक

3.5 कांग्रेस के अन्दर समाजवादी विचारधारा – नेहरू और सुभाष

3.6 कांग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना

3.7 मजदूर तथा किसान आन्दोलन

3.8 सारांश

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भारत में श्रमिक आन्दोलन के विकास ने उन परिस्थितियों को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप भारतीय राजनीति व राष्ट्रीय आन्दोलन में वामपंथी विचारधारा का उदय हुआ। उन्नीसवीं सदी के अन्तिम तथा बीसवीं सदी के प्रथम दशक में मजदूरों के बार-बार होने वाले आन्दोलनों ने अनेक

राष्ट्रवादियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। परन्तु इस दौर में किसानों और मजदूरों के प्रति कांग्रेस की उदासीनता ने अपरोक्ष रूप से वामपंथ के उदय में सहायता प्रदान की। वामपंथ के उदय के फलस्वरूप भारतीय मुक्ति संघर्ष में समाजवादी (socialist) तथा साम्यवादी (communist) विचारधारा का समावेश हुआ। फ्रांसीसी क्रान्ति के समय पहली बार दक्षिणपंथी और वामपंथी शब्द का प्रयोग किया गया। राजा के समर्थकों को दक्षिणपंथी तथा विरोधियों को वामपंथी कहा गया। कालान्तर में समाजवाद तथा साम्यवाद के उत्थान के पश्चात वामपंथी शब्द का प्रयोग इनके लिए होने लगा। 1917 की रूसी क्रान्ति के बाद सिर्फ भारत में ही नहीं वरन् विश्व के अनेक राष्ट्रों में समाजवादी विचारधारा तेजी से प्रवाहित होने लगी थी। भारतीय राजनीति में समाजवादी विचारधारा के पनपने से न केवल राष्ट्रीय आन्दोलन का क्षेत्र ही विस्तृत हुआ वरन् इसके स्वरूप में भी महत्वपूर्ण बदलाव आए। समाजवादी विचारधारा के पोषकों ने कृषकों व श्रमिकों के सामाजिक तथा आर्थिक समस्या को राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़कर इसको एक व्यापक आधार प्रदान किया। इस समाजवादी विचारधारा को एक ओर तो कम्युनिस्टों ने आगे बढ़ाया, दूसरी ओर जवाहरलाल नेहरू व सुभाषचन्द्र बोस इसके प्रतीक बन गए।

भारत में वामपंथी आन्दोलन की दो मुख्य धाराएँ विकसित हुईः- (1) साम्यवाद (कम्युनिज्म), जिसको कामिन्टर्न, जो कि रूस का अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन था, नियन्त्रित करता था और (2) कांग्रेस समाजवादी पार्टी, जो कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वामपन्थी दल था।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आपको समाजवादी विचारधारा से अवगत कराना है तथा यह भी बताना है कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा का क्या योगदान रहा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप समझ पाएँगे कि –

- समाजवादी विचारधारा क्या है,
- भारत में समाजवादी विचारधारा का उदय कब और कैसे हुआ,
- कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय आन्दोलन में क्या भूमिका रही,
- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा की क्या भूमिका रही,
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस समाजवादी विचारधारा से किस हद तक प्रभावित हुआ,

3.3 भारत में समाजवादी विचारधारा का उदय

3.3.1 समाजवाद क्या है

समाजवादी विचारधारा वह वैचारिक आयाम है जो समाज का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है तथा इसमें समाए हुए विसंगतियों को दूर करता है। समाजवाद का अर्थ एक ऐसे समाज के निर्माण से है जो शोषण मुक्त हो। समाजवादी समाज में किसी एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण नहीं होता है। समाजवादी समाज समानता पर आधारित होता है एवं श्रमिकों तथा किसानों के अधिकारों का पोषक होता है। समाजवादी समाज में स्त्रियों को भी पुरूषों के समान स्वतंत्रता प्राप्त होता है। समाजवादी समाज वह समाज होता है जहाँ उत्पादन के साधनों तथा समस्त सम्पत्ति पर समाज के सभी वर्गों के लोगों का समान रूप से आधिपत्य होता है। समाजवादी विचारधारा एक ओर जहाँ सामंतवादी प्रथा तथा पूँजीवादी व्यवस्था पर आघात करता है वहीं दूसरी ओर किसानों तथा मजदूरों के हितों का पोषण भी करता है। समाजवादी समाज में सभी वर्गों के लोगों को रोजगार, आवाश, स्वास्थ्य सुरक्षा, वृद्धावस्था में सुरक्षा, अवकाश, शिक्षा के अधिकार इत्यादि प्राप्त होता है। अतः जो लोग उपरोक्त विचारों के पोषक होते हैं वे समाजवादी विचारधारा के लोग माने जाते हैं।

3.3.2 समाजवाद का उदय कब और कैसे हुआ

बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना सर्वप्रथम पश्चिमी राष्ट्रों में ही संभव हो पाया। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप समाज में दो वर्गों का उदय एक साथ ही अस्तित्व में आया – एक पूँजीपती वर्ग, जो इन उद्योगों के मालिक थे, तथा दूसरा श्रमिक वर्ग, जो इन उद्योगों में मेहनत मजदूरी करके उत्पादन को बढ़ाते थें। पूँजीपती वर्गों द्वारा श्रमिकों का प्रत्येक स्तर पर शोषण किया जाता था। 15-18 घंटे काम करने पर भी उन्हें उचित मजदूरी प्राप्त नहीं हो पाता था। उनके आवास, शिक्षा, पोषण आदि पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। इसी के फलस्वरूप समाजवादी विचारधारा का उदय हुआ जो मजदूरों का पोषक और पूँजीपतियों का विरोधी था। इस काल में पश्चिमी राष्ट्रों में श्रमिकों के हितैषी के रूप में अनेक समाजवादी विचारकों का उदय हुआ। सबसे प्रमुख समाजवादी विचारक कार्ल मार्क्स थे, किन्तु वे अपने समय के सभी समाजवादी विचारकों से आगे निकल गए और उन्होंने साम्यवादी (कम्युनिस्ट) समाज के निर्माण का स्वप्न देखा।

3.3.3 भारत में समाजवाद का उदय

भारत में समाजवादी विचारधारा के उदय में ब्रिटिश शासन की महत्वपूर्ण भूमिका रही। प्लासी विजय के बाद अंग्रेजों ने बंगाल के समस्त संसाधनों को हस्तगत कर लिया। लैंड रिवेन्यू सिस्टम को लागू करने के बाद किसानों का जबरदस्त शोषण प्रारम्भ हुआ। करों के अधिक बोझ, ब्रिटिश आर्थिक नीति तथा बार-बार पड़ने वाले अकालों ने किसानों के मनोबल को पूरी तरह से तोड़ दिया और

उनकी दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी। अंग्रेजों ने भारत में अपना शासन स्थायी करने के लिए यहाँ के राजाओं-महाराजाओं, जमींदारों, साहूकारों, व्यापारिक घरानों तथा पूँजीपतियों को अपना मित्र बनाया एवं इन्हें किसानों एवं मजदूरों का शोषण करने की पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। इस काल में करों में इतनी अधिक वृद्धि की गयी कि उसे चुकाने के बाद किसानों के पास कुछ नहीं बचता था। भारतीय जमींदारों तथा देशी राजवाड़ों ने अंग्रेजों के साथ मिलकर किसानों के शोषण की एक ऐसी प्रवृति को जन्म दिया जो दुनिया के किसी अन्य देश में उदाहरण रूप में नहीं था।

इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति के बाद जो अवशेष पूँजी भारत में निवेश की गयी उसके फलस्वरूप अनेक नए-नए उद्योगों तथा बागानों की स्थापना की गयी जिसके फलस्वरूप एक नए मजदूर वर्ग का उदय हुआ। विभिन्न कारखानों तथा बागानों में काम करने वाले मजदूरों के शोषण की एक जैसी गाथा थी – अत्यधिक श्रम और कम मजदूरी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत में औद्योगिक क्षेत्रों में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। अनेक नए-नए कल कारखानों के साथ-साथ बगानों की संख्या में भी असीम वृद्धि हुई। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि मजदूरों की संख्या भी बढ़ती चली गई। युद्ध के समय मजदूरों ने दिन-रात मेहनत करके उत्पादन को बढ़ाया जिससे कारखानों के मालिकों की आय में अत्यधिक वृद्धि हुई। परन्तु उसी अनुपात में मजदूरों की मजदूरी नहीं बढ़ी वरन् विश्वयुद्ध के बाद जिस तरह से महंगाई बढ़ी, उनकी मजदूरी में कमी ही आ गई। 15-18 घंटों तक काम करने के बाद भी मजदूरों को इतना मजदूरी नहीं मिल पाता था कि वे दो वक्त का भोजन ठीक से कर सके। इन्हें गन्दी बस्तियों में, अंधेरे कमरे में रखा जाता था, जहाँ पानी, सफाई आदि की कोई व्यवस्था नहीं थी। विभिन्न कल कारखानों में स्त्रियों तथा बच्चों तक को काम पर लगाया गया था। मिल मालिकों तथा सरकार की तरफ से इन मजदूरों के लिए आवास, चिकित्सा, शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। इस समय कारखानों में अत्यधिक उत्पादन के लिए कच्चे मालों की आवश्यकता थी। अतः किसानों ने भी जी-तोड़ मेहनत की परन्तु इसके एवज में उन्हे भी वह लाभ प्राप्त नहीं हुआ जिसकी उन्हें आशा थी। मिल मालिकों तथा बगान मालिकों के इस शोषण के फलस्वरूप किसानों तथा श्रमिकों में जबरदस्त असंतोष की भावना पनपने लगी। इन्हीं परिस्थितियों के कारण भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रवेश हुआ।

भारत के अनेक युवा शिक्षित वर्ग जब पश्चिमी देशों के सम्पर्क में आए तो इन्होंने पश्चिमी साहित्य का गहन अध्ययन किया। 1917 की रूसी क्रान्ति ने अनेक भारतीय युवा शिक्षित वर्गों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। क्योंकि इस क्रान्ति ने विश्व के इतिहास में पहली बार, रूस में, एक साम्यवादी सरकार की स्थापना का मार्ग प्रसस्त किया, जिसमें मजदूरों का शोषण नहीं था। अतः कई शिक्षित युवा वर्ग इस विचारधारा से प्रभावित होकर भारत के किसानों तथा मजदूरों को लामबद्ध करना शुरू कर दिया। इसके फलस्वरूप भारत में अनेक मजदूर यूनियन तथा किसान पार्टी का जन्म हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध से पहले भी मजदूरों ने कई बार हड़ताल तथा प्रदर्शन करके अपने असंतोष को उजागर किया था परन्तु प्रथम विश्वयुद्ध के पहले मजदूर मूलतः असंगठित थे और वे अपने अधिकारों को

लेकर उतने सजग नहीं थे जितने कि बाद के वर्षों में देखे गए। इस समय के आन्दोलनों को ज्यादातर स्वतः स्फूर्त आन्दोलन कहा गया है। क्योंकि इस समय के आन्दोलनों को कोई केन्द्रीय नेतृत्व प्राप्त नहीं होता था तथा हड़तालियों का कोई ठोस कार्यक्रम या संगठन नहीं था। हालांकि मजदूरों के बार-बार होने वाले आन्दोलनों ने एक केन्द्रीय संगठन की आवश्यकता को अनिवार्य बना दिया और इसी के फलस्वरूप 31 अक्टूबर 1920 को एक अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (ए.आई.टी.यू.सी) की स्थापना की गयी। हालांकि यह यूनियन एक राष्ट्रवादी नेता लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में स्थापित की गई थी। परन्तु इसके बाद अनेक वामपंथियों ने समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओं के माध्यम से मजदूरों के बीच समाजवादी विचारधारा का प्रचार किया। समाजवादी विचारधारा के तहत अब मजदूर अपने अधिकारों को लेकर पहले की अपेक्षा अधिक सजग हो उठे।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने कभी भी भारतीय समाज के एक बहुत बड़े समूह को, किसानों तथा मजदूरों को, अपने साथ जोड़ने की कोशिश नहीं की। किसानों तथा मजदूरों के प्रति कांग्रेस की नीति प्रारम्भ से ही ढ़ूल-मूल रवैया अपनाने वाली रही। श्रमिकों के मामले में कांग्रेस तभी अपनी कोई भूमिका निभाता था जब विरोध ब्रिटिश पूँजीपतियों का किया जा रहा होता था। परन्तु जहाँ भारतीय पूँजीपतियों का विरोध होता था वहाँ कांग्रेस मजदूरों से कोई सरोकार नहीं रखता था। कांग्रेस पर दक्षिणपंथी बुर्जुआओं का वर्चस्व था। इसमें अनेक बड़े-बड़े पूँजीपती तथा जमींदार लोग शामिल थे। ये लोग कांग्रेस को बहुत बड़े पैमाने पर आर्थिक सहायता पहुँचाते थे। असहयोग आन्दोलन की विफलता ने कांग्रेस के बहुत बड़े तबके में निराशावादी भावना का विकास किया। कांग्रेस में विश्वास करने वाले बहुत से लोगों को गाँधीवाद के प्रति आस्था कमजोर होने लगी। क्योंकि बहुत से लोगों ने गांधी के इस बात पर यकीन कर लिया था कि एक वर्ष के भीतर उन्हें स्वराज मिल जाएगा। परन्तु उनका यह सपना टूट चुका था। बहुत से राष्ट्रवादी अब राष्ट्रीय आन्दोलन में समाज के सभी तबकों यथा किसानों, मजदूरों, महिलाओं के सहयोग की आवश्यकता को महसूस करने लगे थे और इस प्रकार बहुत से बुद्धिजीवियों का ध्यान उन किसानों, मजदूरों तथा महिलाओं की तरफ गया जो कई दशकों से शोषण की जिन्दगी जी रहे थे। ऐसा नहीं है कि प्रथम विश्वयुद्ध के पहले राष्ट्रवादी नेता समाजवादी विचारों से परिचित नहीं थे। कांग्रेस के अनेक राष्ट्रवादी नेता पश्चिमी देशों में ही शिक्षा ग्रहण किए थे और समाजवादी विचारधारा से भली-भाँती परिचित थे परन्तु भारतीय राजनीति में वे इस विचारधारा को नहीं अपनाना चाह रहे थे क्योंकि शोषित किसानों और मजदूरों की समस्या की तरफ ध्यान देने से जमींदारों तथा पूँजीपतियों का एक बहुत बड़ा तबका, जो कि कांग्रेस का आधार था, उनसे विमुख हो जाता।

राष्ट्रवादियों का यह मानना था कि स्वराज प्राप्ति के बाद शोषण और दरिद्रता अपने आप समाप्त हो जाएगी, इसलिए इनलोगों ने मजदूरों और किसानों की समस्या पर विशेष ध्यान नहीं दिया। परन्तु असहयोग आन्दोलन के पश्चात उभरी निराशा ने कुछ राष्ट्रवादियों को यह सोंचने पर मजबूर कर दिया कि वह कौन सा रास्ता अख्तियार किया जाए जिससे समाज के सभी वर्गों को राष्ट्रीय

आन्दोलन में शामिल किया जा सके और इसी सोंच का परिणाम था भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा का उदय हुआ।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. समाजवाद के विषय में अपने विचार निम्नांकित पंक्तियों में लिखिये –

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

3.4 कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना

3.4.1 1920-1934 तक

अक्टूबर 1920 में एम. एन. राय ने ताशकंद में भारतीय साम्यवादी (कम्युनिस्ट) दल का गठन किया। इसके फलस्वरूप भारत में भी कई जगहों पर कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया गया। एस. ए. डांगे ने बंबई में, मुजफ्फर अहमद ने बंगाल में, गुलाम हुसैन ने पंजाब में तथा सिगारवेलु चेटियार ने मद्रास में कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया। 1924 में भारत में, कानपुर षड्यन्त्र के मुकद्दमे का अन्त होते ही, सत्यभक्त ने यह घोषणा कर दी कि उसने भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना कर दी है। इन्होंने पार्टी के एक अंतरिम संविधान की भी घोषणा की जिसमें भारतीय समाज के सभी समुदायों को उत्पादन के साधनों तथा संपत्ति पर समान हक की बात कही गयी। साम्यवादी दलों के नेताओं ने अपने विचारों से लोगों को अवगत कराने के लिए कई प्रकार के पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया। एस. ए. डांगे ने सोशलिस्ट, मुहम्मद अहमद ने नवयुग, मुहम्मद हुसैन ने इकबाल, सिगारवेलु चेटियार ने लेबर किसान गजट का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

1920-1934 के दौर में कम्युनिस्टों को एक ओर जहाँ जबरदस्त ब्रिटिश दमन का सामना करना पड़ा वहीं दूसरी ओर अपनी संकीर्णतावादी सोच के कारण भी उन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ा। इस दौर में उन्होंने उस आन्दोलन से अपने को अलग रखा जिसका नेतृत्व कांग्रेस कर रही थी, क्योंकि कांग्रेस पर बुर्जुआ वर्ग का वर्चस्व था जो मजदूरों के हित में काम नहीं कर सकता था। इस प्रकार कम्युनिस्टों ने राष्ट्रीय संघर्ष की मुख्य धारा पर वर्चस्व स्थापित करने का मौका खो दिया। हालांकि इस दौर में उन्होंने अनेक प्रान्तीय किसान तथा मजदूर पार्टी का गठन करके किसानों तथा मजदूरों को बड़े पैमाने पर संगठित करने का प्रयास किया। इनमें प्रमुख थी, बंगाल की लेबर स्वराज पार्टी, बंबई की कांग्रेस लेबर पार्टी, पंजाब में कीर्ति किसान पार्टी तथा मद्रास में लेबर किसान पार्टी आफ हिन्दुस्तान। इन पार्टियों ने अखबारों के माध्यम से अपने विचारों तथा कार्यक्रमों को मजदूरों के बीच प्रचारित-प्रसारित करने की कोशिश की। अक्टूबर 1928 में मेरठ में एक कान्फ्रेंस हुई और वहाँ भी एक किसान और मजदूर पार्टी बनी। इस कान्फ्रेंस में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें मजदूरों तथा किसानों के अनेक अधिकारों को सम्मिलित किया गया जैसेः- जमींदारी प्रथा का अंत, भूमिहीन किसानों के लिए भूमि, औद्योगिक मजदूरों के लिए न्यूनतम वेतन, काम के अधिकतम आठ घंटे, राष्ट्रीय स्वाधीनता, राजशाही व्यवस्था की समाप्ति, मजदूरों के ट्रेड यूनियन बनाने के अधिकार को मान्यता इत्यादि। 1928 में कलकत्ता अखिल भारतीय मजदूर किसान पार्टी की स्थापना की गयी। कम्युनिस्टों ने मजदूरों के बीच विभिन्न समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, तथा पर्चे बाँटकर उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाया। कम्युनिस्टों का यह मानना था कि भारत के शोषित वर्गों यथा किसानों तथा मजदूरों की मुक्ति का प्रश्न तथा देश की मुक्ति का प्रश्न अलग-अलग नहीं वरन् आपस में जुड़ा हुआ है। कम्युनिस्ट यह चाहते थे कि कांग्रेस पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति को अपना लक्ष्य निर्धारित करे। परन्तु कांग्रेस के भीतर दक्षिणपंथी विचारधारा वाले इस मत से सहमत नहीं थे। इसलिए 1928 में जब कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था तब हजारों मजदूर कम्युनिस्ट के नेतृत्व में कांग्रेस के पंडाल को घेर कर घंटो बैठे रहे और कांग्रेस के सामने उन्होंने यह माँग रखा कि कांग्रेस का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित किया जाए।

ब्रिटिश सरकार राष्ट्रवादियों की अपेक्षा कम्युनिस्टों के कट्टर शत्रु थे। इसलिए उन्होंने यह पूरा प्रयास किया कि किसी भी प्रकार से कम्युनिस्ट आन्दोलन का दमन कर दिया जाए। पेशावर केस (1922), कानपुर केस (1924), मेरठ केस (1929) के माध्यम से अनेक कम्युनिस्ट नेताओं को लम्बी सजाएँ दी गयी। मेरठ केस ब्रिटिशों द्वारा किए गए कम्युनिस्टों के दमन में सबसे अहम था। 14 मार्च 1929 को 31 कम्युनिस्टों को गिरफ्तार करके मेरठ में इन पर मुकद्दमा चलाया गया। यह मुकद्दमा तीन वर्ष तक चला। इनमें दो अंग्रेज कम्युनिस्ट तथा एक अंग्रेज पत्रकार भी शामिल था। इनमें से कई राष्ट्रवादी तथा व्यापार संघ के लोग थे। चूँकि कम्युनिस्ट कट्टर ब्रिटिश विरोधी थे अतः राष्ट्रवादी उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने लगे। इस कारण से कांग्रेस कार्यकारिणी ने इनके मुकद्दमे के लिए एक केन्द्रीय सुरक्षा समिति का गठन किया। इस मुकद्दमे में कम्युनिस्टों की तरफ से वकील के रूप में जवाहरलाल नेहरू, कैलाश नाथ काटजू और डा एफ. एच. अंसारी जैसे लोगो ने बहश किया।

अन्ततः 1934 में ब्रिटिश सरकार ने कम्युनिस्ट पार्टी को प्रतिबन्धित कर दिया। क्योंकि ब्रिटिश सरकार नहीं चाहती थी कि कम्युनिस्ट पार्टी जनता के बीच सक्रिय रूप से काम करे और एक मजबूत संगठन बन जाए।

3.4.2 1934-1942 तक

द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने से पहले कम्युनिस्टों ने अपनी नीति में परिवर्तन किया और कांग्रेस के अन्दर रहकर काम करने का फैसला किया। उनकी यह नीति सफल साबित हुई। इस दौर में कम्युनिस्ट कांग्रेस के अन्दर अपने लिए महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल रहे तथा किसान एवं मजदूरों के साथ-साथ वह छात्रों और लेखकों को भी संगठित करने में अग्रणी भूमिका निभा सके। अखिल भारतीय किसान सभा, अखिल भारतीय छात्र संगठन, प्रगतिशील लेखक संघ इन सभी का गठन इस काल में ही हुआ। इस बीच कम्युनिस्टों ने मजदूरों के अनेकों हड़तालों का नेतृत्व करके ट्रेड यूनियन संगठनों पर अपना प्रभाव बढ़ा लिया।

1934 के बाद कांग्रेस के भीतर तथा बाहर वामपंथियों की शक्ति में इतना अधिक उछाल आ गया कि राष्ट्रीय राजनीति में यह प्रश्न उठने लगा कि राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किसके हाथ में चला जाएगा – दक्षिणपंथी सुधारवादियों के हाथ में या वामपंथियों के हाथ में। कांग्रेस के भीतर तथा बाहर वामपंथियों के मतों में अनेक प्रकार की भिन्नताएँ थी। कांग्रेस सोशलिस्ट इस तथ्य से पूर्णरूपेण अवगत थे कि साम्राज्यवादी शासन तब तक समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि जनता के अधिकाधिक हिस्से को संघर्ष में सम्मिलित नहीं कर लिया जाता। दक्षिणपंथी अनेक वामपंथी जनसंगठनों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकारने के पक्ष में तो थे परन्तु वे चाहते थे कि उनके कार्य आर्थिक प्रश्नों तक ही सीमित रहे तथा राजनीतिक प्रश्नों को कांग्रेस के हाथ में ही छोड़ दिया जाए। परन्तु वामपंथी इससे सहमत नहीं थे। वे चाहते थे कि जन संगठन आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों प्रश्नों को लेकर चले। हालांकि कुछ बिन्दुओं पर सभी वामपंथियों में सहमति भी थी। 1935 का भारत सरकार अधिनियम लागू हो जाने पर दक्षिणपंथियों का यह मत था कि कांग्रेस को चुनाव में भागीदारी करनी चाहिए और बहुमत मिलने पर सरकार बनानी चाहिए। परन्तु वामपंथी बहुमत प्राप्त होने पर सरकार बनाने के विरूद्ध थे। उनका मानना था कि सरकार बनाने से कांग्रेस ब्रिटिश शासकों के साथ सहयोग के मार्ग पर चली जाएगी, जिसके फलस्वरूप साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन कमजोर पड़ जाएगा। हालांकि देखा जाए तो द्वितीय विश्वयुद्ध तक वामपंथियों के बीच एकता बनी रही और वे सभी कांग्रेस के साथ काम करते रहे।

1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ होते ही वामपंथियों के बीच दरार पड़ने लगा। कम्युनिस्ट पार्टी, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी तथा 1939 में सुभाषचन्द्र बोस द्वारा स्थापित फोरवर्ड ब्लाक तीनों वामपंथी पार्टियाँ थी और तीनों ब्रिटिश शासकों को किसी भी प्रकार युद्ध में सहयोग नहीं देना चाहती थी। परन्तु तीनों के विचारों में बहुत अन्तर था। पहले तो कम्युनिस्टों ने इस युद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध

घोषित कर दिया परन्तु जब 1941 में हिटलर ने सोवियत रूस पर आक्रमण कर दिया तब उन्होंने उसे जनयुद्ध घोषित कर दिया। अब सोवियत रूस की मदद करना कम्युनिस्टों का धर्म बन गया। चूँकि ब्रिटिश रूस के साथ थे इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि कम्युनिस्ट भी ब्रिटिशों के साथ हो गए। अतः इस समय जब कांग्रेस ने 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन चलाया तो कम्युनिस्टों ने इस आन्दोलन से अपने को अलग रखा। अतः यह कम्युनिस्टों के लिए बहुत बड़ी भूल थी। इसके कारण एक ओर जहाँ उनका विकास अवरूद्ध हुआ वहीं दूसरी ओर उन्होंने जनता के एक बहुत बड़े हिस्से का बहुमत भी खो दिया।

3.4.3 1942 से स्वतंत्रता प्राप्ति तक

1934 से 1942 तक कम्युनिस्ट पार्टी प्रतिबन्धित रही। इस बीच इसने कांग्रेस के साथ मिलकर अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। परन्तु 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध करके इन्होंने जनता के बहुत बड़े समुदाय का समर्थन खो दिया। परन्तु इसके बाद भी राष्ट्रीय आन्दोलन में ये सक्रिय भूमिका निभाते रहे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद महंगाई बढ़ने और मजदूरों की छटनी के कारण 1945 में लगभग सभी उद्योगों में हड़ताल की लहर फैल गई। इस समय मजदूरों को कम्युनिस्टों का समर्थन प्राप्त होता रहा। 1946 में जब सेना और नौसेना का विद्रोह हुआ तब कम्युनिस्टों ने न केवल इसे अपना समर्थन दिया वरन् मजदूरों तथा आम जनता को शांतिपूर्ण हड़ताल के लिए आह्वान भी किया। 1945-46 में जब तेलंगाना, पुन्नप्रा बायालार एवं तेभागा आन्दोलन छिड़ा तो कम्युनिस्टों ने इसमें जबरदस्त भूमिका निभायी। तेलंगाना में कम्युनिस्टों ने जमींदारों की जमीन किसानों में बाँट दी। पुन्नप्रा बायालार का संघर्ष सामंतवाद के विरूद्ध था जिसका नेतृत्व मजदूर यूनियन तथा कम्युनिस्ट पार्टी ने किया। 1946 में बंगाल के तेभागा आन्दोलन का नेतृत्व किसान सभा ने किया जिसके प्रमुख नेता कम्युनिस्ट थे।इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में किसानों तथा मजदूरों को लामबद्ध करने तथा उन्हें अपना अधिकार दिलाने एवं कांग्रेस की नीति में परिवर्तन कराने में कम्युनिस्टों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। परन्तु फिर भी यह कोई बहुत बड़ी पार्टी के रूप में नहीं उभर सकी तथा इसके सदस्यों की संख्या भी कोई बहुत बड़ी नहीं थी। फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन में इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. कम्यूनिज्म के विषय में अपने विचार निम्नांकित पंक्तियों में लिखिये –

.....

.....

.....

.....

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

3.5 कांग्रेस के अन्दर समाजवादी विचारधारा – नेहरू और सुभाष

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं में से एक था कांग्रेस के अन्दर वामपंथ का उदय। आतंकवादी आन्दोलनों से सम्बन्धित होने के आरोप में जेल में बन्द सुभाषचन्द्र बोस को 1927 में रिहा कर दिया गया। जेल से बाहर आने के बाद बोस का मुख्य उद्देश्य था युवा वर्गों एवं छात्रों को संगठित करना। इस प्रकार वे वामपंथी विचारधारा के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे।

इधर 1927 में जवाहरलाल नेहरू ने सोवियत रूस की यात्रा की थी जिस कारण वे समाजवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित हुए। नेहरू पर समाजवाद का प्रभाव किस कदर हावी होता जा रहा था इसे 1927 के मद्रास अधिवेशन से समझा जा सकता है जब नेहरू ने पूर्ण स्वाधीनता को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित करने का प्रस्ताव रखा था। हालांकि कांग्रेस में दक्षिणपंथियों के प्रभाव के कारण यह प्रस्ताव पारित नहीं हो पाया। इसके बाद नेहरू और बोस ने मिलकर भारत के कई शहरों में इंडिपेंडेंस लीग की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य युवा वर्गों को राजनीति की ओर आकर्षित करना था। नेहरू ने जहाँ एक ओर किसानों की समस्यओं की तरफ ध्यान देना शुरू किया वहीं दूसरी ओर बोस ने औद्योगिक मजदूरों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। नेहरू तथा बोस में कई सारे वैचारिक मतभेदों के बावजूद उनका उद्देश्य एक था कि कांग्रेस की नीति समाजवाद से प्रभावित हो। नेहरू के प्रयास से ही 1931 में करांची अधिवेशन में कांग्रेस ने मौलिक अधिकारों तथा आर्थिक कार्यक्रमों की घोषणा कि जो कि उसके समाजवाद की तरफ बढ़ने के स्पष्ट लक्षण थे। 1935-1936 के दौर में समाजवादी विचारधारा अपने चरम सीमा पर था। इस दौर में नेहरू ने अपना ध्यान किसानों और मजदूरों की समस्या पर, विशेष रूप से राजस्व एवं लगान में कमीं, जबरन मजदूरी की समाप्ति, ऋणों को कम किया जाना, तथा किसान यूनियनों को मान्यता देना इत्यादि, पर केन्द्रित किया। लखनऊ(1935) तथा फैजपुर (1936) के कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू अध्यक्ष थे और इस

समय उन्होंने अपने भाषणों तथा वक्त्वयों द्वारा अपने समाजवादी विचारों का अधिक खुलासा किया। नेहरू यह बात भली-भाँति जानते थे कि राष्ट्रीय संघर्ष में तब तक सफलता प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि समाज के सभी वर्गों का राष्ट्रीय आन्दोलन में संलिप्तता न हो जाए। इसके लिए यह जरूरी था कि सबों के हितों का ध्यान रखा जाए। इसलिए उन्होंने व्यस्क मताधिकार पर आधारित चुनाव, सभी भारतीयों के अधिकारों और सुविधाओं हेतु एक संविधान सभा, तथा समाजिक एवं आर्थिक असमानता का अंत जैसे कार्यक्रम कांग्रेस के सामने रखे। इन अधिवेशनों में उन्होंने किसानों के अनेक समस्याओं को कांग्रेस के साथ जोड़ दिया। 1936 में स्टेट पीपुल्स कांफ्रेंस के पांचवे अधिवेशन में नेहरू के नेतृत्व में पहली बार किसानों के मांगों की एक कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई गई जिसमें भू-राजस्व में एक-तिहाई की कटौती, ऋणों में कमीं तथा विभिन्न क्षेत्रों से आए किसानों के शिकायतों की जाँच आदि मुद्दों को शामिल किया गया। लखनऊ के कांग्रेस अधिवेशन में नेहरू ने सलाह दी कि ट्रेड यूनियनों तथा किसान सभाओं को सामूहिक सदस्यता दी जाए। जयप्रकाश नारायण, नरेन्द्रदेव, और अच्युत पटवर्धन समजवादी नेता थे जिन्हें लखलऊ अधिवेशन के बाद नेहरू की वर्किंग कमेटी में सम्मिलित किया गया। 1938 एवं 1939 में बोस कांग्रेस के अध्यक्ष बने। हालांकि उनके दुबारा अध्यक्ष बनने पर गांधीवाद की पराजय तथा समाजवाद की जीत थी परन्तु बोस को अत्यधिक विरोध का सामना करना पड़ा। क्योंकि अभी भी कांग्रेस में दक्षिणपंथियों का वर्चस्व था। अंततः बोस ने अध्यक्ष पद से इस्तिफा दे दिया परन्तु फिर भी भारत के औद्योगिकरण और सोवियत नमूने पर आधारित योजनाबद्ध आर्थिक विकास पर जोर देकर सुभाष ने कांग्रेस पर अपनी समाजवादी छाप छोड़ दी थी। इसके बाद बोस 1939 में फारवार्ड ब्लाक की स्थापना करके युवाओं के बीच समाजवादी विचारधारा का प्रचार प्रसार करते रहे। अनेक युवा जिसका कांग्रेस से मोहभंग हो रहा था तथा जिसका झुकाव समाजवाद कि तरफ था, बोस के फोरवार्ड ब्लाक में शामिल होने लगे। इस प्रकार नेहरू तथा बोस ने युवा, छात्रों, किसानों तथा मजदूरों के बीच अपने प्रभाव को बनाए रखा तथा उन्हे स्वतंत्रता के संघर्ष के पथ पर चलने को प्रेरित किया एवं कांग्रेस के नीति में परिवर्तन करके राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान किया।

3.7 मजदूर तथा किसान आन्दोलन

राष्ट्रीय आन्दोलन में सुधारवादी बुर्जुआओं का प्रभुत्व था। इस कारण बहुत से युवा वर्ग इनसे असंतुष्ट थे। कम्युनिस्ट पार्टी की विचारधारा इन असंतुष्ट युवा वर्गों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था। इन असंतुष्ट युवाओं को कम्युनिस्ट पार्टी की ओर जाने से रोकने के लिए 1934 में कुछ समाजवादी विचारधारा से प्रभावित नेता जैसे कि, जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्र देव, अशोक मेहता आदि ने मिलकर कांग्रेस के भीतर ही एक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की। इस संगठन का सदस्य वही होता था जो कांग्रेस का भी सदस्य हो। इस संगठन के लोगों का मानना था कि वे कांग्रेस के साथ काम करके कांग्रेस को समाजवादी सिद्धांत अपनाने के लिए बाध्य करेंगे। इस संगठन के सदस्य यह मानते थे कि कांग्रेस समस्त भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करता है इसलिए

मजदूरों की कोई अलग राजनीतिक भूमिका नहीं होनी चाहिए। इसलिए इन लोगों ने मजदूरों को कांग्रेस में शामिल होकर राष्ट्रीय मुक्ति के लिए सम्मिलित प्रयास करने पर जोर दिया। अपने प्रचार प्रसार के बल पर कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने कांग्रेस कार्यकर्ताओं को किसानों की समस्या तथा मजदूरों की समस्या पर ध्यान देने के लिए बाध्य किया। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नेताओं ने अनेक प्रान्तों में किसान सभा के उभरते हुए आन्दोलनों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया, विशेष रूप से बिहार और आन्ध्र में। स्वामी सहजानन्द सरस्वती, जो कि किसानों के बहुत बड़े नेता थे, प्रारम्भ में जमींदारी-उन्मूलन के विरोधी थे परन्तु कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने उनपर बहुत दबाब बनाया जिसके कारण 1935 में बिहार किसान सभा के हाजीपुर अधिवेशन में इस माँग को स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने मजदूरों तथा किसानों के हितों का ख्याल रखते हुए एक संविधान का निर्माण किया जिसमे अनेक समाजवादी तथ्यों को शामिल किया, जैसे- रोजगार का अधिकार, किसानों के बीच भूमि का वितरण, राजाओं तथा जमिंदारों के विशेषाधिकारों का अंत, किसानों तथा मजदूरों के ऋण समाप्त करना, मजदूरों के लिए ट्रेड यूनियन बनाने की स्वतंत्रता तथा हड़ताल पर जाने का अधिकार, जीवनयापन योग्य वेतन, मुफ्त चिकित्सा तथा बीमा, सभी शक्तियों का जनता को हस्तांतरण, जातीय समुदाय के आधार पर भेदभाव समाप्त, राजनीति को धर्म से मुक्त करना तथा व्यस्क मताधिकार इत्यादि। अंततः 1935 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी के बीच समझौता हो गया कि अनेक अखिल भारतीय संगठनों को कांग्रेस में शामिल कर लिया जाए। 1935 से 1939 तक सभी वामपंथी पार्टी आपस में मिलकर कांग्रेस को समाजवादी रास्ते पे लाने में सफल हुए परन्तु अंततः दक्षिणपंथियों का कांग्रेस पर प्रभाव बना रहा। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि कांग्रेस की नीति पर समाजवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था।

1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन में समाजवादियों ने अत्यंत महत्वपूर्ण तथा प्रशंसनीय भूमिका निभायी। 8 अगस्त 1942 को आन्दोलन की घोषणा होते ही 9 अगस्त को सभी महत्वपूर्ण नेता गिरफ्तार कर लिए गए। तब विभिन्न क्षेत्रों के समाजवादी युवा छात्रों ने आन्दोलन का नेतृत्व किया। उद्योगों में काम करने वाले सारे मजदूर सड़क पर निकल आए। समाजवादी नेता भूमिगत होकर आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान करने लगे, इनमें मुख्य थे – जयप्रकाश नारायण तथा अरूणा आसफ अली। समाजवादियों का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था कांग्रेस रेडियो की स्थापना जिसके माध्यम से वे अपने विचार लोगों तक पहुँचाते रहे। आन्दोलन के समय अवसर का लाभ उठाने के लिए प्रमुख समाजवादी नेता सुभाषचंद्र बोस ने सिंगापुर में आजाद हिंद फौज की कमान संभाली और इसके माध्यम से ब्रिटिश अधिकृत भारत पर हमला करके अंग्रेजी शक्ति को कमजोर करने का प्रयास किया। इस प्रकार भारत छोड़ो आन्दोलन में समाजवादी अग्रिम पंक्ति में खड़े दिखाई दिए।

1917 की रुस की क्रांति और इसके परिणामस्वरूप भारत में समाजवादी विचारों के विकास के फलस्वरूप भारत में किसान तथा मजदूर आन्दोलन में तेजी आयी। 1920 ई. में एटक (ए.आई.टी.यू.सी) की स्थापना होने से पहले भी मजदूरों के लगातार होने वाले आन्दोलनों के कारण

कई राष्ट्रवादियों द्वारा उनकी दशा में सुधार करने के लिए प्रयास किए गए परन्तु मजदूरों की समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी और इस कारण विभिन्न कारखानों में हड़तालें भी बढ़ती जा रही थी। राष्ट्रवादियों को यह भय लग रहा था कि कहीं ऐसी स्थिति में मजदूरों के बीच कम्युनिज्म न फैल जाए इसलिए एटक की स्थापना की गई। एटक की स्थापना के बाद 1925 की बंबई की कपड़ा मिल की हड़ताल सबसे सफल रही। 1921-25 के पाँच वर्षों में हड़ताल और तालाबंदी की संख्या 1,154 रही। 1926-29 के चार वर्षों में 601 हड़तालें व तालाबन्दी हुई। 1929 में आए वैश्विक मंदी के कारण भारत में बहुत सारी फैक्ट्रियाँ बन्द हो गयी जिसके कारण हजारों मजदूर बेरोजगार हो गए। इसी समय ब्रिटिश सरकार ने *रायल कमीशन आन लेबर* की नियुक्ति की। कांग्रेस के उदारवादी नेता इसके समर्थन के पक्ष में थे परन्तु उग्रवादी इसका बहिष्कार करना चाहते थे। इसी कारण उदारवादियों ने एटक से रिश्ता तोड़कर 1929 में *इंडियन ट्रेड यूनियन [illegible]डरेशन* की स्थापना की। जवाहरलाल नेहरू इस समय एटक के अध्यक्ष थे। 1931 में जब मिल मालिकों ने हजारों मजदूरों को नौकरी से निकाल दिया तब कम्युनिस्टों ने एटक से रिश्ता तोड़कर रेड *ट्रेड यूनियन कांग्रेस* की स्थापना की और मजदूरों को संगठित किया। 1936 से 1939 के बीच, चूँकि इस समय कम्युनिस्ट भी कांग्रेस में शामिल होकर काम कर रहे थे, सभी संगठन फिर से एटक में शामिल हो गए। अक्टूबर 1939 में बंबई में 90 हजार मजदूरों की राजनीतिक हड़ताल साम्राज्यवादी युद्ध तथा दमन के विरोध में हुई। 1946-47 में 3,400 के लगभग हड़तालें व तालाबन्दी हुई। इनमें 38 लाख के करीब मजदूरों ने हिस्सा लिया।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक विभिन्नताएँ होने के बावजूद भारतीय किसानों की समस्या एक जैसी थी- अत्यधिक कर, जमींदारों द्वारा शोषण, बेगारी, नजराना इत्यादि। इसलिए 1920 और 1930 के दशक में कई महत्वपूर्ण किसान आन्दोलन हुए। उत्तर प्रदेश में बाबा रामचन्द्र ने जमींदारों के विरूद्ध अवध के किसानों को संगठित किया। बिहार में स्वामी विद्दानंद ने किसानों को संगठित कर आन्दोलन चलाया। 1928 में बारदोली में बल्लभ भाई पटेल ने किसानों के पक्ष से सत्याग्रह किया। 1931 में किसानों ने उत्तर प्रदेश में लगानबंदी आन्दोलन चलाया। मद्रास में आन्ध्र रैयत एसोसिएशन के नेतृत्व में किसानों ने आन्दोलन चलाया।

1920 तक अनेक प्रान्तीय किसान सभा का संगठन हो चुका था। परन्तु समाजवादियों और कम्युनिस्टों ने किसानों के एक केन्द्रीय संगठन के लिए प्रयास किया और 1936 में अखिल भारतीय किसान सभा की स्थापना की गई। अनेक समाजवादी जैसे, एन. जी. रंगा, नरेन्द्र देव, इंदुलाल यागनिक, स्वामी सहजानंद, अखिल भारतीय किसान सभा के नेता थे। अखिल भारतीय किसान सभा ने किसानों की समस्या की तरफ विशेष ध्यान दिया तथा इसे दूर करने के लिए अथक प्रयास किया। कांग्रेस के दक्षिणपंथी नेता किसानों द्वारा किए जा रहे जमींदारों के विरोध से सहमत नहीं थे। उन्हें समाज के सभी वर्गों को, जमींदारों तथा पूँजीपतियों को भी, साथ लेकर चलना होता था इसलिए वे किसान आन्दोलन को समर्थन नहीं देते थे। इसलिए अखिल भारतीय किसान सभा ने

कांग्रेस से अलग होकर संघर्ष करने का निर्णय लिया। इसके बावजूद भी किसान सभा ने कांग्रेस के विरूद्ध कार्य नहीं किया वरन् वे राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस के महत्व को भली-भांति समझते थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

1. भारत मे किसान-मजदूर आंदोलन विषय में अपने विचार निम्नांकित पंक्तियों में लिखिये –

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

3.8 सारांश

सारांशतः हम कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में वामपंथी विचारधारा की अपनी एक अलग एवं महत्वपूर्ण भूमिका रही है। किसानों और श्रमिकों के लम्बे समय के शोषण के फलस्वरूप वह परिस्थिति पैदा हुई जिसके कारण भारतीय राजनीति में समाजवाद का प्रवेश हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा का निरंतर एवं क्रमिक विकास हुआ। समाजवादी विचारधारा के प्रसार के कारण ही राष्ट्रीय आन्दोलन में किसानों तथा मजदूरों के एक बहुत बड़े समुदाय की संलिप्तता संभव हो पायी। कम्युनिस्टों, नेहरू, सुभाष तथा कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नेताओं के अथक प्रयास से कांग्रेस के नीति में परिवर्तन हुआ और राष्ट्रीय आन्दोलन का क्षेत्र व्यापक बन गया। वामपंथी विचारधारा ने श्रमिकों तथा किसानों की समस्या को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ जोड़कर न केवल इस आन्दोलन को ठोस आधार

प्रदान किया वरन् इसकी रफ्तार को भी गती प्रदान की। किसान, मजदूर, छात्र व लेखकों के संगठन वामपंथ की उपलब्धि है।

3.9 पारिभाषिक शब्दावली

दक्षिणपंथी : मूलत: फ्रांस की क्रांति के समय राजा के समर्थकों को दक्षिणपंथी कहा गया।

वामपंथी : मूलत: फ्रांस की क्रांति के समय राजा के विरोधियों को वामपंथी कहा गया। कालान्तर में समाजवाद तथा

साम्यवाद के उत्थान के पश्चात वामपंथी शब्द का प्रयोग इनके लिए होने लगा।

3.10 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

उत्तर के लिए इकाई का मनोयोग से अध्ययन कीजिए।

3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रोवर, बी.एल. एवं यशपाल (1981), आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन (1707 से वर्तमान समय तक), एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।

चन्द्र, बिपिन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष.

चन्द्र, बिपिन, आधुनिक भारत, एन.सी.ई.आर.टी.

बंद्योपाध्याय, शेखर (2007), प्लासी से विभाजन तक, ओरिएन्ट लॉंग्मैन, नई दिल्ली।

सरकार, सुमित (1993), आधुनिक भारतः1885-1947, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा की क्या भूमिका रही?

2. वामपंथी विचारधारा ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को किस सीमा तक प्रभावित किया?

इकाई चार

देश का विभाजन और स्वतन्त्र भारत की चुनौतियां

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 देश का विभाजन
4.4 स्वतंत्र भारत की चुनौतियाँ
4.4.1 संविधान का निर्माण
4.4.2 शरणार्थियों का पुनर्वास
4.4.3 भारतीय रियासतों का विलय
4.4.4 भाषा-विवाद
4.4.5 आर्थिक नीति का निर्माण
4.5 सारांश
4.6 तकनीकी शब्दावली
4.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

15 अगस्त 1947 को भारत को ब्रिटिश शासन से स्वतंत्रता प्राप्त हो गई. भारत की स्वतंत्रता का जो संघर्ष 1857 के विद्रोहियों ने छेड़ा था और उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशकों से राष्ट्रवादी जिसके लिये अनवरत संघर्ष चला रहे थे, यह उसकी परिणति थी. आज़ादी का सपना केवल पढ़े-लिखे मध्यवर्ग का सपना नहीं था, बल्कि भारत के गाँवों में रहने वाले करोड़ो किसानों, खेतों एवं उद्योगों में काम करने वाले मजदूरों, औपनिवेशिक शोषण से क्षुब्द आदिवासियों, सदियों से शोषित दलित वर्गों, हिन्दुओं-मुसलमानों तथा दूसरे अनेक वर्गों एवं समूहों ने स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किये थे. ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण ने भारत के सभी वर्गों एवं समूहों को प्रभावित किया था. साथ ही, आधुनिक शिक्षा एवं आधुनिक संस्थाओं (विधायिका, न्यायपालिका, प्रेस आदि) ने

भारतीयों में आधुनिक चेतना जगाने में अहम भूमिका निभाई थी. इस दोहरी प्रक्रिया ने जहाँ स्वतंत्रता के संघर्ष को ऊर्जा दी, वहीं विभिन्न वर्गों को राजनीतिक हिस्सेदारी की मांग के लिये प्रेरित किया. 1857 के बाद से ही ब्रिटिश राज ने 'बाँटो और राज करो' की रणनीति अपना ली थी. बीसवीं सदी में अधिक स्पष्ट रूप से अंग्रेज़ सरकार ने पहले मुसलमानों, फिर दलितों को राष्ट्रीय आन्दोलन से पृथक रखने के भरसक प्रयास किये. ये प्रयास इन वर्गों को राजनीतिक संस्थाओं में पृथक निर्वाचन का अधिकार देकर किये जा रहे थे. फलत: जहाँ एक ओर राष्ट्रीय आन्दोलन में विभिन्न समूहों की भागीदारी थी, वहीं ये समूह आपस मे सतत संघर्षरत भी थे. हिन्दुओं और मुसलमानों के राजनीतिक वर्चस्व के ऎसे संघर्षों ने परतंत्र भारत में ही साम्प्रदायिकता की भावना को जन्म दिया. भारत का विभाजन इस साम्प्रदायिक भावना की अभिव्यक्ति का ही एक परिणाम था. परंतु, साम्प्रदायिक समस्या का समाधान नही हो सका और स्वतंत्र भारत की अनेक चुनौतियों में यह एक प्रमुख समस्या बनी रही. जातिवाद, भाषावाद एवं क्षेत्रवाद स्वतंत्र भारत की अन्य समस्यायें थी, जो पहचान की राजनीति से जुड़ी थीं. फिर भी, सबसे महत्वपूर्ण चुनौती थी भारत का आर्थिक पुनर्निमाण.

4.2 उद्देश्य

इस अध्याय में सर्वप्रथम हम भारत के विभाजन की चर्चा करेंगे. ब्रिटिश भारत का विभाजन जहाँ एक ओर अंग्रेज़ी सरकार की विभाजनकारी नीति का परिणाम था, वहीं साम्प्रदायिकता की चरम अभिव्यक्ति भी था. फिर भी, इतिहासकार इस बात पर एकमत नही हैं कि भारत के विभाजन को टाला जा सकता था या नहीं. 1940 के दशक के तीव्र राजनीतिक घटनाक्रम में, जिसकी चर्चा पिछले अध्यायों में हो चुकी है, विभाजन की प्रक्रिया को ढूँढा जा सकता है. निश्चय ही, भारत में विभाजन के तत्कालीन एवं दूरगामी परिणाम रहे. इसने बड़े पैमाने पर विस्थापन को जन्म दिया. आज़ाद भारत में शरणार्थियों को आवास एवं रोज़गार उपलब्ध कराना एक मुख्य समस्या बन गया. महिलाओं, निम्नजातियों और आदिवासियों को स्वतंत्र भारत मे वास्तविक आज़ादी दिलाना भी कम चुनौतीपूर्ण नहीं था. स्वतंत्र भारत मे भाषावाद एवं क्षेत्रवाद जैसी नई समस्याओं ने भी जन्म लिया. भारत के अर्थतंत्र को सही दिशा देना सबसे ज्यादा ज़रूरी था ताकि स्वतंत्र भारत का आर्थिक विकास किया जा सके. इस अध्याय में हम इनमें से कुछ समस्याओं एवं इनके समाधान के लिये किये गये प्रयासों को पढेंगे.

4.3 देश का विभाजन

भारत में आज़ादी की सुबह देश विभाजन की रात्रिबेला साथ लेकर आई. प्रसिद्ध वामपंथी कवि फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ने इस दर्द को शब्दों में इसतरह अभिव्यक्त किया – ***"ये दाग़-दाग़ उजाला ये शबगज़ीदा सहर, वो इंतेज़ार था जिसका ये वो सहर तो नही."*** निश्चय ही भारत की स्वतंत्रता की जो कल्पना राष्ट्रवादियों ने की थी, विभाजन की त्रासदी ने उसको गहरे से प्रभावित किया था. राष्ट्रवादी स्वतंत्रता संघर्ष को एक दिशा एवं रणनीति देने वाले महात्मा गाँधी बंगाल के नोआखली में भीषण दंगों को शांत करने के प्रयास मे आमरण अनशन कर रहे थे. वहीं उनके राजनीतिक उत्तराधिकारी जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्र भारत को एक धर्मनिरपेक्ष देश बनाने के लिये अपनी ही पार्टी के लोगों को समझाने का प्रयास कर रहे थे. भीषण दंगों का आरम्भ 16 अगस्त 1946 को कलकत्ता से हुआ, जिस दिन मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्यवाही दिवस' घोषित कर रखा था. सितम्बर में बम्बई, अक्टूबर मे पूर्वी बंगाल और बिहार भी दंगे की चपेट में आ गये. नवम्बर में उत्तर प्रदेश के गढ़मुक्तेश्वर में भीषण दंगे हुए. मार्च 1947 में पंजाब प्रांत, जहाँ अभी तक ख़िज्र हयात खान और उनकी यूनियनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मिली-जुली सरकार पंजाब के विभाजन के विरूद्ध एक आशा थी, दंगों की आग में झुलस गया. मार्च के आरम्भ में यूनियनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में कांग्रेस और अकालियों के सहयोग से बनी मिली-जुली सरकार का पतन पंजाब में मुस्लिम लीग और उसकी विभाजन की मांग की सबसे बड़ी सफलता थी. अभी एक पखवाड़ा पहले ही ब्रिटिश प्रधानमंत्री लार्ड एटली ने हाउस ऑफ कॉमन्स में बोलते हुए जून 1948 तक सत्ता-हस्तांतरण की बात की थी. इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये प्रधानमंत्री ने लार्ड वेवेल के स्थान पर लार्ड माउण्टबेटन को भारत का नया गवर्नर जनरल बनाने की घोषणा भी की थी. माउण्टबेटन ने भारत आने के पश्चात तुरंत ही भारतीय नेताओं से बातचीत आरम्भ कर दी. 24 मार्च से 6 मई 1947 तक चली चर्चाओं के बाद 'प्लान बाल्कन' नाम से जो योजना माउण्टबेटन ने रखी, उसमें भारत के असंख्य विभाजनो की सम्भावना छिपी थी. इसमें सत्ता का हस्तातरण विभिन्न प्रांतों को करने का खतरनाक सुझाव शामिल था. जवाहरलाल नेहरु के तीखे विरोध पर इस योजना को त्याग दिया गया. वी.पी. मेनन एवं सरदार पटेल ने वैकल्पिक प्रस्ताव दिया, जिसमें भारत और पाकिस्तान की दो केन्द्रीय सरकारों को सत्ता हस्तांतरण किया जाना था. इसी प्रस्ताव पर विभिन्न दलों – कांग्रेस, लीग, अकाली – के मध्य सहमति बन गई और 2 जून को भारत विभाजन को संस्तुति मिल गई. परंतु विभाजन ने जनसंख्या विस्थापन की जिस समस्या को जन्म दिया उसकी कल्पना राष्ट्रीय नेताओं ने भी नहीं की थी. आगे हम स्वतंत्र भारत की चुनौतियों में इसकी भी चर्चा करेंगे.

4.4 स्वतंत्र भारत की चुनौतियाँ

जैसा कि हम ऊपर कह चुके है, राष्ट्रवादी स्वतंत्रता संघर्ष भारत के विभिन्न वर्गों का मिलाजुला एवं सम्मिलित संघर्ष था. फिर भी यह मानना भूल होगी कि भारत का एक राष्ट्र के रूप में

निर्माण हो चुका था. स्वतंत्रता संघर्ष ने राष्ट्र बनने की प्रक्रिया को तेज तो किया था परंतु यह प्रक्रिया अभी भी अधूरी ही थी. अत: स्वतंत्र भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती राष्ट्र निर्माण की थी. एक राष्ट्र का निर्माण कुछ बुनियादों पर हो सकता था जिन्हें उस राष्ट्र का भावी आधार बनाया जा सके. अत: सबसे पहली तात्कालिक आवश्यकता थी – एक संविधान का निर्माण, जिसमें भावी राष्ट्र की दिशा दी जाये. इसमें राष्ट्रीय आन्दोलन के उन उसूलों को शामिल करना आवश्यक था जिनके लिये ये संघर्ष किया गया था. अत: लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता तथा सामाजिक न्याय जैसे सिद्धांतों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक था. विभाजन से उत्पन्न विस्थापितों के पुनर्वासन की समस्या भी तात्कालिक समस्या थी, जिसका हल शीघ्र निकाला जाना आवश्यक था. औपनिवेशिक काल में भारत ब्रिटिश भारत और रियासतों में विभक्त था. एक राष्ट्र एवं संघ के रूप में भारत कि निर्माण के लिये रियासतों का विलय आवश्यक था. परंतु, भारत के राष्ट्रीय एकीकरण को बड़ी चुनौती रियासतों ने नहीं बल्कि, 1950 के दशक में भाषाई राज्यों की मांग ने दी. भाषाई आधार पर भारत का पुनर्गठन राष्ट्र निर्माण का एक अहम चरण था. फिर भी, भाषावाद केवल क्षेत्रीय समस्या नही थी जैसा कि अक्सर मान लिया जाता है. राष्ट्रभाषा के सवाल ने भी भारतीय राष्ट्र के विशिष्ट चरित्र को स्पष्ट किया. भाषावाद के अलावा क्षेत्रवाद भी एक बड़ी चुनौती थी, जिससे नवोदित राष्ट्र को निपटना पड़ा. पंजाब एवं मद्रास प्रांत ने यदि राष्ट्र के केन्द्रीकरण को चुनौती दी, तो कश्मीर एवं नागालैण्ड की समस्यायें कही अधिक पेचीदा एवं दीर्घकालिक साबित हुई. सबसे महत्वपूर्ण दीर्घकालिक चुनौती थी एक व्यापक अर्थनीति का निर्माण, ताकि सदियों के औपनिवेशिक शोषण से त्रस्त देश को आर्थिक विकास की दिशा दी जा सके. स्वतंत्र भारत को अपनी एक स्वतंत्र विदेश नीति भी निर्धारित करनी थी ताकि राष्ट्रों के संघ में भारतीय राष्ट्र की अपनी पहचान स्थापित हो सके. आगे हम इन सारी चुनौतियों एवं इनके समाधान के लिये किये गये प्रयासों का अध्ययन करेंगे.

4.4.1 संविधान का निर्माण

भारतीय संविधान एवं इसके निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन करने वाले विद्वान ग्रेंविले ऑस्टिन ने भारतीय संविधान को 'राष्ट्र की नींव की ईंट' कहा है. उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि संविधान सभा ने अधिकतर प्रावधान व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात एवं आपसी सहमति विकसित कर बनाये. उन्होनें यह भी पाया कि विभिन्न विचारों, जिनमें अक्सर विरोधी तर्क भी होते थे, यथासम्भव समाहित किया गया. इसप्रकार भारत एक ऐसा संविधान बनाने मे सफल रहा जिसके आधार पर राष्ट्र का गठन हो सका.

भारतीय संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू कर दिया गया. भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में इस तिथी का महत्वपूर्ण स्थान था. 1950 से ठीक 20 वर्ष पहले परतंत्र भारत ने पहली बार 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस के रूप मे मनाया था. इससे कुछ माह पूर्व ही 31 दिसम्बर 1929 को जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता में लाहौर में अखिल भारतीय कांग्रेस ने पहली बार पूर्ण स्वाधीनता

की मांग रखी थी, और अगली 26 जनवरी को स्वतंत्रता दिवस मनाने की घोषणा की थी. तभी से यह दिन स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जाता था. जब 1950 में संविधान लागू कर दिया गया तो, 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस के रूप में मनाने लगे. यह एक प्रकार से स्वतंत्रता आन्दोलन को नवोदित गणतंत्र द्वारा दी गई मान्यता थी. परंतु, स्वाधीनता संघर्ष का प्रभाव गणतंत्र की तिथी निर्धारण तक सीमित ही नहीं था, बल्कि संविधान के प्रावधानों में राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल्यों को समाहित किया गया था.

राष्ट्रवादी आन्दोलन के दौरान ही स्वतंत्र भारत के लिये गणतांत्रिक लोकतंत्र का विचार विकसित हुआ था. 1920 के दशक से ही कांग्रेस वयस्क मताधिकार की मांग भी करती रही थी. फिर भी, भारत में जिस संविधान सभा का गठन किया गया था उसका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर नहीं हुआ था. बल्कि, भारतीय संविधान सभा कैबिनेट मिशन के प्रस्तावों के आधार पर चुनी गयी थी. इसका यह अर्थ भी नही था कि सभा भारतीयों का प्रतिनिधित्व नही करती थी. इसके विपरीत संविधान सभा में कांग्रेस सदस्यों का ही बहुमत था, जिनमें से अधिकांश राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता थे. संविधान सभा में मुस्लिम एवं सिक्ख सदस्यों को अल्पसंख्यक के तहत विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त था. दूसरे कमजोर वर्गों को प्रतिनिधित्व देने के लिये कांग्रेस ने अपनी लिस्ट में अनुसूचित जातियों, आदिवासियों, महिलाओं, ऐंग्लो-इंडियनों आदि को शामिल करने का प्रयास किया.

संविधान सभा का पहला अधिवेशन 9 दिसम्बर 1946 को आरम्भ हुआ. मुस्लिम लीग के सदस्यों ने इस अधिवेशन का बहिष्कार किया, अत: इसमें 207 सदस्यों ने ही भाग लिया. 11 दिसम्बर को डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को सभा का अध्यक्ष चुना गया और 13 दिसम्बर को जवाहरलाल नेहरु ने उद्देश्य प्रस्ताव रखा. उद्देश्य प्रस्ताव एक प्रकार से भारतीय संविधान के लिये दिशा-निर्देश था. आजादी के पश्चात संविधान निर्माण के कार्य को विभिन्न कमेटियों को सौंप दिया गया. इसमें सबसे महत्वपूर्ण थी – डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नेतृत्व में मसविदा निर्माण की कमेटी. इस कमेटी ने ही संविधान के मूल प्रस्तावों को तैयार किया. इन प्रस्तावों की एक-एक धारा पर व्यापक बहस हुई. अंतत: नवम्बर 1949 तक भारतीय संविधान बन कर तैयार हो गया.

भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता केन्द्र और राज्यों के मध्य शक्ति का संतुलन था. भारतीय संविधान को न तो पूरी तरह संघीय कहा जा सकता था और न ही केन्द्रीकृत. ग्रेंविले ऑस्टिन का विचार है कि 'सभा के सदस्यों ने अमेरिका तथा दूसरे महत्वपूर्ण देशों के संघीय संविधानों का अध्ययन करने के पश्चात संघीय सिद्धांत को भारत के अनुकूल नही माना. अत: भारत में जो संघवाद उभरा वह भारतीय आवश्यकताओं के अनुकूल था.' फिर भी, इसका यह अर्थ नही था कि प्रांतीय राज्य भारत में किसी तरह से कमजोर थे. बल्कि, विशेष परिस्थितियों – यथा आपातकाल – के अतिरिक्त केन्द्र को राज्य के मामलों मे हस्तक्षेप का अधिकार नही है. संविधान की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता – मूल अधिकारों को दिया जाना था. प्रत्येक व्यक्ति के कुछ मूलभूत

अधिकार है यह विचार योरोप में आधुनिकता, जनतंत्र एवं स्वतंत्रता जैसे विचारों के साथ ही जन्मा था. भारत में आरम्भ से ही राष्ट्रवादियों ने इनकी मांग रखी थी. 1928 की मोतीलाल नेहरु रिपोर्ट में भी मूल अधिकारों रखा गया था. संविधान नें सात भागों में इन अधिकारों को रखा – समानता का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार, शोषण के विरुद्ध अधिकार तथा संविधानिक उपचार. इन अधिकारों के द्वारा सभी भारतीय नागरिकों को एकसमान अधिकार तो प्रदान किये गये, साथ ही, अल्पसंख्यकों, दलितों एवं आदिवासियों को राज्य अथवा दूसरे नागरिकों द्वारा भेदभाव या शोषण से मुक्त रखने का प्रयास भी किया गया. इन अधिकारों का उद्देश्य भारतीय नागरिकों को केवल समानता देना नही, अपितु उनके मध्य समानता का विकास करना भी था. भारतीय संविधान की एक अन्य मूल विशेषता धर्मनिरपेक्षता भी थी. राष्ट्रीय आन्दोलन का एक बड़ा लक्ष्य साम्प्रदायिकता से संघर्ष था. अत: धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीय आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण तत्व था. हमें यह मानना होगा कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता भी पश्चिमी देशों में धर्मनिरपेक्षता के विचार से पर्याप्त भिन्न है. भारतीय संविधान राज्य को धर्मों के मध्य भेद करने से रोकता है. साथ ही, भारत में विभिन्न धर्मों के अपने निजी कानून हैं. हलांकि, भारत जैसी सांस्कृतिक बहुलता के विशिष्ट देश में ये अधिकार देना वास्तव में सांस्कृतिक बहुलता को मान्यता देना ही है. अत: भारत में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ धर्म के आधार पर भेदभाव पर रोक के साथ-साथ धार्मिक स्वतंत्रता देना भी है. कुल मिलाकर भारतीय संविधान एक व्यापक एवं लचीला संविधान है. संविधान सभा के सदस्यों ने भावी भारत के संवैधानिक विकास के लिये संसद को पर्याप्त अधिकार दिये हैं.

4.4.2 शरणार्थियों का पुनर्वास

स्वतंत्र भारत की सबसे महत्वपूर्ण तात्कालिक समस्यायें थी – भारतीय रियासतों का संघ में विलय एवं शरणार्थियों का पुनर्वास. इन दोनों से ही राष्टीय एकता को खतरा था. विभाजन की त्रासदी ने एक बड़ी संख्या में लोगों को बेघर कर दिया था. भारत में तकरीबन साठ लाख शरणार्थी पाकिस्तान में अपना सबकुछ छोड़कर आये हुए थे. इसके अतिरिक्त साम्प्रदायिक दंगों ने भी लोगों को बेघर कर दिया था. 1947 में पश्चिमी पाकिस्तान से आने वाले पंजाबी और सिन्धी लोगों की संख्या पूर्वी पाकिस्तान से आये बंगाली लोगों की संख्या से कही अधिक थी. उनकी समस्यायें भी कहीं जटिल थी. जहाँ पंजाब से शरणार्थी एक ही बार भारत विभाजन के समय आ गये, वहीं पूर्वी बंगाल से विस्थापन तुरंत नही हुआ और ये कई वर्षों तक लगातार चलता रहा. अत: दोनों तरफ से आये शरणार्थियों की समस्यायें एकदम भिन्न थीं. पश्चिमी पाकिस्तान से आयी जनसंख्या को 1951 तक पंजाब, दिल्ली, पश्चिमीं उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में बसा दिया गया. इनमें से कई को बसाने के लिये भारत से पाकिस्तान गये मुसलमानों की सम्पत्ति एवं भूमि देकर बसाया गया. शरणार्थियों द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति को लेकर भारत एवं पाकिस्तान की सरकारों ने एक समझौता भी किया, जिसके तहत इन शरणार्थियों को छोड़ी गई सम्पत्ति पर बसाया गया. परंतु, पूर्वी बंगाल से लगातार आ रहे

शरणार्थियों की समस्या एकदम भिन्न थी. एक तो भाषा के कारण उन्हे बंगाल के अलावा केवल आसाम या त्रिपुरा में ही बसाया जा सकता था. दूसरे, बंगाल से शरणार्थी एक झटके में न आकर 1971 तक लगातार आते रहे. अत: उन्हें बसाने के लिये कोई कारगर योजना नही थी और अधिकांश शरणार्थी शहरों में बस गये, जिससे वे निम्नवर्गीय मजदूर बनने के लिये मजबूर थे. साम्प्रदायिक दंगों में विस्थापित हुए लोगों की स्थिति तो और भी दयनीय थी. प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु ही उनके लिये एकमात्र आशा थे. सरकार की कोशिश उन्हें वापस उन्ही के घरों में बसाने की रही. कुल मिलाकर 1950 के दशक में विस्थापितों की समस्या से निपटा जा चुका था.

4.4.3 भारतीय रियासतों का विलय

औपनिवेशिक भारत वस्तुत: ब्रिटिश भारत एवं रियासतों में बटा हुआ था. इन रियासतों को कहने के लिये तो स्वायतता प्राप्त थी, परंतु वे ब्रिटिश सर्वोचता (पैरामॉउण्टेसी) के अंतर्गत आती थी. राष्ट्रवादी आन्दोलन के प्रसार के साथ रियासतों की जनता ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया था. इन रियासतों की जनता का एक बड़ा हिस्सा जनतंत्र और राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित था. फिर रियासतों को स्वतंत्र छोड़ देने का अर्थ था भारत की राष्ट्रीय एकता को सीधा खतरा. ये रियासतें राष्ट्र के अन्दर राष्ट्र होती. अत: 1947 में ही भारत सरकार के अंतर्गत एक रियासत विभाग का गठन किया गया तथा इसका कार्यभार वल्लभभाई पटेल, जो गृहमंत्री भी थे, को सौंप दिया गया. राजनयिक रूप से कुशल वी. पी. मेनन को इस विभाग के सचिव की जिम्मेदारी दी गई. पटेल एवं मेनन ने प्रलोभन एवं दबाव की दोहरी नीति चलाई. प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु पहले से ही रियासतों एवं राजाओं के विरोधी माने जाते थे. उन्होंने 1946 में ही ऑल इंडिया स्टेट पीपुल्स कॉनफ्रेंस की अध्यक्षता की थी. अत: भारतीय रियासतों पर विलय के लिये राजनीतिक एवं वैचारिक दबाव था. पहला राज्य बीकानेर था जिसनें पटेल एवं मेनन के आह्वान पर साकारात्मक प्रतिक्रिया दी. यही नही बीकानेर के राजा ने राजस्थान के दूसरे राजाओं से भी संविधान सभा में भाग लेने की अपील की थी. 9 जुलाई 1947 को जवाहरलाल नेहरु पटेल के साथ गवर्नर जनरल मॉउटबेटन से मिले. उसी दिन महात्मा ग़ाँधी ने भी मॉउटबेटन से भेंट की. इन राष्ट्रवादियों ने अपील की कि ब्रिटिश सरकार को भारतीय रियासतों की स्वतंत्रता के विचार को प्रोत्साहन नही देना चाहिये. अब ब्रिटिश सरकार भी कुछ हद तक भारतीय एकता के पक्ष में थी, ताकि भारत में ब्रिटिश निवेशों को सुरक्षित रखा जा सके. इस चौतरफा दबाव के फलस्वरूप 15 अगस्त 1947 के पूर्व ही अधिकांश भारतीय रियासतों ने भारत के साथ विलय के पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये. इसमें त्रावणकोर, भोपाल एवं जोधपुर का विलय सबसे चुनौती पूर्ण था. त्रावणकोर और भोपाल ने यथासंभव स्वतंत्र होने के प्रयास किये, वहीं जोधपुर के राजा ने तो पाकिस्तान में विलय पर भी विचार किया. 15 अगस्त के पश्चात केवल जूनागढ़, हैदराबाद एवं कश्मीर राज्य ही भारतीय संघ से बाहर थे. इन्हें कठोर कार्यवाही के पश्चात ही विलय किया जा सका. इस सारी प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण बात जनता का दबाव था, जो अधिकांशत: भारत के साथ विलय के पक्ष में थी. कुल मिलाकर देखा जाये तो रियासतों की ओर से

भारतीय संघ को जो चुनौती मिली वह उस खतरे से कहीं छोटी थी, जिसकी संभावना भाषाई राज्यों के गठन की मांग में छिपी थी. इस विषय पर हम आगे चर्चा करेंगे.

4.4.4 भाषा-विवाद

स्वतंत्रता के पश्चात भारत को सबसे बड़ी आंतरिक चुनौती भाषाई पहचान की राजनीति ने दी. हलांकि, साम्प्रदायिकता, जातिवाद एवं वर्गीय संघर्षों ने भी आज़ाद भारत को राजनीतिक आधार पर लगातार व्यस्त रखा. फिर भी, भाषावाद ही संभवत: अकेली ऐसी समस्या थी, जिसने राष्ट्रवादी नेतृत्व के लिये भारतीय विखण्डन की सम्भावना को पुन: उजागर कर दिया. स्वतंत्रता के पूर्व की भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग चल रही थी. इस मांग को महात्मा गाँधी एवं राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी समर्थन दिया था. यहाँ तक महात्मा गाँधी ने कांग्रेस की राज्य कमेटियों को भाषा के आधार पर पुनर्गठित भी किया था. आजादी के पश्चात आन्ध्र में भाषाई राज्य की मांग सबसे जोर से उठी. संविधान सभा ने इस विषय पर व्यापक विचार-विमर्श किया था, तथा भाषाई राज्यों के पुनर्गठन की मांग को टाल दिया था. प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु सैधांतिक रूप से तो भाषाई राज्यों के समर्थक थे, परंतु वे तत्कालीन भारत में इसे समयानुकूल नही मानते थे. 1952 के अंत में आन्ध्र में इस मांग को लेकर आमरण अनशन कर रहे पोट्टी श्रीरामालु की मृत्यु नें आन्ध्र में इस आन्दोलन को हवा दे दी. अंतत: भाषा के आधार पर पहला राज्य आन्ध्र प्रदेश अक्टूबर 1953 में अस्तित्व में आ गया. अब भाषाई राज्यों की मांग को रोक पाना असंभव था. 1953 में ही जस्टिस फ़ज़ल अली के नेतृत्व मे एक राज्य पुनर्गठन कमेटी गठित की गई. फ़ज़ल अली कमेटी ने थोड़ा संकोच के साथ भाषाई राज्यों के पुनर्गठन की संस्तुति कर दी. फिर भी, पंजाब एवं बम्बई प्रांत के पुनर्गठन की संस्तुति नही की गई थी. पंजाब के भाषा के आधार पर विभाजन का सवाल सामप्रदायिकता एवं क्षेत्रवादी भावना से भी जुड गया था. अत: नेहरु ने कभी इस राज्य के भाषाई पुनर्गठन की अनुमति नहीं दी. कालांतर में पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में पंजाब का विभाजन इंदिरा गाँधी की सरकार ने 1967 में किया. बम्बई को एक तीखे आन्दोलन के पश्चात महाराष्ट्र एवं गुजरात प्रांतों में बाटा गया. इन मांगों के दौरान जो आन्दोलन एवं संघर्ष हुए उन्होंने राष्ट्रीय नेतृत्व के समक्ष भारत के सैकडों विभाजन की संभावना पैदा कर दी थी. जवाहरलाल नेहरु की तीक्ष्ण बुद्धि एवं लचीला तथा लोकतांत्रिक तरीका भाषावाद की चुनौती से निपटने के लिये पर्याप्त कारगर साबित हुआ.

भाषा की समस्या केवल भाषाई राज्यों के पुनर्गठन तक सीमित नही थी, बल्कि राष्ट्रभाषा के सवाल ने भी भारत के एक राष्ट्र के रूप में गठन को काफी गहरी चुनौती दी. राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ही हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने को लेकर व्यापक आन्दोलन एवं विचार-विमर्श हो रहा था. हिन्दी समर्थकों की एक लाबी संस्कृतनिष्ठ हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहती थी. वही महात्मा गाँधी एवं कांग्रेस ने हिन्दुस्तानी को अपना समर्थन दिया था. हिन्दुस्तानी के समर्थक एक सरल भाषा के पक्ष में थे, जिसे नागरी एवं उर्दू दोनों लिपियों मे लिखा जा सके. औपनिवेशिक भारत के विभाजन के पश्चात हिन्दी समर्थकों का पलड़ा भारी हो गया. अत: भारत की संविधान सभा

ने हिन्दी को राजभाषा के रूप में चुना. परंतु, यह भी स्वीकार किया गया कि अंग्रेज़ी अगले पन्द्रह वर्ष तक कामकाज की भाषा बनी रहेगी. एक और हिन्दी समर्थकों ने राजभाषा के नाम पर कृत्रिम एवं संस्कृतनिष्ठ हिन्दी प्रचारित करने की कोशिश की. वहीं दूसरी ओर अहिन्दी भाषी प्रदेशों की जनता ने हिन्दी का विरोध आरम्भ कर दिया. अंतत: 1959 आते-आते प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरु को संसद में आश्वासन देना पड़ा कि हिन्दी अहिन्दी भाषी जनता पर नही थोपी जायेगी. 1963 में इस आशय का एक विधेयक भी संसद में पास कर दिया गया. इसतरह अनऔपचारिक रूप से भारत ने राजकाज के लिये द्विभाषा नीति – हिन्दी और अंग्रेज़ी – अपना ली. इसतरह एक राष्ट्र की एक भाषा विकसित करने का सपना अधूरा रह गया. फिर भी, भारत का भाषा प्रयोग अपने आप में विशिष्ट रहा. भारत जैसे सांस्कृतिक बहुलता के देश में एक भाषा थोपने का प्रयास राष्ट्रीय एकता विकसित करने में बाधक हो सकता था. भले ही योरोप में एक राष्ट्रभाषा के विकास ने राष्ट्रीय एकता को समृध किया था, परंतु भारत में यह संभव नही था. इतिहास साक्षी है कि भारतीय भाषा प्रयोग भारतीय स्थिति के सर्वथा अनुकूल रहा है, और इससे भाषा-विवादों से निपटने में मदद ही मिली है.

4.4.5 आर्थिक नीति का निर्माण

राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान ही स्वतंत्र भारत की अर्थनीति की दिशा पर व्यापक चर्चा होती रही थी. नरमपंथी राष्ट्रवादी नेताओं ने जहाँ औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था की पोल खोली थी, वहीं उन्होंने भारत की समस्याओं का हल तीव्र औद्योगीकरण में ही खोजने की कोशिश की थी. बीसवीं सदी के आरम्भिक दशकों एवं बाद में महात्मा गाँधी के प्रभाव में स्वदेशी एवं आत्मनिर्भरता के विचारों ने भारतीयों को पर्याप्त आकर्षित किया था. 1930 के दशक से, जब भारतीय राजनीति में पहली बार सामाजवादी विचार प्रकट हुए, राज्य-प्रेरित तीव्र औद्योगिक विकास के विचार ने नेताओं को पभावित किया. फलस्वरूप, 1938 में ही जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में राष्ट्रीय योजना कमीशन का गठन किया गया. इस कमीशन का कार्य भारत में नियोजित आर्थिक विकास की योजना बनाना था. इसप्रकार स्वतंत्र भारत में भले ही भावी आर्थिक नीति को लेकर कुछ वैचारिक मतभेद थे, परंतु मूलभूत बातों पर सहमतियाँ भी थीं. इन सहमतियों में हम आत्मनिर्भरता के प्रयास, तीव्र औद्योगीकरण, विदेशी पूंजी के प्रभुत्व पर रोक तथा भूमिसुधार आदि को शामिल कर सकतें हैं.

आधुनिक अध्ययनों ने दिखाया है कि अट्ठाहरवीं सदी तक योरोप तथा एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था में अधिक अंतर नही था. अट्ठाहरवीं सदी के अंत में इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति एवं कालांतर में उन्नीसवीं सदी में योरोप के दूसरे देशों के मशीन आधारित तीव्र औद्योगिक विकास ने योरोप को आधुनिक पूंजीवाद एवं विकास के एक नये युग में पहुँचा दिया. इस दौरान भारत में औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का विकास हुआ. उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में भारत को इंग्लैण्ड में बने मशीनी माल का सुरक्षित बाज़ार बनाया गया. इससे न केवल भारत के परम्परागत उद्योग नष्ट हो गए, बल्कि कृषि के ढाँचें में ऐसे बदलाव आ गये कि इसी सदी के अंत तक भारत अकालों का देश बन

गया. बीसवीं सदी के विश्वयुद्धों नें भारतीय पूंजी एवं भारतीय पूंजीपतियों को विकास का अवसर दिया. फिर भी, भारतीय पूंजी इतनी विकसित नहीं थी, कि स्वतंत्र भारत में पूरी तरह से पूंजीवादी विकास का ढाँचा अपनाया जा सकता.

स्वतंत्र भारत गरीबी, अशिक्षा, तकनीकि शिक्षा के अभाव जैसी जिन अवस्थाओं में था, उनमें राज्य-नियोजित अर्थव्यवस्था की बड़ी भूमिका के माध्यम से ही औद्योगीकरण एवं विकास के सपने को पूरा किया जा सकता था. अत: नेहरु के नेतृत्व में स्वतंत्र भारत ने विकास का जो माडल अपनाया, उसे अर्थशास्त्रीयों नें "मिश्रित अर्थव्यवस्था" कहा है. इस माडल में जहाँ एक ओर देशी पूंजी के विकास को हतोत्साहित नहीं किया गया था, वहीं राज्य द्वारा नियोजित अर्थव्यवस्था पर काफी जोर था. बल्कि, हम कह सकते हैं कि मिश्रित अर्थव्यवस्था के इस माडल में समाजवादी एवं पूंजीवादी विचारों का समन्यवय किया गया था. जहाँ मूलभूत उद्योगों, जिन्हें भारी उद्योग भी कहा जाता है, को राज्य-नियंत्रित सार्वजनिक क्षेत्र में रखा गया था, वहीं अनेक उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन कि लिये व्यक्तिगत पूंजी को छूट दी गई थी. हलांकि, आवश्यक उपभोक्ता वस्तुओं एवं कुटीर उद्योंगों के विकास का ज़िम्मा भी सरकार ने लिया था. सार्वजनिक क्षेत्र में नियोजित विकास के लिये 15 मार्च 1950 को एक गैर-संवैधानिक संस्था के रूप में योजना आयोग का गठन किया गया था. इसप्रकार, एक ओर स्वतंत्र भारत में अनियंत्रित पूंजीवादी विकास को उचित नही माना गया था (वास्तव में, तब की दशाओं में बिना विदेशी पूंजी के इसकी संभावना भी नहीं थी), वहीं रूसी मार्क्सवादी माडल को भी नकार दिया गया था. लगभग भारत के साथ ही स्वतंत्र हुए दूसरे एशियाई देशों ने भारत से भिन्न विकास का रास्ता अपनाया. चीन ने निजी मार्क्सवादी ढंग से विकास किया है, वहीं दक्षिण-पूर्वी एशिया के दूसरे देशों ने उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर जोर दिया. इन दोनों ही प्रयोगों में भारत से कही अधिक तीव्र विकास के लक्षण देखे गये हैं. परंतु, हमें यह नही भूलना चाहिये कि भारत में विकास का जो माडल अपनाया गया, वह भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था से जुड़ा हुआ है. इस पूरे दौर में भारत लोकतंत्र बना रहा है, जबकि, अन्य देशों में लोकतांत्रिक स्वतंत्रता या तो बाधित रही, या विदेशी पूंजी ने सरकारी नीतियों को प्रभावित किया है. फिर, सार्वजनिक क्षेत्र में नियोजित अर्थव्यवस्था अपनाने से ही भारत उन मूलभूत उद्योंगों का विकास कर सका है, जो भारत के भावी आत्म-निर्भर विकास के लिये अनिवार्य थे. कुल मिलाकर नेहरूवादी आर्थिक ढाँचा अपनी सीमाओं के बावजूद भारतीय परिस्थियों के अनुकूल रहा है.

निम्नलिखित कथनों को पढ़कर सही और ग़लत का निशान लगाऐं –

1. ब्रिटिश प्रधानमंत्री लार्ड माउण्टबेटन ने हाउस ऑफ कॉमन्स में बोलते हुए जून 1948 तक सत्ता- हस्तांतरण की बात की थी.

2. 1947 में पंजाब प्रांत में ख़िज्र हयात खान और उनकी यूनियनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में मिली-जुली सरकार थी।

3. संविधान सभा का पहला अधिवेशन 9 दिसम्बर 1946 को आरम्भ हुआ था।

4. 15 अगस्त1947 के पश्चात केवल जूनागढ़, हैदराबाद एवं कश्मीर राज्य ही भारतीय संघ से बाहर थे.

5. भाषा के आधार पर पहला राज्य तमिलनाडु अस्तित्व में आया था।

नोट -**निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थान की पूर्ति करें।**

1. भीषण दंगों का आरम्भ ..... को कलकत्ता से हुआ, जिस दिन मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्यवाही दिवस' घोषित कर रखा था.

2. भारतीय संविधान ..... को लागू किया गया
3. 1953 में जस्टिस ..... के नेतृत्व मे एक राज्य पुनर्गठन कमेटी गठित की गई.

4. 1967 में पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में पंजाब का विभाजन ..... की सरकार ने किया.

5. 15 मार्च 1950 को एक गैर-संवैधानिक संस्था के रूप में .... आयोग का गठन किया गया था

4.5 सारांश

इस प्रकार आज़ाद भारत जहाँ पुराने समस्याओं – गरीबी, अल्पविकास, साम्प्रदायिकता, जातिवाद से संघर्ष करता रहा, वहीं उसे भाषावाद, क्षेत्रवाद जैसी नई समस्याओं का भी सामना करना पड़ा. जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में पहचान की राजनीति से निपटने की विशिष्ट शैली अपनाई गई. नेहरु ने सांस्कृतिक पहचानों को न केवल मान्यता दी, बल्कि इन पहचानों को राष्ट्रीय एकता के लिये खतरे के रूप में भी नही देखा. राष्ट्रीय एकता को सांस्कृतिक समरुपता की भाँति न देखकर 'बहुलता में एकता' के विचार के अंतर्गत देखा गया. सांस्कृतिक बहुलता और राष्ट्रीय एकता का यह विचार योरोप के राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रीय एकता के विचार से पर्याप्त भिन्न एवं विशिष्ट था. भारत के इस विचार नें क्षेत्रवादी, साम्प्रदायिक, भाषावादी राजनीति को कमजोर किया तथा एक राष्ट्र के रूप में भारत के गठन की प्रक्रिया को मजबूत किया.

भारतीय संविधान ने भी विभिन्न राजनीतिक आकांक्षाओं को लोकतांत्रिक ढंग से अभिव्यकत करने के अवसर प्रदान किये हैं. संवैधानिक लचीलेपन एवं समन्यवय के सिद्धांत ने विभिन्न गुटों एवं चेतनाओं की राजनीतिक महात्वाकांक्षा को नियंत्रित रखने में ही सहायता दी है. दलितों, अल्पसंख्यकों, आदिवासियों एवं दूसरे पिछड़े वर्गों के लिये व्यापक प्रावधान संविधान में थे. इन प्रावधानों ने इन वर्गों को राष्ट्रीय मुख्यधारा में लाने मे महति भूमिका अदा की है. महिलाओं को समानता एवं कानूनी अधिकार दिलाने में भी संविधान के प्रावधान सहायक रहे हैं फिर भी,

साम्प्रदायिक चेतना, जातिवादी वैमस्य, महिलाओं के अधिकारों की अनदेखी एवं शोषण के परम्पराओं को समाप्त कर पाना अभी संभव नहीं हो पाया है.

नेहरूवादी आर्थिक नीति जहाँ आरम्भिक धक्का देने मे कामयाब रही, वहीं तीव्र औद्योगीकरण एवं विकास का सपना अधूरा ही रहा है. 1990 तक आते-आते नेहरुवादी ढाँचे की सीमाएँ सामने आ गई. इस ढाँचे ने भारत में अतिआवश्यक संरचनात्मक आर्थिक सुधार तो किये, परंतु भारत में लाइसेंस-कोटा राज स्थापित कर दिया. 1990 के दशक के बाद के आर्थिक सुधारों पर अर्थशास्त्री अभी भी सहमत नहीं हैं. इन्होंने कुछ हद तक अमीर-गरीब के बीच आर्थिक भेद को बढ़ाने का काम ही किया है.

4.6 तकनीकी शब्दावली

सांस्कृतिक बहुलता – अनेक संस्कृतियों का होना

मिश्रित अर्थव्यवस्था – पूंजीवादी एवं समाजवादी व्यवस्था का मिला-जुला रूप

संस्कृतनिष्ठ हिन्दी – ऐसी हिन्दी जिसमें संस्कृत शब्दों की भरमार हो

लाइसेंस-कोटा राज – ऐसा शासन जिसमें वस्तुओं को प्राप्त करने में लाइसेंस और कोटा निर्धारित हो

नेहरूवादी – नेहरू जी के सिद्धान्तों के अनुरूप

4.7 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

इकाई 4.4.5 के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. सत्य
5. असत्य

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

1. 16 अगस्त 1946
2. 26 जनवरी 1950
3. फ़ज़ल अली
4. इंदिरा गाँधी
5. योजना

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

बिपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, संपादक, आज़ादी के बाद का भारत: 1947-2000. दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यांवय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002.

रामचन्द्र गुहा, इंडिया ऑफ्टर गाँधी: दी हिस्ट्री ऑफ दी वर्ड्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी. लन्दन: पिकाडोर-मैकमिलन, 2007.
सुनील खिलनानी, दी आइडिया ऑफ इंडिया. नई दिल्ली: पेंग्विन बुक्स इंडिया, 1999.
ग्रेंविले ऑस्टिन, दी इंडियन कॉनस्टीट्यूशन: कॉर्नर स्टोन ऑफ ए नेशन. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, फिफ्टींथ इम्प्रेशन, 2010.

मारिया मिश्रा, विष्णु'ज़ क्राउडेड टेम्पल: इंडिया सिंस दी ग्रेट रेबेलियन. लन्दन: ऐलेन लेन-पेंग्विन ग्रुप, 2007.
फ्रांसीने आर. फ्रैंकल, इंडियाज़ पॉलिटिकल इकॉनामी: 1947-77. दिल्ली.
सुगाता बोस एण्ड आइशा जलाल, मॉर्डन साउथ एशिया: हिस्ट्री, कल्चर, पॉलिटिकल इकॉनामी. दिल्ली: राउटलेज, सेकेंड एडीशन, 2004.

रॉबर्ट डी. किंग, नेहरु एण्ड दी लैन्गवेज पॉलिटिक्स इन इंडिया. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 1997

4.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बिपिन चन्द्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी, संपादक, आज़ादी के बाद का भारत: 1947-2000. दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यांवय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002.

रामचन्द्र गुहा, इंडिया ऑफ्टर गाँधी: दी हिस्ट्री ऑफ दी वर्ड्स लार्जेस्ट डेमोक्रेसी. लन्दन: पिकाडोर-मैकमिलन, 2007.
सुनील खिलनानी, दी आइडिया ऑफ इंडिया. नई दिल्ली: पेंग्विन बुक्स इंडिया, 1999.
ग्रेंविले ऑस्टिन, दी इंडियन कॉनस्टीट्यूशन: कॉर्नर स्टोन ऑफ ए नेशन. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, फिफ्टींथ इम्प्रेशन, 2010.

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वतंत्र भारत के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों एवं उनके समाधान हेतु किये गये प्रयासों पर चर्चा कीजिए।

ब्लाक छह- राष्ट्रवाद एवं सामाजिक वर्ग

इकाई एक- भू-स्वामी, पेशेवर और मध्य वर्ग

इकाई दो- किसान एवं श्रमिक वर्ग

इकाई तीन- जनजातियां एवं जनजातीय विद्रोह

इकाई चार- भारत में दलित आंदोलन

इकाई एक

भू–स्वामी, पेशेवर और मध्य वर्ग

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भूस्वामी
1.4 मध्यवर्ग
1.4.1 बुद्धिजीवी
1.4.2 पेशेवर वर्ग
1.4.3 पूंजीपति
1.5 सारांश
1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.9 पारिभाषिक शब्दावली
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

राष्ट्रवाद एवं राष्ट्रवादी विचारधारा निश्चय ही आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा की देन है. पूर्व–औपनिवेशिक भारत में हम राष्ट्रवाद की कल्पना नही कर सकते. फिर भी, भारतीय राष्ट्रवाद पाश्चात्य राष्ट्रवाद से सर्वथा भिन्न परिस्थितियों में उत्पन्न हुआ. आधुनिक योरोप में राष्ट्रवाद का जन्म उन आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों से जुड़ा हुआ था, जिन्हें हम आरम्भिक पूंजीवाद के रूप में पहचान सकते हैं. योरोप में वाणिज्यीकरण, रेनेसां, धर्मसुधार, समुद्री मार्गों की खोज, विज्ञान एवं धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के आरम्भ आदि जैसे परिवर्तनों के फलस्वरूप राष्ट्रवाद की विचारधारा का जन्म हुआ. यही परिवर्तन योरोप में पूंजीवाद के जन्म के लिये भी उत्तरदायी थे. इसके विपरीत भारत अट्ठारहवीं सदी में उपनिवेशवाद का शिकार हो गया. भारत में राष्ट्रवाद के विचार उन्नीसवीं सदी में अंग्रेज़ी शिक्षा के माध्यम से आये. अत: भारत में राष्ट्रवाद का उदय उपनिवेशवाद के विरोध में हुआ. आधुनिक विचारों से जागरुक भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग नें सबसे पहले उपनिवेशवाद का विरोध आरम्भ किया और राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रचार किया. भारत में राष्ट्रवाद के जन्म एवं उसके विकास के बारे में आप पिछले अध्यायों में पढ़ चुके हैं. इस ब्लाक में हम विभिन्न सामाजिक वर्गों में राष्ट्रवाद के प्रसार की चर्चा करेंगे. राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रभाव सर्वप्रथम पढ़े-लिखे मध्यवर्ग पर

पड़ा. इसी मध्यवर्ग को अक्सर भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग भी कहा जाता है, जो राष्ट्रवादी विचारधारा का वाहक भी था. परंतु, राष्ट्रवाद का प्रभाव अन्य भारतीय वर्गों पर भी पड़ा. भारतीय किसानों तथा पारम्परिक जमींदार वर्गों की उपनिवेशवाद-विरोध की एक परम्परा रही थी, जिसे सदैव राष्ट्रवादी विचारधारा के खांके में ही नही देखा जा सकता. परंतु, उन्नीसवीं सदी में राष्ट्रवाद के प्रसार ने इन वर्गों को भी प्रभावित किया. नवोदित भारतीय पूंजीपति एवं श्रमिक वर्ग भी राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रभाव से अछूते नहीं थे. इस अध्याय में हम ऐसे ही कुछ वर्गों का अध्ययन करेंगे.

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य कुछ प्रमुख भारतीय सामाजिक वर्गों पर राष्ट्रवाद के प्रभाव एवं प्रसार का अध्ययन करना है. हम जानते हैं कि राष्ट्रवाद की विचारधारा का प्रभाव सर्वप्रथम पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी मध्यवर्ग पर पड़ा. इसी वर्ग ने विभिन्न् संस्थाओं के माध्यम से राष्ट्रवाद का प्रचार किया. परंतु, दूसरे अनेक भारतीय समूहों में भी राष्ट्रवादी विचारों का जन्म हो रहा था. अक्सर यह माना गया है कि जमींदार एवं भूस्वामी वर्ग औपनिवेशिक शासन के अभिन्न अंग थे. कुछ हद यह बात ठीक भी है, परंतु हम पाते हैं कि बीसवीं शताब्दी तक आते-आते इस वर्ग में भी राष्ट्रीय जागरुकता आ रही थी. पेशेवर वर्गों में वकील, पत्रकार एवं शिक्षकों को शामिल किया जा सकता है. ये वर्ग भी राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित होने वाले पहले वर्ग थे. हम जानते हैं कि कांग्रेस की स्थापना एवं राष्ट्रीय आन्दोलन में इन वर्गों ने काफी अहम भूमिका का निर्वाहन किया. प्रकारांतर से देसी पूंजीपति वर्ग को भी मध्यवर्ग में शामिल किया जा सकता है. राष्ट्रीय आन्दोलन का गाँधीवादी युग आते-आते भारतीय पूंजीपतियों के एक वर्ग ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन का साथ देना आरम्भ कर दिया था. फिर भी, पूंजीपति एवं भूस्वामी वर्गों के बारे में हम निश्चित रूप से जानते हैं कि उपनिवेशवाद अथवा राष्ट्रवाद को उनका समर्थन उनके अपने हितों से ही अधिक प्रभावित था. इस अध्याय मे हम उपरोक्त सामाजिक वर्गों और राष्ट्रवाद से इसके सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे.

1.3 भूस्वामी वर्ग

अंग्रेजों के आगमन के समय भारत एक राष्ट्र नहीं था। राष्ट्रवाद आधुनिक युग की सोंच थी जिसका तत्कालीन भारत में अस्तित्व नहीं था। ब्रिटिश शासन काल में ही भारतीय राष्ट्रवाद का उदभव एवं विकास हुआ। हालांकि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वे सभी तत्व जो राष्ट्रवाद के जन्म के लिए उत्तरदायी होते हैं, उनका अस्तित्व भारत में पूर्व से ही विद्दमान था। परन्तु ब्रिटिश आलोचक इस तथ्य से इन्कार करते हैं। इस राष्ट्रवाद के उत्थान तथा विकास में कई वर्गों की महत्वपूर्ण भूमिका रही, जिसमें कि एक जमींदार वर्ग भी था। भारतीय इतिहास में राष्ट्रवाद के विकास में जमींदारों की भूमिका संदिग्ध तथा ढुलमूल रही है।

अंग्रेजों के आगमन के समय भारतीय समाज सामंतवादी व्यवस्था पर आधारित थी, परन्तु यह व्यवस्था यूरोपीय सामंतवाद से सर्वथा भिन्न थी। भारतीय सामंतवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यहाँ भूमि व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी। जमीन का मालिक न तो सामंत सरदार था न ही किसान। इसका मालिक ग्राम-समाज था। अंग्रेजों ने भारत में अपनी सत्ता को सुदृढ़ आधार प्रदान करने और अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने के लिए यहाँ की भूमि तथा राजस्व-व्यवस्था में आमूल-चूल परिवर्तन किया। उत्तरी भारत में उन्होंने स्थायी बन्दोवस्त लागू की जिससे जमींदारों का एक नया वर्ग पैदा हुआ। अब उन्होंने जमीन को व्यक्तिगत सम्पत्ति बना दिया जिसे जब चाहे बेचा, खरीदा या गिरवी रखा जा सकता था। इस व्यवस्था को कायम करने के पीछे अंग्रेजी हुकूमत का एक तो मुख्य उद्देश्य यह था कि वे लगान की एक निश्चित रकम समय पर प्राप्त कर सके तथा दूसरा मुख्य उद्देश्य था जनता तथा सरकार के बीच एक ऐसे वर्ग को स्थापित करना जो सरकार का वफादार हो। क्योंकि जमींदारों का गाँव के किसानों तथा मजदूरों से सीधा सम्बन्ध था। वे जनता के स्वाभाविक नेता समझे जाते थे। इसलिए प्रारम्भिक दौर में, जब ब्रिटिश सत्ता कमजोर थी, ये जमींदार रुपी नये नेता उपनिवेशी राजसत्ता के विश्वसनीय सहयोगी हो सकते थे। और इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्रिटिश शासन के मुसीबत के दिनों में इसी नवोदित जमींदार वर्ग ने आगे बढ़कर मदद किया और ब्रिटिश शासन को मजबूती प्रदान की।भारत में अपने शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए ब्रिटिश सरकार को बड़े पैमाने पर क्लर्कों एवं अन्य कर्मचारियों की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता की पूर्ति इंगलैंड से करना काफी महंगा साबित हो सकता था क्योंकि अंग्रेज कर्मचारियों को भारतीयों की तुलना में अधिक वेतन देना पड़ता था। दूसरी तरफ भारत में सस्ते कर्मचारी उपलब्ध थे परन्तु इस कार्य में अंग्रेजी भाषा एक बहुत बड़ी समस्या थी। अतः भारत से सस्ते क्लर्क एवं कर्मचारी प्राप्त करने के उद्देष्य से ब्रिटिश सरकार को यहाँ अंग्रेजी शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ी। इस कारण से भारतीय जमींदार वर्ग की शक्ति बढ़ने लगी। क्योंकि प्रारम्भ में, और आगे बहुत लम्बे समय तक, इन जमींदार वर्गों के बच्चे ही अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करते थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रारम्भ किए गए विद्यालयों में जमींदार वर्गों के बच्चों की संख्या सबसे अधिक थी। क्योंकि तत्कालीन समय में शिक्षा निःशुल्क नहीं थी और जनसाधारण की शक्ति से यह परे था कि वे अपने बच्चों को महंगी फीस देकर अंग्रेजी विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज सके। वैसे भी ब्रिटिश शासन की शिक्षा की नीति का उद्देश्य भी यही था कि पहले एक समूह को शिक्षित किया जाए फिर शिक्षा अपने आप वहाँ से नीचे की तरफ प्रसारित होती चली जाएगी। इसलिए प्रारम्भिक समय में जमींदार वर्गों के बच्चों ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करके डॉक्टर, वकील, शिक्षक जैसे महत्वपूर्ण पदों पर कब्जा जमा लिया। राष्ट्रवाद के प्रचार प्रसार में इन वर्गों की अहम भूमिका थी। सरकारी नौकरियों पर कब्जा जमाकर इस वर्ग ने आर्थिक प्रगति भी की। पहले तो इन लोगों ने इस पैसों को जमीन में लगाया फिर बाद में उद्योग-धन्धों में लगाया और समय के साथ-साथ ये बुर्जुआ वर्ग के प्रतिनिधि बन गए।

इन अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त किए भारतीयों में, जिनमें कि एक बड़ा तबका जमींदार वर्ग से भी था, भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को हीन समझना शुरू कर दिया और अंग्रेजी सभ्यता की तरफ

अधिक आकर्षित होने लगे। यह स्मरण करने लायक तथ्य है कि अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त अधिसंख्यक भारतीयों ने 1857 के क्रान्ति का विरोध किया था।

परन्तु क्रमशः जमींदार वर्ग दो वर्गों में बट गया। एक वर्ग तो वह था जो अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के बाद वाल्टेयर, रूसो, मैजिनी आदि के विचारों से अभिप्रेरित होकर राष्ट्रीयता के भाव से ओत-प्रोत होने लगे थे। दूसरा वर्ग वह था जो यह जानता था कि उनको जन्म देने वाला और उसका पोषक ब्रिटिश सरकार था। अतः यह स्वाभाविक ही था कि यह दूसरा जमींदार वर्ग ब्रिटिश सरकार के समर्थक बने रहे। क्योंकि ये वर्ग अच्छी तरह जानते थे कि जब तक ब्रिटिश सरकार का अस्तित्व है तब तक इनका भी अस्तित्व बना हुआ है। कांग्रेस के जन्म तथा विकास ने सिर्फ ब्रिटिश सरकार पर ही नहीं बल्कि भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों पर भी अलग-अलग प्रभाव डाला। कांग्रेस जैसे-जैसे प्रभावशाली एवं शक्तिशाली होता जा रहा था वैसे-वैसे सामंतवादी वर्ग तथा नए जमींदार वर्ग चाहे वे हिन्दू हो या मुसलमान भयभीत होने लगे। जैसे-जैसे कांग्रेस पर उदारवादियों की पकड़ मजबूत होने लगी, कांग्रेस उस राजनीतिक व्यवस्था के लिए खतरे के रूप में दिखाई पड़ने लगी जिस व्यवस्था ने इस जमींदार वर्ग को जन्म दिया और पाला-पोसा था। फलतः इस दूसरे वर्ग की ब्रिटिश सरकार से निकटता बढ़ती चली गयी।

ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित भू-राजस्व व्यवस्था में लगान की दर काफी ऊँची रखी गई थी जिसने किसानों तथा खेतिहर मजदूरों की कमर तोड़ दी। इस कारण से लगभग भारत के प्रत्येक क्षेत्रों में किसान विद्रोह हुए। परन्तु जमींदारों ने इन किसानों के हितों को कुचलने का प्रयास किया और सुधार के कोई उपाए नहीं किए। क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि वे ब्रिटिश सरकार द्वारा पदस्थापित किए गए हैं और प्रत्येक विद्रोह को दबाने में ब्रिटिश सरकार उनकी मदद करेंगे, और ऐसा हुआ भी। जहाँ कहीं भी किसान विद्रोह द्वारा जमींदार वर्गों के अस्तित्व को खतरा पहुँचा, ब्रिटिश सरकार ने सेना भेज कर विद्रोह का दमन किया। इस प्रकार जमींदार वर्ग ने प्रत्येक दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्रवाद को कुचलने का प्रयास किया।

प्रारम्भ में कांग्रेस पर जमींदारों, पूँजीपतियों तथा बुर्जुआ वर्ग का प्रभाव था। इसलिए कांग्रेस ने किसानों तथा मजदूरों के हितों को अनदेखा किया और कभी भी उनके हितों की रक्षा के लिए खुलकर सामने नहीं आए। परन्तु 1930 के दशक में, जब कांग्रेस पर समाजवादियों की पकड़ मजबूत हुई तो किसानों और मजदूरों के हितों के लिए अनेक प्रयास किए गए। उस समय जमींदार, पूँजीपति तथा बुर्जुआ वर्ग कांग्रेस के दूसरे खेमें में खड़े पाए गए। इस वर्ग ने भारतीय राष्ट्रवाद को समर्थन अपने आवश्यकतानुसार ही दिया। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में इस वर्ग की भूमिका वहीं महत्वपूर्ण होती थी जहाँ इनके हितों का पोषण होता था। जैसे 1857 की क्रान्ति में अवध के उन जमींदारों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था जिनकी जमींदारी अंग्रेज सरकार ने छीन लिया था या भविष्य में जिसे छीने जाने का खतरा था। अन्यथा ऐसे बहुत से जमींदार थे जिन्होंने न केवल क्रान्ति का विरोध किया बल्कि इसे दबाने में अंग्रेजों की मदद भी की। यह वर्ग तभी ब्रिटिश शासन के खिलाफ अपनी

आवाज बुलन्द करता था जब इनके हितों का टकराव होता था। अन्यथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के लगभग सभी अवसर पर यह वर्ग ब्रिटिश खेमा में खड़ा पाया गया। जमींदारों ने अपने हितों की रक्षा के लिए 1838 ई. में लैण्ड-होल्डर्स सोसाइटी नामक संस्था का निर्माण किया। संवैधानिक तरीकों द्वारा राजनीतिक गतिविधि शूरू करने का श्रेय इसी संस्था को है। फिर 1851 ई. में कलकत्ता में ब्रिटिश इंडियन एशोसिएशन की स्थापना की गई। वह भारत का पहला बड़ा स्वयंसेवी संगठन था, जो स्थानीय जमींदारों के हितों का प्रतिनिधित्व करता था। यह संस्था ब्रिटिश संसद को प्रार्थना पत्र भेजकर भारतीय जनता के मुख्य अधिकारों की मांग करती थी। परन्तु वे मुख्य अधिकार वही होते थे जो इन वर्गों के हितों का पोषण कर सके। आम जनता (मजदूरों, किसानों) के लिए इन्होंने कभी कोई मांग नहीं उठायी। हालांकि कभी-कभी नमक और अफीम के एकाधिकार, भारी करों तथा शिक्षा की उपेक्षा को लेकर भी इन्होंने आवाज उठायी। परन्तु इसका यह मतलब नहीं था कि वे ब्रिटिश शासन के विरूद्ध थे, बल्कि वे ब्रिटिश शासन को यह बताना चाहते थे कि ब्रिटेन के साथ जो उनके सम्बन्ध बने हैं उसका उस सीमा तक उन्हें लाभ नहीं मिला है जिस सीमा तक उन्हें पाने की आशा थी। 1850-1870 वाले दशकों में जितने भी संगठन बने वे ब्रिटेन के प्रति वफादार जमींदारों से भरे होते थे।

राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गांधी के पदार्पण के बाद इसके क्षेत्र और स्वरूप में परिवर्तन आया। महात्मा गाँधी राष्ट्रीय आन्दोलन में सभी वर्गों को संगठित करना चाहते थे। परन्तु समस्या यह थी कि अगर किसानों तथा मजदूरों के हितों के लिए कदम उठाए जाते तो जमींदारों के हितों पर कुठाराघात होता। क्योंकि, कांग्रेस में जमींदारों की संख्या बहुत अधिक थी। दूसरी तरफ कांग्रेस में कुछ ऐसे राष्ट्रवादी भी थे जो इन जमींदारों के यहाँ बड़ी-बड़ी नौकरियाँ पाते थे। यही कारण था कि कांग्रेस ने मजदूरों और किसानों को लामबन्द करने की कोशिश तो की, परन्तु अधिकांशतः जमींदारों के हितों की रक्षा के लिए उन्होंने किसान विद्रोहों से खुद को दूर रखा। विद्यानंद के नेतृत्व में जब दरभंगा राज के विरूद्ध किसानों का उग्र आन्दोलन चल रहा था, विद्यानंद ने इस आन्दोलन को समर्थन देने के लिए कांग्रेस से बार-बार अपील की परन्तु बिहार कांग्रेस ने उनकी अपील को ठुकरा दिया। अपवाद स्वरूप ही कुछ ऐसे किसान विद्रोह थे जिसके लिए कांग्रेस खुलकर सामने आया। वामपंथी विचारधारा के इतिहासकारों का विचार है कि असहयोग आन्दोलन के स्थगन के पीछे भी जमींदारों तथा पूँजीपतियों के हितों की रक्षा का विचार काम कर रहा था। उनका मानना है कि चौरा-चौरी की घटना के बाद गांधी जी को लगा कि आन्दोलन उनके हाथ से निकलकर क्रान्तिकारियों के हाथ में चला जाएगा और जमींदारों तथा पूँजीपतियों की सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाया जाएगा। अत: गांधीजी ने आन्दोलन को वापस ले लिया. इन इतिहासकारों ने यह भी तर्क दिया कि गांधीजी किसानों के विद्रोहों को समर्थन न देकर जमींदार वर्ग को कांग्रेस में शामिल रखना चाहते थे। भले ही ये तर्क पूरी तरह उचित न पाये गये हों, राष्ट्रीय स्तर पर गांधी जी एवं कांग्रेस एक छतरी वाली भूमिका निभा रही थी जो समाज के सभी वर्गों को एक मंच पर लाने का प्रयास कर रही थी, जिसमें जमींदार वर्ग भी सम्मिलित था. सबल्टर्न इतिहासकारों ने भी यह बात स्वीकार किया है कि राष्ट्रीय

आन्दोलन में दो धाराएँ – अभिजन और निम्न वर्ग स्पष्ट रूप से मौजूद थे। उनका मानना है कि निम्न वर्ग उपनिवेशवाद के विरुद्ध वास्तविक संघर्ष कर रहा था जबकि उच्च वर्ग उपनिवेशवाद का ही सहयोगी था. फिर भी, हम पाते हैं कि कुछ जमींदार राष्ट्रवादी आन्दोलन मे शामिल थे. यदि जमींदार वर्ग राष्ट्रवाद की मुख्य धारा में सम्मिलित हुए तो यह उनके परिस्थितियों एवं हितों के उपर था।

1.4 मध्यवर्ग

भारत में आधुनिक मध्यवर्ग का उदय उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ. इस वर्ग के उदय मे निश्चय ही उन परिस्थितियों का हाथ था जिन्हे औपनिवेशिक शासन ने आरम्भ किया था. उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ही अंग्रेजी माध्यम से आधुनिक शिक्षा को अपनाया गया था. इसी सदी के मध्य में परिवहन एवं संचार के साधनों मे भी परिवर्तन हो रहा था. सबसे महत्वपूर्ण था – प्रचार के साधनों का उदय. पहली बार पत्र-पत्रिकाओं एवं अखबारों के माध्यम से विचारों का प्रचार किया जा सकता था. इन साधनों ने निश्चय ही नये अवसरों को उत्पन्न किया था. पढ़े-लिखे वर्ग को समाचार पत्रों और पत्रिकाओं ने रोज़गार के नये अवसर दिये थे. इसके अलावा औपनिवेशिक प्रशासन में भी शिक्षित वर्ग को रोज़गार के नये अवसर दिये थे. सरकारी नौकरियों में कार्यरत शिक्षित वर्ग को अक्सर 'भारतीय बाबू' कहा जाता था. औपनिवेशिक शासन ने रोज़गार के अनेक दूसरे अवसर भी उत्पन्न किये जिसके परिणामस्वरूप वकील एवं शिक्षक जैसे पेशेवर लोग भी आये. उन्नीसवीं सदी के अंत एवं आरम्भिक बीसवीं सदी में भारतीय पूंजीपतियों का एक वर्ग भी उदित हो रहा था. इन सभी वर्गों को सामूहिक रूप से मध्यवर्ग कहा जाता है. आगे हम इन वर्गों के राष्ट्रवाद से सम्बन्ध की चर्चा करेंगे.

1.4.1 बुद्धिजीवी

भारत में औपनिवेशिक शासन को चलाने के लिये अंग्रेज़ों को एक पढ़े-लिखे वर्ग की आवश्यकता थी. अत: उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज़ी शिक्षा की नीव डाली गई. अंग्रेज़ी शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य शिक्षित भारतीयों के मन का उपनिवेशीकरण करना एवं उनमें वफादारी की भावना भी था. अंग्रेज़ी शिक्षा की सबसे बड़ी कमी इसका वर्गीय एवं क्षेत्रीय आधार पर असमान प्रसार था. जहाँ क्षेत्रीय स्तर पर शिक्षा के प्रसार के केन्द्र तीनों प्रेसीडेंसिया (बंगाल, बम्बई और मद्रास) ही थी, वहीं सामाजिक स्तर पर कुछ वर्ग विशेष का ही वर्चस्व था. बंगाल मे मुख्यत: ब्राह्मण, कायस्थ और वैद्य जाति के लोग ही शिक्षित थे, तो बम्बई मे चितपावन ब्राह्मण और पारसी ही शिक्षा के क्षेत्र मे आगे थे. मद्रास मे भी शिक्षा तमिल ब्राह्मणों एवं आयंगार मे ही सीमित थी. आधुनिक शिक्षा ने एक अन्य असमानता धन के स्तर पर भी उत्पन्न की. आधुनिक अंग्रेज़ी शिक्षा मंहगी होने के कारण केवल सीमित वर्ग ही इससे लाभांवित हो सकता था. सुमित सरकार ने दिखाया है कि 1883-84 में बंगाल के कॉलेज मे पढनेवालों मे केवल 9% ही ऐसे परिवारों से आते थे जिनकी वार्षिक आय 200 रुपए से कम थी. इन असमानताओं के परिणामस्वरुप जो भी शिक्षित वर्ग पैदा हो रहा था उसके लिये

रोज़गार का एकमात्र अवसर सरकारी नौकरी ही थी. चूंकि नौकरियों की संख्या सीमित ही थी, अत: लगातार बढ़ते जा रहे इस मध्यवर्ग मे असंतोष भी थी. फिर भी यह मानना कि भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग के उदय का कारण ये असंतोष ठीक थे एक अतियुक्ति से अधिक कुछ नही है. यदि हम आरम्भिक उन्नीसवीं शताब्दी के बुद्धिजीवयों का अध्ययन करें तो पायेंगे कि वे आधुनिक पाश्चात्य विचारों से ही अधिक प्रभावित थे. राममोहन राय एवं उनके समकालीन बुद्धिजीवी भारतीय समाज को सुधारने मे अधिक रुचि रखते थे. निश्चय ही वे उपनिवेशवाद के विरुद्ध नही थे.

परंतु, उन्नीसवी शताब्दी के दूसरे अर्धांश में भारतीय बुद्धिजीवी उपनिवेशवाद के विरुद्ध होते चले गये. निश्चय ही इसके कारण वैचारिक ही अधिक थे. ईसाई मिशनरियों के धर्मांतरण के प्रयास ने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग मे एक नई चेतना का विकास किया. 1850 मे सरकार द्वारा बनाए गये लेक्स-लोकी एक्ट ने धर्मांतरण को मान्यता प्रदान कर दी. भारतीय बुद्धिजीवी तब और भी सचेत हो गये जब भारी विरोध के बावजूद 1867 मे मध्यवर्ग पर आयकर का भार भी डाल दिया गया. इससे पश्चात ब्रिटिश सरकार ने उच्च शिक्षा मे कटौती की भी घोषणा की, जिसका बंगाल के बुद्धिजीवियों ने व्यापक विरोध किया. सरकार के कुछ अन्य कार्यों – सिविल सेवा की आयु घटाना, वर्नाकुलर प्रेस एक्ट, आर्म्स एक्ट, एल्बर्ट बिल का विरोध – ने भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग को संगठित करने के लिये प्रेरित किया. बंगाल मे सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने 1876 मे इंडियन एसोसिएशन की स्थापना की. बम्बई मे बाम्बे एसोसिएशन, पूना मे पूना सार्वजनिक सभा, मद्रास मे मद्रास महाजन सभा आदि का गठन किया गया. इन संगठनों ने राजनीतिक एवं सार्वजनिक मुद्दों पर भारतीय जनमत बनाने का प्रयास किया. ये संगठन ब्रिटिश सरकार के समक्ष भारतीय शिकायतों को रखने का मंच बन गये. इन्होने अक्सर क्षेत्रीय एवं स्थानीय मुद्दों को भी उठाया. राष्ट्रीय स्तर पर भी संगठन की आवश्यकता इन बुद्धिजीवियों को महसूस होने लगी थी. इडियन एसोसिएशन राष्टीय स्तर पर बुद्धिजीवियों को संगठित करने का प्रयास कर रही थी. परंतु राष्ट्रीय संगठन बनाने के प्रयास कांग्रेस के गठन के माध्यम से ही साकार हो पाये. शीघ्र ही कांग्रेस भारतीय विचारों एवं राष्ट्रवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई. आरम्भिक भारतीय बुद्धिजीवियों का सबसे बड़ा योगदान औपनिवेशिक अर्थतंत्र की विवेचना करना था. इस विवेचना ने भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन को ब्रिटिश शासन की आलोचना का मौलिक हथियार दिया.

1.4.2 पेशेवर वर्ग

औपनिवेशिक शासन ने भारत में नई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना को जन्म दिया. अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार ने शिक्षक के रूप में एक नये पेशेवर समुदाय को जन्म दिया. इसीप्रकार नई चिकित्सा पद्यति एवं न्यायिक प्रणाली ने डाक्टर एवं वकील जैसे नये पेशों को जन्म दिया. स्पष्ट है कि नये शिक्षित वर्ग के लिये सरकारी नौकरी के बाद ये सबसे वांछित पेशे थे. एक अन्य पेशा, जिसका उदय उपनिवेशकाल के दौरान ही हुआ, पत्रकारिता थी. शिक्षा के प्रसार एवं राष्ट्रवादी चेतना

के उदय से पत्र – पत्रिकाओं का प्रसार काफी तेजी से हो रहा था. इसके परिणामस्वरुप पत्रकार वर्ग का उदय हुआ. निश्चित ही इन नवीन पेशों मे भी अवसरों की कमी शीघ्र ही होने लगी. सबसे अधिक असंतोष वकालत और पत्रकारिता से जुड़े लोगों में था. परंतु, यहाँ भी हमें ध्यान रखना चाहिये कि राष्ट्रवाद का जन्म रोज़गार जैसी कुंठा से नही हुआ, जैसा कभी-कभी कैम्ब्रिज इतिहास लेखन ने दिखाने की कोशिश की है. मूलत: आधुनिक शिक्षा एवं आधुनिक चेतना ने राष्ट्रवाद को जन्म दिया. पत्रकार, वकील, अध्यापक अपने पेशों की विशिष्टता एवं राष्ट्रवादी चेतना के प्रभाव के कारण राष्ट्रवादी आन्दोलन में अधिक मुखर थे. एक अध्ययन के अनुसार कांग्रेस की स्थापना से जुड़े भारतीयों में सबसे अधिक वकील ही थे, पत्रकारों का दूसरा स्थान था. 1888 के इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन मे शामिल प्रतिनिधियों मे से लगभग 40% वकील थे. वकीलों के पश्चात दूसरे पेशेवर वर्गों में पत्रकारों और अध्यापकों का महत्वपूर्ण संख्या ठीक इसप्रकार नये पेशेवर वर्गों ने राष्ट्रीय आन्दोलन मे अहम भूमिका अदा की.

1.4.3 पूंजीपति

पूर्वी भारत के व्यापार पर अंग्रेज़ी शासन की पकड़ अधिक मज़बूत थी. इसका प्रत्यक्ष कारण था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी का व्यापारिक से राजनीतिक अवतरण बंगाल में हुआ था. जबकि पश्चिमी भारत में भारतीय व्यापारियों ने चीन एवं अन्य देशो से होने वाले व्यापार में अपनी भागीदारी को बनाये रखा. भारतीय व्यापारियों के पश्चिमी भारत मे बने रहने का एक कारण वहाँ ब्रिटिश नियंत्रण का देर से स्थापित होना भी था. वस्तुत: उन्नीसवी सदी के उत्तरार्ध में देश के उत्तरी, पूर्वी और मध्य भागों में मारवाड़ी व्यापारी फैल गये. साथ-साथ उपनिवेशवाद के उत्कर्ष ने साहूकारी के पुराने पेशे को एक नई दिशा दे दी. साहूकारों ने ब्रिटिश आयात-निर्यात फर्मों के एजेण्टों के रूप मे काम करना आरम्भ कर दिया. दक्षिण भारत के चेट्टियार व्यापारी एवं साहूकार अंग्रेज़ों के अधीनस्थ सहयोगी के रूप में दक्षिण-पूर्व एशिया में फैल गये. इसप्रकार उपनिवेशवाद के आरम्भिक दौर में भारतीयों की भूमिका विदेशी पूंजी के सहयोगी एवं अधिनस्थ की थी. परन्तु, शीघ्र ही भारतीय पूंजी का उदय हुआ. आश्रित भारतीय व्यापारी व्यापारिक लाभ को पूंजी मे बदल रहे थे. इस भारतीय पूंजी को सूती वस्त्र उद्योग मे प्रारम्भिक विकास का अवसर मिला. बम्बई प्रेसीडेंसी के भीतर ही दक्षिण भारत मे कपास सरलता से उपलब्ध थी. अत: बम्बई और अहमदाबाद भारतीय पूंजीवाद के उदय का केन्द्र बन गये. भारतीय पूंजी एवं पूंजीपतियों को कभी भी औपनिवेशिक सरकार से समर्थन एवं प्रोत्साहन नही मिला. बम्बई के उद्योगों के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति सदैव भेदभावपूर्ण थी. सरकार ने न केवल चुंगी एवं आबकारी के ऊँची दर लगाकर देशी उद्योगों को हतोत्साहित करने की कोशिश की बल्कि दूसरी संरचनात्मक बाधाएँ भी खड़ी की. रेलमार्ग एवं मालभाड़ों की व्यवस्था कुछ ऐसी थी कि आंतरिक व्यापार के बजाय बाहरी व्यापार को ही इसका लाभ मिलता था. 1870 के दशक में बम्बई की कपड़ा मिलों के उदय से इंग्लैण्ड मे कुछ हलचल तो हुई, परंतु लंकाशायर मे उत्पादित माल को सीधी चुनौती अहमदाबाद की मिलों ने दी. जब अंग्रेज़ सरकार ने इंग्लैण्ड के दबाव में चुंगी एवं

आबकारी के भेदभावपूर्ण नीति अपनाई तो भारतीय पूंजीपतियों ने राष्ट्रवादी आन्दोलन का साथ देना आरम्भ कर दिया. अहमदाबाद, बम्बई और पूना पश्चिमी भारत में राष्ट्रवाद के प्रमुख गढ़ बन गये.

राष्ट्रीय आन्दोलन के गॉधीवादी चरण में राष्ट्रवाद को देशी पूंजीपतियों का सहयोग अपने चरम पर था. अंहिसा और ट्रस्टीशिप के गॉधीवादी सिद्धांत निश्चय ही पूंजीपतियों को आकर्षित करते थे. 1930 के दशक में कांग्रेस के भीतर एक अधिक जुझारु प्रवृत्ति तथा वामपंथी झुकाव नेतृत्व के उदय ने भारतीय पूंजीपति वर्ग को आशंकित कर दिया. फिर भी भारतीय पूंजीपतियों का कांग्रेस पर पर्याप्त प्रभाव बना रहा. कांग्रेस के भीतर भारतीय पूंजीपतियों से सहानुभूति रखने वाले प्रभावी भूमिका मे थे. वही इस दौर मे भारतीय पूंजीपतियों ने कांग्रेस के भीतर दक्षिणपंथी ताकतों को समर्थन देना आरम्भ किया ताकि समाजवाद एवं साम्यवाद के खतरों को रोका जा सके. 1936 के जवाहरलाल नेहरु समाजवादी भाषणों की आलोचना करते हुए अनेक भारतीय पूंजीपतियों ने एक उदघोषणा भी जारी की. 1937 के चुनावों मे कांग्रेस की भागीदारी के प्रस्ताव ने कांग्रेस नेतृत्व एवं पूंजीपतियों को पुन: एक साथ ला दिया. चुनावों के पश्चात बने कांग्रेस मंत्रीमण्डलों ने अनेक ऐसे निर्णय लिये जिनसे भारतीय पूंजीपतियों को लाभ था. जहां भारतीय पूंजीपतियों ने कांग्रेस के भीतर एक दक्षिणपंथी समूह को समर्थन दिया वही उपनिवेश्वाद से भी उनके रिश्ते दोहराव भरे ही थे. कुछ इतिहासकारों का मानना है कि राजनीतिक रूप से भारतीय पूंजीपति सरकार के प्रति निष्ठावान ही बने रहे. परंतु अधिकांश इतिहासकारों का विचार है कि पूंजीपतियों ने औपनिवेशिककाल में एक दोहरी नीति अपना रखी थी. सरकार का वे कभी खुले आम विरोध नही करते थे परंतु साथ ही भारतीय राष्ट्रवाद का भी समर्थन करते थे. भारतीय राष्ट्रवाद को पूजीपतियों के समर्थन के कारणों पर भी इतिहासकारों में मतभेद हैं. यह तो तय है कि राष्ट्रवाद को भारतीय पूंजीपतियों का समर्थन निरुद्देश्य नही था. इस तथ्य की पुष्टि कांग्रेस के भीतर दक्षिणपंथी ताकतों को उनके समर्थन से भी होती है. सारांशत: हम कह सकते हैं कि भारतीय राष्ट्रवाद को पूंजीपतियों का समर्थन अपने वर्गीय हितों से ही प्रभावित और संचालित होता था.

स्वमूल्यांकित प्रश्न

कृपया निम्नांकित प्रश्नों के समक्ष सत्य अथवा असत्य लिखिए।

1. जमींदारों ने अपने हितों की रक्षा के लिए 1838 ई. में लैण्ड-होल्डर्स सोसाइटी नामक संस्था का निर्माण किया।

2. अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त अधिसंख्यक भारतीयों ने 1857 के क्रान्ति का विरोध किया था।

3. 1851 ई. में कलकत्ता में ब्रिटिश इंडियन एशोसिएशन की स्थापना की गई।

4. 1850 मे सरकार द्वारा बनाए गये लेक्स-लोकी एक्ट ने धर्मांतरण को मान्यता प्रदान कर दी.

5. 1888 के इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन मे शामिल प्रतिनिधियों मे से लगभग 40% वकील थे

1.5 सारांश

ऊपर हमनें विभिन्न सामाजिक वर्गों के राष्ट्रवाद से सम्बन्ध का अध्ययन किया है. हमने देखा कि भूस्वामी वर्ग, जिसे भारतीय जनता का स्वाभाविक नेता माना जाता था, अधिकतर औपनिवेशिक सत्ता का साथ ही देता था. बीसवीं सदी में राष्ट्रवाद के प्रसार मुख्यता गॉधीवादी युग में यह वर्ग राष्ट्रवादी प्रभाव मे आया. अंग्रेज़ी शिक्षा के फलस्वरूप भारत में सरकारी कर्मचारियों एवं क्लर्कों, वकीलों, पत्रकारों, अध्यापकों, डॉक्टरों, इंजीनियरों आदि के रूप में एक मध्यवर्ग का उदय हुआ. यह मध्यवर्ग आधुनिक विचारों तथा राष्ट्रवादी चेतना से ओतप्रोत था. इसी वर्ग ने भारत में राष्ट्रवाद के प्रचार के लिये कांग्रेस तथा दूसरे संगठनों का गठन किया. इन मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों एवं पत्रकारों ने राष्ट्रवाद के प्रसार मे अमूल योगदान दिया. उपनिवेशकाल में पूंजीवाद के विकास से भारत भी अछूता नही रहा. भारतीय पूंजीपति वर्ग का विकास प्रारम्भ में औपनिवेशिक पूंजी के सहयोगी या आश्रित के रूप मे हुआ. परंतु, प्रथम विश्वयुद्ध ने भारतीय पूंजी को विकसित होने का अवसर प्रदान किया. अंग्रेज़ो की भेदभावपूर्ण नीति के विरुध एवं गॉधीजी के प्रभाव में भारतीय पूंजीपतियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन का साथ दिया. परंतु अधिक गहराई से अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि भारतीय पूंजीपति अपनी आवश्यकता के अनुरूप राष्ट्रवाद अथवा उपनिवेशवाद का समर्थन करते थे. इन्होने कांग्रेस के भीतर अधिक जुझारु नेतृत्व को उभरने से रोकने कि लिये कांग्रेस में दक्षिणपंथी ताकतों को समर्थन दिया.

1.6 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य

2. सत्य

3. सत्य

4. सत्य

5. सत्य

1.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

बिपिन चन्द्र, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 1998

बिपिन चन्द्र, सं., आधुनिक भारत, नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 2003

सुमित सरकार, *आधुनिक भारत: 1885-1947,* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2002

शेखर बन्धोपाध्याय, फ्राम प्लासी टू पार्टीशन: ए हिस्ट्री आफ मॉडर्न इंडिया, दिल्ली: ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, 2009

1.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

बिपिन चन्द्र, *भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,* दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 1998

सुमित सरकार, *आधुनिक भारत: 1885-1947,* नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 2002

शेखर बन्धोपाध्याय, फ्राम प्लासी टू पार्टीशन: ए हिस्ट्री आफ मॉडर्न इंडिया, दिल्ली: ओरिएण्ट ब्लैकस्वान, 2009

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

साम्राज्यवाद: वह नीति है जिसमें कोई राज्य दूसरे राज्यों के भू-क्षेत्रों पर अधिकार करता है अथवा उनकी अर्थ-व्यवस्था व राजनीतिक व्यवस्था पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता है।

राष्ट्रवाद : राष्ट्र के निवासियों में देशप्रेम, राजभक्ति तथा परस्पर आत्मीयता की भावना को अभिव्यंजित करता है।

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान भू–स्वामी, पेशेवर और मध्य वर्ग की भूमिका पर विचार कीजिए।

किसान एवं श्रमिक वर्ग

2-1 प्रस्तावना

2-2 उद्देश्य

2.3 पुनर्स्थापनात्मक व्यवस्था

2.4 परिवर्तनवादी व्यवस्था

2.5 महत्वपूर्ण कृषक आन्दोलन

- **2.5**.1 सन्यासी विद्रोह
- **2.5**.2 पागलपंथी विद्रोह
- **2.5**.3 फरायजी विद्रोह
- **2.5**.4 वहाबी आन्दोलन
- **2.5**.5 मोपला आन्दोलन
- **2.5**.6 रामोशी विद्रोह
- **2.5**.7 पाबना आन्दोलन
- **2.5**.8 नील विद्रोह
- **2.5**.9 दिरांग आन्दोलन

2.6 **20**वीं सदी के किसान आन्दोलन

- **2.6**.1 चम्पारण सत्याग्रह (**1917**)
- **2.6**.2 खेडा किसान आन्दोलन (**1918**)
- **2.6**.3 एका आन्दोलन
- **2.6**.4 तेभांगा आन्दोलन
- **2.6**.5 मोपला विद्रोह (**20**वीं सदी)
- **2.6**.6 बारदोली सत्याग्रह

2.7 श्रमिक वर्ग (मजदूर)

- **2.7**.1 आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस
- **2.7**.2 इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस

2.8 प्रमुख श्रमिक आयोग

- **2.8**.1 प्रथम कारखाना कानून (**1881** ई**0**)

2.8.2 द्वितीय कारखाना कानून (**1891 ई0**)

2.8.3 त्रितीय कारखाना कानून (**1911 ई0**)

2.8. चतुर्थ कारखाना कानून (**1922 ई0**)

2.9 सारांश

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

2.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

2-1 प्रस्तावना

किसान वर्ग (19**वीं-**20**वीं सदी)**

राजनीतिक एवं आर्थिक प्रभुत्व की औपनिवेशिक संरचना ने साम्राज्यवादी एवं भारतीय नागरिकों के विभिन्न घटकों के मध्य निरन्तर संघर्ष को जन्म दिया। भारतीय नागरिकों द्वारा किये गये विद्रोह को आधारभूत कारण शोषण की वह प्रणाली थी जिसके कारण ब्रिटिश उपनिवेशवाद पोषण पा रहा था।

ब्रिटिश सम्राज्यवादी प्रसार के कारण विभिन्न सामाजिक समूह ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए और फिर ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण के विरूद्ध उन्होंने प्रतिक्रिया दिखाई। **19**वीं सदी के प्रारम्भ में ब्रिटिश शासन के विरूद्ध होने वाले प्रतिरोध का स्वरूप आद्य राष्ट्रवादी था।

भारत में ब्रिटिश शासनकाल म**sa** कृषक असन्तोष के विभिन्न कारण थे**,** जिनमें सर्वप्रमुख आर्थिक कारण था। प्रारम्भ में जब ईस्ट इंड़िया कम्पनी भारत आयी तो उसका मुख्य लक्ष्य था**,** भारत से अधिकाधिक मुनाफा कमाना। बंगाल विजय के पश्चात् उसने स्थानीय धन से अपने निर्यात के लिए सामान खरीदना प्रारम्भ किया। इस समय भू-राजस्व ही आमदनी का मुख्य स्त्रोत था**,** अतः कम्पनी ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। ब्रिटिश शासको ने अधिकाधिक भू-राजस्व प्राप्त करने के लिए भूमिकर इकट्ठा करने का अधिकार नीलामी के माध्यम से बेचा। वह चाहे स्थायी बन्दोबस्त हो**,** रैयतवाड़ी व्यवस्था हो अथवा महालवाड़ी व्यवस्था**,** किसानों से भूमि उत्पादन का अधिकाधिक वसूल किया गया। जमींदारी क्षेत्रों में रैयतों का शोषण एवं अनुपस्थित भू-स्थायित्व महत्वपूर्ण समस्या हो गयी। रैयतवाड़ी क्षेत्रों में महाजनों की उपस्थिति के कारण कृतिम रूप से जमींदार स्थापित होने लगे। रेलवे तथा यातायात के विकास ने ग्रामीण शोषण को और भी सवल बना दिया।

एक तरफ ब्रिटिश आर्थिक नीतियों की वजह से कृषि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ा और भारतीय कृषि व्यवस्था विनाश के कगार पर पहुंच गयी, वही दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने कृषक असन्तोष को नजरअन्दाज कर दिया। ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित कानून तथा न्यायालय भी किसानों के हक में नही थे। ये सरकार और उनके सहयोगियों मसलन भूमिधर, व्यापारियों तथा महाजनों का पक्ष लेते थे। इस प्रकार औपनिवेशिक शोषण से तंग आकर तथा न्याय से निराश होकर किसानों ने विद्रोह का झण्डा बुलन्द किया। ब्रिटिश शासन के खिलाफ प्रारम्भ हुए इन विद्रोहों को विचार एवं अपनाए गए साधनों एवं उद्देश्यों की दृष्टि से दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है जैसे पुनर्संस्थानात्मक तथा परिवर्तनवादी व्यवस्था।

2-2 उद्देश्य

इस ईकाई को पढने के पश्चात आप निम्नलिखित बिन्दुओं को आसानी से समझ सकते है -

- पुनर्स्थापनात्मक व्यवस्था
- परिवर्तनवादी व्यवस्था
- चरणबद्ध कृषक विद्रोह विद्रोह
- कृषक विद्रोह के कारण
- कृषक विद्रोह के क्षेत्र तथा इसका प्रसार
- कृषक विद्रोह के मुख्य नेता
- प्रमुख कृषक विद्रोह जैसे – सन्यासी, पागलपंथी, फरायजी, वहाबी, मोपला, रामोसी, पाबना तथा नील विद्रोह आदि।
- **20**वीं सदी के प्रमुख कृषक विद्रोह जैसे - चम्पारण सत्याग्रह, खेड़ा, एका, बारदोली तथा अन्य।
- श्रमिक आन्दोलन , कारण, क्षेत्र तथा प्रमुख नेता
- प्रमुख श्रमिक आयोग

2.3 पुनर्स्थापनात्मक व्यवस्था

1765- 1857 के मध्य छोटे राजाओं, पुराने राजस्व मध्यस्थों, जमींदारों एवं पोलीगरों के द्वारा अनेक विद्रोह किये गये। इस विद्रोह को सैनिकों एवं किसानों का भी समर्थन प्राप्त हुआ। इनका लक्ष्य ब्रिटिश शक्ति को बाहर खदेडना तथा पुरानी व्यवस्था की स्थापना करना था। इन्होंने कृषि सम्बन्धों

की समस्या पर भी विद्रोह किये। इनमें महत्त्वपूर्ण विद्रोह हैं **1780- 81** में बनारस के राजा चैत सिंह का विद्रोह, **1801- 05** में उत्तरी अर्काट का पोलीगरों का विद्रोह साथ ही श्रावणकोर एवं कोचीन में वेलाथम्पी का विद्रोह। **1857** के विद्रोह को भी इसी श्रेणी में रखा जा सकता है क्योंकि यह भी स्वरूप की दृष्टि से पुनर्स्थापनावादी ही था।

2.4 परिवर्तनवादी व्यवस्था

1857 ई0 के पश्चात् कृषक आन्दोलन के स्वरूप परिवर्तन हो गया। अब इन विद्रोहों ने पुनर्रस्थापना नही बल्कि परिवर्तनवादी रूप ले लिया**,** किन्तु इन विद्रोहों में भी नेतृत्व क्षेत्रीय ही बना रहा तथा इनकी दृष्टि मसीहावादी बनी रही। इन श्रेणियों में **1836- 1854** के मध्य का भोपाल विद्रोह**, 1824- 37** के मध्य का पागलपंथी विद्रोह तथा **1837- 57** के मध्य का फरायजी आन्दोलन प्रमुख है।

जब बिद्रोह के चरण का स्वरूप पृथक था**,** यह स्वतः स्फूर्त होता था तथा इसमें धार्मिक विचारधारा एवं धार्मिक नेतृत्व उपस्थिति था। इन आन्दोलनों में कुछ विशेष कष्टों के निवारण की चेष्टा थी तथा इनका स्वर सुधारवादी था। ये आन्दोलन अपेक्षाकृत शान्त होते थे एवं इसमें बहिष्कार जैसी पद्धति अपनाई जाती थी। ये आन्दोलन तभी उग्र होते थे जब इनकी माँगों को दबाने के लिए बल प्रयोग का सहारा लिया जाता था। जैसे - **1852 ई0** का खानदेश के किसानों का विद्रोह**, 1789 ई0** में बिसनपुर के किसानों का विद्रोह**, 1809 ई0** में हरियाणा के जाटों का विद्रोह एवं **1921 ई0** का मोपला विद्रोह।

ब्रिटिश शासन काल में चले किसान आन्दोलनों को निम्नांकित चरणों में विभाजित किया जा सकता है -

1. **1857 ई0** तक इसका प्रथम चरण माना जा सकता है एवं इस चरण में जमींदारों**,** क्षेत्रीय सरदारों अधिकारयक्त जमींदारों आदि के द्वारा नेतृत्व प्रदान किया गया।

2. **1857** के पश्चात् जमींदारों का प्रबल विरोध शान्त हुआ एवं **1870-90** के बीच स्थायी बन्दोबस्त वाले क्षेत्रों में धनी किसानों द्वारा जमींदार विरोधी आन्दोलन हुए**,** जबकि रैयतवाड़ी क्षेत्रों में महाजनों के विरूद्ध विद्रोह होते रहे। इस चरण में ब्रिटिशों के बिरूद्ध विद्रोह नही हुआ क्योंकि विद्रोह का निशाना तात्कालिक शोषक बने।

3. **1890** से प्रथम विश्वयुद्ध तक कृषक विद्रोह अपेक्षाकृत शान्त ही रहे किन्तु जब **1885 ई0** में रैयतवाड़ी कानून बना तो कृषकों की अपेक्षाएं जागी और वे इन अधिकारों की रक्षा के लिए सजग हुए किन्तु आन्दोंलन के किसी चरण में भी रैयतों ने ब्रिटिश सर्वोच्चता को चुनौती नहीं दी। वस्तुतः बडे पैमाने पर बेदखली के विरूद्ध किसानों का यह स्वतः स्फूर्त एवं भावनात्मक प्रतिरोध था। एवं उनका आक्रोश तात्कलिक शोषकों के विरूद्ध की व्यक्त

हुआ जो कि नील उत्पादक, जमींदार, महाजन आदि हो सकते थे। इन विद्रोह के उद्देश्य तात्कालिक थे और जब ये उद्देश्य पूरे हो जाते थे तो ये आन्दोलन स्वयं शान्त पड़ जाते थे। इस समय के आन्दोलनों को आधुनिक विचारधारा का आधार प्राप्त नहीं था, यही वजह है कि ये औपनिवेशशिक व्यवस्था के विरूद्ध वास्तविक चुनौती उपस्थित नहीं कर सकें।

2.5 महत्वपूर्ण कृषक आन्दोलन

2.5.1 सन्यासी विद्रोह

बंगाल में अंग्रेजी राज्य स्थापित होने तथा उसके कारण नयी अर्थव्यवस्था के स्थापित होने से जमींदार कृषक तथा शिल्पियों का व्यवस्था नष्ट हो गया। इनमें से कुछ लोगों ने सन्यासी का रूप धारण कर लिया तथा धार्मिक भिक्षावृत्ति का सहारा लेकर अपना जीवन यापन करने लगे, मूलतः ये लोग कृषक थे। **1770** के दशक में क्लाइव के द्वैध शासन के फलस्वरूप पड़े भीषण आकाल से उत्पन्न संकट के कारण इनका जीवन और दूभर हो गया। अब ये हिन्दु मुस्लिम साधुओं के दल एक जगह से दूसरे जगह टोली बनाकर घूमते तथा मौका पडनें पर धनाढ्य लोगों तथा सरकारी अफसरों के घर को लूट लिया करते थे। किसानों की बढ़ती दिक्कतों, बढ़तें भू-राजस्व और **1770** के बंगाल के अकाल के कारण कई पदच्यूत जमींदार सेवानिवृत्त सैनिक तथा गाँव के गरीब लोग भी इन सन्यासियों और फकीरों के दल में शामिल हो गये। ये बिहार तथा बंगाल में **5-7** हजार लोगों का जत्था बनाकर घुमते थे। तथा आक्रमण की गुरिल्ला तकनीक अपनाते थे।

आरम्भ में ये मात्र धानढ्य व्यक्तियों के खाद्यान्न भण्डारों को लूटते थे परन्तु बाद में सरकारी पदाधिकारियों पर भी आक्रमण करने लगे। मौका पडने पर सरकारी खजाने को भी लूटा करते थे। कभी-कभी लूटा हुआ धन गरीबों में वितरित भी कर देते थे। बोगरा तथा मैमन सिंह जिलों में इन्होंने स्वतन्त्र सरकार बनाई। इस विद्रोह की खासियत रही कि इसमें हिन्दु तथा मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष किया। इस आन्दोंलन के प्रमुख नेताओं में मंजर शाह, मूसा शाह, भवानी पाठक तथा देवी चौधरानी उल्लेखनीय है। बंकिम चन्द्र चटर्जी की पुस्तक आनन्द मठ में इस सन्यासी विद्रोह का सजीव चित्रण हुआ है। लगभग **1800** ई**0** तक बंगाल तथा बिहार में अंग्रेजों के साथ सन्यासियों तथा फकीरों का संघर्ष होता रहा।

2.5.2 पागलपंथी विद्रोह

इस विद्रोह का प्रेरक करम शाह था। **1824** में ब्रिटिश सरकार ने जमींदारों से कहा कि वे अपने क्षेत्रों में सड़को के निर्माण करें ताकि वर्मा युद्ध के लिए सेना को सुगमतापूर्वक भेजा जा सके। जमींदारों ने रैयतों से मुफ्त मजदूरी कराकर इन सड़कों का निर्माण करना चाहा जिसका रैयतों ने विरोध किया। युवा किसानों ने टीपू नामक एक फकीर को अपना नेता बनाया जो कि करमशाह पठान का पुत्र था। करमशाह के कुछ हिन्दू-मुस्लिम अनुयायी थे जो स्वंय को पागलपंथी कहते थे। लोगों में यह

अफवाह फैल गयी कि अब जमींदारों तथा अंग्रेजों का शासन समाप्त होने वाला है और टीपू का शासन शुरू होने वाला है। ब्रिटिश सेना के वहाँ पहुँचने पर सशस्त्र किसानों ने उसका विरोध किया। इन किसानों का आदेश था कि जमींदारों को राजस्व न दिया जाए। उन्होंने जमींदारो के मकानों पर आक्रमण किया तथा उनके जुल्मों के विरूद्ध अंग्रेजों से मदद माँगी। **1825** के प्रारम्भ में ही घमासान युद्ध हुए परन्तु वर्मा युद्ध के समाप्त होने पर सकड़ निर्माण का कार्य रूक गया और अंग्रेजों ने लगान वसूली पर फिर से विचार करने का वायदा किया फलतः विद्रोह शान्त हो गया। **1827** में टीपू को गिरफ्तार कर लिया गया किन्तु **1833** में जब देखा गया कि वसूली में कोई रियासत नही दी गयी है तो सशस्त्र विद्रोह पुनः भड़क उठा तथा बाद में इस विद्रोह ने कानूनी रूप ले लिया। रैयतों ने मैमन सिंह जिले में अपना एक कानूनी प्रतिनिधि तथा स्थाई प्रतिनिधि मण्ड़ल नियुक्त कर दिया।

2.5.3 फरायजी विद्रोह

फरायजी एक सम्प्रदाय था जिसकी स्थापना हाजी शरियतुल्ला ने की थी। आरम्भ में फैराजी आन्दोलन अधिक राजस्व निर्धारण तथ बेदखल किये गये किसानों के असन्तोष के कारण आरम्भ हुआ परन्तु आगे दूदू मियाँ के नेतृत्व में इस आन्दोलन ने रेड़िकल धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों की वकालत की। दूदू मियाँ ने किसानों की दयनीय स्थिति को आन्दोलन का मुख्य मुद्दा बनाया। इससे उनके अनुयायियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। उसने किसानों को अपने अधिकारों के लिए लडने को प्रेरित किया।

उन्होंने घोषणा की कि सरकार को जमीन पर कर लगाने का अधिकार नहीं है। उन्होंने अंग्रेजी द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था को बदलने का प्रयास किया। अपने विचारों का प्रचार करने के लिए दूदू मियाँ ने विभिन्न क्षेत्रों में प्रतिनिधि नियुक्त किये तथा गाँवों में स्वतन्त्र न्यायालय स्थापित किये जिसका प्रधान बुजुर्ग एवं साफ-सुथरे चरित्र वाले व्यक्ति को बनाया गया। गाँव के लोगों को ब्रिटिश न्यायालय में जाने से रोक दिया गया तथा उन्हें अपने झगड़ों का निपटारा इन स्वतन्त्र न्यायालयों से करवाने को कहा गया। इस आज्ञा के उल्लंघन पर जुर्माने व्यवस्था की गई। जमींदारों के विरूद्ध आन्दोलन करने के मुद्दे पर कोई धार्मिक भेदभाव नही बरता गया। फैराजियों ने सामन्ती उत्पीडन तथा निलहों के अत्याचार से किसानों की रक्षा की। **1857** से पूर्व तक यह आन्दोलन फरीदपुर के अतिरिक्त **24** परगना, नदियाँ आदि तक फैल गया।

फैराजियों की कार्यवाही का देशी जमींदारों, धनी वर्गों, निलहों आदि ने विरोध किया। सरकार पर दबाव डाला गया कि वे फैराजियों के विरूद्ध कार्यवाही करें। सरकार ने भी जमींदारों का साथ देते हुए सेना भेजकर फैराजियों का दमन प्रारम्भ कर दिया तथा दूदू मियाँ को गिरफ्तार कर लिया गया जिससे आन्दोलन धीमा पड़ गया। इस आन्दोलन का महत्व इस बात में है कि इसने पहली बार बंगाल के किसानों की संगठित होकर सामन्ती अत्याचारों का सामना करने के अवसर प्रदान किया। यह आन्दोलन एक प्रकार से निम्न वर्ग तथा बुर्जुवा वर्ग के मध्य संघर्ष बन गया।

2.5.4 वहाबी आन्दोलन

यह आन्दोलन **1830** के दशक से **1860** के दशक तक चलता रहा। इस आन्दोलन के जन्मदाता रायबरेली के सैयद अहमद थे। वे अब्दुल वहाब तथा शाह वलीउल्ला की शिक्षा से प्रभावित थे। यह आन्दोलन पुनरूत्थानवादी था।

इस आन्दोलन की एक मुख्य विशेषता यह थी कि बंगाल में किसानों की समस्या को उठाया तथा उसके समर्थन से व्यापक रूप धारण कर लिया। बंगाल में इस आन्दोलन का नेता टीटू मीर था जो कि स्वयं एक जुलाहा था तथा जमींदार का लठैत रह चुका था। टीटू मीर ने किसानों पर जमींदारों के अत्याचार उनके द्वारा लगाये गए दाढ़ी कर तथा ब्रिटिश प्रभुत्व का प्रतिकर किया। जब नादियाँ के जमींदार कृष्णराय ने लगान की राशि बढ़ा दी तो टीटू मीर ने उस पर आक्रमण कर दिया। परन्तु अंग्रेजों ने अन्ततः टीटू मीर को मारने में सफलता पाई जिससे यह विद्रोह कमजोर हो गया।

2.5.5 मोपला आन्दोलन

जिस प्रकार बंगाल के किसानों को स्थायी बन्दोबस्त से कठिनाई हुई थी तथा कानून से उन्हें कोई संरक्षण नही मिला था, उसी प्रकार मालबार में भी अंग्रेजों की भू-राजस्व व्यवस्था से किसान असन्तुष्ट थे। ब्रिटिश शासन भू-स्वामियों के अधिकारों पर बल देता था। अतः उसने भू-बन्दोबस्ती के क्रम में वर्ग के हिन्दुओं, नंबूदरी तथा नायर जेन्मियों की शक्ति को पुनः अधिकाधिक अधिकार के साथ स्थापित कर दिया। इनमें से अधिकांश को पहले टीपू ने दक्षिण की ओर खदेड़ दिया था तथा उसकी भूमि मुसलमान कृषक जो मोपल कहलाते थे को आबंटित कर दी थी। ब्रिटिश व्यवस्था के तहत मोपलाओं का सामूहिक रूप से भूमि से बेदखली का एक परिणाम तो यह हुआ कि मुसलमानों में सामुदायिक एक जुटता बढी।

नई व्यवस्था में इन मोपला रैयतों को रेहनदार बना दिया गया। जिससे जमीन के मालिक अपनी इच्छानुसार इनको बेदखल कर सकते थे। मैसूर के राजाओं के शासन काल से पूर्व मालावार में लगान की दर बहुत कम थी और जेनमियों ने काश्तकारों को जमीन का पूरा अधिकार दे रखा था किन्तु अब लगान की दर मनमानें ढंग से निश्चित कर दी गयी थी। काश्तकारों को बेदखल करने का अधिकार जेन्मी को दे दिया गया था। एक अनुमान के अनुसार **1862-1880** के मध्य मालाबार में लगान और बेदखली सम्बन्धी मुकदमों में क्रमशः **244** और **441** प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई थी।

इस शोषण के परिणामस्वरूप काश्तकारों ने जेनमियों के खिलाफ हिंसा प्रारम्भ कर दी जिसकी पराकाष्ठ **1840** में हुई जबकि **1836** और **1840** के मध्य इन पर सोलह **(16)** बार आक्रमण हुए। जिन लोगों ने इस हमले में भाग लिया उनमें से अनेक धार्मिक उन्माद में ग्रस्त थे और उलेमा वर्ग विशेषकर सैयद अली तथा उसके पुत्र सैयद फजल से प्रभावित थे। **1851** के प्रमुख मोपला विद्रोह

के पश्चात् सैयद फजल मालाबार में चला गया और अंग्रेजों ने **1854** में अपराधियों के विरूद्ध कठोर कानून बना दिया।

1882- 85 तथा पुनः **1896** में और भी विद्रोह हुए। इस विद्रोह ने जेनमियों की सम्पत्ति पर आक्रमण और उनके मन्दिरों की नष्ट करने का स्वरुप धारण कर लिया परन्तु मोपला असन्तोष की जड़े स्पष्टतः कृषि व्यवस्था में थी।

2.5.6 रामोशी विद्रोह

1822 ई0 में पश्चिम घाट पर इस आन्दोलन की पहली अभिव्यक्ति हुई। इसके नेता चित्तूर सिंह थे। इन्होंने सतारा के आस-पास के क्षेत्रों में विद्रोह किया और क्षेत्रों को लूटा। **1825-26** में पुनः विद्रोह हुआ। **1829** ई0 तक यह क्षेत्र अशान्त रहा। **1879** ई0 में रामोशी के नेता के रूप में बलवन्त फड़के का उदय हुआ। पुलिस से छिपकर मन्दिर में शरण लेने के वक्त लिखी गई अपनी आत्माकथा में उन्होंने गुप्त दल बनाने तथा उसके माध्यम से डकैती कर धन जमा करने, संचार व्यवस्था को अस्त-व्यस्त करके सशस्त्र विद्रोह कराने तथा हिन्दू राज्य की स्थापना करने की बात रखी थी। परन्तु इन्हें जल्द ही गिरफ्तार कर लिया गया तथा आजीवन कारावास की सजा दी गयी फिर भी दौलता रामोशी के नेतृत्व में एक दल **1883** तक सक्रिय रहा।

2.5.7 पाबना आन्दोलन

19वीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल के पाबना में किसानों ने जमींदारों के शोषण के विरूद्ध विद्रोह किया। यह विद्रोह जितना अधिक जमीदारों के विरूद्ध था उतना अधिक साहूकारों तथा महाजनों के विरूद्ध नही था क्योकि यहाँ भी महाजन प्रायः स्थानीय धनी किसान या जोतेदार होते थे जिनसे मिलने वाले कर्ज की उत्पादन में अपरिहार्य भूमिका होती थी। अपने दोहरे फसल और पटसन के फलते-फूलते व्यापार के कारण पाबना अपेक्षाकृत समृद्ध जनपद था। यहाँ पर 50 प्रतिशत से अधिक काश्तकारों ने **1859** के एक्ट **10** द्वारा दखली अधिकार प्राप्त कर लिया था फिर भी **1793** से **1773** तक के मध्य जमींदारों के लगान में सात गुना वृद्धि हो गयी थी। भू-स्वामियों ने अनेक प्रकार के आबवाब लगाकर, पैमाइश के लिए मनमाने तौर पर छोटे मापों का प्रयोग करके तथा बल प्रयोग के माध्यम से लगान को मनमाना बढाने का अभियान चला रखा था। इन सभी बातों से रैयत को हाल में प्राप्त पट्टे की सुरक्षा पर आघात होता था।

1873 ई0 में युसुफशाही परगने के किसानों ने एक कृषक संघ बनाया जो मुकदमें लड़ने के लिए धनराशि जुटाता था तथा सभाएं करता था। कभी-कभी ये संघ लगान की अदायगी रोक लेते थे। धीरे-धीरे पाबना के किसानों की प्रेरणा से ढाका, मैमन सिंह, त्रिपुरा, फरीदपुर, राजशाही इलाकों में भी किसानों ने जमीदारों का विरोध प्रारम्भ किया परन्तु यह आन्दोलन अपेक्षाकृत कम हिंसक रहा क्योंकि यह समीपस्थ अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष था। **1873** ई0 में बंगाल के लेफ्टिनेंट कैंपबेल ने

किसान संगठनों को जायज ठहराया। हाँलाकि बंगाल के जमींदारों ने इस आन्दोलन को साम्प्रदायिक रंग देना चाहा। जमींदारों के वचेस्व वाले ब्रिटिश इंण्ड़ियन एसोसिएशन ने इसका कडा विरोध किया और इसके मुख्य पत्र हिन्दू पैट्रियाट ने पाबना आन्दोलन को हिन्दू भू-स्वामियों के विरूद्ध मुसलमान किसानों के साम्प्रदायिक आन्दोलन के रूप में चित्रित करने का प्रयास किया परन्तु इस आन्दोलन में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों सम्मिलित थे। आन्दोलन के नेता भी दोनों वर्गों से आते थे जैसे ईशान चन्द्र राय सम्भू पाल, खुदी मुल्ला। इसी आन्दोलन के परिणामस्वारूप **1885** का बंगाल काश्तकारी कानून पारित हुआ जिसमें किसानों को राहत पहुँचाने की व्यवस्था थी।

2.5.8 नील विद्रोह

मोपला आन्दोलन की अपवाद में रखा जाए तो सबसे अधिक उक्त और विस्तृत किसान आन्दोलन **1859-60** का नील आन्दोलन था। शोषण के खिलाफ किसानों की यह सीधी लड़ाई थी। यह विद्रोह नील उत्पादकों के अत्याचार तथा अमानवीय व्यवहार के कारण प्रारम्भ हुआ। दरअसल नील का प्रयोग रंग बनाने में किया जाता था तथा इसकी यूरोपीय देशों में भारी माँग थी, यह ईस्ट इंण्डिया कम्पनी का प्रमुख व्यापारिक माल था। नील उत्पादन के क्षेत्र में अधिकतर यूरोपीय लोग जुड़े थे उन्होंने रैयतों को इस बात के लिए दबाव डाला कि वे अपने खेत के कुछ अच्छे हिस्सों में अनिवार्य रूप से नील की खेती करें जिससे नील की आपूर्ति सुनिश्चित हो सके परन्तु नील के बागान मालिक इन कृषको को उचित पारिश्रमिक नहीं देते थे। किसानों के शोषण के लिए नील उत्पादक मामूली सी रकम अग्रिम करार लिखवा कर देते थे। इस करार में धोखे से नील की ऐसी कीमत दर्ज करा दी जाती थी जो बाजार भाव से काफी कम होती थी। इतना ही नहीं किसानों को कम कीमत पर भी पैसा नहीं दिया जाता था और प्रायः उन्हें ठग लिया जाता था। नील उत्पादानों के नुमाइन्दे भी किसानों से नियमित रूप से रिश्वत लेते थे। करार के वक्त जो पैसा किसानों को अग्रिम दिया जाता था अगर किसान उसे वापस भी लौटाना चाहता था तो उसे ऐसे नही करने दिया जाता था। इन बागान मालिकों को विधि का समर्थन भी प्राप्त होता था क्योकि अधिकांश मजिस्ट्रेट या तो यूरोपीय थे अथवा स्वयं नील उत्पादक अथवा स्वयं जमींदार।

आगे नील उत्पादकों ने करार करने के तरीकों को भी छोड़ दिया क्योकि इससे अदालती झंझट हो सकते थे। वे अब किसानों को आतंकित कर अपना काम करने लगे। वे अपने लठैतों द्वारा किसानों के अपहरण कर, उनकी पिटाई कर अथवा उनके परिवार को परेशान करके उन्हें नील उगाने को मजबूर करने लगे। इन सभी बातों से किसानों में भारी असन्तोष व्याप्त हो रहा था। **1859** में कलारोवा के मजिस्ट्रेट हेमचन्द्राकर ने किसानों के पक्ष में निर्णय दे दिया कि यह पुलिस की जिम्मेदारी है कि कोई नील उत्पादक या अन्य कोई व्यक्ति रैयतों के मामले में हस्तक्षेप न करने पाये। चन्द्राकर की इस घोषणा से किसानों में दुर्दशा से मुक्ति का ख्याव जगा। उन्हें लगा कि बरसों से चला आ रहा शोषण बन्द होने का समय आ गया है परन्तु नील उत्पादाकों का रवैया नही बदला। प्रारम्भ में किसानों ने

शान्तिपूर्ण ढंग से संघर्ष चलाया, अधिकारियों के पास अर्जियाँ भेजी गयी तथा प्रदर्शन किये गये परन्तु इसमें सफलता नही मिलने पर किसानों ने विद्रोहात्मक रवैया अपना लिया। गाँव-गाँव में किसानों ने स्वयं को संगठित किया। जैसे ही निलहों के आदमी गाँव में आते किसानों के हथियारबन्द दस्ते उन्हें वहाँ से खदेड़ देते। एक किसान दूसरे किसान की जमीन नीलामी में नही खरीदता और उसके विरूद्ध हुए मुकदमें में गवाही भी नहीं देता।

1860 में अपेक्षित सफलता नही मिलते देखकर किसान सशस्त्र संघर्ष पर उतारू हो गए, शुरूआत नदिया जिले के गोविन्दपुर गाँव से हुई। एक नील उत्पादक के दो भूतपूर्व कर्मचारी दिगम्बर और विष्णु विश्वास तथा मालदा के रफीक मंड़ल के नेतृत्व में वहाँ के किसान एकजुट हुए तथा नील की खेती बन्द कर दी। जल्द ही यह विद्रोह अन्य जगहों पर भी फैल गया तथा किसानों ने अग्रिम राशि लेने, करार करने आदि से मना कर दिया। इसके जबाव में नील उत्पादकों ने अपने लठैतों के माध्यम से कार्यवाही की परन्तु किसानों की एकजुटता के आगे उनकी एक ना चली। कई बार तो संघर्ष रोकने या आन्दोलनकारी नेताओं की गिरफ्तार करने गयी पुलिस भी ग्रामीणों ने हमला किया। इस दौरान कई पुलिस चौकियों पर भी हमला किया गया। नील उत्पादकों ने किसानों को धमकी दी कि वे अपने जमींदारों अधिकारों को इस्तेमाल कर विद्रोही किसानों से जमीन छीन लेंगे या उसका लगान बढा देंगे। इसके जबाव में किसानों ने लगान चुकाना ही बन्द कर दिया। अब तक रैयतों ने अधिकारों के लिए कानूनी ढंग से लडना भी सीख लिया था। अपने खिलाफ दायर किये गये मुकदमें को लड़ने के लिए उन्होंने पैसे जुटाए तथा उन्होंने उत्पादकों के खिलाफ मुकदमें भी दायर किये। उत्पादकों के सहायको का सामाजिक बहिष्कार भी प्रारम्भ किया गया।

किसानों के एकजुट प्रतिरोध को नील उत्पादकों के लिए झेलना मुश्किल था। अतः धीरे-धीरे उन्होनें नील कारखाने बन्द करने शुरू कर दिये। **1860** तक बंगाल में नील की खेती बन्द हो गयी। दीनबंधु मित्र ने नील दर्पण में किसानों की इसी विजय गाथा का वर्णन किया है।

नील आन्दोलन की सफलता का सबसे बडा कारण यह रहा कि रैयतों ने पूरे अनुशासन, एकजुटता, संगठन एवं सहयोग के बल पर यह लडाई लडी थी। आन्दोलन के नेतृत्व एवं भागीदारी के सभी स्तरों पर हिन्दू-मुस्लिम एकता अक्षुण्ण रही। इस आन्दोलन को थोडी अच्छी आर्थिक स्थिति वाले रैयतों का भी सहयोग मिला। कुछ मामलो में तो छोटे जमींदारों, महाजनों तथा नील उत्पादाकों के भूतपूर्व कर्मचारियों ने भी आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया। इस आन्दोलन को बंगाल के बुद्धिजीवियों का भी सहयोग मिला। अखबारों में लेख लिखकर, जन सभाऐं आयोजित कर तथा किसानों के समर्थन में ज्ञापन जारी कर बुद्धिजीवियों ने संघर्ष के समर्थन में माहौल बनाया। इसके अलावा मिशनरियों ने भी नील आन्दोलन के समर्थन में सक्रिय भूमिका निभायी। इस आन्दोलन के प्रति सरकारी रवैया भी सन्तुलित रहा और ऐसा कडा रूख नही अपनाया जैसा अन्य विद्रोह के समय देखने को मिलता है।

2.5.9 दिरांग आन्दोलन

यह आन्दोलन असम क्षेत्र में फैला था। इसकी जडे भी औपनिवेशिक शोषण में ही निहित थी। असम प्रान्त अस्थायी बन्दोबस्त वाले रैयतवाडी क्षेत्र में आता था। ऐसे क्षेत्रों में लगान बढाने के ब्रिटिश सरकार के प्रयासों ने कभी-कभी एक अन्य प्रकार के ग्रामीण प्रतिरोध को भडकाया जिसकी विशेषता थी अत्यधिक भतैक्थ, स्थानीय बडे लोगों का नेतृत्व तथा बुद्धिजीवियों का कहीं अधिक स्पष्ट समर्थन असम के कामरूप एवं विरांग क्षेत्रों में **1893-94** में एक नया राजस्व बन्दोबस्त जारी किया गया जिससे लगान की दर में **50** से **70** प्रतिशत तक बढोतरी हो गई।

2.6 20वीं सदी के किसान आन्दोलन

इस काल में भी आन्दोलन के मूल कारण कमोवेश वही बने रहे जो **19**वीं सदी में थे, हाँ इसके स्वरूप में जरूर अन्तर आ गया। अब कृषक आन्दोलन का उद्देश्य भी व्यापक हो गया। **19**वीं सदी के कृषक आन्दोलन का स्वरूप क्षेत्रीय तथा मसीहावादी था। इस समय आन्दोलन का दृष्टिकोण भी संकीर्ण होता था तथा इसका मुख्य निशाना तत्कालीन शोषक वर्ष होते थे। जैसे पांबना के किसानों ने घोषणा की कि वें महारानी के रैयत हैं तथा उन्हीं के बनकर रहना चाहेगें। इसके उद्देश्य भी तत्कालिक होते थे। जब ये उद्देश्य पूरे हो जाते थे तो ये आन्दोलन स्वयमेय शान्त पड़ जाते इन आन्दोलनों को आधुनिक विचारधारा प्राप्त नहीं था यही वजह है कि औपनिवेशिक शासन के समक्ष ये वास्तविक चुनौती प्रस्तुत नहीं कर सके।

परन्तु **20**वीं सदी के कृषक आन्दोलनों का स्वरूप अलग था। इस अवधि के कृषक आन्दोलनों को स्पष्ट राजनीतिक विचारधारा का आधार प्राप्त था। **20**वीं सदी के कृषक आन्दोलनों का राष्ट्रीष्य आन्दोलन से जुडाव था। कृषक आन्दोलन पर बुर्जुआवादी प्रभाव, विभिन्न क्षेत्रों में किसान सभाओं का गठन होना तथा उनमें किसान नेताओं के साथ राष्ट्रीय नेताओं का भाग लेना इसका उदाहरण है। किसान सभा के नेता भी सक्रिय रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेते थे।

2.6.1 चम्पारण सत्याग्रह (1917)

20वीं सदी के आरम्भिक दशकों में चम्पारण में किसान आन्दोलन हुआ जिसकी गूँज पूरे भारत में हुई। इस आन्दोलन का महत्त्व इसलिए भी ज्यादा है कि यहीं से महात्मा गाँधी का राजनीति में सक्रिय रूप में प्रवेश हुआ तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के मुख्य अस्त्र सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग यहीं पर हुआ।

उत्तर बिहार में नेपाल की सीमा पर स्थित चम्पारण में बहुत दिनों से नील की खेती होती थी। इस क्षेत्र में अंग्रेजी बगान मालिको को रामनगर तथा बेतिया राज में जमीन की ठेकेदारी दी गई थी। इन लोगों ने इस क्षेत्र में कृषि की तिन कठिया पद्धति विकसित कर ली थी जिसके अनुसार प्रत्येक किसान को अपनी खेती योग्य जमीन के **15** प्रतिशत भाग में नील की अनिवार्य खेती करनी होती थी। इसके

अलावा किसान अपना नील बाहर नहीं बेच सकते थे, उन्हें बाजार से कम मूल्य पर बागान मालिक को ही नील बेचना पड़ता था, इससे किसानों का आर्थिक शोषण होता था। **1900** ई0 के पश्चात जब यूरोपीय देशों में नील की माँग कम होने लगी तथा इसका मूल्य घटने लगा तब भी नील उत्पादकों ने इसकी क्षतिपूर्ति किसानों से ही करनी चाही, उन पर अनेक प्रकार के नए कर लगा दिए गए। अगर कोई किसान नील की खेती से मुक्त होना चाहता था तो उसके लिए आवश्यक था कि वह बागान मालिक को एक बडी राशि तवान के रूप में दें। किसानों से बेगार भी लिया जाता था तथा उन्हें उन्य शारीरिक कष्ट भी भोगना पडता था। वस्तुतः यहाँ के किसानों की स्थिति बंगाल के किसानों से भी बदतर थी।

निलहों के अत्याचार के विरूद्ध किसान समय-समय पर विरोध प्रकट करते रहते थे। **1905-1908** के मध्य मोतीहारी एवं बेतिया के निकटवर्ती इलाकों में किसानों ने पहली बार व्यापक तौर पर आन्दोलन का सहारा लिया जिसमें हिंसा भी हुआ परन्तु सरकार तथा निलहों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

1916 में चम्पारण के अपेक्षाकृत सम्पन्न किसान राजकुमार शुक्ल ने गाँधी जी की सत्याग्राह पद्धति से प्रभावित होकर उनसे स्वयं चम्पारण आने का अनुरोध किया। अन्ततः गाँधी जी **1917** के कलकत्ता अधिवेशन के पश्चात स्वयं चम्पारण आए। राजेन्द्र प्रसाद, ब्रज किशोर आचार्य कृपलानी आदि कांग्रेसी नेताओं के साथ मिलकर उन्होंने किसानों के शिकायत की जाँच की जो प्रायः सत्य ही पायी गयी। बडी संख्या में किसान अपने अत्याचार की शिकायत लेकर उनके पास आए। गाँधी जी के कार्य का स्थानीय प्रशासन का विरोध किया, स्थानीय प्रशासन ने तुरन्त बाद गाँधी जी को उस स्थान से निकल जाने की सलाह दी। बेतिया प्रशासन ने तो उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया परन्तु गाँधी जी ने स्पष्ट किया कि मैं तब तक यह क्षेत्र नहीं छोडूँगा जब तक किसानों की शिकायत पूरी न हो जाए। अन्ततः बिहार के गवर्नर ने किसानों की शिकायतों की जाँच करने के लिए एक आयोग बनाया जिसमें सदस्य के रूप में गाँधी जी को भी शामिल किया गया। समिति ने किसानों की शिकायतों को उचित बताया तथा उसकी सिफारिशों के आधार पर चम्पारण कृषि अधिनियम पारित किया गया। इसके अनुसार तीन कठिया प्रणाली समाप्त कर दी गयी। गाँधी जी ने बागान मालिकों को इस बात के लिए भी बाध्य किया कि वह किसानों को उस राशि का भी भुगतान करें जो कि उन्होंने अवैध वसूली से प्राप्त किये हैं। अन्ततः बागान मालिक उस राशि का **25** प्रतिशत वापिस करने को तैयार हो गए।

2.6.2 खेडा किसान आन्दोलन (1918)

यह आन्दोलन **1918** में गुजरात राज्य के खेड़ा नामक स्थान में चलाया गया। वस्तुतः खेडा जिले के छोटे पाटीदार **1899** के बाद से ही विभिन्न महामारियों तथा अकालों से जूझ रहे थे। **1917-18** में इनकी फसल खराब हो गई थी तथा साथ ही मिट्टी के तेल, लोहे के सामान, कपड़े तथा नमक की कीमतें बढ़ गई थी, इसकी वजह से ये छोटे पाटीदार मालगुजारी देने में असमर्थ थे परन्तु सरकार ऐसा

मानने को तैयार नहीं थी। भूमिकर नियमों के यदि किसी वर्ष फसल साधारण से **25**प्रतिशत कम हो तो वैसी स्थिति में किसानों को भूमिकर में पूरी छूट मिलनी थी परन्तु बम्बई सरकार ऐसा मानने को तैयार नहीं थी कि उपज कम हुई थी। नवम्बर**, 1917** में कपड़गंज तालूके के मोहन लाल पांड्य ने खड़ाव फसल के कारण मालगुजारी की नाअदायगी का आन्दोलन प्रारम्भ किया**,** आगे गाँधी जी भी इस आन्दोलन से जुड़ गए। उन्होने तथा विट्ठल भाई पटेल ने पूरी जाँच पड़ताल के पश्चात् निष्कर्ष निकाल कि किसानों की माँग जायज है तथा राजस्व संहिता के अनुसार पूरा राजस्व माफ किया जाना चाहिए।

परन्तु जब सरकार पर अपील एवं याचिकाओं का असर नही पड़ा तो गाँधी जी ने किसानों को इस हेतु शपथ दिलाई कि वे किसी भी कीमत पर तब तक लगान की अदायगी नहीं करेंगे जब तक सरकार उनकी माँग नही मान लेती। वे अपने सहयोगियों के साथ गाँव-गाँव का दौरा करते तथा लोगों के मध्य जागृति फैलाते। उन्होंने यह भी प्रस्ताव रखा कि अगर सरकार गरीब किसानों का लगान माफ कर देती है तो जो लोग स्वेच्छा से लगान दे सकते हैं वे पूरा लगान चुका देंगे। आगे सरकार ने ऐसा ही आदेश दिया। इसके पश्चात् यह आन्दोलन वापस ले लिया गया।

2.6.3 एका आन्दोलन

एका आन्दोलन जमींदारों के शोषण के खिलाफ हरदोंई**,** बहराइच तथा सीतापुर आदि क्षेत्रों में चलाया गया। इस आन्दोलन में किसान गंगाजल की शपथ लेकर संकल्प लेते कि वे समय पर ही तथा उचित लगान देंगे तथा बेदखली को स्वीकार नही करेंगे। इसके अलावा वें जबरन मजदूरी नहीं करने**,** अपराधियों की मदद नहीं करने तथा पंचायतों के फैसले को मानने का भी संकल्प लेते थे।

इस आन्दोलन का नेतृत्व पिछड़ी जाति के मदारी पासी जैसे नेताओं के हाथों में था। मदारी पासी के नेतृत्व की खास बात थी कि वे काँग्रेस तथा खिलाफत नेताओं अनुशासित तथा अहिंसक सिद्धान्तों के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध नहीं थे। इस वजह से यह आन्दोलन पूरी तरह से राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्य धारा के साथ कदमताल नहीं कर सका। यह आन्दोलन पहले के किसान आन्दोलन से इस मायने में भिन्न था क्योकि इसके साथ छोटे-मोटे जमींदारों भी शामिल थे। ये ऐसे जमींदार थे जो वड़े हुए लगान के बोझ से परेशान एवं सरकार से नाराज थे। लेकिन सरकार ने दमन के बल पर मार्च**, 1922** तक आत-आते इस आन्दोलन को खत्म कर दिया तथा कृषकों को राहत के लिए **1926** में आगरा काश्तकारी अधिनियम तथा **1939** में एक काश्तकारी अधिनियम पारित किया।

20वीं सदी के किसान आन्दोलन की मुख्य विशेषता थी किसानों की समस्या रखने के लिए विभिन्न सभाओं का गठन होना। इसी क्रम में **1936** में अखिल भारतीय किसान सभा का गठन हुआ। इसकी पहली बैठक लखनऊ में हुई जिसकी अध्यक्षता स्वामी सहजानन्द ने की। सितम्बर का दिन किसान दिवस घोषित किया गया। इस किसान सभा ने किसान घोषणा-पत्र जारी किया जिसमें आर्थिक

शोषण से किसानों की मुक्ति की बात की गई। किसान सभा ने जमींदारी प्रथा की समाप्ति की भी माँग रखी।

2.6.4 तेभांगा आन्दोलन

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद का सबसे व्यापक खेतिहर आन्दोलन तेभांगा आन्दोलन था जो बंगाल के **19** जिलों में फैला तथा **60** लाख किसान इसके सहभागी बने। संघर्ष का सूत्रपात उस बटाईदारी व्यवस्था से हुआ जो बंगाल के अधिकांश हिस्सों में प्रचलित थी। **1946** में उत्तराद्धि में बंगाल में बटाईदारों ने ऐलान करना शुरू कर दिया कि वे अब जोतेदारों यानि भू-स्वामियों को उपज का आधा हिस्सा नहीं बल्कि एक तिहाई हिस्सा देंगे और हिस्सा बंटने तक उसके अपने खलिहानों में रहेगी। बंटाईदारों को ऐसी माँग रखने की प्रेरणा फ्लाउड़ कमीशन की रिर्पोट से मिली थी, जिसमें आधे की जगह एक तिहाई भाग लेने की सिफारिश सरकार से की गई थी। तेभागा आन्दोलन का नेतृत्व बंगाल प्रान्तीय सभा कर रही थी। आन्दोलन शीघ्र ही जोतेदारों तथा बटाईदारों के मध्य हिंसक संघर्ष में बदल गयी। आन्दोलन को और तब मिला जब सुहरावर्दी की मुस्लिम लीग मन्त्रिमण्डल ने **22** जनवरी **1947** को कलकत्ता गजट में बंगाल बटाईदार अस्थाई नियमन विधेयक पारित किया।

यह एहसास होते ही कि तेभांगा की उनकी माँग गैर-कानूनी नहीं हैं, उन गाँवों के किसान भी इस संघर्ष में शामिल हो गये जहाँ अब तक इस आन्दोलन की आहट तक नहीं पहुँची थी। बहुत सी गजहों पर किसान ने जमींदारों के खलिहानों में रखा अनाज अपने खभारों तक ले जाने की कोशिश की जिसके दौरान काफी हिंसा हुई। आन्दोलन जब उग्र होने लगा तो जोतेदारों ने सरकार से अपील की और पुलिस किसानों का दमन करने पर उतारू हो गयी। कई जगाहों पर हिंसक संघर्ष हुए। यह सब तब रो रहा था जब नोआखाती पर भंयकर सम्प्रादायिक दंगे हो रहे थे। इस आन्दोलन में मुस्लिम किसानों के साथ महिलाओं की भी व्यापक भागीदारी रही। सरकारी दमन, काँग्रेस तथा लीग की उदासीनता तथा किराए पर जमीन उठाने वाले बंगाली मध्यम वर्ग के कारण तथा मार्च, **1947** के अन्त में कलकत्ता में दुबारा दंगों की शुरूआत तथा इसके परिणाम ने आन्दोलन को स्थागित करने पर मजबूर कर दिया।

2.6.5 मोपला विद्रोह (20वीं सदी)

अगस्त **1921** में मालाबार तट पर मोपला किसानों ने एक बार पुनः विद्रोह कर दिया। मालाबार जिले के इन मोपलाओं का विद्रोह कई अन्य किसान संघर्षों के मुकाबले कही अधिक व्यापक तथा जुझारू था। इसकी समस्या भी देश के अन्य किसानों जैसी ही थी। जमींदारों जब चाहते उन्हें बेदखल कर देते, मनमाना लगान बसूलते तथा तरह-तरह के अत्याचार करते। यद्यपि **19**वीं सदी में भी मोपलाओं ने इन्हीं कारणों से विद्रोह किया था परन्तु **1921** के विद्रोह का स्वरूप थोड़ा भिन्न था।

माना जाता है कि **1920** में मंजेरी में मालाबार जिला काँग्रेस के सम्मेलन में जहाँ खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया गया वहीं किसानों की वाजिब माँगों का समर्थन करते हुए एक ऐसा कानून बनाने की माँग की गई जो जमीदार काश्तकार सम्बन्धों को तय करें। इसके आलोक में कोझीकोड़ में काश्तकारों का एक संगठन बनाया गया। इसके फौरन बाद जिले के अन्य भागों में भी ऐसे ही संगठन का निर्माण हूआ। ये संगठन काश्ताकरों की बैठकों को आयोजित करते जिनमें काश्तकारों की वाजिब माँगें उठाई जाती थी। इधर खिलाफत आन्दोलन ने भी जोर पकड़ लिया था।

खिलाफत तथा काश्तकारों के आन्दोलन के आगे बढ़ने से औपनिवेशिक सरकार घबरा गई क्योंकि गाँधी जी, शौकत अली तथा मौलाना आजाद जैसे नेताओं ने इन क्षेत्रों का दौरा कर आन्दोलन का समर्थन किया। **15** फरवरी **1921** को सरकार ने निषेधाज्ञा लागू कर सभी प्रकार की बैठकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया तथा सभी महत्वपूर्ण नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। सरकार के इस कदम का सबसे बडा परिणाम हुआ कि आन्दोलन का नेतृत्व स्थानीय मोपला नेताओं के हाथों में चला गया।

सरकारी दमन से क्रुद्ध होकर तथा प्रथम विश्व युद्ध में आंग्रेजों की हार की अफवाह से प्रेरित होकर मोपला काश्तकारों ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। सरकारी आदेश की अवहेलना की जाने लगी। एरनाड़ तालुके के मजिस्ट्रेट ने एक जमींदार के उकसाने पर जब बिना वारन्ट के खिलाफत आन्दोलन के एक नेता को गिरफ्तार करना चाहा तो मोपलाओं ने इसका विरोध किया। इससे मजिस्ट्रेट ने और सख़्त रूख अपनाया तथा सेना एवं पुलिस के जवानों को लेकर अली मुसलियार को गिरफ्तार करने के लिए निरूरागंड़ी मस्जिद पर छापा मारा। अली मुसलियार के नही मिलने पर खिलाफत आन्दोलन के तीन अन्य नेता को गिरफ्तार कर लिया गया। इस घटना के पश्चात् अफवाह फैल गयी की अंग्रेजी सेना ने पवित्र मस्जिद का नष्ट कर दिया है। बहुत से मोपला एकत्रित हो गए परन्तु पुलिस के द्वारा इन पर गोलियाँ चला देने से ये लोग हिंसक विद्रोह पर उतारू हो गये। सरकारी कार्यालयों को तहस-नहस कर दिया गया, दस्तावेज जला दिये गये, खजाने को लूट लिया गया। इस प्रकार विद्रोह की आग पूरे एरनाड़ में फैल गयी।

पूरा विद्रोह दो चरणों में चला। प्रथम चरण में विद्रोहियों ने बदनाम जमींदारों, विदेशी बागान मालिकों तथा सरकारी प्रतिष्ठानों को निशाना बनाया। उदार जमींदारों तथा गरीब हिन्दुओं को छोड़ दिया गया। विद्रोही गाँव-गाँव घूमते तथा वैसे जमींदारों को लूटते तथा घरों में आग लगाते। कुछ विद्रोही नेता जैसे कुनहमद हाजी इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे कि हिन्दुओं को न सताया जाए। लेकिन आन्दोलन के दूसरे चरण में हिन्दू विरोधी भावना भी देखने को मिली। दूसरे चरण में सरकार ने माशील लां की घोषणा की तथा हिन्दुओं को प्रशासन का साथ देने को कहा। इसका परिणाम हुआ कि मोपलाओं में पहले से ही सुलगती हिन्दू विरोधी भावना भड़क उठी। जैसे-जैसे सत्ता का दमन बढ़ता गया हिन्दुओं पर हमला, उनकी हत्या तथा जबरन धर्म परिवर्तन की घटना भी आगे बढने लगी। मोपला आन्दोलन के साम्प्रादायिक होने से राष्ट्रीय काँग्रेस ने इससे अपना समर्थन वापस ले

लिया जिसका फायदा उठाते हुए **1921** के अन्त तक मोपलाओं के विद्रोह का सरकार ने भारी दमन कर उसे शान्त कर दिया।

2.6.6 बारदोली सत्याग्रह

यह सत्यग्रह सूरत ज़िले के बारदोली तालूके में किसानों द्वारा संगठित किया गया। इस आन्दोलन को कल्याण जी तथा कुंवर जी मेहता ने संगठित किया। **1927** में कपास की गिरती हुई कीमतों के बावजूद बम्बई के गवर्नर ने यहाँ के मालगुजारी में **30** प्रतिशत वृद्धि की घोषणा कर दी थी। इस मुद्दे पर काँग्रेस के नेताओं ने विरोध करने का निश्चय किया तथा इस मामले की जाँच के लिए बारदोली जाँच समिति का गठन किया गया जिसने अपनी जाँच में लगान बढ़ोतरी को अनुचित बताया। इसके पश्चात् अखबारों में लगान बढ़ोतरी के खिलाफ मुहिम छेड़ दी गयी। संवैधानिक संघर्ष में आस्था रखने वाले क्षेत्रीय नेताओं ने जिसमें विधान परिषद के सदस्य भी शामिल थे, ने इस मुद्दे को जोरदार ढंग से उठाया। खेदूत मंड़ल के माध्यम से किसानों की बैठके आयोजित की गयी तथा जिले के कलक्टर को याचिका भेजने की सलाह दी। जुलाई **1927** में सरकार ने **30** प्रतिशत लगान वृद्धि को घटाकर **21.97** प्रतिशत कर दिया। लेकिन यह रियायत मामूली थी तथा इतनी देर से घोषित की गई थी कि इससे कोई भी सन्तुष्ट नही हुआ।

अन्ततः जनवरी **1928** के पश्चात् वल्लभ भाई पटेल ने इस आन्दोलन का नेतृत्व सम्भाल लिया। प्रारम्भ में उन्होंने पत्र लिखकर सरकार से माँग की कि बढ़े हुए लगान को वापस ले लिया जाए अन्यथा किसान लगान नहीं देंगे, परन्तु सरकार का जबाव अत्यन्त ठण्ड़ा रहा। अन्ततः बारदोली तालूके में किसानों की एक बैठक हुई तथा प्रस्ताव पारित कर लगान की अदायगी तब तक न करने का निर्णय लिया गया जब तक कि सरकार किसी निष्पक्ष ट्रिब्यूनल का गठन नहीं करती अथवा पहले से ही दिये जा रहे लगान को पूरी अदायगी के रूप में स्वीकार नहीं करती। संघर्ष के लिए जागरूकता पैदा करने का काम मुख्य रूप से बैठकों, भाषणों, पत्रों के माध्यम से तथा घर-घर जाकर किया गया। आन्दोलन के नेताओं द्वारा उन लोगों के सामाजिक बहिष्कार का आह्वान किया गया जो चुपके से लगान भरने की तैयारी कर रहे थे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जाति और ग्राम पंचायतों का भरपूर प्रयोग किया गया। सरकारी अधिकारियों के खिलाफ सामाजिक बहिष्कार के अस्त्र का पूरी तरह प्रयोग किया गया। उन्हें खाद्य सामग्री तथा अन्य जरूरत की वस्तुओं से महरूम किया गया।

बारदोली सत्याग्रह शीघ्र ही एक राष्ट्रीय मुद्दा बन गया। अहमदाबाद के कामगारों ने एक-एक आना चन्दा करके लगभग **1300** रूपये इस आन्दोलन को भेजे। देश का जनमत लगातार इस आन्दोलन के पक्ष में बन रहा था। बम्बई प्रेसीड़ेसी के कई अन्य हिस्सों में भी किसान अपने लगान के पुनर्निधारण पर बल देने लगे। बम्बई के कपड़ा मिलो के मजदूर हड़ताल पर थे तथा सरकार का ड़र था कि पटेल तथा बम्बई के कम्यूनिस्ट नेता मिलकर रेल हड़ताल न करा दे, इससे सेना तथा उसका

रसद बम्बई नहीं पहुँच पाता। अगस्त **1928** में स्वयं गाँधी जी भी बारदोली पहुंच गये, अब सरकार के पास झुकने के अलावा कोई चारा नहीं था।

अन्ततः एक न्यायिक अधिकारी ब्रमफील्ड तथा एक राजस्व अधिकारी मैक्सवेल ने सारे मामले की जाँच की तथा निष्कर्ष निकाला कि **30** लगान बढ़ोतरी गलत थी तथा इसे घटा दिया गया।

2.7 श्रमिक वर्ग (मजदूर)

श्रमिक वर्ग भारतीय इतिहास के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण पहलू है। श्रमिक प्रायः अनपढ़ होते थे। यही कारण है कि इन्हें अपने सुधार हेतु प्राथमिक कदमों पर अधिक ज्ञान नहीं हो सकी। जबकि **19**वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में ही भारत में आधुनिक मजदूर (श्रमिक) वर्ग का उदय हो गया था। टे*ड यूनियन श्रमिकों का एक ऐसा संघ आया जिसका गठन मिलों और कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की अवस्था एवं स्थिति की सुधार करने के उद्देश्य से किया गया। यूनियनवाद श्रमिक संघ क्रमिक विचारधारा पर केन्द्रित था। अतः पहले टे*ड यूनियन का विचार नहीं आया। बुद्धिजीवियों के प्रयास से ट्रेड यूनियन के गठन का मार्ग प्रशस्त हुआ।

1877 ई**0** में अपने नियोजकों के विरूद्ध हड़ताल के रूप में मजदूरों की कार्रवाई का पहला उदाहरण नागपुर एम्प्रेस मिल में हड़ताल के रूप में मिलता है। इसका कारण मजदूरी की दर को लेकर था। एन**0**एम**0** लोखंडी ने **1890** ई**0** में बाम्बे मिल हैन्ड्स एसोसिऐशन की स्थापना की जिसे प्रायः भारत में गठित प्रथम मजदूर संगठन कहा जाता है। यद्यपि यह ट्रेड यूनियन नहीं था। **1897** ई**0** में कोष स्थायी सदस्यता तथा स्पष्ट नियमों के साथ पहली बार एक मजदूर संगठन अमलगमेटेड सोसाइटी ऑफ रेलवे सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड बर्मा का गठन हुआ। मजदूर वर्ग के किसी तबके की पहली संगठित हड़ताल ब्रिटिश स्वामित्व और प्रबन्ध में चलने वाली रेलों में हुई। जिसका नाम ग्रेट इण्डियन पेनन्सुला रेलवे था। यह हड़ताल **1899** ई**0** में मजदूरी काम के घण्टों तथा अन्य सेवा शर्तो में सुधार के कारण हुई थी। लगभग सभी राष्ट्रवादी अखबारों ने खुलकर इस हड़ताल का समर्थन किया। **1905** ई**0** में कलकत्ता की प्रिंटर्स यूनियन की स्थापना हुई जबकि **1907** ई**0** में बम्बई की पोस्टल यूनियन की स्थापना हुई। **1908** ई**0** में तिलक की गिरफ्तारी के विरोध में बम्बई की कपडा मिलों ने हड़ताल किया। यह मजदूरों की पहली राजनीतिक हड़ताल थी।

प्रथम विश्व युद्ध एवं उसी के दौरान रूस की समाजवादी क्रान्ति ने मिलकर भारत के मजदूर वर्ग एवं उनके आन्दोलन में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। प्रथम विश्व युद्ध का परिणाम यह हुआ कि भारत के कल-कारखानों का उत्पादन बढ़ गया और औद्योगिक प्रगति हुई। मिल मालिकों ने युद्ध के दौरान अत्याधिक लाभ कमाया किन्तु मजदूरों का वास्तविक वेतन बढ़ने के बजाय औसतन कम हो गया। नियमित सदस्यता और शुल्क के साथ पहला व्यवस्थित श्रमिक संघ 'मद्रास श्रमिक संघ था जिसकी स्थापना वी**0**पी**0** वाडिया ने **1918** ई**0** में मद्रास में की थी। यह कपड़ा उद्योग से सम्बन्धित था। यही

भारत का पहला वास्तविक टे*ड यूनियन माना जाता है। गाँधी जी द्वारा **1918** ई**0** में 'अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिऐशन' की स्थापना की गई। यह उस समय की सबसे बड़ी ट्रेड यूनियन थी। यहीं गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया। इसमें उन्होंने बताया कि पूँजीपति, मजदूरो के हितों की रक्षा करने वाला ट्रस्टी होता है। आचार्य जे**0**बी**0** कृपलानी ने स्पष्ट किया है कि ट्रस्टीशिप का अर्थ ही यह है कि पूँजीपति मालिक नहीं है। इसका मालिक वह है जिसके हितों की रक्षा के लिए उसे जिम्मेदारी सौंपी गई है अर्थात् वास्तविक मालिक मजदूर है। मजदूर संघ आन्दोलन की सबसे महत्वपूर्ण घटना 'आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना है।

2.7.1 आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस

इसकी स्थापना मुम्बई में **1920** ई**0** में हुई थी। इसके मुख्य सस्थापक एन**0**एम**0** जोशी थे जबकि इसके अध्यक्ष लाला लाजपत राय, उपाध्यक्ष जोसेफ बैप्टिस्ट तथा महामंत्री दीवान चमनलाल थे। इसका जन्म **107** टे*ड यूनियनों के मिलने से हुआ। इसकी स्थापना का मूल कारण **1919** ई**0** में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' की स्थापना था। अतः भारत में भी श्रमिक संगठनों ने आपस में संगठित होने का फैसला किया। एन**0**एम**0** जोशी आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में भेजे गए।

इस यूनियन का प्रथम विभाजन **1929** ई**0** में नागपुर के अधिवेशन में हुआ जहाँ जवाहर लाल नेहरू अध्यक्ष बनें। इस विभाजन का मूल कारण साम्यवादियों एवं सुधारवादियों के बीच मदभेद था। इस अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट की आलोचना भी की गई। अतः दक्षिणपंथी इससे अलग हो गए और उन्होंने एन**0**एम**0** जोशी और वी**0**वी**0** गिरी के नेतृत्व में इण्डियन ट्रेड़ यूनियन फेडरेशन' का गठन किया।आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस' में दूसरा विभाजन **1931** ई**0** में हुआ जब रणदिबे और देश पाण्डे ने इस वर्ष रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस' का गठन किया। **1934** ई**0** में आल इण्डिया टे*ड यूनियन कांग्रेस' और रेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस' आपस में मिल गये। **1938** ई**0** में इसमें 'इण्डियन ट्रेड़ यूनियन फेडरेशन' भी मिल गई। इस प्रकार **1938** ई**0** में इनका पहला संयुक्त अधिवेशन नागपुर में हुआ।

1922 ई**0** के बाद मजदूर वर्ग के आन्दोलन में शिथिलता आई लेकिन वामपंथ के आविर्भाव के कारण **1925** ई**0** के बाद मजदूर वर्ग की गतिविधियों को प्रोत्साहन मिला। विभिन्न प्रान्तों में दलों ने किसान कामगार पार्टियों का संगठित करना प्रारम्भ किया। **1925** ई**0** में सर्वप्रथम कलकत्ता (कोलकाता) ने प्रान्तीय स्तर पर मजदूर किसान पार्टी बनी। सभी प्रान्तीय दलों ने मिलकर **1928** ई**0** में अखिल भारतीय मजदूर एवं किसान पार्टी का गठन किया जिसका प्रथम अधिवेशन सोहनलाल जोशी की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुआ। **1928** ई**0** में बम्बई (मुम्बई) कपडा मिल मजदूरों ने सबसे बडी हड़ताल की यह छः माह तक चली तथा इसमें डेढ़ लाख लोगों ने भाग लिया।

2.7.2 इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस

द्वितीय विश्व युद्ध के दोरान मजदूर गतिविधियाँ कुछ हद तक रूक सी गई लेकिन **1945** ई0 के बाद इनके गतिविधियाँ पुनः तेज हो गई। कांग्रेस राष्ट्रवादियों ने **1947** ई0 में 'इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस' की स्थापना की। जिसके सस्थापक सदस्य बल्लभ भाई पटेल, वी0वी0 गिरि आदि थे। जबकि इसके प्रथम अध्यक्ष बल्लभ भाई पटेल चुने गए।

ट्रेड यूनियन की गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए अंग्रेजी सरकार ने दो प्रमुख अधिनियम पारित किये -

1. ट्रेड यूनियन अधिनियम - इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित थी।
    - मजदूरों का हड़ताल करने की कानूनी मान्यता मिल गई।
    - मजदूरों को राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।
2. ट्रेड डिस्प्यूट अधिनियम - इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताऐं निम्नलिखित थी।
    - दूसरों के समर्थन में की जाने वाली हड़तालों पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये।
    - अति आवश्यक सेवाओं तथा बिजली पानी रेलवे आदि में हड़ताल करने पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

2.8 प्रमुख श्रमिक आयोग

1875 ई0 में भारतीय श्रम पर प्रथम आयोग का गठन हुआ जो लंकाशायर के उद्योगपतियों के माँग पर बनाया गया इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय कारखानों में श्रमिकों के काम करने के परिस्थितियों का अध्ययन करना था। इसके तहत निम्नलिखित कारखाना कानून बने।

2.8.1 प्रथम कारखाना कानून (1881 ई0)

यह कानून बाल श्रम से सम्बन्धित था इसके निम्नलिखित प्रावधान थे।

- सात वर्ष से कम आयु के बच्चों को कारखानों में नहीं लगाया जा सकता।
- बारह वर्ष से कम आयु के बच्चों के काम करने के घण्टों को सीमित किया गया।

2.8.2 द्वितीय कारखाना कानून (1891 ई0)

यह स्त्रियों की स्थिति में सुधार से सम्बन्धित था। जिसमें डेढ़ घण्टे के मध्यावकाश एवं साप्ताहिक अवकाश की व्यवस्था की गई।

2.8.3 त्रितीय कारखाना कानून (1911 ई0)

यह औद्योगिक श्रमिकों के सुरक्षा तथा स्वस्थ्य से सम्बन्धित था।

2.8.4 चतुर्थ कारखाना कानून (1922 ई0)

यह कानून केवल फैक्ट्रियों पर लागू होता था।

2.9 सारांश

इस अध्ययन से यह पता चलता है कि **19**वीं-**20**वीं सदी में ब्रिटिश एवं जमींदारों के द्वारा किसानों पर भारी मात्रा में कर लगाये गये यहाँ तक कि फसल नष्ट होने तथा अकाल की स्थिति में भी करों की प्रतिशतता में कोई कमी नहीं की गयी साथ की कर न देने की स्थिति में किसानों को यातानाएं दी गयी यहाँ तक कि उनके घर की महिलाओं को भी नही छोड़ा गया। इसके अलावा कर देने के लिए किसानों को महाजनों से ऋण लेना पड़ा तथा इस ऋण को न चुका पाने के कारण अपनी ही जमीनों पर भूमिहीन मजदूरों के रूप में कार्य करने को मजबूर होना पड़ा। कभी-कभी तो ऋण के बोझ के चलते ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती थी कि किसानों एवं उनके परिवार वालों को बेगारी तक करनी पड़ती थी। जिस कारणवश किसानों की स्थिति बद से बद्तर होती जा रही थी साथ ही किसानों को न्यायिक संरक्षण भी प्राप्त नही था क्योकि अधिकतर मजिस्ट्रेट या तो यूरोपीय थे या फिर जमींदार। इस प्रकार के अत्याचारों ने भोले- भाले किसानों को विद्रोह करने पर विवश कर दिया जिसका परिणाम हमें **19**वीं तथा **20**वीं शताब्दी में विभिन्न किसान विद्रोहों के रूप में देखने को मिलता हैं। इसी प्रकार **19**वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुए मजदूर के क्रियाकलापों में **20**वीं शताब्दी में भी चलती रही। इस शताब्दी में बुद्धजीवियों तथा वामपंथियों ने इनका रास्ता टे*ड यूनियन आदि बनाकर प्रसस्त किया।

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

नोट - निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।

I. **1780-81** में बनारस के राजा चैत सिंह का विद्रोह पुनर्संस्थापनात्मक स्वरूप के अधीन हुआ। (सत्य/असत्य)

II. सन्यासी विद्रोह करने वालों में मूलतः कृषक हिन्दू तथा मुसलमान दोनों थे। (सत्य/असत्य)

III. पालगपंथी विद्रोह का प्रेरक टीपू एक राजकुमार वंश से थे। (सत्य/असत्य)

IV. फरायजी आन्दोलन की स्थापना हाजी शरीयतुल्लाह ने किया था। (सत्य/असत्य)

V. वहाबी आन्दोलन सिर्फ अंग्रेजी सरकार का विरोधी था कृषक से सम्बन्धित नही था। (सत्य/असत्य)

VI. मोपला विद्रोह आसाम में ही केन्द्रित था। (सत्य/असत्य)

VII. **19**वीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल में पाबना स्थान में किसानों ने जमींदारों के शोषण के विरूद्ध विद्रोह किया। (सत्य/असत्य)

VII. दीनबन्धु मित्र ने नील दर्पण' में नील आन्दोलन का विस्तार पूर्वक वर्णन किया था। (सत्य/असत्य)

IX. ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन की स्थापना **1920** ई**0** में हुई। (सत्य/असत्य)

X. मद्रास श्रमिक संघ' प्रथम व्यवस्थित श्रमिक संघ था। (सत्य/असत्य)

उत्तर:

I. सत्य

II. सत्य

III. असत्य

IV. सत्य

V. असत्य

VI. असत्य

VII. सत्य

VIII. सत्य

IX. सत्य

X. सत्य

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. चन्द्रा बिपन - इण्डियास स्ट्रेगिल फोर इन्डेपेन्डेन्स**,** पेंगुइन बुक,दिल्ली, **1993 (**अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)

2. चन्द्रा, बिपन - इण्डिया आफटर इन्डेपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक,दिल्ली, **1993**

3. सरकार, सुमित - मॉडर्न इण्डिया **1885-1947** मेकमिलन इण्डिया लिमिटेड मद्रास **1983 (**अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)

4. इग्नू कोर्स - मोडर्न इण्डियन हिस्ट्री, **1999 (**अंग्रेजी व हिन्दी दोनों में है)

2.12 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बन्द्योपाध्याय, सेखर, फ्राम प्लासी टू पार्टिशन: ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया, ओरिएण्ट ब्लैक स्वान**,** दिल्ली-**2004**

2. गॉधी**,** एम**0**के**0,** हिन्द स्वाराज/इण्डियन होमरूल, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, **1996**

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न .**1** प्रमुख किसान आन्दोलन के मुख्य कारणों को उदाहरण सहित व्याख्या करै।

प्रश्न .2 19**वीं सदी के प्रमुख कृषकों के क्षेत्रों तथा उनके विद्रोहों की व्याख्या कीजिए।**

प्रश्न .**3** **20**वीं सदी में हुए किसान आन्दोलन में गाँधी जी की भूमिका पर प्रकाश डालें।

प्रश्न .**4** प्रमुख किसान आन्दोलन **'**नील विद्रोह**'** पर एक टिप्पणी करें।

प्रश्न .**5** परिवर्तनवादी व्यवस्था पर एक लेख उदाहरण सहित लिखिए।

प्रश्न .**6** ऑल इण्डिया ट्रेड यूनियन की व्याख्या करते हुए **20**वीं सदी में इसकी विशेषता पर प्रकाश डालें।

जनजातियां एवं जनजातीय विद्रोह

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 जनजातीय आंदोलन के कारण

3.4 जनजातीय आन्दोलन का स्वरूप

3.5 प्रमुख जनजातीय विद्रोह

3.5.1 कोल विद्रोह

3.5.2 संथाल विद्रोह

3.5.3 खेरवा विद्रोह

3.5.4 बिरसा मुंडा एक नायक के रूप में

3.6 20वीं सदी का जनजातीय विद्रोह

3.6.1 ताना भगत विद्रोह

3.6.2 कूकी विद्रोह

3.7 सारांश

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.1 प्रस्तावना

भारत सदियों से एक कृषि प्रधान देश रहा है। इस क्षेत्र में कृषक के रूप में आदिवासियों ने भी अपनी भागीदारी से कृषि कार्य को सुशोभित करते रहे हैं। इस कार्य में विहार के छोटा नागपुर और संथाल परगना के आदिवासी पलामू के जनजातीय, आधुनिक उड़ीसा तथा पश्चिम बंगाल के जनजातीय, छोटा नागपुर के कोल तथा मुडां जनजातीय, भागलपुर तथा राजमहल के मध्य निवास

करने वाली संथाल जनजातीय और भारत के पूर्वी प्रदेश में कई अन्य जनजातियाँ निवास करती थी तथा कृषि कार्य में लगन के साथ कार्य करती थीं। अंग्रेज़ी शासन का भारत में जैसे.जैसे जड़ मजबूत होता गया धीरे.धीरे इन आदिवासियों की परेशानी भी बढती गई जिसके परिणाम स्वरूप आदिवासीय जनजातियों ने अंग्रेजी शासन के विरूद्ध अपना आक्रोश प्रकट करने लगे।

इसी सन्दर्भ में भारत के विभिन्न भागों के बहुत बड़े क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों ने 19वीं सदी में ब्रिटिश शासन के खिलाफ गंभीर बिद्रोह किये। भारत में जनजातीय आन्दोनल औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। कुछ रीति-रिवाजों तथा परम्पराओं को छोडकर अन्य दृष्टि से जनजाति लोग भी भारतीय जीवन का हिस्सा थे। आमतौर पर जनजातीय समाज अभी भी आदिम के रूप में देखा जाता था। इसमें से कृषि पर निर्भर था। विस्तार तथा कुछ हिस्सा औपनिवेशीकरण नीति ने अंग्रेजी शासक को जनजातीय क्षेत्रों में आने के लिए प्रोत्साहित किया। भ्रष्टाचार तथा अत्याचार के इलाके में घुसपैठ की, तो उनमें घोर असंतोष होना स्वाभाविक ही था, किन्तु जनजातीय लोगों की प्रतिक्रिया अन्य विद्रोहों से इस रूप में भिन्न थी कि यह अपेक्षाकृत ज्यादा हिंसक तथा धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत थी।

1857 ई0 के पूर्व आदिवासियों ने अनेक बार सरकारी भूमि-सम्बन्धी नीतियों जमीदारों के अत्याचारों तथा आर्थिक शोषण के विरूद्ध विद्रोह की थी। सरकार ने इन्हें सैनिक सहायता का सहारा लेकर दबा दिया था परन्तु आदिवासियों की दयनीय स्थिति सुधारने हेतु कोई सन्तोष जनक प्रयास नहीं किया। इसी कारण 19वीं सदी के मध्य प्रारम्भ हुए आदिवासियों के अनेक आन्दोलन 20वीं सदी में भी चलते रहे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढनें के बाद आप निम्नलिखित बातों को आसानी से समझ सकते हैं।

- 19वीं सदी में जनजातियों की स्थिति तथा उनके द्वारा आन्दोलन।
- 20वीं सदी में जनजातियों की स्थिति तथा जनजातीय विद्रोह।
- जनजातीय आन्दोलन के कारण।
- जनजातीय आन्दोलन के स्वरूप।
- प्रमुख जनजातीय विद्रोहों में भाग लेने वाली जातियाँ।
- बिरसा मुडां के नेतृत्व में जनजातीय विद्रोह।

- कई अन्य जनजातियों का भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे विद्रोह।
- अंग्रेजों का जनजातियों के साथ बर्ताव।

3.3 जनजातीय आंदोलन के कारण

सभी जनजातीय विद्रोहों के पीछे मुख्य कारण आर्थिक शोषण था। बिट्रिश शासित क्षेत्र के विस्तार के साथ ही अंग्रेजी राज ने आदिवासी कबीले के सरदारों को जमीदार का दर्जा दिया तथा लगान की नई प्रणाली भी लागू किया। स्थाई बन्दोबस्त के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र में बंजर भूमी से लाभ उठाने का अधिकार जमीदारों को मिला हुआ था सीमान्त भूमि वाले लोगों के लिए इसके परिणाम काफी महत्वपूर्ण थे। नई भूमि व्यवस्था, व्यतिगत सम्पति को ब्रिटिस अवधारणा, सयुक्त सम्पत्ति को जनजातीय अवधारणा से पूर्णतः पृथक थी। इस व्यवस्था के कारण उनकी भूमि उनके हाथों से निकलती चली गयी और वे धीरे-धीरे किसान से कृषि मजदूर में तब्दील होते गए।

जंगलों से उनके गहरे रिश्तों को भी औपनिवेशिक शासन ने तोड़ डाला। इससे पहले वे भोजन तथा पशुओं का चारा जंगलो से जुटाते थे, जहां उनका जीवन पूरी तरह स्वच्छंद था। खेती के उनके अपने तरीके थे, जगह बदलकर 'झूम' अथवा 'पडु' विधियों से खेती करते थे। यानी जब उन्हे लगता था कि खेत अब उपजाउ नही रह गये है तो जंगल साफ करके खेती की नयी भूमि प्राप्त कर लेते थे। परन्तु 1867ई0 के पश्चात ब्रिटिश सरकार ने झूम खेती पर पाबन्दी लगा दी और इमारती लकडी एवं चराऐ पर रोक लगा कर वन सम्पति पर एकाधिकार करने के प्रयास किये। इससे जनजातीय विद्रोह की भावना को प्रश्रय मिला।

अंग्रेजी शासन के विस्तार के साथ शोषण के नए अभिकारण विकसित हो गए। नयी भूमि व्यवस्था ने उनके बीच महाजनों, व्यापारियों और लगान वसूलने वालों के एक ऐसे बिचौलिये समूह को स्थापित कर दिया, जिनका उदेश्य था जनजातीय लोगों का अधिकाधिक शोषण करना। इन शोषण अभिकरणो को पुलिस प्रशासन तथा न्याय प्रशासन की जटिल प्रणाली से संरक्षण मिलता था। अन्य छोटे मोटे अधिकारियों द्धारा किये जाने वाले अत्याचारों शोषण और जबरन उगाही ने जनजातीय लोगों का जीना दुर्लभ कर दिया। नवीन न्याय प्रणाली भी जनजातियों की संरक्षण नही बन पाई क्योंकि यह जटील एवं विलम्बकारी होने के साथ-साथ अक्सर प्रभावी पक्ष को ही संरक्षण देने वाली हो जाती थी। लगान वसूलने वाले लोगों और महाजनो जैसे सरकारी बिचौलिए एवं दलाल इन जनजातियों का शोषण तो करते ही थे, उनसे जबरन बेगारी भी कराते थे।

अनुबंधित मजदूरी की व्यवस्था से भी आदिवासियों में गहरा असन्तोष था। अनुबंधित व्यवस्था के तहत आदिवासियों को गंदे तथा अस्वास्थ्यकारी वातावरण में काम करने के लिए भेज दिया जाता था जहाँ से वे अनुबंध समाप्त होने के बाद ही वापस लौट सकते थे। कई बार तो ऐसे

वातावरण में काम करने से उनकी जान चली जाती थी अथवा वे गम्भीर बीमारियों से ग्रसित हो जाते थे। अनुबंधित मजदूरी की वजह से आदिवासियो को अपने समाजिक परिवेश से उखड़ जाने तथा अपनी संस्कृति खो देने का भय बराबर बना रहता था।

जनजातीय लोगो में असंतोष के पीछे एक अन्य कारण ईसाई मिशनरियों की भूमिका को भी माना जाता है, मुख्यतया बिहार तथा असम के सदर्भ में। ईसाई मिशनरियों ने जनजातीयों के क्षेत्रो में शिक्षा का प्रसार किया तथा सामाजिक सोपान में ऊँचा स्थान पाने की आशा भी उसमें जाग्रत की। उन्होने ने जनजातीय लोगों को शोषण के विरूद्ध सहायता करने का लालच भी दिया। परन्तु ईसाई मिशनरियों की उपस्थिति ने एक विशेष प्रकार के तनाव की स्थित उत्पन कर दी और अन्ततः एक प्रकार का सांस्कृतिक संघर्ष भी छिड़ गया।

3.4 जनजातीय आन्दोलन का स्वरूप

जनजातीय असन्तोष दो रूपों में व्यक्त हुआ। प्रथम अकस्मात विद्रोह तथा द्वितीय आन्तरिक धार्मिक सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार के रूप में परन्तु दोनो ही स्थितियों में औपनिवेशिक शासन के खिलाफ तीव्र घृणा व्यक्त की गयी। जनजातीय विद्रोह की मुख्य बात यह रही कि उन्होने वर्ग के आधार पर नही बल्कि जाति के आधार पर और जनजाति पहचान जैसे - संथाल, कोल, मुंडा आदि के रूप में अपने आपको संगठित किया। उनकी इस रूप में एकजुटता का आलम यह था कि उन्होने कभी भी आदिवासियों पर हमला नहीं किया।

जनजातियों के असंतोष में कुछ हद तक जाति आधार के साथ आर्थिक आधार को भी जोडने की प्रवृत्ति दिखाई देती है क्योकि वे सभी बाहरी लोगों को दुश्मन नही मानते थे। बाहर से उनके ईलाकों में बसे ऐसे लोगों पर वे आमतौर पर हमला नही करते थे जो गरीब होते थे अर्थात आदिवासी गाव की अर्थव्यवस्था में जिनकी भूमिका सहायक थी या जिन लोगों ने आदिवासियों से गहरे सामाजिक रिस्ते बना लिये थे। इन लोगो में ग्वाले, लोहार, बढई, कुम्हार, जुलाहे, धोबी, नाई, बंधुआ, मजदूर तथा घरेलू नौकर शामिल थे। ये लोग न केवल आदिवासियों के हमलें से बचे बल्कि कई मौकों पर तो ये आदिवासियों के साथ मिलकर लड़े भी। यह कहना उचित होगा कि ऐसे मौको पर जाति ने नहीं बल्कि वर्ग ने उनको एक-दूसरे के साथ जोड़ा।

जनजातीय विद्रोह अपेक्षाकृत हिंसक तथा धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत था। कई बार कई आदिवासी क्षेत्रों में एक ही समय में बाहरी लोगों के विरूद्ध हिंसक संघर्ष भड़का। बाहरी लोगों के पक्ष में प्रशासन के खडे हो जाने से औपनिवेशिक शासन के अधिकारीयों से भी इनका संघर्ष शुरू हो गया। इन संघर्षो को मौके पर कई बार इनके बीच ओझाओं जैसे चमत्कारिक नेता भी उभरे जिन्होने इन्हे आश्वस्त किया कि ईश्वर उनके कष्टों को दूर करेगा तथा बाहरी लोगों के शोषण से बचायेगा। वे लोग अक्सर ये भी दावा करते थे कि उनके पास जादूई ताकत है जिससे वे दुश्मन की

गोलियों को भी बेअसर कर सकते है। इन आश्वासनों ने जनजातियों के लोगों में आशा और विश्वास की ऐसी लहर पैदा कर दी कि वें आखिरी सांस तक अपने नेता के साथ मिलकर लड़ते रहे। इस प्रकार 19वीं सदी के जनजाति आन्दोलन स्वर्णयुग एवं महाप्रलय की अवधारणा से प्रेरित था अर्थात इनकी दृष्टि मसीहावादी थी, परन्तु 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन औपनिवेशिक के चरित्र की समझ प्रदर्शित नही करते थे।

3.5 प्रमुख जनजातीय विद्रोह

अंग्रेजी भू-बन्दोबस्त व्यवस्था के विरूद्ध पहला व्यापक जनजातीय विद्रोह 1790 में प्रारम्भ हुआ जहॉ पलामू जनजाति के लोगों ने जमीदारों के शोषणकारी रवैये से पस्त होकर विरोध प्रारम्भ किया। राजा द्धारा की गई सैनिक कार्यवाही ने उसके विरोध को और हवा दी। अंग्रेजों ने समस्या के शीघ्र समाधान के लिए राजा को हराकर उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को बैठा दिया किन्तु इससे समस्या का अन्त नही हुआ। इसी तरह 1817 में चेरो ने तथा 1819 में मुंडाओं ने इन जमीदारों के समर्थन में विद्रोह कर दिया जिनसे अंग्रेजों ने सारी शक्तिया छीन ली थी।

इसी क्षेत्र के दक्षिण भाग में आधुनिक उडीसा तथा पं0 बंगाल की सीमा पर पोरहर नामक स्थान पर 1820 ई0 में होस जनजातियों ने विद्रोह कर दिया किन्तु जमीदारो ने ब्रिटिश सेना की सहायता से 1821-22 में इस विद्रोह को दबा दिया परन्तु समझौता की शर्तो के अनुरूप होस जनजातियों को बहुत सी छूट देनी पडी। उदाहरण के लिए उन्होने कंपनी की प्रभुसत्ता स्वीकार करने के लिए, जमीदारों को कर देने के लिए, अपने गांवों में सभी जातियो के लोगों को बसने देने के लिए, और अपने बच्चों को हिन्दी अथवा उड़िया सिखाने के लिए राजी होना पडा। अब इन क्षेत्रों में ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था लागू हो सकती थी। इसके बाद से मैदानी लोगों को आदिवासियों की जमीन के पुश्तैनी अधिकार मिलने लगे। कालान्तर में इस प्रवृत्ति में वृद्धि ही हुयी।

3.5.1 कोल विद्रोह

1822 ई0 में छोटा नागपुर के कोल जनजातीय लोगों का विद्रोह प्रारम्भ हुआ। छोटा नागपुर क्षेत्र में मुंडा, उरांव, मोहाली आदि सभी जनजातियों को मैदानी लोग कोल कहते थे। इन्हे इस बात से गहरा असंतोष था कि 1822 में सरकार ने चावल से निर्मित कम नशीली शराब (हडिया) पर उत्पाद शुल्क लगा दिया था जो कि प्रति घर चार आने होता था तथा 1830 में इस उत्पाद शुल्क को लागू भी कर दिया गया। 1827 से इन क्षेत्रो में जबरन अफीम उगाया जाने लगा। अंग्रेजो ने इन्हें एक-दूसरे से लडवाकर कमजोर करने का भी प्रयत्न किया परन्तु आदिवासियों ने संगठित होकर काम किया तथा 1831 में विद्रोह कर दिया। इसे कोल विद्रोह के नाम से जाना जाता है इस विद्रोह का नेतृत्व सिंदराय मानकी तथा विंदराय मानकी ने किया।

11 दिसम्बर 1831 के दिन तमाड बडगांव के लोग लंका नामक गांव में एकत्रित हुए जहां विदेशी शासन, स्थानीय जमीदार तथा दिकुओं के खिलाफ आन्दोलन करने का निर्णय लिया गया। यद्यपि इस विद्रोह मे कम लोगों की मृत्यु हुई किन्तु चार हजार मकानों तथा अनेक कचहरियों को जला दिया गया। आदिवासी अनाज तथा पशुओं को लेकर जंगल में जा बसे तथा पॉच महिनो तक अपना संघर्ष जारी रखा। समस्या को सुलझाने के लिए सरकार ने इस क्षेत्र को दक्षिणी-पश्चिम सीमान्त ऐजेन्सी के नाम से एक अलग ईकाई बना दी इस क्षेत्र को नान रेग्यूलेशन जिला घोषित किया। गंगा नारायण सिंह के नेतृत्व में 1833-34 में प्रारम्भ हुआ, भूमिज विद्रोह इसी कोल विद्रोह का ही विस्तार था। इस विद्रोह के कारण एक बार पुनः ब्रिटिश शासन एवं स्थानीय, जमीदार बने। शासक वर्ग ने इस विद्रोह को कैप्टन थॉमस बिलकिन्सन के नेतृत्व में सेना भेजकर दबा दिया।

कोल तथ भूमिज विद्रोह की एक विशेषता यह रही कि इसके दमन के बाद ब्रिटिश शासन ने अनेक प्रशासनिक परिवर्तन किये जिसका मुख्य उदेश्य था पिछड़े क्षेत्रो में प्रशासन को सरल एवं लचीला रूप देना। इन दोनो विद्रोहों के पश्चात निम्नांकित परिवर्ततन किये गये सन 1833 के रेगूलेशन -13 के माध्यम से कम्पनी का अप्रत्यक्ष शासन समाप्त हो गया। रामगढ हिल ट्रेवर से छोटा नागपुर पठार को दक्षिण-पश्चिम सीमान्त एजेन्सी का अंग बनाया गया। इसे नान रेगुलेशन प्रोविन्स बनाय गया जिसे दीवानी, फौजदारी, न्यायिक, पुलिस निरीक्षण एंव भूमि कर हेतु विशेष नियमों के तहत रखा गया।

3.5.2 संथाल विद्रोह

19वीं सदी के महत्वपुर्ण जनजातीय विद्रोह में सबसे महत्वपूर्ण संथाल विद्रोह था। जो 1856-57 में प्रारम्भ हुआ। संथाल जनजाति विद्रोह भागलपुर तथा राजमहल के बीच निवास करती थी। 18वीं तथा 19वीं सदी के आरम्भ में संथालों ने राजमहल पहाड़ियो के जंगलो की स्वयं सफाई की थी परन्तु अब बाहरी मैदान के जमीदार तथा साहूकार उनकी जमीन छल-बल से हडप रहे थे। इसके अलावा उन्हें अपनी जमीन का राजस्व देना पड़ रहा था। जिसका भुगतान नही करने पर कठोर दंड दिया जा रहा था। इन क्षेत्रो में रेलवे लाइन का कार्य प्रारम्भ होने से भी वे आंतकित हुये थे क्योकि अधिकांश संथालों से जबरन बेगारी करायी जा रही थी और यदि मजदूरी दी भी जा रही थी तो वह बहुत कम थी।

1854 तक आते-आते इन आदिवासियों का विद्रोह अपने चरम पर पहुंच गया। कोल विद्रोह से प्रेरणा लेते हुए विभिन्न गॉवों में विद्रोह के संदेश भेजे गये। एक स्वर से निर्णय लिया गया कि बाहरी लोगों को भगाने, विदेशियों का राज हमेशा के लिए खत्म कर सतयुग का राज न्याय तथा धर्म पर अपना राज स्थापित करने के लिए खुला विद्रोह किया जाए। संथालो को विश्वास था कि भगवान उनके साथ है विद्रोही आदिवासियों के दो प्रमुख नेता सिद्धू तथा कान्हू ने घोषण की कि ठाकुर जी ने उन्हे निर्देश दिया है कि यह देश अब साहबों का नही है इसलिए आजादी के लिए

हथियार उठा लो। इन्होने भविष्यवाणी की कि ब्रिटिश शासन का अन्त निकट है बहुत जल्द ही सिधू तथा कान्हू ने करीब 60 हजार सन्थालों को इकटठा कर लिया, इसके अलावा कई हजार आदिवासियों को तैयार रहने के लिए कहा गया उनसे कहा गया कि जब नगाडा बजे तो हथियार उठा लेना।

इन्होने सर्वप्रथम निकटवर्ती शोषकों के विरूद्ध विद्रोह किया, परिणामतः दूरवर्ती शोषक भी इनकी चपेट में आ गये। साहूकारों को चेतावनी देकर कुछ दिन पश्चात आक्रमण किया तथा उनके मकानो एवं कचहरियों को दस्तावेजो सहित जला दिया। यद्यपि वे दस्तावेजो को पढ नही सकते थे परन्तु इतना अवश्य जानते थे कि ये दस्तावेज ही उनकी गुलामी का कारण है। संथालों ने मैदानी लोगों की खडी फसलो को जला दिया, रेल सम्बधि कार्यो को तहस नहस कर दिया तथा ब्रिटिश अधिकारियों एवं इंजिनियरों के बंगलों को नष्ट कर दिया। संथालो ने लगभग उन सभी चीजों पर हमला किया जो दीकू और उपनिवेशवादी सत्ता के शोषण के माध्यम थे।

परन्तु ब्रिटिश सरकार ने आदिरवासियों के इस संगठित ब्रिदोह को दबाने के लिए सेना का सहारा लिया तथा मेजर जनरल के नेतृत्व में 10 सैन्य टुकडियो के माध्यम से आदिवासियों का भयंकर दमन किया। 1855 में उनकी भूमि को नान रेग्यूलेशन जिला घोषित कर दिया गया। अगस्त 1855 में सिद्धू तथा फरवरी 1856 में कान्हू को फॅासी दी गई। किन्तु संथालो का संघर्ष पूर्णतःव्यर्थ नही गया क्योकि अंततोगत्वा सरकार संथाल नामक एक पृथक जिला स्थापित करने के लिए विवश हुई।

3.5.3 खेरवा विद्रोह

1870 के दशक में छोटा नागपुर क्षेत्र में राजस्व बन्दोबस्त के विरूद्ध आदिवासियों ने सफाहार अथवा खेरवार आंदोलन चलाया। यह आंदोलन प्रारम्भ में एकेश्वरवाद तथा समाजिक सुधारो की शिक्षा देता था। खेरवार आन्दोलनन 1855 ई0 के संथाल विद्रोह से अभिप्रेरित था क्योकि आन्दोलन का नायक भागीरथ मांझी संथाल विद्रोह में सक्रिय रह चुका था। यह विद्रोह विदेशी सत्ता के लिए चुनौती था। इन्होने जमीदारों तथा सरकार को लगान नही देने की घोषणा की। भगीरथ की मृत्यु के पश्चात यह आन्दोलन शिथिल पड गया। पुनः खेरवारों द्धारा 1881 की जनगणना के पश्चात दुविधा गोसाई के नेतृत्व में व्यापक आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसका प्रभाव पूरे संथाल परगना में था।

1891 ई0 में मणिपुर में ब्रिट्रिश सत्ता स्थापित हुई। इसी के साथ अंग्रेंजो एवं जनजातियों के मत सम्बन्धों की समस्या प्रारम्भ हो गई। आगे अंग्रेजों ने जनजातियों पर दबाव डाला कि वे अपना भूमिकर मणिकर के शासक के बदले उनको दे। यहां के जनजातीय लोगों में असन्तोष फैल गया, आगे चलकर इसी आन्दोलन को जैदोनांग जैसा जनजाति नेता प्राप्त हुआ। फिर आगे धर्म राज्य स्थापित करने के प्रयत्न में गुजरात की नायकड़ा जंगली जाति ने पुलिस थाने पर आक्रमण कर दिया।

19वीं सदी के जनजातीय विद्रोह में 1899-1900 ई0 का मुंडा विद्रोह भी प्रमुख था। इसका नेतृत्व बिरसा मुंडा द्धारा किया गया था। जागीरदारों के द्धारा खूटंकटटी अधिकारों का उलंघन अनुबंधित मजदूरो की समस्या एवं बेठ-बेगारी आदि कुछ इस प्रकार के कारण थे जिन्होने मुंडा विद्रोह को जन्म दिया। प्रथमतः जनजातीय सरदारों ने इस शोषण की प्रक्रिया के विरूद्ध आपत्ति जताई। मुंडा विद्रोह के सम्बंध में एक विशिष्ट बात है कि विद्रोह से पहले मुंडाओं ने कष्टो के निवारण के लिए वैधानिक उपायो का सहारा लिया। इस सन्दर्भ में उन्होंने इसाई मिशनरियों से भी सहायता पाने की कोशिश की और जब उनकी उम्मीदे टूट गई तभी उन्होने विद्रोह किया।

3.5.4 बिरसा मुंडा एक नायक के रूप में

जनजातीय विद्रोह की प्रक्रिया में ही इस आन्दोलन में एक राजनीतिक और सामाजिक उदेश्य से मसीहावादी दृष्टिकोण को जोड दिया गया। बिरसा मुंडा द्धारा प्रारम्भ किया गया आन्दोलन एक प्रकार का सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक आन्दोलन था। बिरसा ने सोम मुंडा को धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन की जिम्मेदारी दी थी। बिरसा ने शोषण मुक्त समाज की स्थापना, मुण्डा समाज के अनुरूप एक नए धर्म की घोषणा, हिन्दु धर्म के आदर्श एवं कर्मकाण्ड शुद्धता तथा तपस्या का प्रचार, एकेश्वरवाद में विश्वास, भूत-प्रेत की पूजा पर रोक एवं समाज के प्रत्येक व्यक्ति में आत्म - सम्मान तथा आत्म-विश्वास भरने आदि पर बल दिया।

बिरसा ने अपने राजनीतिक आन्दोलन का सेनापति दोन्का मुण्डा को बनाया। इस आन्दोलन में बिरसा ने सरकारी नियमों की अवहेलना, सरकारी कर्मचारियों की अवज्ञा, सशस्त्र विद्रोह की योजना, मालगुजारी पर रोक, जमीन पर रैयतों का कब्जा, महारानी को सत्ता की चुनौती तथा मुंडा राज्य की स्थापना जैसे कार्यक्रम रखे। बिरसा का मसीहावादी दृष्टिकोण जनजातीय विद्रोह में एक महत्वपूर्ण तत्व हो गया। नया विश्व महाप्रलय की उसकी भविष्यवाणी, जनजातीय लोगों के लिए स्वर्णद्धीप हो गया।

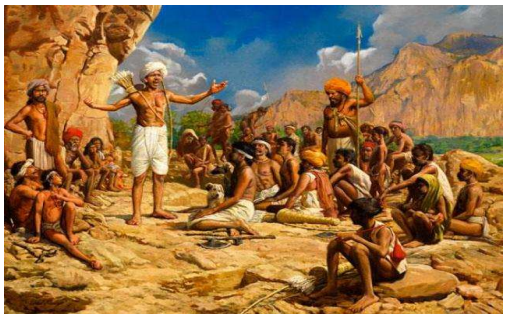

बिरसा मुंडा के नेतृत्व में यह व्रिदोह संगठित रूप से 1898-99 में प्रारम्भ हो गया और बिरसा ने ठेकेदारों की हत्या, जागीरदारों, राजा एवं हाकिमो की हत्या का आह्वान किया। बिरसा को ईश्वरीय गुणो से समाहित माना गया। उसी के नेतृत्व में आदिवासीयों का धर्मोतरण ईसाई से वेष्णों ने होने लगा। हॉलाकि यह विद्रोह दबा दिया गया किन्तु बिरसा के महान नेतृत्व के कारण यह ऐतिहासिक बन गया। इस विद्रोह की सफलता इस बात में थी कि इसी के परिणामस्वरूप 1908 में छोटा नागपुर रैयतवाडी कानून पारित किया गया। जिसके आधार पर मुंडा जनजातीय बिहार के अन्य

कृषकों से एक पीढी पूर्व ही अपने परम्परागत भूमि अधिकारों को पा गई। बिरसा मुंडा ने साम्राज्यवादी विरोध की वह परम्परा कायम की, जो आने वाली पीढी के लिए प्रेरणा स्त्रोत बन गई।

3.6 20वीं सदी का जनजातीय विद्रोह

20वीं सदी में भी जनजातीय विरोध का पहले जैसा ही झुकाव तथा असन्तोष जैसे कारक मौजूद थे। परन्तु 20वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन के स्वरूप में स्पष्ट अन्तर महसूस किया जा सकता है। 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन स्वर्णयुग एवं महाप्रलय की अवधारणा से प्रेरित थे अर्थात् इनकी दृष्टि मसीहावादी थी जैसे - छोटा नागपुर के मुण्ड़ाओं ने अपने नेता बिरसा को भगवान मान लिया। इसके साथ 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन औपनिवेशिक शोषण के वास्तविक चरित्र की समझ को प्रदर्शित नहीं करते थे। परन्तु 20वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन मूल परिवर्तनवाद की दिशा में उन्मुख थे तथा यह आन्दोलन व्यापक राष्ट्रवादी चेतना से भी जुड़ा था। कहीं-कहीं तो सत्याग्रह एवं असहयोग की अनुशासित राजनीति का भी सहारा लिया गया। 1898 ई0 में आन्ध्र प्रदेश के कुड़प्पा तथा नेल्लोर जिले में चेंचू जनजाति ने विद्रोह किया, किन्तु, इन्होंने हिंसक तरीकों का प्रयोग न करके अपने अधिकारों को सुरक्षित करने के लिए गांधीवादी सत्याग्रह तरीकों का प्रयोग किया। यह इस बात का परिचायक है कि वे अपनी क्षमता एवं बिट्रिश शक्ति की प्रचंडता से परिचित थे।

उड़ीसा में खोंद जनजाति एवं छोटा नागपुर में उरांव जनजाति के विद्रोह में एक नयी बात देखी गयी, इसमें विद्रोहियो को बाह्य जगत की पूरी जानकारी थी। वे प्रथम विश्व युद्ध तथा उसमें बिट्रिश शक्ति की सम्भावित पराजय से परिचित थे। आगे चलकर इसी उरांव जनजाति के मध्य जतरा भगत के नेतृत्य में ताना भगत आन्दोलन शुरू हुआ। इस आन्दोलन का गांधीवादी राष्ट्रवाद से गहरा सम्बन्ध था। प्रारम्भ में जतरा भगत द्वारा अंग्रेजों तथा जमींदारों के शोषण के विरूद्ध तथा धार्मिक सुधार हेतु ये आन्दोलन चलाया गया जो बाद में राष्ट्रवादी आन्दोलन का एक हिस्सा बन गया। इस आन्दोलन में जनजाति महिलाओं को जागृति का भी पता चलता है क्योंकि 1916 में जतरा भगत के निधन के पश्चात इस आन्दोलन को उसकी पत्नी खेमनी ने न सिर्फ जारी रखा बल्कि इसे विस्तार तथा मजबूती भी प्रदान की।

3.6.1 ताना भगत विद्रोह

ताना भगत आन्दोलन गांधी जी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित हुआ क्योंकि आन्दोलनकारी भी गांधी जी की तरह सादगी, सत्य एवं अहिंसा में विश्वास रखते थे। गांधी जी द्वारा छेड़े गए असहयोग आन्दोलन में इन्होंने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। गांधी जी के आह्वान पर उन्होंने खादी वस्त्र पहनने एवं मदिरा त्याग का संकल्प लिया। यहां तक कि 1921 के अहमदाबाद कांग्रेस सम्मेलन में ताना भगतों ने बड़ी संख्या में भाग लिया। ताना भगत के जनजातीय आन्दोलन ने इतने ऊँचे राष्ट्रीयता को

प्राप्त किया कि ये स्वतंत्रता के इतने वर्षों के पश्चात् भी राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे की प्रत्येक सप्ताह सामूहिक पूजा करते हैं।

3.6.2 कूकी विद्रोह

मयूरभंग जिले के संथाल विद्रोह और मणिपुर में थाड़ों कूकी जनजातीय विद्रोह भी कुछ बातों में आधुनिक था। ये जनजाति पश्चिमी मोर्चे पर निम्न कार्य के लिए जनजातीय श्रमिकों को भेजे जाने की घटना से असन्तुष्ट थी। 1913 में राजस्थान में बांसवाड़ा, सूंथ एवं डुगंरपुर में भीलों का विद्रोह हुआ। हालांकि इस विद्रोह में कोई नई बात नहीं देखी गयी क्योंकि इस विद्रोह में धार्मिक आन्दोलन को भूमी एवं कृषि की समस्या के साथ जोड़ दिया गया। इस विद्रोह का नेता गोविन्द गुरू थे।

20वीं सदी में आदिवासियों के निरन्तर जुझारू संघर्ष का सबसे ज्वलन्त उदाहरण गोदावरी के उत्तरी क्षेत्र रपां में मिलता है यहाँ अगस्त 1922 से मई 1924 के बीच अल्लूरी सीता राम राजू के नेतृत्व में गुरिल्ला युद्ध होता रहा। यह अन्दोलन विभिन्न तत्वों के संयो से विकसित हुआ था। इसने जनजातीय विद्रोह की एक नयी तस्वीर प्रस्तुत की। इसमें प्रारम्भिक विद्रोह पद्वति के साथ आधुनिक राजनीति की पद्धति को जोड़ दिया गया। यह आन्दोलन असहयोग आन्दोलन की असफलता के पश्चात् शुरू हुआ, इसलिए जहां एक तरफ इस आन्दोलन को असहोग आन्दोलन के प्रतिरोध की शक्ति से प्रेरणा मिल रही थी, वही असहयोग आन्दोलन की असफलता से निराशा भी हो रही थी। इस आन्दोलन की दूसरी विशिष्टता यह थी कि इसमें नेतृत्व बाह्य क्षेत्रों से प्राप्त हुआ था। इसकी तीसरी विशेषता थी कि इसमें सीमाराम राजू ने असहयोग आन्दोलन के संरचनात्मक पक्ष को हिंसा की पद्वति से जोड़ दिया। अल्लूरी सीता राम राजू ने दाव किया कि उन पर गोलियाँ बेअसर होंगी, इसके साथ ही उसने कल्कि अवतार के अनिवार्य आगमन की घोषणा की। राजू ने गांधी जी की प्रशंसा की पर उसने हिंसा को भी अनिवार्य बताया। उसके नेतृत्व में आदिवासियों ने अंग्रेजों और भारतीयों के बीच अन्तर स्पष्ट करने की उल्लेखनीय प्रवृत्ति दिखाई दी।

1920 के दशक में उत्तर-पूर्व के मणिपुर जेदोनांग के नेतृत्व में एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। 1891 में मणिपुर में ब्रिटिश सत्ता स्थापित हुई, इसी के साथ अंग्रेजों एवं जनजातियों के मध्य सम्बन्धों की समस्या शुरू हो गई। आगे अंग्रेजों ने जनजातियों पर दबाव डाला कि वे भूमिकर मणिपुर के शासक के बदले उनको समर्पित करें। जेदोनांग ने इसके विरूद्ध आवाज उठायी, वह मेसोपोटामिया में सैनिक रूप में कार्य कर चुके थे। 1925 ई0 में उसने युवकों का एक संगठन बनाया, साथ ही उसने आतंकवादी गतिविधियों के द्वारा ब्रिटिश को खदेड़ने की योजना बनायी, परन्तु 1930 में उसे गिरफ्तार कर फांसी दे दी गयी। आगे उसकी भतीजी रानी गैडेन्ल्यू ने इस जनजाति आन्दोलन को आगे बढ़ाया लेकिन उसने आन्दोलन की गांधीवादी पद्वति को अपनाया। इसे भी 1932 में गिरफ्तार कर लिया गया, जहां से वह भारत को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् ही आजाद हो पायी।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट - **निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर उसके सामने बने सत्य तथा असत्य के रूप में दें।**

(1) जनजातीय आन्दोलन का क्षेत्र केवल बंगाल था। (सत्य/असत्य)

(2) सभी जनजातीय विद्रोहों के पीछे मुख्य कारण आर्थिक शोषण था। (सत्य/असत्य)

(3) 1867 ई0 के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने झूम खेती पर पाबन्दी लगा दी। (सत्य/असत्य)

(4) जनजातीय लोगों में असन्तोष के पीछे आर्थिक शोषण के अतिरिक्त एक अन्य कारण इसाई मिशनरियों की भूमिका मुख्यतया बिहार तथा असम के सन्दर्भ में मानते है। (सत्य/असत्य)

(5) ब्रिटिश भू-बन्दोबस्त व्यवस्था के विरूद्ध पहला व्यापक जनजातीय विद्रोह 1890 में प्रारम्भ हुआ। (सत्य/असत्य)

(6) 19वीं सदी के महत्वपूर्ण जनजातीय विद्रोहों में संथाल विद्रोह था जो भागलपुर तथा राजमहल के बीच निवास करता था। (सत्य/असत्य)

(7) 19वीं सदी के मुण्डा जनजाति विद्रोह को प्रमुख नायक बिरसा मुण्डा थे। (सत्य/असत्य)

(8) छोटा नागपुर के मुंडाओं ने अपने नेता बिरसा मुडां को भगवान स्वरूप मान लिए थे। (सत्य/असत्य)

(9) 20वीं सदी में कोई जनजातीय आन्दोलन नही हुआ। (सत्य/असत्य)

(10) ताना भगत आन्दोलन गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित था। (सत्य/असत्य)

3.7 सारांश

इस अध्ययन से यह पता चलता है कि 19वीं सदी में प्रारम्भ हुए जनजाति आन्दोलन धीरे-धीरे 20वीं सदी में भी पदार्पण कर गया और इसका प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भारत के स्वतंत्र होने तक रहा। यह आन्दोलन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुआ जो अधिकांशता भूमिकर से उत्पन्न हुआ या मिशनरियों आदि के प्रभाव से भी उग्रता धारण किया इस आन्दोलन की दो मुख्य बातें भी देखने में आई। एक तरफ जहाँ महिलाओं ने भाग लिया दूसरी तरफ वहीं कुछ जनजाति विद्रोह, गॉधी जी के विचारों से भी प्रभावित रहे। इस आन्दोलन का परिणाम मिला-जुला देखने को मिलता है। कहीं जनजातियों को सफलता हाथ लगी तो कहीं असफल रहें। इस प्रकार 19वीं तथा 20वीं सदी में चला जनजतीय आन्दोलन, वर्तमान में इतिहास का एक प्रमुख हिस्सा बन गया।

3.8 पारिभाषिक शब्दावली

आदिवासियों – मूल निवासी

लगान - भू-राजस्व

बेगारी – बिना मजदूरी के श्रम

कचहरियों – न्यायालयों

एकेश्वरवाद - एक ईश्वर पर विश्वास का दर्शन

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

(1) असत्य

(2) सत्य

(3) सत्य

(4) सत्य

(5) असत्य

(6) सत्य

(7) सत्य

(8) सत्य

(9) असत्य

(10) सत्य

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. चन्द्रा, बिपन, इण्डियास स्ट्रेगिल फोर इन्डेपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक, दिल्ली, 1993 (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)

2. चन्द्रा, बिपन, इण्डिया आफटर इन्डेपेन्डेन्स, पेंगुइन बुक, दिल्ली, 1993

3. सरकार, सुमित, मॉडर्न इण्डिया 1885-1947, मेकमिलन इण्डिया लिमिटेड, मद्रास, 1983 (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)

4. इग्नू कोर्स - मोडर्न इण्डियन हिस्ट्री, 1999 (अंगेजी व हिन्दी दोनों में है)

3.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बन्द्योपाध्याय, सेखर, फ्राम प्लासी टू पार्टिशन: ए हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया, ओरिएण्ट ब्लैक स्वान, दिल्ली-2004

2. गॉधी, एम0के0, हिन्द स्वाराज/इण्डियन होमरूल, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, 1996

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

प्रश्न .1. प्रमुख जनजातीय आन्दोलन के मुख्य कारणों को उदाहरण व्याख्या करें।

प्रश्न .2. 19वीं सदी के प्रमुख जनजातियों के क्षेत्रों तथा उनके विद्रोहों की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न .3. जनजातीय आन्दोलन के विकास पर एक निबन्ध लिखें।

प्रश्न .4. 19वीं सदी के जनजातीय आन्दोलन में बिरसा मुडां की भागीदारी की विवेचना कीजिए।

प्रश्न .5. 20वीं सदी का जनजातीय विद्रोह किस प्रकार 19वीं सदी के विद्रोह से अलग था। एक तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।

प्रश्न .6. 20वीं सदी के प्रारम्भ में किस प्रकार ताना भगत आन्दोलन गाँधी जी के स्वदेशी आन्दोलन से प्रभावित हुआ। व्याख्या कीजिए।

इकाई चार

आधुनिक भारत में दलित आन्दोलन

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कारण
4.4 महाराष्ट्र में दलित आन्दोलन
4.5 केरल में दलित आन्दोलन
4.6 पंजाब में आदि-धर्म आन्दोलन
4.7 उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन
4.8 डा. वी. आर. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन
4.9 महात्मा गाँधी एवं हरिजन सेवक संघ
4.10 सारांश
4.11 पारिभाषिक शब्दावली
4.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.14 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

भारत में प्राचीन काल से ही जाति एवं धर्म के नाम पर वर्ग विशेष का शोषण होता रहा है जिन्हें विभिन्न नामों से जाना जाता है – अछूत, शूद्र, पंचम वर्ग, अनुसूचित जाति, हरिजन तथा दलित इत्यादि। इस रूढ़ सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध संघर्ष करने वालों की भी एक लम्बी परम्परा रही है जिनमें महात्मा बुद्ध, महाबीर, रामानन्द, कबीर, नानक, तुकाराम, एकनाथ, नामदेव, आर्य समाज, ब्रम्ह समाज इत्यादि। परन्तु इन आन्दोलनों से निम्न वर्गों के सामाजिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। परिणामस्वरूप आधुनिक काल में इन निम्न वर्गों में से ही अतिसुधारवादी नेतृत्व ने जन्म लिया जिन्होंने इनके सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समानता के लिए संगठित रूप से संघर्ष प्रारम्भ किया। इस संघर्ष को दलित आन्दोलन के नाम से जाना जाता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई में आप आधुनिक भारत के विभिन्न प्रान्तों में हुए दलित आन्दोलन, उसके नेतृत्व, स्वरूप एवं संगठन के बारे में जान पाऐंगे।

4.3 कारण

जाति के आधार पर समाज का विभाजन भारतवर्ष का एक ऐसा विलक्षण गुण है जो दुनिया के इतिहास में इसके पहचान का प्रतीक बन चुका है। भारतीय समाज में एक ओर जहाँ सुविधासम्मपन्न सवर्ण लोग हैं वहीं दूसरी ओर शोषित और दमित अवर्ण लोग। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था में विभाजित रहा है तथा इन वर्णों के अधीन जातियों एवं उपजातियों में विभक्त रहा है। प्राचीन काल में भारत जहाँ अपने ज्ञान-विज्ञान के कारण विश्व के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है वहीं अपनी जाति संबंधी संकीर्णतावादी सोंच के लिए भी जाना जाता रहा है। वर्तमान समय में भारत में 3000 से अधिक जातियाँ है। भारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्र सबसे निम्न स्तर पर था तथा इन के साथ जाति एवं धर्म के नाम पर अमानवीय शोषण होता था। दलितों की बस्ती गाँव के सबसे आखिरी छोड़ पर हुआ करती थी। इन्हे सार्वजनिक स्थलों से पानी लेने का अधिकार नहीं था। इन्हें शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार भी नहीं था। ये वर्ग न केवल आर्थिक रूप से वरन् सामाजिक और धार्मिक रूप से भी शोषण के शिकार थे। इनके मस्तिष्क में यह बात डाल दिया गया था कि तुम अछूत हो और तुम्हे इसी हाल में रहना है, तुम्हारे जीवन की यही सच्चाई है और ये ईश्वरकृत है।

ब्रिटिश शासन एक ओर जहाँ भारत के लिए अभिशाप था वहीं दलित शोषण के मामले में वह मुक्तिदाता बना। ब्रिटिश शासन के भारत में आने के बाद एक पश्चिमी विचारधारा का भी प्रवेश हुआ। इसके फलस्वरूप दलित उद्धार की संभावनाएँ बनने लगी। भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग जब पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के संपर्क में आए तब उन्हें एहसास हुआ कि उनके समाज में बहुत सारी कुरीतियाँ है जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है। दलित आन्दोलन के प्रमुख वाहक फुले, अम्बेडकर, महात्मा गाँधी इत्यादि लोग पाश्चात्य शिक्षा की ही उपज थे। ब्रिटिश शासन से जब यह देश त्रस्त होने लगा तो समाज के कुछ बुद्धिजीवी वर्गों को यह लगा कि बिना समाज का संगठन किए ब्रिटिशों का विरोध नहीं किया जा सकता इसलिए उन्होंने जातिवाद पर प्रहार करना शुरू किया।

1813 ई. के बाद जब इस देश में ईसाई मिशनरियों का बड़े पैमाने पर आगमन हुआ तब उनलोगों ने अनेक स्कूल तथा चिकित्सालय खोला जहाँ जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं था। इन लोगों ने अपने शिक्षा के माध्यम से दलितों के बीच सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का विकास किया। इसके दो मुख्य परिणाम निकले। पहला, दलितों को यह एहसास हुआ कि उनका जो शोषण है वह मानवकृत है। दूसरा, दलित लोग ईसाई धर्म की ओर झूकने लगे इसके फलस्वरूप अनेक भारतीय समाजसुधारकों का ध्यान इनकी ओर गया और वे इस समस्या से बचने के लिए अपने धर्म और

सामाजिक स्थिति में बदलाव के लिए विमुख हुए। इसी के परिणामस्वरूप अनेक बुद्धिजीवीयों ने अनेक संस्थाओं के माध्यम से दलितों की स्थिति में सुधार के लिए प्रयास करना शुरू किया जिनमें ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, परमहंस मण्डली आदि मुख्य थे। परन्तु इन तमाम कोशिशों के बावजूद दलितों की स्थिति में कोई खास अंतर नहीं आ रहा था और दलितों के बीच असंतोष बढ़ता ही जा रहा था। आर्य समाज, ब्रम्ह समाज, प्रार्थना समाज एवं धर्म सुधार आन्दोलन के कारण निम्न वर्गों के सामाजिक स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं आया। इसलिए अब एक अतिसुधारवादी आन्दोलन की जरूरत थी जो इन वर्गों को इनकी व्यथा से मुक्त कर सके। परिणामस्वरूप इन्ही वर्गों में से कई अतिसुधारवादी नेतृत्व का जन्म हुआ।

आधुनिक भारत के विभिन्न प्रान्तों में एक योग्य एवं प्रतिभाशाली दलित नेतृत्व का उत्पन्न होना जिन्होंने इस आन्दोलन को सांगठनिक स्वरूप प्रदान करने एवं दलित चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की उनमें प्रमुख रूप से जोतिबा फुले, पेरियार, नारायणगुरू, साहूजी महाराज, अम्बेडकर, अछूतानन्द और गंगुराम का नाम उल्लेखनीय है।

4.4 महाराष्ट्र में दलित आन्दोलन

आधुनिक भारत के दलित आन्दोलन के नायकों में ज्योतिबा फुले का नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने पश्चिमी भारत में दलित आन्दोलन को व्यापक आधार दिया। फुले का जन्म 1827 ई. में पुणे (महाराष्ट्र) के एक माली परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा एक मिशनरी स्कुल में हुई थी। ज्योतिबा को सामाजिक रूप से जाति भेद-भाव एवं छुआ-छूत जैसे अमानवीय व्यवहार का सामना करना पड़ा जिससे इन कुरीतियों के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा मिली।

फुले जाति व्यवस्था को मानव समानता के विरूद्ध मानते थे। उनका विचार था कि भारतीय समाज में जब तक जाति व्यवस्था विद्दमान है तब तक अछूत गुलामी का जीवन जीने को मजबूर रहेगा। वे मूर्ति-पूजा, कर्मकाण्ड, पुर्नजन्म एवं स्वर्ग की कटु आलोचना करते थे। वे एकेश्वरवाद में विश्वास करते थे।

फुले का मानना था कि आर्य विदेशी मूल के है और उन्होंने द्रविड़ लोगों को हराकर जाति व्यवस्था स्थापित किया है। शूद्र इस भारत भूमि के मूल निवासी है। वैदिक ग्रंथों को वह इसके प्रमाण के रूप में प्रस्तुत करते थे। वेदों में इस तरह के तथ्य वर्णित है कि आर्यों ने किस प्रकार भारत के मूल निवासियों का दमन कर दास बनाया। उन्होंने पुरूष-स्त्री समानता पर भी बल दिया। वह महिलाओं के शोषण के खिलाफ थे।1 जनवरी 1848 भारत में स्त्री शिक्षा के इतिहास की एक महत्वपूर्ण तिथि है। इस दिन ज्योतिबा ने पुणे में लड़कियों की शिक्षा के लिए एक पाठशाला खोला तथा बाद में स्त्री शिक्षा एवं शूद्रों की शिक्षा हेतु उन्होंने विद्यालयों की एक श्रृंखला स्थापित की। रूढ़िवादी विचारों के विरूद्ध उन्होंने पण्डित रमाबाई का समर्थन किया क्योंकि रमाबाई ने स्त्री शिक्षा पर व्यापक जोर दिया था।

उन्होंने खेतिहर मजदूरों और छोटे किसानों की समस्याओं को लेकर भी संघर्ष किया। इस तरह ब्राम्हणवादी व्यवस्था के विरूद्ध एक व्यापक गठजोड़ बनाने का प्रयास किया। अपने विचारों के प्रसार हेतु फुले ने मराठी में **दीनबंधु** नामक पत्रिका की शुरूआत की। 1873 ई. में उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक **गुलामगिरी** का प्रकाशन हुआ जिसमें उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था द्वारा शूद्रों के शोषण को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है तथा शुद्रों के गुलामी की तुलना अमेरिकी नीग्रों से किया है। अपने विचारधारा एवं संघर्ष को सांगठनिक स्वरूप देने के लिए उन्होंने 1875 ई. में सत्य सोधक समाज (सत्य को खोजने वाला समाज) की स्थापना की। 1876 ई. में फूले पुणे नगरपालिका के सदस्य बने। उनकी मृत्यु (1890) के बाद सत्य सोधक समाज का प्रभाव कम होता चला गया। इस प्रकार फुले ने ब्राम्हणवादी व्यवस्था, जाति आधारित भेदभाव के विरूद्ध व सामाजिक न्याय हेतु पूरे जीवन संघर्ष किया। यद्पि वे उपनिवेशिक शासन की वास्तविकता को समझने में असफल रहे परन्तु दलित आन्दोलन के इतिहास में वह एक नायक के तौर पर हमेशा याद किए जाऐंगे।

4.5 केरल में दलित आन्दोलन

केरल में दलित आन्दोलन एक महत्वपूर्ण नेता नानु असन (जिनको लोग नारायण गुरू के नाम से जानते हैं) के नेतृत्व में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में आरम्भ हुआ। उनका जन्म 1854 ई. में एझवा जाति (अस्पृश्य जाति) में हुआ था। नारायण गुरू ने केरल एवं केरल के बाहर एस. एन. डी. पी. (श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्) नामक संस्था की शाखाएँ स्थापित की। उन्होंने अस्पृश्यता के विरूद्ध आन्दोलन का नेतृत्व किया। मन्दिर में अछूतों के प्रवेश को लेकर भी संघर्ष किया और ऐसे मंदिरों की स्थापना की जो समाज के सभी वर्गों के लिए खुले थे। उन्होंने एक धर्म एक जाति एक ईश्वर का नारा दिया। नारायणगुरू वर्ण व्यवस्था के कटु आलोचक थे। उनका विचार था कि भारत में जाति प्रथा एवं छुआ-छूत का मूल जड़ वर्ण व्यवस्था ही है।

4.6 पंजाब में आदि-धर्म आन्दोलन

पंजाब में दलित आन्दोलन के प्रमुख वाहक बाबू मंगू राम थे जिनका जन्म 14 जनवरी 1886 ई. को होशियारपुर जिले में एक चमार परिवार में हुआ था। इनके पिता पारंपरिक रूप से चमड़े का कार्य करते थे। मंगू राम की प्राथमिक शिक्षा गाँव के ही एक संत द्वारा हुई और बाद में अलग-अलग स्कूलों में। बाद में वे अपने बड़े भाई के पास देहरादून चले गए। वहाँ पर एक विद्यालय में प्रवेश लिया जिसमें वह एक मात्र निम्नजातीय छात्र थे। विद्यालय में उन्हें विभिन्न प्रकार से जातीय भेदभाव एवं घृणा का शिकार होना पड़ा। 1905 ई. में उन्होंने स्कूल छोड़ दिया।

1909 ई. में गंगू राम अमेरिका में कृषि मजदूर के रूप में चले गए क्योंकि वहाँ उनके गाँव के आस-पास के उच्च जाति के किसान रहते थे। 1913 में सैन फ्रांसिसको में जब गदर पार्टी की स्थापना हुई

तो इन्होंने गदर पार्टी में सम्मिलित होकर गदर के लिए सक्रिय रूप से कार्य करने लगे। मंगू राम 1925 ई. में वापस भारत लौटे। उन्होंने भारत के विभिन्न शहरों का भ्रमण किया और अछूतों की दयनीय दशा को महसूस किया। उन्होंने गदर पार्टी के मुख्यालय को भी सामाजिक परिवर्तन हेतु पत्र लिखा। 11-12 जनवरी 1926 ई. को उन्होंने एक सम्मेलन अपने गाँव मोगयाल में आयोजित किया और आदि-धर्म आन्दोलन के स्थापना की घोषणा की। मंगू राम इसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। अपने गाँव में एक विद्यालय की स्थापना किए जिसका नाम आदि-धर्म स्कूल रखा। उन्होंने पंजाब के विभिन्न शहरों में आदि धर्म की शाखाएँ स्थापित किया। उनका मानना था कि अछूत भारत भूमि के मूल निवासी है। वे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी सामाजिक सुधार एवं रूढ़ियों के विरूद्ध संघर्षरत रहे। 22 अप्रैल 1980 को 94 वर्ष की अवस्था में वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

4.7 उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन

उत्तर भारत के दलित आन्दोलन का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में स्वामी अछूतानन्द के आविर्भाव के साथ माना जा सकता है। उनका जन्म 1879 ई. में मैनपुरी जनपद में हुआ था। इनके पिता मूलतः फर्रूखाबाद के निवासी थे परन्तु उच्च जातियों के अत्याचार के कारण मैनपुरी में बस गए। इनका वास्तविक नाम हीरा लाल था। इन्होंने मिडिल स्कूल तक शिक्षा प्राप्त किया था। आर्य समाज द्वारा चलाए जा रहे समाज सुधार आन्दोलन से प्रभावित होकर स्वामी सच्चिदानन्द से दीक्षा ले लिया और इनका नाम हरिहरानन्द हो गया। परन्तु यह देख कर कि आर्य समाज के अन्दर भी जाति भेद-भाव है तो इनका मोह भंग होने लगा और वे आर्य समाज से बाहर हो गए।

आर्य समाज छोड़ कर उन्होंने भारत के विभिन्न शहरों का भ्रमण किया और दलितों के वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयास किया। अन्ततः 1917 में अछूतानन्द ने एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया। इसी सम्मेलन में इनका नाम हरिहरानन्द से बदल कर अछूतानन्द रखा गया। उन्होंने 1919 ई. में मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार में दलितों के समस्याओं से सम्बन्धित एक ज्ञापन दिया, जिसमें अछूतों के लिए पृथक शिक्षा, पृथक निर्वाचन एवं नौकरियों में आरक्षण की मांग शामिल थी। प्रिंस आफ वेल्स के भारत आगमन पर भी उन्होंने दलितों के कल्याण हेतु सत्रह सूत्रीय ज्ञापन सौंपा। दिल्ली के अखिल भारतीय अछूत सम्मेलन में इनकी मुलाकात डा. अम्बेडकर से हुई और दोनों एक दुसरे को सहयोग करने लगे। 1924-25 ई. में उन्होंने आदि-हिंदू आन्दोलन की शुरूआत कानपुर से की। उनका मानना था कि हम न तो मुसलमान हैं न इसाई, हम तो हिन्दुस्तान के आदि निवासी हैं। अतः हम सब आदि हिन्दू है। आर्य तो विदेशी है। उनका मानना था हम अछूत है अर्थात अ + छूत जिसमें कोई छूत नहीं हो, अर्थात सबसे पवित्र हम है। उन्होंने अछूत एवं आदि हिन्दू के नाम से पत्र भी निकाला तथा भारत में दलित पत्रिकारिता के सूत्रधार बने। उन्होंने साइमन कमीशन के 29-30 सितंबर 1928 को लखलऊ पहुँचने पर भव्य स्वागत किया इस कारण कांग्रेसियों द्वारा उनका विरोध

किया गया। उन्होंने कमीशन को दलितों के स्थिति के बारे में ज्ञापन भी दिया। 1929 ई. के कुम्भ मेले में आदि-हिन्दू सभा का विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें भारत के विभिन्न प्रांतों के दलित प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। उन्होंने 1930-31 के गोलमेज सम्मेलन में दलित प्रतिनिधि के रूप में डा. अम्बेडकर को मजबूती से समर्थन दिया। 22 जुलाई 1933 ई. को दलित आन्दोलन का यह पुजारी मृत्यु को प्राप्त हुआ। डा. अम्बेडकर को उत्तर भारत में लाने और परिचित कराने का श्रेय अछुतानन्द जी को जाता है।

4.8 डा. वी. आर. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन

फुले की मृत्यु के बाद दलित आन्दोलन कमजोर पड़ने लगा क्योंकि सत्यसोधक समाज जैसा संगठन उच्च जाति के गैर ब्राह्मणों के हाथों में चला गया। विठ्ठल राम जी शिन्दे ने डिप्रेस्ड क्लास मिशन की स्थापना 1906 में की। शिन्दे के इस मिशन के अध्यक्ष प्रसिद्ध ब्राह्मण समाज सुधारक नारायण राव चन्दावरकर थे। 1910 के दशक में अस्पृश्यों में काम करने वाला यह महत्वपूर्ण संगठन था।

परन्तु दलित समाज के मध्य दलित नेतृत्व को लेकर उथल-पुथल था। दलित आन्दोलन के नए वाहक थे युवा भीम राव राम जी अम्बेडकर। इनका जन्म 14 अप्रैल 1891 ई. को एक महार परिवार में हुआ थ। 1905 ई. में चौदह साल की उम्र में इनका विवाह रमाबाई के साथ हुआ। 1935 ई. में रमाबाई की मृत्यु हो गई। 1948 ई. में डा. अम्बेडकर ने दूसरा विवाह डा. शारदा कबीर से किया जो एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार से थी। अम्बेडकर एलफिन्सटन महाविद्यालय से स्नातक थे। वे तीन वर्ष कोलम्बिया विश्वविद्यालय व एक साल लन्दन स्कूल आफ इकोनोमिक्स में अध्ययनरत थे। शिन्दे द्वारा चलाया जा रहा अस्पृश्यता निवारण कांग्रेस व उच्च वर्गों द्वारा प्रायोजित था जिसका अम्बेडकर ने तीखी आलोचना की।

कोल्हापुर जिले के माने गाँव में 20 मार्च 1920 ई. को साहू जी महाराज द्वारा आयोजित ब्राह्मण विरोधी सम्मेलन में अम्बेडकर को दलितों के समक्ष प्रस्तुत किया गया। बाद में 30-31 मई 1920 को आल इण्डिया डिप्रेस्ड क्लास सम्मेलन (All India Depressed Class Conference) नागपुर में आयोजित किया गया। सही अर्थों में अम्बेडकर दलित संगठन के लिए फुले के उत्तराधिकारी थे। इस प्रकार 1920 की घटनाओं द्वारा अम्बेडकर ने दलित आन्दोलन को प्रारम्भ कर दिया। इसी वर्ष उन्होंने **मुक नायक** (Voice of Mute) नामक पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन शुरू किया। 1920 के अंत में अम्बेडकर अपनी कानून की पढ़ाई पूरी करने के लिए लन्दन वापस चले गए। 1923 ई. में वापस आ गए। उन्होंने वकालत प्रारम्भ की और सिन्दम कालेज में पढ़ाते भी थे। डा. अम्बेडकर ने 1924 ई. में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना की। इस सभा के द्वारा उन्होंने दलित समाज को संगठित करने का प्रयास किया। 1926 ई. में उन्हें विधान परिषद के सदस्य का रूप में नामांकित किया गया।

बहिष्कृत हितकारिणी सभा के बैनर तले ही उन्होंने 19-20 मार्च 1927 को महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के महाद तालुका में महाद तालाब सत्याग्रह की शुरूआत की। अस्पृश्यों को सार्वजनिक तालाबों से पानी लेने पर सामाजिक रूप से मनाही थी जबकि महाद नगरपालिका ने अस्पृश्यों के लिए तालाब को खोलने पर प्रस्ताव पारित कर चुकी थी। सभा के अंत में सीधी कार्यवाही की घोषणा की गयी सभी लोग तालाब पर चले और पानी पिएं। जब वे वापस लौट रहे थे तो ऊँची जातियों द्वारा हमला किया गया। तालाब का पानी पीना, पुलिस द्वारा शिकायत दर्ज होना, ब्राह्मणों द्वारा तालाब की शुद्धि किया जाना इन सारी घटनाओं की प्रतिध्वनि पुरे महाराष्ट्र में फैल गयी और दलित समाज के बीच अम्बेडकर को समर्थन बढ़ता चला गया और बाद में एक और सत्याग्रह सम्मेलन हुआ। 20 मार्च के दिन को बहुत दिनों तक दलित अस्पृश्य स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाते रहे। वह गांधी के बड़े आलोचक थे परन्तु गांधी के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति भी थी। दिसम्बर के महाद सत्याग्रह सम्मेलन में अम्बेडकर के साथ गाँधी के भी चित्र लगे हुए थे।

अम्बेडकर प्रारम्भ से ही हिन्दू धर्म के आलोचक थे और वे हिन्दू धर्म को असमानतावादी धर्म मानते थे। परन्तु 1930-32 की घटनाओं ने अम्बेडकर को पूरी तरह से हिन्दू धर्म विरोधी बना दिया। 1935 ई. में धर्मांतरण की प्रसिद्ध घोषणा तथा उनका वाक्य मैं हिन्दू पैदा जरूर हुआ था, पर हिन्दू मरूंगा नहीं, उनके मानसिक सोंच को पूरी तरह दर्शाता है।

दलित आन्दोलन को एक नया स्वरूप देने हेतु अम्बेडकर ने 1930 ई. में आल इण्डिया डिप्रेस्ड क्लास लीग का सम्मेलन नागपुर में आयोजित किया जिसमें स्वतंत्रता की मांग करते हुए ब्रटिश शासन पर प्रहार किया। उनका कहना था कि ब्रिटिश सरकार ने अस्पृश्यता एवं मजदूरों तथा किसानों के शोषण के लिए कुछ नहीं किया। पहली बार 1930 ई. में प्रथम गोलमेज सम्मेलन में अम्बेडकर ने दलितों को एक नयी वाणी प्रदान की। उन्होंने एकीकृत राष्ट्र, व्यस्क मताधिकार आरक्षण एवं अस्पृश्यता हेतु उचित प्रावधान की मांग की। द्वितीय गोलमेज सम्मेलन से पूर्व अम्बेडकर की मुलाकात गांधी जी से हुई। यह मुलाकात विक्षुब्ध वातावरण में हुआ। द्वितीय सम्मेलन में भी एक बार फिर विवाद हुआ। दोनों ही यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे कि दलितों के वास्तविक प्रतिनिधि वे ही हैं। एक तरह से अम्बेडकर के दलित प्रतिनिधित्व को गाँधी द्वारा चुनौती दी जा रही थी।

1932 ई. में रैम्जे मैकडोनाल्ड का पंचनिर्णय की घोषणा हुई जिसके विरोध में गांधी ने 20 सितम्बर से अनिश्चित उपवास की घोषणा की। इसमें मुख्य प्रावधान दलितों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था थी। अंततः तेजबहादुर सप्रु और अम्बेडकर के बीच चर्चा के बाद 24 सितम्बर को अम्बेडकर गाँधी के बीच समझौता हुआ जिसे पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के अनुसार दलित वर्गों के लिए प्रांतीय विधान मंडलों में 198 सीटें दी गयी जो संप्रदायिक पंचाट के सीटों से दुगुनी थी। इस अंतिम परिणाम से अम्बेडकर संतुष्ट थे। एक तरह से यह स्वीकार कर लिया गया कि अम्बेडकर दलितों के एकछत्र नेता है। अंतिम बैठक में अम्बेडकर ने भी गाँधी की प्रशंसा

करते हुए कहा – मैं महात्मा का बहुत आभारी हूँ। अम्बेडकर को यह प्रतीत होता था कि यदि दलितों को राजनीतिक शक्ति मिल जाए तो वे अपने आपको स्वयं मुक्त करा लेंगे। अम्बेडकर-गांधी मतभेद पुनः सतह पर आ गया जब गाँधी ने हरिजन सेवक संघ बनाकर अस्पृश्यता विरोधी अभियान शुरू किया। 15 अगस्त 1936 ई. में अम्बेडकर ने इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का पठन किया।

अम्बेडकर दलितों के अलावा किसान एवं मजदूर से संबंधित मुद्दे को उठाकर एक व्यापक गठबंधन बनाने का प्रयास कर रहे थे। 1937 ई. के चुनाव में लेबर पार्टी ने हरिजनों के आरक्षित 15 सीटों में 13 सीटे जीती थी बाकी जगहों पर अधिकांश सीटे कांग्रेस जीती थी। 1942 ई. में अम्बेडकर ने अनुसूचित जाति संघ (Scheduled Caste Federation) की स्थापना की परन्तु 1946 ई. के चुनाव में अनुसूचित जाति संघ को असफलता ही हाथ लगी। संविधान सभा के सदस्य के रूप में वे मुस्लिम लीग के सहयोग से बंगाल से चुने गए परन्तु विभाजन के कारण यह सदस्यता उन्हें खोनी पड़ी और पुनः जुलाई 1947 में बाम्बे से संविधान सभा के सदस्य चुने गए और प्ररूप समिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए। डा. अम्बेडकर स्वतंत्र भारत के नेहरू मंत्रिमंडल में विधि मंत्री के रूप में सम्मिलित हुए परन्तु सरकार में रहते हुए भी वह दलितों के लिए संघर्षरत रहे। 27 सितम्बर 1951 ई. को हिन्दू कोड बिल विवाद पर उन्होंने मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया। 14 अक्तूबर 1956 ई. को डा. अम्बेडकर ने नागपुर में एक विशाल सम्मेलन में बौद्द धर्म की दीक्षा ग्रहण की। 4 दिसम्बर 1956 ई. को दलित आन्दोलन का यह महानायक पंचतत्व में विलिन हो गया।

4.9 महात्मा गाँधी एवं हरिजन सेवक संघ

छुआ-छूत, जाति-प्रथा जैसी सामाजिक बुराईयों एवं निम्न वर्गों के उत्थान हेतु संघर्ष करने वालों में महात्मा गाँधी (1869-1948) का नाम अग्रगण्य है। गाँधी भारत आने से पूर्व (1915) दक्षिण अफ्रीका में 21 वर्ष तक ब्रिटिश सरकार के रंगभेद नीति के विरूद्ध संघर्ष कर चुके थे। गाँधी अस्पृश्यता को भारतीय समाज पर कलंक की तरह मानते थे। कांग्रेस के नागपुर सत्र में उन्होंने हिन्दू धर्म से अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने पर बल दिया। गाँधी जी ने दक्षिण भारत में वाइकोम सत्याग्रह (मंदिर की तरफ जाने वाले मार्ग का प्रयोग) का पूर्ण समर्थन दिया। उनके रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख भाग था – अस्पृश्यता निवारण, अंतर्जातीय भोज। गाँधी ने शुद्रों को एक नाम दिया हरिजन (ईश्वर की संतान) परन्तु अम्बेडकर द्वारा इस नाम का विरोध किया गया। गाँधी का मानना था कि अगर हिन्दू धर्म को जीवित रखना है तो अस्पृश्यता को मारना होगा। यदि अस्पृश्यता जीवित रही तो हिन्दू धर्म समाप्त हो जाएगा। गाँधी जब भी दिल्ली आते थे वह भंगी कालोनी में जाते थे। उन्होंने हिन्दुओं से हरिजनों के लिए मंदिरों के दरवाजे खोलने की अपील की। वह उस मंदिर में नहीं जाते थे जिसके दरवाजे हरिजनों के लिए नहीं खुले है। उन्होंने तीन समाचारपत्रों का संपादन एवं प्रकाशन किया **हरिजन** (अंग्रेजी), **हरिजन सेवक** (हिन्दी), **हरिजन बन्धु** (गुजराती)। अम्बेडकर और गाँधी का मतभेद द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के दौरान सतह पर आ गया

जहाँ दोनों अपने को दलितों के वास्तविक प्रतिनिधि बता रहे थे। गाँधी रैम्जे मैक्डोनाल्ड के सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र का विरोध कर रहे थे जब कि अम्बेडकर की यह मांग थी। गाँधी जी सार्वजनिक मताधिकार के सिद्धांत का समर्थन कर रहे थे। अंततः पूना के यरवदा जेल में गाँधी ने अनिश्चितकालीन अनशन प्रारम्भ किया और परिणामस्वरूप पूना पैक्ट के रूप में गाँधी एवं अम्बेडकर के मध्य 25 सितम्बर 1932 को समझौता हो गया। गाँधी ने अखिल भारतीय अछूतोद्धार सभा के स्थान पर हरिजन सेवक संघ की स्थापना की तथा अम्बेडकर को भी इसके बोर्ड में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया परन्तु अम्बेडकर ने यह कह कर मना कर दिया कि इसका नियंत्रण ब्राह्मणों के हाथ में है। गाँधी ने नवम्बर 1933 में अस्पृश्यता निवारण एवं हरिजनों के उत्थान हेतु पूरे देश में पदयात्रा का प्रारम्भ किया जो दस माह तक चलता रहा। इसी दौरान पुणे में 25 जून 1934 में गाँधी पर बम द्वारा जानलेवा हमला हुआ जिसमें वह बाल-बाल बच गए। 1937 ई. के चुनाव के बाद कांग्रेस शासित प्रांतों में मंदिर प्रवेश विद्देयक पारित किया गया। गाँधी एवं अम्बेडकर का मतभेद अछूतोद्धार के तरीकों को लेकर था। गाँधी जी मानते थे कि अस्पृश्यता हिन्दू समाज का दोष है अतः हिन्दुओं को इसे निकाल फेंकना होगा तथापि वे वर्ण व्यवस्था के विरोधी नहीं थे। जबकि अम्बेडकर वर्ण व्यवस्था को ही मूल जड़ मानकर समाप्त करना चाहते थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्न

नोट - **निम्नलिखित प्रश्नों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

1. ज्योतिबा फुले ने 1873 ई. में महत्वपूर्ण पुस्तक ..... प्रकाशित की।
2. दलित आन्दोलन एक महत्वपूर्ण नेता नानु असन (जिनको लोग ..... के नाम से जानते हैं) का जन्म 1854 ई. में एझवा जाति (अस्पृश्य जाति) में हुआ था।
3. ..... ने1920 में **मुक नायक** (Voice of Mute) नामक पत्रिका का संपादन एवं प्रकाशन शुरू किया।
4. ..... के नेतृत्व में केरल एवं केरल के बाहर एस. एन. डी. पी. (श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्) नामक संस्था की शाखाएँ स्थापित की गयीं।
5. अछूतानन्द ने 1924-25 ई. में ..... आन्दोलन की शुरूआत कानपुर से की।

4.10 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष में दलित सदियों से शोषण के शिकार होते रहे हैं। इन्हें प्रत्येक मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया गया था। ब्रिटिशों के आने के बाद पश्चिमी सभ्यता से संपर्क के फलस्वरूप न केवल दलितों को वरन् अनेक बुद्धिजीवी वर्गों को यह एहसास हुआ कि यह शोषण

मानवकृत है तथा इसे हर हाल में दूर किया जाना चाहिए। अन्ततोगत्वा दलित वर्ग के अन्दर से ही कई सुधारवादी लोगों का पदार्पण हुआ और उन्होंने अपनी सामाजिक स्थिति को बदलने के लिए एक इस समाज से संघर्ष किया जो आज तक अनवरत चालू है। भारत के अनेक क्षेत्रों में हुए दलित आन्दोलन ने दलितों के अन्दर न केवल चेतना जगायी वरन् उन्हें अपने अधिकार के लिए लड़ना भी सिखाया। भारतीय संविधान में आज दलितों को जो अधिकार प्राप्त हैं वह एक लम्बी लड़ाई का ही परिणाम है।

4.11 पारिभाषिक शब्दावली

अछूत : जिसमें कोई छूत नहीं हो, अर्थात सबसे पवित्र

दलित : दबा-कुचला

अस्पृश्य : न छूने योग्य

4.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.गुलामगिरी

2. नारायण गुरू

3. भीम राव राम जी अम्बेडकर

4.नारायण गुरू

5. आदि-हिंदू

4.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

ओमवेट, गेल (2009), दलित और प्रजातांत्रिक क्रांति, सेज, नई दिल्ली।

ग्रोवर, बी.एल. एवं यशपाल (1981), आधुनिक भारत का इतिहासः एक नवीन मूल्यांकन (1707 से वर्तमान समय तक), एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली।

गुप्ता, नंदिनी (2006), स्वामी अछुतानन्द एण्ड आदि हिन्दू मूवमेन्ट

चन्द्र, बिपिन एवं अन्य, भारत का स्वतंत्रता संघर्ष.

चन्द्र, बिपिन, आधुनिक भारत, एन.सी.ई.आर.टी.

बंद्योपाध्याय, शेखर (2007), प्लासी से विभाजन तक, ओरिएन्ट लॉंग्मैन, नई दिल्ली।

लाल, आग्नेय (2011), उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली।

सरकार, सुमित (1993), आधुनिक भारतः1885-1947, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

4.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. आधुनिक भारत में दलितों के उत्थान के लिए किए गए प्रयासों पर एक निबंध लिखें।

2. आधुनिक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में हुए दलित आन्दोलनों के स्वरुपों की व्याख्या करें।

ब्लाक सात- संकल्पनाएं, विचार तथा शब्दावली

इकाई एक- **वायसराय, गदर परतन्त्रता, उदारवादी,गरमपन्थी, स्वराज्य, धन कानिष्कासन, अग्रगामी नीति, हण्टर कमीशन।**

इकाई दो- **स्वदेशी, निहिलिस्ट, अनुशीलन समिति, चरमपन्थी।**

इकाई तीन- **असहयोग, सविनय अवज्ञा, रामराज्य, सूती, स्वावलम्बन, राष्ट्रीय एकता।**

इकाई चार- **साम्प्रदायिकता, संविधान, विभाजन, रैडक्लिफ रेखा, गणतन्त्र, प्रजातन्त्र।**

इकाई एक

वॉयसराय, गदर परतन्त्रता, उदारवादी, गरमपन्थी, स्वराज्य, धन का निष्कासन, अग्रगामी नीति, हण्टर कमीशन।

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 वायसराय
1.4 गदर
1.4.1 उपलब्धियाँ और असफलताएँ
1.4.2 कमजोरियाँ
1.5 निर्भरता
1.6 नरमदली
1.7 भारत में अंग्रेजी राज के आर्थिक परिणामों का मूल्यांकन
1.8 गरमदली
1.8.1 गरमदली राजनीति के उभार के कारण
1.8.2 गरमदली राजनीति का मूल्यांकन
1.8 स्वराज
1.9 धन निकासी (Drain of Wealth)
1.9.1 धन निकासी के विभिन्न तत्व
1.9.1.1 विदेशी बैंकिंग, बीमा और जहाजरानी कम्पनियाँ
1.9.1.2 विदेशी पूंजी निवेशों पर ब्याज
1.9.2 धन निकासी का प्रभाव
1.10 फारवर्ड पॉलिसी
1.11 हन्टर आयोग
1.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वर्तमान अध्ययन इकाई में उन अवधारणाओं और विचारों की चर्चा की जाएगी जो किसी खास विषय वस्तु की सामान्य जानकारी के लिहाज से तो महत्वपूर्ण हैं ही, इतिहास और समाज को समझने के लिए जरूरी सैद्धान्तिक रूपरेखा विकसित करने में भी मददगार हैं।

अध्ययन इकाइयों के पुराने खन्डों के अध्ययन से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं से परिचित हो चुके छात्रों के लिए भी वर्तमान अध्ययन इकाइयों से अपने ज्ञान को मांजने का एक और मौका मिलेगा। हम चर्चा के दौरान वर्तमान इकाई के लिए तय शब्दावलियों के अर्थ और उनके सन्दर्भ पर प्रकाश डालेंगे।

हमारी कोशिश का मकसद सीमित शब्दों में किसी अवधारणा को स्पष्ट करना है, ताकि उस शब्दावली के सार तत्व को समझते हुए आप उसे आत्मसात कर सकें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- वायसराय, फारवर्ड पॉलिसी, निर्भरता, स्वराज, हंटर आयोग जैसी शब्दावलियों का अर्थ और सन्दर्भ समझेंगे
- गदर आन्दोलन की गतिविधियों और उसके महत्व को समझेंगे
- राष्ट्रीय आन्दोलन में नरमदल और गरमदल की विचारधाराओं, उनके तरीकों और योगदान के ऐतिहासिक सन्दर्भ को जानेंगे
- धन निकासी के अर्थ और उसके मूल तत्वों को जानेंगे

1.3 वायसराय

वायसराय वह शाही अधिकारी है जो सम्राट के नाम पर या उसके प्रतिनिधि के बतौर किसी देश या उपनिवेश का शासन चलाता है। यह शब्द लैटिन उपसर्ग वाइस, जिसका अर्थ ''के स्थान पर'' और फ्रेन्च शब्द रोइ, यानी सम्राट के योग से बना है। फ्रान्सिस्को द अल्मीड़ा पुर्तगाली भारत का पहला वायसराय था।

आधुनिक भारतीय इतिहास में वायसराय शब्द 1858 में गवर्नमेन्ट ऑफ इन्डिया एक्ट के लागू होने के बाद प्रचलन में आया। 1858 में इस एक्ट के लागू होने से 1947 में भारत के आजाद होने तक, अंग्रेज सम्राट का सबसे महत्वपूर्ण प्रतिनिधि और अधिकारी ''वायसराय और भारत का गवर्नर जनरल'' कहलाता था। वायसराय की नियुक्ति ब्रिटेन का सम्राट करता था, और बर्तानवी साम्राज्य का प्रशासन करना व नाममात्र के आजाद भारतीय रजवाड़ों से जुड़े मसलों को निपटाना उसकी जिम्मेदारी होती थी। वायसराय लंदन के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के प्रति जवाबदेह था। एक समूचे उपमहाद्वीप के प्रशासन और ब्रिटिश इन्डियन सेना के रूप में एक विशाल सेना का नियन्त्रण करने वाले वायसराय की शख्सियत काफी बड़ी हो जाया करती थी। वह भारत में अंग्रेजी राज का प्रतीक होने के कारण अनेक सार्वजनिक समारोहों में शामिल होने के अलावा देश के राजनीतिक मामलों को निपटाया करता था।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

प्रश्न 1. भारत में अंग्रेजी राज का पहला 'वायसराय' कौन था?

प्रश्न 2. किस कानून के जरिए भारत में वायसराय का पद सृजित किया गया था?

1.4 गदर

गदर उर्दू/पंजाबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'विद्रोह'। संगठन के नाम को उसके सदस्य मुख्यतया ''गदर पार्टी'' या 'गद्र पार्टी'' लिखा करते थे। गदर क्रान्तिकारियों का सामाजिक स्रोत मुख्यतया उत्तरी अमरीका में बसे पंजाबी आप्रवासी थे। अपनी दशा सुधारने और नस्लवादी व उत्पीड़क अंग्रेज सरकार से भारत को आजाद कराने के मकसद से उन्होंने गदर संगठन का गठन किया था। संगठन के इस मकसद में एक केन्द्रीकृत संगठन और प्रभावशाली नेता की कमी थी, जो भारत से निर्वासित लाला हरदयाल के उनके बीच शामिल हो जाने से पूरी हो गई थी। मई 1913 में, पोर्टलैन्ड में, उन्होंने हिन्दी एसोशिएशन की स्थापना की थी, बाद में, (1 नवम्बर 1913, सेन फ्रान्सिस्को में) जिसका नाम बदलकर हिन्दुस्तान गदर पार्टी कर दिया गया था। इस संगठन की पहली बैठक में सोहन सिंह भकना अध्यक्ष, लाला हरदयाल महासचिव और पंडित कांशीराम मरोली कोषाध्यक्ष चुने गए थे। इस बैठक में युगान्तर आश्रम नाम से एक मुख्यालय बनाने और मुफ्त वितरण के लिए एक साप्ताहिक अखबार गदर को प्रकाशित करने का फैसला किया गया था।

गदर साप्ताहिक का पहला अंक 1 नवम्बर 1913 में सैन फ्रांसिस्को से निकला था। पार्टी द्वारा यह अंक 1857 के विद्रोह की स्मृति में प्रकाशित किया गया था। गदर के पहले अंक में यह घोषणा छपी थी- ''आज विदेशी भूमि पर गदर शुरू हो रहा है, लेकिन यह अपनी मादरे जबान में अंग्रेजी राज के खिलाफ जंग की शुरुआत है। हमारा नाम क्या है? गदर। हमारा काम क्या है? गदर। क्रान्ति कहाँ होगी? भारत में। वह वक्त भी जल्द आएगा जब कलम और स्याही की जगह खून और बन्दूक बोलेगी।''

अपने मुखपृष्ठ पर ''अंग्रेजी राज का दुश्मन'' नारा प्रकाशित करने वाले अखबार में घोषित किया जाता था, ''चाहिए जाँबाज सिपाही, भारत में विद्रोह की आग सुलगाने के लिए। पगार-मौत; कीमत- शहादत; पेंशन- आजादी; युद्धभूमि- भारत''। पार्टी का वैचारिक मिजाज धर्मनिरपेक्ष था। वे देशभक्ति से लबरेज थे, और औपनिवेशिक शासन के उत्पीड़न से भारत को आजाद कराने की उत्कट इच्छा रखते थे। पार्टी द्वारा एक संस्था, युगान्तर आश्रम बनाई गई थी, जिसका मकसद युवा भारतीयों में देशभक्ति जगाना और भारत के विद्रोह के लिए प्रशिक्षित करना था। गदर के हर अंक में अंग्रेजी राज का कच्चा चिट्ठा प्रकाशित किया जाता था, जिससे औपनिवेशिक राज के दुष्परिणामों से पाठक परिचित हुआ करते थे।

उन्हें विश्वास था कि अंग्रेजी राज का खात्मा सशस्त्र विद्रोह के जरिए संभव है, इसलिए भारतीय आप्रवासियों को बड़ी संख्या में भारत जाने और जनता व सेना के सिपाहियों के बीच वैचारिक प्रचार संगठित करने की जरूरत है। वे यह जानते थे कि जब तक अपने देश में आजादी हासिल नहीं होती, विदेशों में बसे भारतीयों के साथ समानता का सलूक नहीं किया जाएगा।

गदर का वितरण न सिर्फ उत्तरी अमरीका के भारतीय आप्रवासियों के बीच काफी ज्यादा होता था, हांगकांग, फिलीपीन्स, सिंगापुर, चीन, मलेशिया, ट्रिनिडाड, होन्डुरास और अन्य जगहों पर भी उसका वितरण काफी बढ़ चुका था। गदर में प्रकाशित कविताओं के एक संकलन को गदर की गूंज नाम से प्रकाशित किया गया था, जिसमें संकलित गीत भारतीय सभाओं में खूब गाए जाते थे।

प्रथम विश्व युद्ध के आगाज़ के साथ लाला हरदयाल और उनके कुछ साथी जर्मनी पहुँच गए, और उन्होंने बर्लिन में भारतीय इन्डिपेन्डेन्स कमेटी की स्थापना की। कमेटी ने भारतीय सेनाओं में विद्रोह संगठित करने के लिए कार्यकर्ताओं को भारत रवाना करने, भारतीय क्रान्तिकारियों को विस्फोटक मुहैया कराने और औपनिवेशिक शासन से आजादी के लिए भारत की अंग्रेजी सरकार पर धावा बोलने जैसी योजनाएँ भी बनाई थीं।

कामागाटा मारू कान्ड के बाद पंजाब में स्थितियाँ विस्फोटक हो गई थीं। कनाड़ा सरकार ने ''सीधी जहाज यात्रा'' के बगैर आए लोगों का कनाड़ा मे प्रवेश प्रतिबन्धित कर दिया था, इस नियम को चुनौती देते हुए एक भारतीय ठेकेदार गुरदीत सिंह कामागाटा मारू नामक जहाज को किराए पर लेकर 400 यात्रियों के साथ वैंकूवर के लिए रवाना हो गया। कनाडाई अधिकारियों ने उस जहाज को अपने यहाँ प्रवेश नहीं करने दिया, और मजबूर होकर जहाज वापस कलकत्ता लौट आया। अनेक भारतीय महसूस करते थे कि कनाड़ा सरकार की यह कार्यवाही अंग्रेजों के दबाव में की गई है। यही नहीं, अंग्रेजों के आक्रामक रवैए के कारण जहाज के कलकत्ता पहुँचने पर यात्रियों की सैनिकों के साथ झड़प हो गई, जिसमें कई यात्री मारे गए थे।

1.4.1 उपलब्धियाँ और असफलताएँ

गदर आन्दोलन को राष्ट्रवाद की विचारधारा, खासकर उपनिवेशवाद की राष्ट्रवादी आलोचना को लोकप्रिय बनाने में खासी कामयाबी हासिल हुई थी। नतीजतन, भारत और विदेशों में बसे भारतीयों के बीच यह धारणा व्यापक तौर पर फैल गई थी कि भारतीय गरीबी व पिछड़ापन औपनिवेशिक राज का परिणाम है। गदर की विचारधारा समतामूलक और लोकतान्त्रिक तत्वों के लिहाज से बेहद मजबूत थी। उसका धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण काफी मजबूत था। सोहन सिंह भकना ने कहा था, ''हम सिख और पंजाबी नहीं हैं, हमारा धर्म देशभक्ति है।''

1.4.2 कमजोरियाँ

आन्दोलन की अपनी तैयारियों का उसका मूल्यांकन अतिरंजित था। उनका यह निष्कर्ष भी गलत था कि भारत में अधिकांश जनता अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह के लिए तैयार है। उनका यह भरोसा और भी भ्रामक था कि भारत में क्रान्ति की परिपक्व परिस्थितियाँ सिर्फ विद्रोह के आह्वान का इन्तजार कर रही हैं।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

सही या गलत का निशान लगायें

क. गदर पार्टी का गठन न्यूयार्क में किया गया था।

ख. गदर साप्ताहिक का पहला अंक उर्दू में निकला था।

ग. कामागाटा मारू घटना गदर आन्दोलन से जुड़ी है।

घ. लाला हरदयाल गदर पार्टी के सदस्य नहीं थे।

1.5 निर्भरता

निर्भरता से हमारा मतलब अपनी घरेलू और विदेशी नीतियाँ निर्मित करने और उन्हें संचालित करने के मामले में किसी देश का स्वतन्त्र न होना है। औपनिवेशिक शासन के कारण नीतियों के मामले में भारत को अंग्रेजों पर निर्भर बना दिया गया था, जिसके कारण अंग्रेज तमाम क्षेत्रों में भारत की गतिविधियों को पूर्णतया नियन्त्रित करते थे। इस सन्दर्भ में दादाभाई नौरोजी का कथन प्रसिद्ध है, जिसके अनुसार अंग्रेज भारत का धन ब्रिटेन की ओर बहा रहे हैं और इस तरह ''खून चूसकर भारत को स्याह कर चुके हैं''। औपनिवेशिक शासन की आर्थिक नीतियाँ अंग्रेजों को फायदा पहुँचा रही थीं, जबकि भारत आर्थिक तौर पर गरीब और पिछड़ा बनता जा रहा था।

उपनिवेश के राजनीतिक व प्रशासनिक ढांचे में भारत के लोगों को अपने मामलों को संचालित करने की राजनीतिक आजादी और अधिकार उपलब्ध न थे। भारतीय हित अंग्रेज-हितों के अधीन किए जा चुके थे।

विदेश नीति के क्षेत्र में सभी निर्णय औपनिवेशिक सरकार द्वारा किए जाते थे। वे अपना हित साधते हुए बर्तानवी साम्राज्य के भारतीय उपनिवेश के विदेशी सम्बन्धों को तय करते थे, और इस मामले में भारतीयों के किसी हस्तक्षेप की इजाजत न थी। यही नहीं, भारतीय रजवाड़ों के आपसी रिश्तों का संचालन भी उनके नियन्त्रण में था।

सामाजिक मामलों में अंग्रेज भारतीय समाज के विभिन्न सामाजिक और धार्मिक रीतिरिवाजों पर हमलावर रवैया रखते थे। वे भारतीय समाज के अन्धविश्वासों और पिछड़ी मान्यताओं की आलोचना करते थे। इन विषयों में उन्होंने कई कानून भी पारित किए थे।

सांस्कृतिक तौर पर उन्होंने खुद को एक ऐसी बेहतर नस्ल के बतौर पेश करने की कोशिश की थी, जिसे विधाता ने मानो बर्बर बाशिन्दों पर राज करने के लिए ही गढ़ा था। देशी बाशिन्दों को बर्बर और 'स्त्रैण' और खुद को 'सभ्य' और 'मर्दाना' बताने वाले उनके धूर्त प्रचार का मकसद देशी बाशिन्दों पर मनोवैज्ञानिक प्रभुत्व कायम करना था, ताकि वे अपना अनैतिक राज कायम रख सकें।

इस तरह, आजादी की बनिस्पत निर्भरता किसी राष्ट्र, जनता या नस्ल पर पराए देश के राजनीतिक और आर्थिक प्रभुत्व में बदल जाती है। यही नहीं, राजनीति और अर्थव्यवस्था पर पराया

नियन्त्रण देशी जनता की प्रशासनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी निर्भरता का औजार बन जाता है।

स्वमूल्यांकित प्रश्न:

सही या गलत का निशान लगायें

क. भारतीयों ने औपनिवेशिक शासन के दौर में अंग्रेजी प्रभुत्व झेला था।

ख. 'गोरों पर सभ्यता का बोझ' की अवधारणा औपनिवेशिक शासन को सही ठहराने के लिए गढ़ी गई थी।

ग. दादाभाई नौरोजी ने कहा था कि अंग्रेजी शासन 'खून चूसकर भारत को स्याह कर चुका है'।

घ. भारतीयों को सभ्य और अंग्रेजों को बर्बर बताया जाता था।

1.6 नरमदली

नरमदलियों को ''भारतीय उदारपंथी'' भी कहा जाता था। नरमदलियों ने ही 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की शुरुआत की थी, और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के पहले दौर में उनका काफी दबदबा था। वे अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की राजनीति में भरोसा करते थे, वे अंग्रेज शासन की न्यायप्रियता के स्वाभाविक समर्थक थे और अंग्रेजों द्वारा तय ढाँचे में हासिल स्वराज का सपना देखते थे। वे संविधानवाद और क्रमिकतावाद की नीतियों के पक्के समर्थक थे। आलोचक उनकी नीतियों को ''प्रार्थनावृत्ति'' और स्वयं उनको जमीन से कटा बुद्धिजीवी कहते थे।

नरमदलियों की महत्वपूर्ण माँगें:

- भारतीय सिविल सेवा की परीक्षाओं को भारत और विदेश में एक साथ आयाजित किया जाए
- कार्यपालिका से न्यायपालिका को अलग किया जाए
- प्रान्तीय काउन्सिलों का गठन किया जाए
- सैन्य खर्चों में कटौती की जाए
- आर्म्स एक्ट वापस लिया जाए

- भारत की काउन्सिल को या तो भंग करें या पुनर्गठित करें
- भारत के अन्य हिस्सों में भी स्थाई बन्दोबस्ती की जाय
- विदेशों में गए गिरमिटिया मजदूरों के लिए कल्याणकारी कदम उठाएँ

उन्होंने सार्वजनिक धन पर भारतीय नियन्त्रण की मांग की थी, और अमरीकी स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान उठे नारे को दोहराते हुए कहा था, ''प्रतिनिधित्व नहीं, तो टैक्स नहीं''। उन्होंने भारतीयों के लिए कनाड़ा और आस्ट्रेलिया के स्वायत्त उपनिवेशों की तर्ज पर औपनिवेशिक साम्राज्य के ढाँचे के भीतर स्वराज की माँग उठाई थी। 1905 के बनारस सम्मेलन में पहले गोपाल कृष्ण गोखले और उसके बाद 1906 के कलकत्ता सम्मेलन में दादा भाई नौरोजी ने इस माँग को उठाया था।

1.7 भारत में अंग्रेजी राज के आर्थिक परिणामों का मूल्यांकन

नरमदली नेताओं ने भारत की गरीबी और आर्थिक पिछड़ेपन को उजागर किया और जोरदार तर्को के साथ साबित किया कि देश की यह बदहाली मुख्यतया अंग्रेजों द्वारा भारतीय संसाधनों के दोहन का नतीजा है। दादाभाई नौरोजी, आर.सी. दत्त, वाचा जैसे नेताओं द्वारा प्रवर्तित धन निकासी के सिद्धान्त ने औपनिवेशिक राज को भारत का ''हितैषी'' बताने वाले दावों का दम निकाल दिया था।

आर्थिक क्षेत्र में उनके द्वारा उठाई जाने वाली माँगें इस प्रकार थीं-

- भू-राजस्व में कमी की जाए, ताकि किसानों पर कर का बोझ कम हो सके
- भारत से धन निकासी बन्द की जाए
- नमक कर खत्म किया जाए
- भारत सरकार के भारी सैन्य-खर्चों में कटौती की जाए

सेना और सिविल सेवाओं पर किए जाने वाले खर्चे पर सवाल उठाकर वे अप्रत्यक्ष तौर पर भारत में अंग्रेजी राज के आधार पर चोट कर रहे थे। भारत में अंग्रेजी प्रशासन को कमजोर करने की उनकी ख्वाहिश उनकी भू राजस्व और करारोपण विरोधी माँगों में भी झलकती है।

नरमपंथियों का एक मूल्यांकन

- उनके कार्यक्रम की व्यापकता विविध हितों को समावेशित करती थी

- उपनिवेशवाद की उनकी आर्थिक आलोचना भारतीय गरीबी का वैज्ञानिक विश्लेषण पेश करती थी।
- उन्होंने विकृत और शोषक औपनिवेशिक राज के खिलाफ संगठित आन्दोलन की नींव डाल दी थी।
- उपनिवेशवाद की उनकी आर्थिक आलोचना भावी स्वतन्त्रता सेनानियों के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई।

स्वमूल्यांकित प्रश्नः

सही या गलत का निशान लगायें

क. दादाभाई नौरोजी ने 1906 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में स्वराज की मांग उठाई थी।

ख. नरमपंथी अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की नीति में भरोसा करते थे।

ग. दादाभाई नौरोजी पॉवर्टी एन्ड अनब्रिटिश रूल इन इन्डिया किताब के लेखक हैं।

घ. गोपाल कृष्ण गोखले ने 1905 में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन की अध्यक्षता की थी।

1.8 गरमदली

भारतीय राजनीति में गरमदली धड़े का उदय नरमदलियों की अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की राजनीति से बढ़ते मोहभंग का नतीजा था। अंग्रेजी राज की न्यायप्रियता पर नरमदलियों के विश्वास और उनकी ''प्रार्थनावृत्ति'' की तीखी आलोचना गरमदली किया करते थे। उनमें स्वाभिमान का भाव काफी गहरा था और वे सर उठा कर चलने की इच्छा रखते थे, इसलिए नरमदलियों का वे विरोध करते थे जिनमें उन्हें अंग्रेजों के प्रति समर्पण और सम्मान का भाव दिखाई देता था। गरमदली राजनीति के तीन गुट थे, बंगाल गुट का नेतृत्व बिपिन चन्द्र पाल और अरबिन्दो करते थे, जबकि महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक, और पंजाब में इस राजनीति का नेतृत्व लाला लाजपत राय कर रहे थे।

1.8.1 गरमदली राजनीति के उभार के कारण

औपनिवेशिक राज के असली चरित्र का एहसासः दादाभाई नौरोजी ने औपनिवेशिक राज के शोषक चरित्र को उजागर करते हुए अकाट्य तौर पर साबित कर दिया था कि ब्रिटेन को होने वाली भारतीय धन की निकासी ही भारत की बदहाली और गरीबी का मूल कारण है। पश्चिमीकरण के विस्तार के खिलाफ प्रतिक्रियाः बंकिम चन्द्र, विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द का लेखन उन्हें प्रेरित कर रहा

था। वे भारत की आध्यात्मिक धरोहर से भी प्रेरणा हासिल कर रहे थे। भारत के बदतर आर्थिक हालातः भयानक अकाल, करों के भारी बोझ औरसरकारी असंवेदनशीलता के कारण औपनिवेशिक राज के खिलाफ असन्तोष गहरा होता जा रहा था।तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभावः अबीसीनिया द्वारा इटली की सेना को पीछे धकेल देना (1896) और जापान की रूस पर विजय (1905) जैसी घटनाओं ने यूरोप की अजेयता की धारणा को झकझोर दिया था। इन घटनाओं से भारतीय राष्ट्रवादियों में आत्मविश्वास और प्रेरणा का संचार हुआ था। कर्जन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ उसके कार्यकाल में उठाए गए विभिन्न कदम भारतीयों में गहरा असन्तोष पैदा कर रहे थे। भारतीयों के चरित्र पर उसकी ओछी टिप्पणियाँ और 1889-1900 के भयानक अकाल की काली छाया से उबरने के पहले 1903 में उसके द्वारा आयोजित दिल्ली दरबार ने आग में घी डालने का काम किया था। बंगाल का विभाजनः 1905 में बंगाल विभाजन की घोषणा औपनिवेशिक प्रशासन की सबसे बदतर राजनीतिक पहल थी। इस कदम ने बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन की लहर पैदा कर दी थी।

गरमदली राजनीति के कार्यक्रम में विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, स्वदेशी उत्पादों का इस्तेमाल, राष्ट्रीय शिक्षा पर जोर और सत्याग्रह की वकालत जैसी बातें शामिल थीं। स्वदेशी और बहिष्कार का उद्देश्य भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देना और भारतीय लोगों को काम व रोजगार के अधिक अवसर मुहैह्या कराना था। इसी दौर में कलकत्ता में बंगाल नेशलन कॉलेज स्थापित किया गया था। मद्रास में पचैयप्पा नेशनल कॉलेज शुरू किया गया था। पंजाब में डीएवी आन्दोलन शिक्षा के क्षेत्र में काफी सफल रहा था। राष्ट्रीय स्कूल और कॉलेज राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार करने के लिए शुरू किए गए थे।

1.8.2 गरमदली राजनीति का मूल्यांकन

गरमदली नेता लोकतन्त्र, संविधानवाद की वकालत करते थे और अपनी राजनीति के जरिए राष्ट्रीय आन्दोलन के सामाजिक आधार को व्यापक बनाना चाहते थे। उन्होंने देशी भाषाओं में अखबार प्रकाशित किए ताकि वे एक व्यापक पाठकवर्ग तक अपनी पहुँच बना सकें। वे भारत में अंग्रेजी राज के नकारात्मक प्रभावों से पूरी तरह वाकिफ थे और उनका पर्दाफाश किया करते थे हालाँकि, सामाजिक सुधार के क्षेत्र में गरमदली नेता पुनरुत्थानवादी और रूढ़िवादी थे। विवाह के लिए लड़कियों की उम्र को 10 से बढ़ाकर 12 वर्ष करने वाले एज ऑफ कन्सेन्ट बिल के प्रति तिलक का विरोध, गोहत्या-विरोधी संगठनों से उनके सम्बन्ध और उनके द्वारा गणेश उत्सव (1893) व शिवाजी उत्सव (1895) की शुरुआत उनके कट्टर हिन्दू व हिन्दू राष्ट्रवादी चेहरे को उजागर करते हैं। लाला लाजपत राय और बिपिनचन्द्र पाल भी हिन्दू राष्ट्र और राजनीतिक स्तर पर हिन्दू हित-रक्षा की जरूरत पर बल देते थे। भले ही गरमदली राजनीति के पुनरुत्थानवादी कदम मुख्यतया औपनिवेशिक

शासन के खिलाफ लक्षित रहे हों, इसमें शक नहीं कि वे धर्म और राजनीति के नुकसानदेह घालमेल को पनपाने व साम्प्रदायिकता और मुस्लिम अलगाववाद को हवा देने में मददगार थे।

स्वमूल्यांकित प्रश्नः

सही या गलत का निशान लगायें

क. लाला लाजपत राय-बाल गंगाधर तिलक-बिपिन चन्द्र पाल कांग्रेस के नरमदली खेमे के महत्वपूर्ण नेता थे।

ख. गरमदली अर्जी, प्रार्थना और प्रतिवाद की राजनीति में यकीन करते थे

ग. बालगंगाधर तिलक ने गणपति उत्सव और शिवाजी उत्सव की शुरुआत की थी

घ. लार्ड लिटन ने दो हिस्सों में बंगाल को बाँट दिया था

1.8 स्वराज

नरमदली नेताओं का स्वराज अंग्रेजी साम्राज्य के ढाँचे के अन्दर महज औपनिवेशिक स्वशासन की माँग थी। यह ध्यान रखने की बात है कि गरमदली नेताओं का स्वराज हर तरह की विदेशी पाबन्दियों के बगैर राष्ट्र का कामकाज संचालित करने व विदेशी प्रभुत्व से सम्पूर्ण मुक्ति की माँग थी।

गरमदलियों का मुख्य मकसद स्वराज था, लेकिन इसकी व्याख्या हरेक नेता अलग-अलग ढंग से करते थे। तिलक के लिए इसका मतलब प्रशासन पर भारतीय नियन्त्रण था, लेकिन इसके लिए उन्हें ब्रिटेन के साथ सम्पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद करना जरूरी नहीं लगता था। बिपिन चन्द्र पाल को अंग्रेजों के सर्वोच्च नियन्त्रण के बने रहने तक स्वराज सम्भव नहीं लगता था, यानी उनकी समझ से स्वराज अंग्रेजी राज से पूर्ण मुक्ति के बाद ही संभव था। बंगाल में अरबिन्दो घोष भी स्वराज की व्याख्या पूर्ण मुक्ति के रूप में करते थे। हालाँकि अधिकांश अन्य नेताओं के लिए स्वराज का मतलब अंग्रेजों के औपनिवेशिक ढाँचे के अन्दर स्वशासन हासिल करने से ज्यादा कुछ नहीं था।

गरमदली नेता मानते थे कि अपने घर की चाबी भारतीयों के पास ही रहनी चाहिए, और वे स्वशासन हासिल करने का उद्देश्य रखते थे। तिलक भारतीयों से हथियार उठाने की अपेक्षा नहीं करते थे, बल्कि चाहते थे वे अपने आत्म-त्याग और आत्म-संयम को इस तरह विकसित करें कि किसी विदेशी सत्ता को उनके ऊपर राज चलाने में मदद न मिले। तिलक ने अपने हमवतनों को अपने लिए न्यायालय स्वयं स्थापित करने की सलाह दी थी, और उचित समय पर कर अदायगी बन्द करने के लिए कहा था। तिलक का नारा थाः ''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लेकर रहूँगा।''

अरबिन्दो भारत में सरकार की वर्तमान दुर्दशा को पश्चिम के विकृत प्रभाव का नतीजा मानते थे। वे मानते थे कि इस प्रभाव से भारत को मुक्त कराने, और अपनी श्रेष्ठतर सभ्यता में आश्रय लेने के जरिए ही हम इस दुर्दशा से बाहर निकल सकते हैं। राष्ट्रवाद के लिए उन्होंने यह कार्य बताया थाः

क. भारत में स्वराज लाना, ताकि उस बीमार राजनीतिक जीवन का पूर्ण व रैडिकल निदान हो सके, जो उन राजनीतिक और आर्थिक बीमारी के विषाणुओं से ग्रस्त है जो यूरोप को बेजार बना चुके हैं।

ख. इस बात की पक्की गारन्टी करना ताकि भारत में जो स्वराज आए वह स्वदेशी स्वराज हो, न कि यूरोपीय। उनका मत था कि स्वराज आन्दोलन सर्वप्रथम स्वदेशी की उस माँग में परिलक्षित हुआ जो सिर्फ विदेशी वस्तुओं का विरोधी न था, बल्कि विदेशी पसन्द, फैशन, तौर-तरीकों और विदेशी शिक्षा के भी खिलाफ था, और जिसने जनता को अपनी सभ्यता की ओर वापस ले चलने की कोशिश की थी।

अरबिन्दो जोर देकर कहते थे 'राजनीतिक आजादी किसी राष्ट्र की प्राणवायु होती है' और राजनीतिक आजादी को लक्षित किए बगैर हर तरह के सामाजिक व शैक्षिक सुधार, औद्योगिक व जातीय नैतिक विकास इत्यादि की कोशिशें निरर्थक ही नहीं अज्ञानता के भी परिचायक हैं।

लाजपत राय ने कहा था कि आत्मा के अभाव वाला मनुष्य महज पशु होता है और आत्मा के अभाव वाला राष्ट्र 'बेजुबान हाँका गया पशु होता है'। इसलिए स्वराज राष्ट्र की बुनियादी जरूरत है, जिसकी भरपाई सुधार या सुशासन से संभव नहीं है।

महात्मा गाँधी ने 19 मार्च 1931 के यंग इन्डिया में लिखते हुए कहा था कि स्वराज का मतलब आत्म संयम और स्व-राज है, न कि हरेक अनुशासन से मुक्ति, जैसा आम तौर पर आजादी का मतलब मान लिया जाता है। बाद में उन्होंने यह भी कहा था कि स्वराज का मतलब हरेक द्वारा 'स्वस्थ और सम्मानजनक आजादी' हासिल करना है। यह विदेशी नियन्त्रण से सम्पूर्ण मुक्ति और सम्पूर्ण आर्थिक आजादी होगी। स्वराज सत्य और अहिंसा के जरिए हासिल किया जाएगा।

स्वमूल्यांकित प्रश्नः

1.''स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे हासिल करके रहूँगा।''-यह किसका कथन है?

''राजनीतिक आजादी राष्ट्र की प्राण वायु है''- किसने कहा था?

1.9 धन निकासी (Drain of Wealth)

भारतीय राष्ट्रवादी नेताओं और अर्थशास्त्रियों के अनुसार भारत से ब्रिटेन को होने वाला धन का वह नियमित प्रवाह जिसके बदले भारत को कोई मुनाफा नहीं मिलता, भारतीय ''धन निकासी'' है। धन निकासी के सिद्धान्त के केन्द्रीय तर्क के अनुसार भारत के राष्ट्रीय सकल उत्पाद का एक अंश ब्रिटेन

को निर्यात कर दिया जाता है, और इस तरह वह अपने लोगों के उपभोग या देश के पूंजी निर्माण के लिए अनुपलब्ध रहता है। अपने राजनीतिक, औपनिवेशिक, व साम्राज्यवादी हितों को साधने वाली अंग्रेजों की यह नीति ही भारत के पिछड़ेपन का कारण है।

1.9.1 धन निकासी के विभिन्न तत्व

1. होम चार्जेज: ब्रिटेन में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के कार्यनिष्पादन से जुड़े वे खर्चे थे जो भारत के नाम पर किए जाने के कारण उस पर थोप दिए जाते थे। इस मद के मुख्य खर्चे इस प्रकार थे:

क. नागरिक और सैन्य खर्चे: इस मद में भारत में रहने वाले ब्रिटिश नागरिक या सैन्य अधिकारियों के पेंशन और छुट्टी के खर्चे, लंदन स्थित इन्डिया ऑफिस और वार ऑफिस के खर्चे शामिल किए जाते थे।

ख. विदेशों से लिए गए कर्ज का ब्याज: भारत पर कब्जा करने के लिए किए गए युद्धों के लिए ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने

सार्वजनिक कर्ज लिए थे। 1900 तक यह कर्ज 22 करोड़ 40 लाख डालर तक हो चुका था। इस कर्ज का एक हिस्सा सिंचाई साधनों के निर्माण और सार्वजनिक व रेलवे से जुड़े दूसरे निर्माण कार्यों जैसे उत्पादक मदों में खर्च होता था। यह भी गौरतलब है कि ये खर्चे अंग्रेजों द्वारा औपनिवेशिक शासन को अपने लिए सुविधाजनक बनाने की नीयत से किए गए थे।

ग. ईस्ट इन्डिया कम्पनी के शेयरधारकों के बोनस: ये बोनस भी भारतीय राजस्व से दिए जाते थे। 1833 के चार्टर एक्ट के प्रावधान के अनुसार कम्पनी के शेयरधारकों को 6 लाख 30 हजार का वार्षिक बोनस भारतीय राजस्व से निर्गत होता था।

घ. गोदाम के लिए ब्रिटेन में खरीद: सेक्रेटरी ऑफ स्टेट और भारत सरकार सैन्य, नागरिक और नाविक विभागों के गोदामों के लिए सामान ब्रिटेन के बाजार से खरीदा करती थी।

1.9.1.1 विदेशी बैंकिंग, बीमा और जहाजरानी कम्पनियाँ

बैंकिंग, बीमा और जहाजरानी सेवाओं के लिए भारत को भारी भुगतान करना पड़ता था। इन विदेशी कम्पनियों की निर्बाध गतिविधियों का इन क्षेत्रों के भारतीय उद्यमों पर नकारात्मक असर भी पड़ता था।

1.9.1.2 विदेशी पूंजी निवेशों पर ब्याज

निजी विदेशी पूंजी को मिलने वाला ब्याज व मुनाफा भी भारत से धन निकासी का अंग था। गौरतलब है कि विदेशी पूंजीपति अपने मुनाफे के लिए भारतीय संसाधनों के दोहन से मुनाफा कमाते थे और देशी पूंजी उद्यमों को हर तरीके अपनाकर बाधित करते थे।

दादाभाई नौरोजी ने बताया था कि भारत से बाहर निकलने वाला धन देश का वह संभावित पूंजी अधिशेष है जिसके उचित निवेश से भारत की आय में काफी बढ़ोत्तरी संभव है। उनके अनुमान के मुताबिक भारत में अंग्रेजी राज की शुरुआत से 1865-66 के अवधि में अंग्रेजों की नीतियों के कारण भारत से 150 करोड़ डालन ब्रिटेन की ओर बह चुके थे। बाद में, 1901 में, आर.सी. दत्त ने अनुमान लगाते हुए बताया कि हर साल 2 करोड़ बीस लाख डालर की राशि ब्रिटेन द्वारा हड़पी जा रही है।

1.9.2 धन निकासी का प्रभाव

इसके कारण भारत में पूंजी निवेश धीमा हो गया, और भारत का औद्योगीकरण बाधित हुआ। दूसरी ओर इस परिघटना ने ब्रिटेन के लिए अनुकूल स्थितियों का निर्माण किया, और औद्योगीकरण की शुरुआत अवस्था में उसको मदद पहुँचाई। यही नहीं, ब्रिटिश पूंजी का वह हिस्सा वित्तीय पूंजी के रूप में भारत लौट आता था और भारत से धन निकासी को और तीव्र करता था।

स्वमूल्यांकित प्रश्नः सही या गलत का निशान लगायें

क. धन निकासी का सिद्धान्त गरमदली नेताओं द्वारा विकसित किया गया था

ख. होम चार्जेज भारत से होने वाली धन निकासी का अंग हुआ करते थे

ग. धन निकासी प्रक्रिया को दादाभाई नौरोजी भारतीय गरीबी का मुख्य कारण मानते थे।

घ. विदेशी पूंजी निवेश पर लगने वाला ब्याज भारत से होने वाली धन निकासी का अंग था।

क. गलत, ख. सही, ग. सही, घ, सही

1.10 फारवर्ड पॉलिसी

रूस और इंगलैन्ड के बीच हुए क्रीमिया युद्ध के बाद रूस बड़ी तेजी के साथ मध्य एशिया में पसरने लगा। अपना मकसद हासिल करने के लिए रूस अपनी सीमाओं को 1864 तक बोखारा, 1868 तक समरकन्द और 1873 तक खीव तक बढ़ा चुका था। वह रूसी तुर्किस्तान को अपना नया प्रान्त बना चुका था और बोखारा को अपने आधिपत्य में ला चुका था। रूस की इन चालों की प्रति

इंगलैन्ड ने दोतरफा रवैया अपनाया। 1863-75 के दरमियान अंग्रेज 'कुशल निष्क्रियता की नीति' पर चलते रहे, जिसका मकसद रूस के साथ कूटनीतिक समझदारी बढ़ाना और अफगानिस्तान को लेकर चौकस अहस्तक्षेप की नीति बनाए रखना था। इस नीति के तहत, भारतीय सीमाओं पर ही रूसी खतरे से निपटने का निर्णय अंग्रेजों ने किया था, क्योंकि अफगानिस्तान पर राजनीतिक प्रभुत्व की कोशिशें जोखिमभरी थीं। इसके अलावा, टकराव के सम्भावित बिन्दुओं से रूस का सैनिक कैम्प दूर था, इसलिए भारतीय सीमाओं पर ही उनसे लड़ने में ज्यादा बुद्धिमानी थी।

रूसियों के प्रति इस ब्रिटिश नीति के विरोधी ही 'फारवर्ड पॉलिसी' के पैरोकार थे, जिन्हें लगता था कि आसन्न रूसी आक्रमण के खतरे का सामना भारत-अफगान सीमा से दूर किया जाना चाहिए, ताकि सीमा के पास तनाव की जद में रहने वाली भारतीय जनसंख्या पर पड़ने वाले खतरों से बचा जा सके। उनकी इस नीति का आशय यही था कि औपनिवेशिक सरकार अग्रिम कूच करके अफगानिस्तान पर अपना वर्चस्व कायम करे व हिन्दुकुश सीमा पर रूसियों की अग्रगति पर रोक लगाए।

स्वमूल्यांकित प्रश्नः

सही या गलत का निशान लगायें

क. मध्य एशिया में रूसियों की अग्रगति ब्रिटेन के लिए कोई खतरा न थी।

ख. कन्जर्वेटिव पार्टी 'फारवर्ड पॉलिसी' की समर्थक थी।

ग. पहले अफगान युद्ध के दौरान लार्ड लिटन भारत के गवर्नर जनरल थे।

घ. 'फारवर्ड पॉलिसी' इंगलैन्ड और फ्रान्स के सामाजिक रिश्तों से सम्बन्धित थी।

क. गलत, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत

1.11 हन्टर आयोग

अक्टूबर 1919 में भारत की औपनिवेशिक सरकार ने पंजाब की कार्यवाहियों की जाँच के लिए एक जाँच आयोग गठित किया था। उपद्रवों की जाँच कमेटी का नाम होने के बावजूद इस कमेटी को बाद में आम तौर पर हंटर आयोग के नाम से ही जाना गया है, जो पंजाब के उपद्रवों और जलियाँवाला बाग जनसंहार सम्बन्धी जाँच आयोग के चेयरमैन लार्ड विलियम हंटर के नाम की वजह से हुआ है।

आयोग के सदस्यों के नाम इस प्रकार थेः

- लार्ड हन्टर, आयोग के चेयरमैन

- न्यायमूर्ति जार्ज रैनकिन, कलकत्ता
- डब्ल्यू. एफ. राइस, गृह विभाग के सदस्य
- मेजर जनरल सर जार्ज बैरो
- एच.सी. स्टोक्स, कमीशन के सचिव और गृह विभाग के सदस्य
- थॉमस स्मिथ, संयुक्त प्रान्त की विधान परिषद के सदस्य
- पंडित जगत नरायन, वकील और संयुक्त प्रान्त विधान परिषद के सदस्य
- सर चिमनलाल हरीलाल सेतलवाड़, बॉम्बे विश्वविद्यालय के कुलपति और बॉम्बे उच्च न्यायालय के वकील
- सरदार साहिबजादा सुलतान अहमद खान, ग्वालियर राज के वकील

आयोग एक आधिकारिक कानूनी न्यायालय नहीं था, इसलिए गवाह शपथ लेकर गवाही देने के लिए बाध्य न थे।

जनरल डायर ने आयोग के सामने अपने बयान में बताया कि वह भीड़ देखने पर पर गोली चलवाने का पूर्व संकल्प कर चुकने के बाद जलियाँवाला बाग गया था। डायर ने बताया कि उसका मकसद पूरे पंजाब में खौफ पैदा करना और ''विद्रोहियों'' की नैतिक साख को कमजोर करना था। उसने बताया कि भीड़ हटने की शुरुआत देखकर उसने गोली चलवाना बंद नहीं किया, क्योंकि जब तक भीड़ पूरी तरह न हट जाए उन पर गोलियाँ चलवाते रहना वह अपना कर्तव्य समझता था। डायर को सिर्फ यही मलाल था कि उसका गोला बारूद अपर्याप्त था और वह आसपास की सँकरी गलियों के कारण बख्तरबंद गाड़ियाँ वहाँ न ले जा सका था। भीड़ को तितर-बितर करना उसके लिए काफी न था, क्योंकि वह उन्हें एक नैतिक सबक सिखाना चाहता था।

आयोग ने अपनी रपट में कहा थाः

- गोली चलाने के पहले भीड़ को तितर-बितर होने की चेतावनी न देना गलत था।
- डायर द्वारा लोगों को सबक सिखाने का मकसद गलत था
- डायर ने अपनी शक्तियों का अतिक्रमण किया था

- पंजाब में अंग्रेजी राज को उखाड़ फेंकने का कोई षड़यन्त्र नहीं किया गया था।

हंटर आयोग ने जनरल डायर पर कोई अनुशासनात्मक या दण्डात्मक कार्यवाही नहीं की। वायसराय की परिषद के कानून और गृह विभाग से जुड़े सदस्यों ने अन्ततः यही फैसला किया कि जनरल डायर का व्यवहार संवेदनहीन और क्रूर था, लेकिन राजनीतिक कारणों के चलते उन पर सैनिक या कानूनी अभियोग चलाया जाना संभव नहीं है। वैसे भी ब्रिटेन के उच्च सदन द्वारा जनरल डायर के पक्ष में मतदान करने के बाद आयोग की कार्यवाही सिर्फ औपचारिक रह गई थी। यही नहीं, 'मार्निंग पोस्ट' अखबार ने जनरल डायर की सहायतार्थ 30,000 डालर का कोष भी इकट्ठा किया था।

स्वमूल्यांकित प्रश्नः

सही या गलत का निशान लगायें

क. हंटर कमीशन का गठन पंजाब के उपद्रवों और जलियाँवाला बाग जनसंहार की जाँच के लिए किया गया था।

ख. ब्रिटेन के उच्च सदन ने जनरल डायर के समर्थन में अपना मत नहीं दिया था।

ग. जलियाँवाला बाग जनसंहार के समय माइकल ओ डायर पंजाब का राज्यपाल था।

घ. जलियाँवाला बाग जनसंहार साम्राज्य के घमन्ड और प्रभुत्व का एक और उदाहरण था।

1.12 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

1.4.2 के उत्तर

क. गलत, ख. सही, ग. सही, घ, गलत

1.5 के उत्तर

क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. गलत।

1.7 के उत्तर

क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही

1.8.2 के उत्तर

क. गलत, ख. गलत, ग. सही, घ. गलत

1.9.2 के उत्तर

क. गलत, ख. सही, ग. सही, घ, सही

1.10 के उत्तर

क. गलत, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत

1.10 के उत्तर

क. सही, ख. गलत, ग. सही, घ. सही

1.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

चन्द्र, बिपन एवं अन्य (1993), इन्डियाज स्ट्रगल फार इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

चन्द्र, बिपन एवं अन्य (1999), इन्डिया आफ्टर इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

ग्रोवर बी.एल., और ग्रोवर, एस (1998 16वां संस्करण) एन इन्ट्रोडक्शन टु माडर्न इन्डिया, एस चन्द एन्ड कम्पनी, दिल्ली

इग्नू पाठ्य सामग्री, आधुनिक भारतीय इतिहास (1999)

1.13 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

बन्द्योपाध्याय, शेखर, फ्रॉम प्लासी टु पार्टीशनः अ हिस्ट्री ऑफ माडर्न इन्डिया, ओरियन्ट ब्लैकस्वैन, दिल्ली,2004

गान्धी, एम.के., हिन्द स्वराज या इन्डियन होम रूल (1996) नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

1.14 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न1. भारत में ब्रिटिश वायसराय के अधिकार व दायित्व क्या थे।

प्रश्न2. गदर आन्दोलन की उपलब्धियाँ व कमियाँ क्या थीं?

प्रश्न 3. नरमदली नेताओं की माँगों और उनकी उपलब्धियों पर एक टिप्पणी लिखें

प्रश्न 4. गरमदली नेताओं के उभार के कारणों की चर्चा करें

प्रश्न 5. गरमदली नेताओं का मूल्यांकन करें?

प्रश्न 6. नरमदली व गरमदली नेताओं द्वारा स्वराज की अलग-अलग व्याख्याओं पर एक टिप्पणी लिखें।

प्रश्न 7. भारत से ब्रिटेन को हुई धन निकासी के तत्वों पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

प्रश्न 8. फारवर्ड पॉलिसी पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

इकाई **2**

स्वदेशी, अनुशीलन समिति, निहिलिस्ट (नकारवादी), (नकारवादी), क्रान्तिकारी या रैडिकल

2.1 परिचय

2.2 उद्देश्य

2.3 स्वदेशी

2.3.1 स्वयंसेवकों की समितियाँ और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ

2.3.2 एक मूल्यांकन

2.4 अनुशीलन समिति

2.5 निहिलिस्ट

2.6 क्रान्तिकारी या रैडिकल

2.6.1 गुप्त समितियाँ

2.6.2 क्रान्तिकारी गतिविधियों का दूसरा दौर

2.6.3 एचआरए और एचएसआरए की विचारधारात्मक दिशा

2.7 बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 परिचय

इस इकाई में राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़ी कुछेक महत्वपूर्ण अवधारणाओं, विचारों व गतिविधियों और स्वतन्त्रता आन्दोलन पर उनके प्रभाव की चर्चा की जाएगी। इसके अलावा, औपनिवेशिक राज के खिलाफ लड़ाई के व्यापक सन्दर्भ में इन धारणाओं ओर गतिविधियों के महत्व से भी आपको परिचित कराने का प्रयास किया जाएगा। आप इन धारणाओं को न सिर्फ समझें बल्कि भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सन्दर्भ में इन्हें देखने की कोशिश करें।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- स्वदेशी का अर्थ और सन्दर्भ समझने लगेंगे
- यह जानेंगे कि स्वदेशी आन्दोलन का विकास कैसे हुआ, और इसकी राजनीतिक प्रवृत्तियाँ, तरीके, ताकत और कमजोरियाँ क्या थी
- अनुशीलन समिति की विचारधारा और कार्यक्रम क्या था
- भारतीय क्रान्तिकारियों पर रूसी निहिलिस्टों (नकारवादियों) की विचारधारा और आन्दोलन का क्या असर पड़ा था
- राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रान्तिकारी या रैडिकल तेवर से परिचित होंगे

2.3 स्वदेशी

स्वदेशी का अर्थ स्वदेश-विनिर्मित वस्तुओं का इस्तेमाल, उनकी पैरोकारी व स्वदेशी शिक्षा पर जोर देना था। कांग्रेस के दोनों धड़ों, नरमदल और गरमदल के नेता स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल पर जोर देते थे और उनके विचारों की परिणति **1905** में स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन शुरू करने में दिखती है। स्वदेशी आन्दोलन का तात्कालिक कारण अंग्रेजों द्वारा बंगाल का बँटवारा करने का निर्णय था। वैसे तो अंग्रेज दावा कर रहे थे कि उनका निर्णय प्रशासनिक कारणों से लिया गया है, क्योंकि इतने बड़े प्रान्त का प्रशासन चलाना दुष्कर हो रहा है। लेकिन विभाजन के ढंग से ही जाहिर हो गया था कि उनका असल मकसद राष्ट्रीय आन्दोलन की बढ़ती ताकत को कमजोर करना था। भारत सरकार के गृह सचिव ने टिप्पणी भी की थी कि एकताबद्ध बंगाल ताकतवर है, और उसका बँटवारा उसे कमजोर कर देगा।

बंगाल का विभाजन इस तरह किया गया था, कि वहाँ बंगाली दो अलग प्रशासनिक इकाइयों में बँटने के अलावा खुदअपने प्रान्त में ही अल्पसंख्यक बना दिए गए थे। बँटवारे के बाद के नए प्रस्तावित प्रान्त में एक करोड़ सत्तर लाख बंगालियों को तीन करोड़ सत्तर लाख उड़िया और हिन्दी भाषी लोगों के साथ जोड़ दिया गया था। इसके अलावा यह विभाजन धर्म के आधार पर किया गया था। खुद कर्जन ने कहा था कि ढाका नए मुस्लिम बहुल प्रान्त की राजधानी होगी (जहाँ एक करोड़ अस्सी लाख मुसलमानों के साथ एक करोड़ बीस लाख हिन्दू होंगे)। **19** जुलाई **1905** के दिन बंगाल विभाजन की घोषणा कर दी गई। बँटवारे के खिलाफ छोटे कस्बों में लोगों ने अनेक विरोध सभाएं कीं। बाद में, **7** अगस्त **1905** को, टाउन हाल की सभा में स्वदेशी आन्दोलन की

औपचारिक घोषणा कर दी गई। उधर, **1** सितम्बर **1905** को सरकार ने भी घोषित कर दिया कि **16** अक्टूबर **1905** को बंगाल-विभाजन अमल में आ जाएगा।

पूरे बंगाल में **16** अक्टूबर **1905** का दिन शोक दिवस घोषित कर दिया गया और उसे अरन्धन (चूल्हाबंदी) के बतौर मनाया गया। भाईचारे और एकता के प्रतीक के बतौर रक्षा बन्धन का कार्यक्रम बंगाल के दोनों हिस्सों में चलाया गया। स्वदेशी इस विरोध आन्दोलन का घोषित मकसद बन गया। अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार के आह्वान से स्वदेशी आन्दोलन की ताकतें मजबूत हो रही थीं। स्वदेशी उत्पादों को बढ़ावा देना राष्ट्रीय कर्तव्य समझा जाने लगा। स्वदेशी वस्तुओं की बिक्री के लिए आयोजित स्वदेशी मेले चर्चित हो रहे थे। चरखा देश को आत्मनिर्भर बनाने की आम भारतीय ख्वाब का प्रतीक बन गया था।

स्वदेशी या भारतीय उपक्रम स्थापित करने के लिए देश में काफी उत्साह पैदा हो रहा था। अनेक भारतीय उद्यमों की शुरुआत हुई, जिनमें कलकत्ता पॉटरीज, नेशनल टैनरी, बंगाल केमिकल्स, माहिनी मिल्स और बंग लक्ष्मी कॉटन मिल्स शामिल थे। माचिस, साबुन, तेल मिलों इत्यादि सामानों की अनेक उत्पादक इकाइयाँ स्थापित की जा रही थीं। विदेशी वस्तुओं की बड़ी-बड़ी होलियाँ जलाई जा रही थीं।

अंग्रेजी वस्तुओं की दुकानों पर शुरू धरने की कार्यवाही बाद में अंग्रेज-प्रबन्धन वाली शैक्षिक संस्थाओं के बहिष्कार के रूप में आगे बढ़ने लगी। सरकार ने 'कार्लाइल सर्कुलर' जारी करके धरना देने वाले छात्रों को धमकाया, उन्हें कहा गया कि धरना बंद न करने पर अनुदान और वजीफे बन्द हो जाएंगे, और शुल्क दंड व निष्कासन की कार्यवहियाँ की जाएंगी। उधर, स्कूलों और कालेजों के बहिष्कार के कार्यक्रम ने स्वदेशी आन्दोलन के नेताओं को बंगाल में समानान्तर शिक्षा की व्यवस्था स्थापित करने पर मजबूर किया। और इस मकसद के लिए संसाधन जुटाए जाने लगे, जिनके परिणामस्वरूप बंगाल टेक्निकल इन्स्टीट्यूट, बंगाल नेशनल कॉलेज और स्कूल व जिलों में अनेक प्राथमिक व माध्यमिक स्कूल अस्तित्व में आए।

2.3.1 स्वयंसेवकों की समितियाँ और राजनीतिक प्रवृत्तियाँ

स्वदेशी आन्दोलन के दौरान समितियाँ जनगोलबन्दी का एक महत्वपूर्ण जरिया थीं। इनमें स्वदेशी बान्धब समिति, सर्कुलर विरोधी समिति, अनुशीलन समिति जैसी समितियाँ ज्यादा महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थीं। वे स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन के महत्वपूर्ण पहलुओं का प्रचार करती थीं, अकाल और महामारियों के दौरान राहत कार्यों का आयोजन करती थीं, नैतिक और शारीरिक शिक्षा देती थीं, शिल्पकारी और राष्ट्रीय स्कूलों के आयोजन करती थीं, और विवादों के समाधान के लिए पंचायतों का आयोजन किया करती थीं।

वे स्वदेशी विषयों और क्षेत्रीय भाषाओं में लोक गायकों और कलाकारों की प्रस्तुतियाँ को प्रोत्साहित करती थीं। इसके अलावा, जनगोलबन्दी बढ़ाने के लिए पारम्परिक उत्सवों और मेलों का भी इस्तेमाल किया जाता था। स्वदेशी के जन-प्रचार के लिए बंगाल की पारम्परिक लोक नाट्य शैली जात्रा का व्यापक उपयोग हो रहा था। बिपन चन्द्र बताते हैं कि समितियों की विचारधारा का दायरा व्यापक था, और वह धर्मनिरपेक्षता से धार्मिक पुनरुत्थानवाद, नरमपंथी राजनीति, सामाजिक सुधार (उत्पादक, सामाजिक-आर्थिक व शैक्षिक कार्यक्रमों के जरिए) से लेकर राजनीतिक चरमपंथ की धारा को अपने में समेटे था।

स्वदेशी आन्दोलन में विभिन्न विचारधारा वाली राजनीतिक प्रवृत्तियाँ मौजूद थीं-

- नरमदली नहीं चाहते थे कि यह आन्दोलन ज्यादा आगे बढ़े। आन्दोलन के प्रति अपनी उदासीनता के चलते उनकी लोकप्रियता खत्म हो गई।
- 'रचनात्मक स्वदेशी' वाली समाज-सुधार की धारा स्वयंसेवा और आत्मनिर्भरता (रबीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में आत्मशक्ति) को केन्द्रित करके एक नियमित आन्दोलन चलाना चाहती थी, और इसके लिए वे स्वदेशी व्यावसायिक उद्यम, राष्ट्रवादी शैक्षिक कार्यक्रम और गाँव उत्थान समितियों की स्थापना पर जोर देते थे।
- राजनीतिक चरमपंथ की धारा भारत के लिए अंग्रेजी अधीनता के बगैर स्वशासन चाहती थी, और इसके लिए अंग्रेजों से पूर्ण सम्बन्ध विच्छेद ही नहीं बल्कि उनके प्रभाव को भी मिटाने का मकसद रखती थी। वे चाहते थे कि बहिष्कार के दायरे को बढ़ाया जाए और उसमें ब्रिटिश उत्पादों और शैक्षिक संस्थाओं के अलावा औपनिवेशिक प्रशासन, न्यायालय और सेवाओं के बहिष्कार को भी शामिल किया जाए। बिपिन चन्द्र पाल ने इस रास्ते को ''सत्याग्रह'' बताया था। अरबिन्दो घोष ब्रिटिश उत्पादों, उनके शैक्षिक संस्थानों, न्यायालयों और कार्यपालिका के 'संगठित और अनवरत' बहिष्कार के साथ-साथ अंग्रेजी राज के समर्थकों के सामाजिक बहिष्कार की बात कर रहे थे। उन्होंने अन्यायपूर्ण ब्रिटिश कानूनों की नागरिक अवज्ञा का भी आह्वान किया था।

विभिन्न क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता या आत्मशक्ति, दरअसल, राष्ट्रीय सम्मान, इज्जत और आत्मविश्वास को रेखांकित करती थी। यह स्वदेशी यानी देशी उद्यमों को स्थापित करने के प्रयासों में तेजी लाना भी था। इसी दौर में आचार्य पी.सी.रे ने बंगाल केमिकल्स फैक्ट्री की स्थापना की थी।

स्वदेशी आन्दोलन के दौरान लिखे गए गीत आन्दोलनों में जनगोलबन्दी की जबरदस्त ताकत बन गए। रबीन्द्रनाथ टैगोर ने इसी दौर में आमार सोनार बांगला गीत लिखा था, जो **1971** में बांगलादेश के बनने के बाद उसके राष्ट्रगीत के बतौर प्रसिद्ध है।

कला के क्षेत्र में अबनीन्द्रनाथ टैगोर ने भारतीय कला पर विक्टोरियाई प्रकृतिवाद के प्रभाव को चुनौती दी थी, और अजन्ता, राजपूत और मुगल चित्रकारी की समृद्ध देशी परम्परा से प्रेरणा हासिल की थी। भारतीय कला पर स्थाई प्रभाव छोड़ने वाले नन्द लाल बोस **1907** में गठित इन्डियन सोसाइटी आफ ओरिएन्टल आर्ट द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्ति के पहले लाभार्थी बने थे।

2.3.2 एक मूल्यांकन

- अपने कार्यक्रमों और तरीकों की विविधता के कारण यह आन्दोलन आधुनिक राष्ट्रीय राजनीति में समाज के विभिन्न हिस्सों की भागीदारी को सुनिश्चित कर सका था।
- सामाजिक लिहाज से स्वदेशी आन्दोलन ने जमींदारों के एक वर्ग, शहरों और कस्बों के निम्न मध्यमवर्ग, स्कूल व कालेज के छात्रों और महिलाओं को अपनी तरफ आकर्षित किया और धरनों व प्रदर्शनों में भी उनकी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की थी।
- यह आन्दोलन किसानों, खासकर गरीब किसानों को गोलबन्द नहीं कर सका था। इसके अलावा, मुसलमानों का भी समर्थन इसे हासिल नहीं हुआ था। पारम्परिक रिवाजों व त्योहारों के इस्तेमाल से विभ्रम भी फैला और औपनिवेशिक सरकार के समर्थक साम्प्रदायिक तत्वों ने इस इस्तेमाल को विकृत करके प्रचारित किया। आन्दोलन के खिलाफ मुसलमानों को भड़काने की अंग्रेजी रणनीति भी इस दुखद स्थिति का एक कारण थी।

कई कारणों से आन्दोलन का जोर कम होता गया थाः

- सार्वजनिक सभाओं, जुलूसों और प्रेस पर पाबन्दी जैसे सरकार के दमनकारी उपाय। छात्रों-स्कूलों व कालेजों में आन्दोलन के समर्थकों का निष्कासन, अर्थदन्ड और उनकी पुलिस द्वारा पिटाई
- अन्दरूनी कलह, खासकर **1907** में कांग्रेस का विभाजन, जिसकी वजह से आन्दोलन को धक्का पहुँचा था।
- आन्दोलन के अधिकांश प्रमुख नेताओं का निर्वासित या गिरफ्तार कर लिया जाना
- आन्दोलन में एक पार्टी ढाँचा या कुशल संगठन का अभाव। सत्याग्रह, अहिंसक असहयोग, जेलभरो, रचनात्मक कार्य जैसे विविध तरीकों के बावजूद एक केन्द्रीकृत और संस्थाबद्ध स्पष्टता का अभाव था, और वे एक वास्तविक, यथार्थवादी राजनीतिक व्यवहार नहीं बन सके थे, जैसा बाद में गाँधी करने में सफल हुए थे।

- अन्त में यह आन्दोलन अपने ही गतिविज्ञान से टकराने लगा था, क्योंकि किसी जनान्दोलन में जुझारूपन और त्याग की तीव्रता हमेशा एक जैसी बनाए रखना मुश्किल होता है, तब तो और भी ज्यादा जब दमन चक्र अपने चरम पर हो।

स्वमूल्यांकित प्रश्न 1. **अभ्यास: सही या गलत**

क. स्वदेशी आन्दोलन के जन्म का कारण बंगाल का विभाजन था।

ख. स्वदेशी आन्दोलन का मुख्य जोर स्वदेशी वस्तुओं और राष्ट्रीय शिक्षा पर था।

ग. रबीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वदेशी आन्दोलन के दौरान आत्मशक्ति की अवधारणा पर जोर दिया था।

घ. कांग्रेस के सूरत विभाजन का स्वदेशी आन्दोलन पर कोई असर नहीं पड़ा था।

प्रश्न 2 **रिक्त स्थान भरें**

क. ..... ने भारतीय कला पर विक्टोरियाई प्रकृतिवाद के प्रभाव को चुनौती दी थी और ..... , राजपूत और मुगल चित्रकारी की समृद्ध परम्परा से प्रेरणा हासिल की थी।

ख. ..... **1907** में स्थापित इन्डियन सोसाइटी ऑफ ओरिएन्टल आर्ट की छात्रवृत्ति योजना के प्रथम लाभार्थी थे।

ग. बंगाल में एक पारम्परिक लोक नाट्य शैली ..... का इस्तेमाल जनता के बीच स्वदेशी के प्रचार-प्रसार के लिए किया गया था।

घ. '..... 'स्वदेशी के धरनों व बहिष्कार से दूर रहने के लिए छात्रों को धमकाने के लिए जारी किया गया था।

2.4 अनुशीलन समिति

बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन के दौरान अनेक समितियाँ खूब लोकप्रिय हुईं। वे बहुविध गतिविधियों में संलग्न रहती थीं। अकाल और महामारियों के समय रचनात्मक कार्यों के अलावा लोगों के शारीरिक और नैतिक प्रशिक्षण, स्वदेशी का प्रचार, गाँव सभाओं का संचालन, शिल्प मेलों के आयोजन, पंचायतें चलाने और सत्याग्रह के तरीकों पर अमल जैसे कार्यों में वे संलग्न रहती थीं।

1902 में, कलकत्ता शहर में प्रमथ मित्र और बड़ोदा से आए अरबिन्दो के प्रतिनिधि जतीन्द्रनाथ बनर्जी और बारीन्द कुमार घोष ने अनुशीलन समिति की स्थापना की थी। उनकी गतिविधियाँ अपने सदस्यों को शारीरिक और नैतिक प्रशिक्षण देने तक सीमित थीं। (अरबिन्दो के सहयोग से) बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त ने **1906** में युगान्तर साप्ताहिकी का प्रकाशन

शुरू किया था। उसी साल उन्होंने दो सैनिक कार्यवाहियों की कोशिशें भी की थीं, जिनमें नए प्रान्त, पूर्वी बंगाल और असम, के कुख्यात राज्यपाल सर बामफील्ड फुलर की हत्या का प्रयास शामिल था। हालाँकि उनकी योजनायें सफल नहीं हुई थीं।

सुमित सरकार बताते हैं कि कलकत्ता अनुशीलन के ठीक विपरीत पुलिन दास के नेतृत्व वाला ढाका अनुशीलन अपनी स्थापना के समय से ही कुछ अलग था। वह अपने सदस्यों के गुप्त प्रशिक्षण पर जोर देता था, जिसमें शारीरिक प्रशिक्षण की प्रमुखता के अलावा हिन्दू कट्टरता में रंगी दीक्षा भी शामिल रहती थी। **1908-09** के दौरान राजकीय दमन के चलते खुली सार्वजनिक गतिविधियों में संलग्न समितियाँ या तो खत्म हो गईं, या रैडिकल गुप्त समितियों में तब्दील हो गई थीं।

भारतीय क्रान्तिकारियों की पहली पीढ़ी में हेम चन्द्र कानूनगो विलक्षण थे। वे सैनिक और राजनीतिक प्रशिक्षण हासिल करने के लिए फ्रान्स गए थे, और वहाँ एक रूसी अप्रवासी से प्रशिक्षित होकर लौटे थे। वतन लौटने पर उन्होंने कलकत्ता के बाहरी इलाके में स्थित मानिकतला मोहल्ले के बगीचे वाले घर में एक धार्मिक स्कूल और बम बनाने का कारखाना स्थापित किया था। लेकिन **30** अप्रैल **1908** को प्रफुल्ल चाकी और खुदीराम बोस द्वारा एक बदनाम मजिस्ट्रेट डगलस किंग्सफर्ड को मारने की कोशिश की गई, जिस हमले में गलती से केनेडी माँ-बेटियों की मौत हो गई, जबकि मजिस्ट्रेट साफ बच गया। नेतृत्व (खासकर बारीन्द्र कुमार घोष) की घोर लापरवाही के कारण इस घटना के चन्द घन्टों बाद पुलिस उनके कारखाने तक पहुँच गई और अरबिन्दो समेत समूचा गुट गिरफ्तार का लिया गया। बाद में, प्रफुल्ल चाकी ने खुद को गोली मार ली, जबकि खुदीराम बोस को मुकदमा चलाने के बाद फाँसी दे दी गई। मानिकतला बाग में पुलिस द्वारा हथियारों की तलाशी के दौरान **34** लोग गिरफ्तार किए गए थे, जिनमें दोनों घोष भाई, अरबिन्दो और बारीन्द्र शामिल थे। बाद में, उन पर अलीपुर षड़यन्त्र केस के तहत मुकदमा चलाया गया। मुकदमे के दौरान सरकारी गवाह बन जाने वाले नरेन्द्र गुसाईं की जेल में हत्या कर दी गई। यही नहीं, फरवरी **1909** में सरकारी वकील की कलकत्ता में हत्या कर दी गई, और **24** फरवरी **1910** को, कलकत्ता उच्च न्यायालय से लौटते समय पुलिस उपाधीक्षक भी मार दिए गए थे।

पूर्वी बंगाल में पुलिन दास की ढाका अनुशीलन का संगठन बेहतर था। उनकी पहली बड़ी कार्यवाही **2** जून **1908** की बारा डकैती थी। यह डकैती हथियार और गोला बारूद खरीद के लिए धन जुटाने के लिए की गई थी।

क्रान्तिकारी गतिविधियों के दूसरे दौर में ठहराव आ गया, जो क्रान्तिकारी समूहों की आपसी धड़ेबाजी, निजी रंजिशों, खासकर युगान्तर और अनुशीलन समितियों की आपसी दुश्मनी का परिणाम था।

प्रश्न 1. **अभ्यासः सही या गलत**

क. अंग्रेजों ने खुदीराम बोस पर मुकदमा चलाकर उन्हें फाँसी पर लटका दिया था।

ख. अरबिन्दो और बारीन्द्र को अलीपुर षड़यन्त्र केस के तहत मुकदमा चलाया गया था।

ग. ढाका अनुशीलन समिति के संगठक पुलिन दास थे।

घ. हेमचन्द्र कानूनगो नरमदलियों के एक नेता थे।

क. पुलिन दास के ढाका अनुशीलन की पहली बड़ी कार्यवाही **2** जून **1908** की ..... डकैती थी।

ख. अलीपुर षड़यन्त्र मुकदमे के दौरान सरकारी गवाह बन जाने वाले..... की जेल में हत्या कर दी गई थी।

ग. खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने एक मुजफ्फरपुर में एक कुख्यात मजिस्ट्रेट..... की हत्या करने का प्रयास किया था।

घ. नए प्रान्त..... के कुख्यात लेफ्टीनेन्ट गवर्नर सर ऋऋऋऋऋ की हत्या करने की योजना बनाई गई थी।

2.5 निहिलिस्ट

1**860** और **1870** के दशक में रूस के रैडिकल माहौल ने कुछ ऐसे विचार वाले लोगों को जन्म दिया जो निहिलिस्ट (यानी नकारवादी) कहे जाते हैं। वे सत्ता और परम्परा दोनों को नकारते थे। निहिलिस्ट शब्दावली का पहला इस्तेमाल इवान तुर्गनेव **(1818-1883)** ने अपने उपन्यास फादर्स एन्ड सन्स में किया था, वे वहाँ थोड़ी कड़वाहट के साथ नई पीढ़ी का वर्णन कर रहे थे। हालाँकि शब्दावली का उनका इस्तेमाल अपमानजनक अर्थ में किया गया था, लेकिन दिमित्री पिसारेव और उनके समर्थकों ने इसे सम्मान का प्रतीक बना दिया, और अपने एक दौर के आन्दोलन का नाम निहिलिस्ट रख लिया। **1861** से **1866** के दरमियान दिमित्री पिसारेव निहिलिस्टों का प्रवक्ता था। निहिलिस्टों के अन्य महत्वपूर्ण नेताओं में युवा रैडिकल निकोलस चेर्नीशेव्सकी और निकोलस दोब्रोलिबोव का नाम लिया जाता है। वे उपयोगितावाद, प्रत्यक्षवाद, भौतिकवाद और खासकर ‘‘यथार्थवाद‘‘ का जोरदार पक्षपोषण करते थे। निहिलिज्म या नकारवाद- और मोटे तौर पर यथार्थवाद, खासकर आलोचनात्मक यथार्थवाद- प्रचलित मूल्यों और मानकों के प्रति गहरे विद्रोह का प्रतीक था, यह अमूर्त विचार और पारिवारिक सत्ता, गेय कविता और स्कूलों पर नियन्त्रण, और धर्म के अलावा वक्तृत्वकला के प्रति विद्रोह था। वे आम तौर पर प्राकृतिक विज्ञानों, गैर-जटिल व गहरे मानवीय रिश्तों, और पूर्वाग्रह, उत्पीड़न, अज्ञानता व शोषण की जगह ज्ञान और विवेक पर

आधारित समाज को वास्तविक और उपयुक्त मानते थे। विमुक्ति और आजादी निहिलिज्म (नकारवाद) की नैतिक ताकत थे।

पिसारेव इस मत को प्रचारित करते थे कि कोई अपरिपवर्तनशील सच या मानक बनाना असंभव है, और व्यक्तित्व के मुक्त विकास को बाधित करने वाले किसी प्रयास को तर्कसंगत दिखाना नामुमकिन है। एक तरह से निहिलिज्म (नकारवाद) कोई सिद्धान्त न होकर सिद्धान्तों का खन्डन था। फिर भी, बाद के दौर में रूस के बाहर, और कुछ हद तक उसके अन्दर भी, सभी क्रान्तिकारी आतंकवादियों को, बगैर कोई अन्तर के, निहिलिस्ट कहा जाने लगा, और इस तरह सभी क्रान्तिकारियों को निहिलिस्ट कहना चलन बन गया।

विश्व के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टि और तत्कालीन रूसी व्यवस्था के प्रति विक्षोभ से जुड़ी यह शब्दावली और धारणा उस आडम्बरपूर्ण दौर में बुद्धिजीवियों के बीच लोकप्रिय थी। **1860**वें दशक के रैडिकल मान्य सत्ता के प्रत्येक स्वरूप को नकारने वाली विचारधारा यानी निहिलिज्म की तरफ आकर्षित हो रहे थे। दिमित्री पिसारेव ने कहा था ''जो तोड़ा जा सकता है, उसे तोड देना चाहिए''। उस वक्त रैडिकलों की बढ़ी ताकत उस दौर के भौतिकवादी और यथार्थवादी चरित्र के अलावा रूस की विशिष्ट परिस्थितियों का नतीजा थी; निकोलस प्रथम के राज में बौद्धिकों का दमन, व्यवस्था का अधिनायकवादी व दमनकारी चरित्र, मध्य वर्ग के साथ-साथ उदारता और अन्य समावेशी तत्वों का नगण्य विकास, और शिक्षित समुदाय में लोकतान्त्रिक विकास की धीमी प्रक्रिया जैसे कारक उन्हें मजबूती दे रहे थे।

हालाँकि निहिलिज्म (नकारवाद) ने रैडिकल रूसी युवाओं को प्रचलित सत्ता की वफादारी से मुक्त कर दिया था, लेकिन यह सामाजिक न होकर व्यक्तिगत था, और इसके पास अपना कोई सकारात्मक कार्यक्रम नहीं था- पिसारेव और तुर्गनेव दोनो का ही नायक बजारोव फादर्स एन्ड सन्स में युवावस्था में ही मर जाता है। लेकिन इनके महत्व को हम इस तथ्य से समझ सकते हैं कि बाद के रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन का उत्स **1860**वें दशक के इसी रैडिकल प्रचार और इन्हीं समूहों में मिलता है।

अपने उद्देश्यों के लिए भारत के क्रान्तिकारियों ने भी आयरलैन्ड के राष्ट्रवादियों और रूसी निहिलिस्टों व लोकाधिकारवादियों के तरीके अपनाए थे। उन्होंने बदनाम अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करने का रास्ता चुना था। क्योंकि उन्हें लगता था कि ये हत्याएँ औपनिवेशिक शासकों में दहशत पैदा करेंगी, जनता की देशभक्ति जगाएँगी, और उनमें उत्साह भरते हुए उनके मन से व्यवस्था का खौफ निकाल देंगी। वे मानते थे कि क्रान्तिकारियों द्वारा की गई हत्यायें और उनकी गिरफ्तारी के बाद के मुकदमे प्रचार के 'व्यावहारिक उदाहरण' बन जायेंगे। गौरतलब है कि संघर्ष का यह स्वरूप राष्ट्र के लिए अपनी जान कुर्बान करने वाली युवाओं की फौज माँगता था, युवा पीढ़ी को यह आदर्शवाद झकझोरता था और उनकी सुप्त बहादुरी को जगाता था।

युवा क्रान्तिकारियों ने शौर्य के व्यक्तिवादी रास्ते को चुना था और अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करने के अलावा सरकारी खजाने को लूटना उनकी रणनीति थी। बेशक, उनकी डकैतियाँ हथियार और गोला बारूद की खरीद और अपनी गतिविधियों के लिए जरूरी कोष जुटाने के लिए ही की जाती थीं।

प्रश्न 1. **अभ्यासः सही या गलत**

क. निहिलिस्ट शब्दावली का पहला प्रयोग इवान तुर्गनेव द्वारा अपने उपन्यास फादर्स एन्ड सन्स में किया गया था।

ख. निहिलिस्ट स्वभाव से व्यक्तिवादी, अराजक और रैडिकल थे।

ग. भारतीय क्रान्तिकारी भी निहिलिस्टों से प्रभावित थे।

घ. निकोलस देब्रोलियूबोव, निकालस चेर्नीशेव्सकी और दिमित्री पिसारेव निहिलिज्म (नकारवाद) के प्रमुख रैडिकल प्रतीक थे।

2.6 क्रान्तिकारी या रैडिकल

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के क्रान्तिकारी अपने दृष्टिकोण और तौर-तरीकों में रैडिकल थे। वे हिंसा के रास्ते और व्यक्तिगत शौर्य में यकीन करते थे। अपने उद्देश्यों की खातिर वे बदनाम अंग्रेज अधिकारियों की हत्या करने और अपनी गतिविधियों के लिए धन उगाही करने के लिए अंग्रेजी सरकार के कोष को लूटने में यकीन करते थे।

वे नरमदली नेताओं की अर्जी-प्रार्थना वाली राजनीति से और भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम को दिशा देने में गरदमदली नेताओं की असफलता से ऊब चुके थे। अरबिन्दो घोष जैसे नेताओं का एक वर्ग इस नई प्रवृत्ति के विकास में सहायता कर रहा था। क्रान्तिकारी खुद आयरलैन्ड के राष्ट्रवादियों और रूसी निहिलिस्टों व लोकाधिकारवादियों से प्रभावित थे। हिंसक गतिविधियों वाली इस प्रवृत्ति के बढ़ने का एक और कारण औपनिवेशिक शासन द्वारा स्वदेशी आन्दोलन का निर्मम दमन भी था। **27** अप्रैल **1906** को बारीसाल के एक राजनीतिक सम्मेलन पर बगैर उकसावे के पुलिस का बर्बर हमला हुआ था, जिस पर राष्ट्रवादी अखबार जुगान्तर ने लोगों का आह्वान करते हुए कहा था, ''ताकत का जवाब ताकत से दिया जाना चाहिए''। सूरत (**1907**) में कांग्रेस विभाजन के बाद औपनिवेशिक प्रशासन में दमनकारी तत्व और मजबूत हो गए थे और वे चरमपंथियों पर जोरदार हमला शुरू कर चुके थे। गौरतलब है कि अरबिन्दो घोष अलीपुर षड़यन्त्र केस में गिरफ्तार कर लिए गए थे और तिलक छह साल के लिए जेल में डाल दिए गए थे।

इस दौर में, खासकर बंगाल में, राष्ट्रवादी युवाओं की एक समूची पीढ़ी उभरी थी जोः

- औपनिवेशिक सरकार के दमन से क्षुब्ध थी
- नरमपंथी राजनीति की निरर्थकता से क्षुब्ध थी
- गरमपंथी नेताओं द्वारा सरकार से सहूलियतें न हासिल कर पाने या बड़ी जनगोलबन्दी न कर पाने के कारण उनसे चिढ़ी हुई थी
- अंग्रेज अधिकारियों की हत्याओं के पीछे उनका मकसदः
- सरकारी अमले में दहशत पैदा करना था।
- जनता के भय और आलस्य को दूर करना था
- जनता की राष्ट्रवादी चेतना को जगाना था।

इस नई प्रवृत्ति की वास्तविक शुरुआत खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी द्वारा मुजफ्फरपुर के बदनाम जिला जज किंग्सफोर्ड की बग्घी पर बम फेंकने के साथ मानी जा सकती है।

2.6.1 गुप्त समितियाँ

स्वदेशी आन्दोलन के सरकारी दमन के कारण गुप्त समितियाँ अस्तित्व में आ गईं। वे अफसरों की हत्या करने के अलावा हथियारों की खरीद के लिए स्वदेशी डकैतियाँ डालने के रास्ते पर चलती थीं। अनुशीलन और युगान्तर क्रान्तिकारी कार्यवाहियाँ करने वाली बंगाल की दो महत्वपूर्ण समितियाँ थीं।

बंगाल से बाहर मद्रास में, चरमपंथी नेता चिदम्बरम पिल्लई की गिरफ्तारी का विरोध कर रही जनता पर गोली चलाई गई, और प्रतिक्रिया में भारत माता एशोसिएशन के वन्ची अ॒यर ने गोलीचालन का आदेश देने वाले अधिकारी की हत्या कर दी। महाराष्ट्र में बम्बई, नासिक, पूना क्रान्तिकारी कार्यवाहियों के केन्द्र बन गए। दिल्ली में भी **23** दिसम्बर **1912** को रासबिहारी बोस ने भारत के वायसराय लार्ड हार्डिंग की हत्या करने का प्रयास किया।

समूचे देश में फैले इन क्रान्तिकारियों का एक समान मकसद था- औपनिवेशिक शासन से देश को आजाद कराना। वे मानते थे कि पश्चिमी साम्राज्यवाद का खात्मा केवल हिंसा के पश्चिमी रास्ते से ही संभव है, इसलिए रिवाल्वर ओर बम की संस्कृति की वे तरफदारी करते थे। इन क्रान्तिकारियों ने गुप्त समितियों का गठन किया, युवाओं को भर्ती किया, और उनमें देश के लिए आत्म बलिदान करने की भावना पैदा की। उन्होंने अपने सदस्यों को हथियार चलाने और बम बनाने का प्रशिक्षण भी दिया।

इसके पहले, देश में यूरोपीय अधिकारियों की पहली हत्या दो भाइयों, बालकृष्ण और दामोदर चापेकर, द्वारा **22** जून **1897** को पूना में की गई थी। उनका निशाना तो पूना की प्लेग कमेटी

के अध्यक्ष रैन्ड थे, लेकिन गलती से हमले में लेफ्टीनेन्ट अयर्सट मारा गया था। यह कार्यवाही प्लेग कमेटी के उस दमनकारी निर्णय की प्रतिक्रिया में की गई थी, जिसके तहत सेना प्लेग से प्रभावित लोगों को पकड़ने के लिए नागरिकों के घरों की तलाशी ले रही थी।

1904 में, नासिक में, वी.डी.सावरकर और उनके भाई गणेश सावरकर द्वारा एक संगठन मित्र मेला का गठन किया गया था, जिसे बाद मे अभिनव भारत नाम की एक गुप्त समिति में बदल दिया गया था।

इन क्रान्तिकारी गतिविधियों का एक और महत्वपूर्ण पहलू भारत से बाहर विदेशों में की जाने वाली उनकी गतिविधियाँ थीं। श्यामजी कृष्ण वर्मा ने लंदन में इंडिया हाउस की स्थापना की थी और वी.डी.सावरकर, हरदयाल और मदनलाल ढींगरा उस इंडिया हाउस के सदस्य बने थे। **1909** में मदन लाल ढींगरा ने भारत के राजनीतिक एडीसी कर्नल विलियम वाइली की हत्या कर दी, मदनलाल को फाँसी पर चढ़ा दिया गया, सावरकर भारत निष्कासित कर दिए गए और कृष्णवर्मा लंदन छोड़कर पेरिस चले गए।

यूरोपीय देशों में क्रान्तिकारी सन्देश का प्रचार करने और देश में सक्रिय साथियों को मदद पहुँचाने वाले क्रान्तिकारियों में भगत सिंह के चाचा अजीत सिंह और भीकाजी कामा की भूमिका महत्वपूर्ण थी।

मुजफ्फरपुर हत्याकांड, अलीपुर षड़यन्त्र केस और गदर आन्दोलन पर विस्तृत चर्चा हम अन्य इकाइयों में कर चुके हैं (कृपया उन्हें दोबारा देख लें)। इस दौर की क्रान्तिकारी गतिविधियाँ महत्वपूर्ण थीं, लेकिन राजकीय दमन, काले कानून और जन समर्थन में कमी के कारण उनका ज्वार धीरे-धीरे मन्द पड़ गया।

2.6.2 क्रान्तिकारी गतिविधियों का दूसरा दौर

असहयोग आन्दोलन की असफलता और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से उपजी निराशा के बीच देश में क्रान्तिकारी गतिविधियों का एक नया दौर अस्तित्व में आया था।

उत्तर भारत के क्रान्तिकारी

1922 के बाद क्रान्तिकारियों की दो धाराएँ विकसित हुईं, एक पंजाब, बिहार, यू.पी, और मध्य प्रान्त में तो दूसरी बंगाल में। दोनो धाराओं पर उन नई सामाजिक और वैचारिक ताकतों का असर था, जिनकी परिणिति के बतौर:

- समाजवादी विचारों और समूहों का विकास हुआ था
- एक जुझारू ट्रेड यूनियन आन्दोलन विकसित हुआ था

पुरानी समितियाँ देश के विभिन्न हिस्सों में सक्रिय हो गईं। उस वक्त लोगों को इस बात का आभास हो रहा था कि एक अखिल भारतीय संगठन और बेहतर संयोजन हो जाए तो मकसद हासिल हो सकता है। परिणामस्वरूप, देश के विभिन्न हिस्सों के क्रान्तिकारी अक्टूबर **1924** में कानपुर में इकट्ठा हुए। इस बैठक की चर्चाओं के बाद हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एशोसिएशन नाम के संगठन का गठन किया गया। यही संगठन बाद में हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एशोसिएशन या आर्मी (एचएसआए) के नाम से चर्चित हुआ। संगठन की प्रान्तीय इकाइयाँ देश के विभिन्न हिस्सों में गठित हो गईं। एचआरए द्वारा काकोरी डकैती की योजना बनाई गई, जिस पर कई क्रान्तिकारी काकोरी षड़यन्त्र केस में फँसा दिए गए।

सितम्बर **1928** में एचआरए को हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एशोसिएशन आर्मी में बदल दिया गया था, और उसने अपना लक्ष्य समाजवाद घोषित कर दिया। एचएसआरए नेतृत्व के विचार व्यक्तिगत शौर्य के रास्ते को छोड़कर जनाधारित सशस्त्र संघर्ष की धारणा की ओर तेजी के साथ बढ़ रहे थे। लेकिन तभी **30** अक्टूबर **1928** को लाहौर में साइमन कमीशन विरोधी जुलूस का नेतृत्व कर रहे लाला लाजपत राय की लाठियों से बर्बर पिटाई की घटना हुई, जिसे वे बर्दाश्त न कर सके, और प्रतिशोध में अंग्रेज अधिकारी की हत्या करने के निर्णय पर पहुंच गए। **17** अक्टूबर **1928** को भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव ने लाठीचार्ज के लिए जिम्मेदार पुलिस अधिकारी सान्डर्स की हत्या कर दी। बाद में, **8** अप्रैल **1929** को भगत सिंह और राजगुरु ने केन्द्रीय विधान सभा में ''बहरों को सुनाने के लिए'' एक बम धमाका भी किया। उन्होंने स्वयं को गिरफ्तार करवाने का निर्णय लिया था, क्योंकि वे मुकदमे के दौरान अपने क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार करना चाहते थे। भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त पर असेम्बली बम कांड और भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को सान्डर्स की हत्या के आरोप पर लाहौर षडयन्त्र केस के तहत मुकदमा चला। गिरफ्तारी के दौरान क्रान्तिकारियों ने जेल की बदहाल दशा का भी विरोध किया और राजनीतिक कैदी का दर्जा दिए जाने की माँग उठाई थी। इस माँग पर जतिन दास आमरण अनशन करते हुए जेल में ही शहीद हो गए। कई क्रान्तिकारियों पर मुकदमे चले और उन्हें सजाएँ सुनाई गईं। कई को अन्डमान की सेलुलर जेल भेज दिया गया। जबकि भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को **23** मार्च **1931** को फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

2.6.3 एचआरए और एचएसआरए की विचारधारात्मक दिशा

एचआरए के कार्यक्रम की रूपरेखा मूलतया धर्मनिरपेक्ष, लोकतान्त्रिक और समाजवादी थी। उसका बुनियादी सिद्धान्त ''सार्विक मताधिकार हासिल करना और उन सभी व्यवस्थाओं का खात्मा करना था जो मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को संभव बनाती हैं''।

1929 में अपनी गिरफ्तारी के पहले ही भगत सिंह व्यक्तिगत शौर्य और आतंक के रास्ते में विश्वास खो चुके थे। वे इस पक्के यकीन पर पहुँच चुके थे कि क्रान्ति का मतलब जनता को जगाना और जनान्दोलन संगठित करना है। भगत सिंह और उनके साथियों ने क्रान्ति की अवधारणा की

पुनर्व्याख्या की थी, और अपनी क्रान्ति के पहले पड़ाव के बतौर राष्ट्रीय आजादी की प्राप्ति और बाद में एक नए समाजवादी समाज की स्थापना को अपना लक्ष्य बताया था। उन्होंने कहा था कि उनका मूल ध्येय ''मनुष्य द्वारा मनुष्य के और राष्ट्र द्वारा राष्ट्र के शोषण'' को खत्म करना था। भगत सिंह ने समाजवाद को परिभाषित करते हुए उसे पूंजीवाद और वर्गप्रभुत्व का खात्मा कहा था।

2.7 बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियाँ

बंगाल में क्रान्तिकारी अपने प्रचार के लिए प्रेस का इस्तेमाल कर रहे थे और अपनी भूमिगत गतिविधियाँ भी चला रहे थे। इसके अलावा वे कांग्रेस के अन्दर अपनी सक्रियता लगातार बनाए हुए थे। सी.आर.दास उनके और कांग्रेस के बीच भावनात्मक कड़ी का काम कर रहे थे। उनकी मौत के बाद कांग्रेस का नेतृत्व दो धड़ों में बँट गया, एक का नेतृत्व सुभाष चन्द्र बोस करने लगे और दूसरे का जे.एम. सेनगुप्ता। उनको लेकर क्रान्तिकारी भी विभाजित हो गए, युगान्तर बोस के पक्ष में था, तो अनुशीलन जे.एम.सेनगुप्ता की तरफदारी करती थी।

गोपीनाथ साहा द्वारा जनवरी **1924** में कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर की हत्या करने की कोशिश व्यक्तिगत शौर्य वाली कार्यवाही का एक और उदाहरण था। वह अपने प्रयास में सफल भी नही हो सका था, लेकिन मुकदमे के बाद उसे **1** मार्च **1924** को फाँसी दे दी गई। **1926** के बाद अनेक युवा क्रान्तिकारी खुद को नए समूहों में संगठित करने लगे थे, लोग उन्हें विद्रोही गुट कहा करते थे। नए समूहों ने आयरलैन्ड और रूस के क्रान्तिकारियों के अनुभवों को आधार बनाते हुए खुद को संगठित करने की कोशिश की थी। वे युगान्तर और अनुशीलन समितियों के ताकतवर धड़ों के साथ मधुर सम्बन्ध रखते थे।

नए क्रान्तिकारी समूहों में सूर्य सेन के चिटागांग समूह की शोहरत और साख सबसे ज्यादा थी। **1949** में चिटागांग शस्त्रागार लूटने की घटना पर एक बांग्ला फिल्म चटाग्राम अस्त्रागार लुंठन बनाई गई, जिसके निर्देशक निर्मल चौधरी हैं। इस घटना पर अभी हाल में दो फिल्में और बनी हैं। एक फिल्म खेले हम जीजान से **(2010)** आशुतोष गौरीकर द्वारा निर्देशित और मानिनी चटर्जी की किताब डू एन्ड डाइः चिटागांग अपराइजिंग **1930-34** पर आधारित है। दूसरी फिल्म चिटागांग **2012** में प्रदर्शित हुई, और इसके निर्देशक डा. बेदब्रत पाइन है और फिल्म के नायक मनोज बाजपेई ने सूर्य सेन का किरदार निभाया है।

18 अप्रैल **1930** को चिटागांग शस्त्रागार पर धावा बोला गया था और अस्थाई क्रान्तिकारी सरकार का गठन करते हुए सूर्य सेन को औपचारिक राष्ट्रपति घोषित किया गया था। सरकार दमन करती रही, लेकिन क्रान्तिकारी लगभग तीन वर्षों तक उनसे लोहा लेते रहे। सूर्य सेन **16** फरवरी **1933** को पकड़े गए और **12** जनवरी **1934** को उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

बंगाल में क्रान्तिकारी गतिविधियों के नए दौर में महिलाओं की भागीदारी काफी ज्यादा थी। उन्होंने न सिर्फ सुरक्षित आश्रय देने, संदेश पहुँचाने और हथियारों व गोला बारूद को पहुँचाने का काम किया, बल्कि हथियारबन्द लड़ाई में भी क्रान्तिकारियों का साथ दिया। **1931** में कोमिला में सुनीति चौधरी और शान्ति घोष ने जिला मजिस्ट्रेट की हत्या की थी। **1932** में बीना दास ने दीक्षान्त समारोह में डिग्री लेते समय राज्यपाल पर गोली चलाई थी।

बंगाल के नए विद्रोही गुट सशस्त्र विद्रोह को भड़काने के लिए सामूहिक कार्यवाहियाँ किया करते थे। **1920**वें और **1930**वें दशक के क्रान्तिकारी आन्दोलन में **20**वीं सदी के पहले दशक के क्रान्तिकारी आन्दोलन की तुलना में मुसलमानों की भागीदारी ज्यादा थी। कलकत्ता के अब्दुर रज्ज़ाक खान ने एक विद्रोही गुट की स्थापना की थी और वे अनुशीलन, युगान्तर व अन्य क्रान्तिकारी समूहों के साथ अच्छे सम्बन्ध रखते थे।

क्रान्तिकारी गतिविधियों में उतार

गांधी के नेतृत्व वाला राष्ट्रीय आन्दोलन हिंसा का विरोधी था, हालाँकि तब भी कांग्रेस के नेता युवाओं के व्यक्तिगत शौर्य की तारीफ किया करते थे, न्यायालयी कार्यवाहियों में उनका साथ देते थे, और उन पर पुलिस दमन की कार्यवाहियों का विरोध करते थे। बहरहाल, सरकारी दमन के कारण क्रान्तिकारी कतारें कमजोर होती गईं। **27** फरवरी **1931** को चन्द्र शेखर आजाद की शहादत के बाद उत्तरी भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन व्यावहारिक तौर पर खत्म हो गया। उधर, सूर्य सेन की शहादत के बाद बंगाल की क्रान्तिकारी गतिविधियों में बिखराव आ गया। फिर भी, इसमें कोई शक नहीं कि अपने साहस, आत्म-बलिदान, और देशभक्ति से भारतीय जनता को जो प्रेरणा उन्होंने दी थी और जनता में आत्म विश्वास और आत्म सम्मान का जो भाव जगाया था, वह राष्ट्रीय आन्दोलन में इन क्रान्तिकारियों का एक मौलिक व स्थाई योगदान है।

प्रश्न 1. **अभ्यास: खाली जगह भरें:**

क. भगत सिंह पर ..... मुकदमे में केस चला था और फाँसी दी गई थी

ख. जतिन दास ने जेल में कैदियों की भयानक दशा को सुधारने और क्रान्तिकारियों के लिए..... का दर्जा दिए जाने की माँग पर भूख हड़ताल करते हुए अपनी जान दे दी थी।

ग. एचएसआरए अपने दृष्टिकोण में ..... थी

घ. सूर्य सेन ..... पर किए गए हमले के नेता थे।

प्रश्न 2. **अभ्यास: सही या गलत**

क. **27** फरवरी **1931** को चन्द्र शेखर आजाद की शहादत के बाद उत्तरी भारत का क्रान्तिकारी आन्दोलन वाकई खत्म हो गया था।

ख. आशुतोष गौरीकर द्वारा निर्देशित फिल्म खेले हम जी जान से (**2010**) मानिनी चटर्जी की किताब डू एन्ड डाइः द चिटागांग अपराइजिंग **1930-34** पर आधारित है

ग. **2012** में प्रदर्शित फिल्म चिटागांग में सूर्य सेन का किरदार मनोज बाजपेयी ने निभाया है

घ. **1931** में कोमिला में सुनीति चौधरी और शान्ति घोष ने जिला मजिस्ट्रेट की हत्या कर दी थी

2.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

2.3.2 के प्रश्न के उत्तर क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. गलत

2.4 के प्रश्न के उत्तर क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. गलत।

2.5 के प्रश्न के उत्तर क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चन्द्र, बिपन एवं अन्य (**1993**), इन्डियाज स्ट्रगल फार इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

चन्द्र, बिपन एवं अन्य (**1999**), इन्डिया आफ्टर इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली

सरकार, सुमित (**1983**) माडर्न इन्डिया **1885-1947**, मैकमिलन इन्डिया लिमिटेड, मद्रास

ग्रोवर बी.एल., और ग्रोवर, एस (**1998 16**वां संस्करण) एन इन्ट्रोडक्शन टु माडर्न इन्डिया, एस चन्द एन्ड कम्पनी, दिल्ली

इग्नू पाठ्य सामग्री, आधुनिक भारतीय इतिहास (**1999**)

सुमित सरकार, द स्वदेशी मूवमेन्ट इन बेंगाल, **1903-08**, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, **1973**

रियासनोव्सकी, निकोलस पंचम, अ हिस्ट्री आफ रशा (**2000**), छठा संस्करण, ओयूपी, न्यूयार्क

हारकेव, सिडनी, रशा, अ हिस्ट्री, क्लीवर ह्यूम प्रेस लिमिटेड, लंदन

अध्ययन के लिए ग्रन्थ सूचीः

रियासनोव्सकी, निकोलस पंचम, अ हिस्ट्री आफ रशा (**2000**), छठा संस्करण, ओयूपी, न्यूयार्क

हारकेव, सिडनी, रशा, अ हिस्ट्री, क्लीवर ह्यूम प्रेस लिमिटेड, लंदन

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न. स्वदेशी आन्दोलन का मूल्यांकन करें?

प्रश्न2. स्वदेशी और बहिष्कार से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न 3. अनुशीलन समिति और उसकी गतिविधियों पर टिप्पणी लिखें

प्रश्न 4. निहिलिस्टों के विचारधारात्मक धारणाओं की चर्चा करें

प्रश्न 5. उत्तरी भारत के क्रान्तिकारियों की मुख्य गतिविधियों की चर्चा करें

प्रश्न 6. एचएसआरए पर एक टिप्पणी लिखें

अवधारणाएँ, नागरिक अवज्ञा, रामराज, खादी/सूती, व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता, राष्ट्रीय

3.1 भूमिका

3.2 उद्देश्य

3.3 असहयोग

3.3.1 समकालीन दौर में असहयोग

3.4 सविनय अवज्ञा

3.5 रामराज

3.6 खादी/सूती

3.8 राष्ट्रीय एकता

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.11 सहायक ग्रन्थ सूची

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 भूमिका

गाँधी ने विचारधारा और औपनिवेशिक ताकतों के खिलाफ लड़ाई के तरीकों में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को बदल देने वाली भूमिका निभाई है। आजादी की लड़ाई में उनकी भूमिका और सत्य व अहिंसा पर उनका बल राष्ट्रीय आन्दोलन के गाँधीवादी दौर की पहचान है।

गाँधी अपने वैचारिक नजरिए पर गहरा भरोसा करते थे, और रस्किन, थोरो और टाल्स्टॉय को पढकर उन्होंने उसे परिपक्व किया था। शुरुआत में उन पर वैष्णव व जैन वैचारिक परम्पराओं का असर था। भागवत गीता ने भी उन पर गहरी छाप छोड़ी थी। बहरहाल, उनके वैचारिक विश्वास व तौर-तरीके निराले थे, और वे साध्य के लिए साधन की पवित्रता पर जोर देते थे।

गाँधी के विभिन्न आन्दोलनों को आप पहले ही पढ़ चुके हैं। वर्तमान इकाई में हमारी कोशिश गाँधीवादी आन्दोलनों की सैद्धान्तिक रूपरेखा को समझने की होगी। हम गाँधीवादी दर्शन में प्रयुक्त शब्दावली पर भी गौर करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपः

- गाँधीवाद की कुछ बुनियादी शब्दावली का अर्थ जानेंगे
- इन विचारों की प्रेरणा और औचित्य की चर्चा करेंगे
- गाँधीवादी विचारधारा को समझेंगे और उसकी व्याख्या करेंगे

3.3 असहयोग

गाँधी ने असहयोग की तकनीक का औपनिवेशिक राज के खिलाफ लड़ाई में सफल प्रयोग किया गया था। वे अहिंसक असहयोग पर जोर देते थे, क्योंकि उनके विश्वास के अनुसार हिंसा के द्वारा हासिल सफलता अल्पकालिक होती है और उसकी परिणति अंततः और अधिक हिंसा में होती है। गाँधी मानते थे कि दबे-कुचलों को सामाजिक न्याय ताकत के जरिए नहीं हासिल होगा, बल्कि उनके उचित प्रशिक्षण से और अहिंसक तौर-तरीकों से हासिल होगा। इस रास्ते से उनके द्वारा भुगते गए अन्याय का सुधार संभव है, और इस स्थिति तक पहुँचने का साधन अहिंसक असहयोग है। कुछ मौकों पर असहयोग करना हमारा कर्तव्य होना चाहिए, जैसे आम तौर पर सहयोग करना होता है। गुलामी की परिस्थितियों में किसी को सहयोग नहीं करना चाहिए। दूसरों के प्रयासों से हासिल आजादी उन प्रयासों की वापसी पर जा सकती है। दूसरे शब्दों में ऐसी आजादी असली आजादी नहीं है। लेकिन आजादी की आभा दबे-कुचलों तक पहुँच सकती है अगर उन्हें अहिंसक असहयोग के रास्ते आजादी हासिल करने के लिए प्रशिक्षित किया गया हो।

असहयोग एक उचित और आदर्श साधन है, जिससे समस्याओं का समाधान संभव है। अगर असहयोग और उसके विभिन्न कार्यक्रम अहिंसा के दृष्टिकोण से किए जाएँ तो वह झगड़े के समाधान का पवित्रतम साधन हो जाता है।

महात्मा गाँधी ने भारत को औपनिवेशिक राज से आजाद कराने के लिए अहिंसक असहयोग का रास्ता अपनाया था। गाँधी के असहयोग आन्दोलन व सविनय अवज्ञा से लेकर भारत छोड़ो जैसे उनके आन्दोलन व विविध गतिविधियाँ और कार्यक्रम अहिंसक असहयोग से अभिन्न तौर पर जुड़े थे। गाँधीवादी अहिंसक असहयोग बहुमूल्य व कुशल साबित हुआ है और सामाजिक व नैतिक कल्याण का पक्षधर रहा है।

13 नवम्बर 1924 में यंग इन्डिया में असहयोग के बारे में लिखते हुए गाँधी ने कहा था कि यह लोगों के स्वाभिमान और ताकत को जगाने की एक कोशिश है। 5 अप्रैल 1939 को यंग इन्डिया में उन्होंने फिर कहा कि पाप से असहयोग करना वैसे ही हमारा एक कर्तव्य है जैसे भलाई से सहयोग

करना। गाँधी चाहते थे कि असहयोग सिर्फ अहिंसक न हो, बल्कि किसी को दन्डित करने के भाव से भी मुक्त हो और घृणा, दुर्भावना, या नफरत पर आधारित न हो। दूसरे शब्दों में असहयोग के सिपाहियों को अपने दुश्मनों को दन्डित करने या नुकसान पहुँचाने की भावना से मुक्त रहना चाहिए।

गाँधी मानते थे कि अहिंसक असहयोग की सफलता जनता की ***'कष्ट की सहनशक्ति'*** पर निर्भर है।

असहयोग एक शक्तिशाली औजार है। लेकिन इसके लिए आत्मसंयम, अनुशासन, आत्मनियन्त्रण, धैर्य और अहिंसा की ताकत चाहिए।

गाँधी की अहिंसक असहयोग और सत्य पर जोर देने की विचारधारा विश्व के अनेक नेताओं की प्रेरणा स्रोत बनी। राजनीति की दुनिया में नेपाल के बिश्वेश्वर प्रसाद कोइराला (1914-1982), दक्षिण अफ्रीका के नेल्सन मंडेला (1918) और अमरीका के मार्टिन लूथर किंग जूनियर जैसे नेताओं ने एक समतावादी और लोकतान्त्रिक दुनिया की अपनी लड़ाई में गाँधीवादी आदर्शों को आत्मसात किया और उन पर अमल किया है। समसामयिक विश्व के लिए गाँधी और गाँधीवाद की प्रासंगिकता अभी भी गाँधी की प्रासंगिकता विषय पर बार-बार होने वाले सेमिनार और बहस-मुबाहिसों में दिखती है।

- असहयोग बुराई का अहिंसक प्रतिरोध है। यह स्वाभिमान और सम्मान की रक्षा करने वाला कर्म है।
- यह आजादी और न्याय के लिए, किसी तरह की घृणा किए बगैर विरोधी से उसका सहयोग हासिल करने का तरीका है।
- असहयोग की सफलता लोगों में कष्ट सहने और आत्म-बलिदान करने की शक्ति पर निर्भर है।
- असहयोग का एक खास प्रयोजन है। उसे सत्य से अलग नहीं किया जा सकता।
- असहयोग न्याय और आजादी हासिल करने का साधन है।
- अहिंसा और शान्ति की तरह असहयोग एक जीवन्त शक्ति है। इसका चरित्र गतिशील है। यह शारीरिक बल से ज्यादा कारगर है।

गाँधी का असहयोग अपने विरोधी के मन में अन्याय और उत्पीड़न की निरर्थकता का एहसास कराने का साधन था। गाँधी अपने विरोधी का 'हृदय परिवर्तन' कराने पर जोर देते थे। वे मानते थे कि गलती का एहसास करने पर विरोधी को अपनी गलती सुधारने का हरेक मौका दिया जाना चाहिए। गाँधी का असहयोग विरोधी के खिलाफ नहीं बल्कि अन्यायपूर्ण और गलत विचारों के खिलाफ था। सत्य और अहिंसा के विचार गाँधी के जीवन के अभिन्न अंग थे। वे कहा करते थे

कि कोई अतिमानवीय ताकत उनके पास नहीं है और जीवन की हरेक परिस्थिति में वे सत्य और अहिंसा का आश्रय लेते हैं।

3.3.1 समकालीन दौर में असहयोग

व्यक्ति व देश की न्याय व आजादी की लड़ाई में असहयोग की सफलता पर आज की दुनिया में काफी संशय बन गया है। असहयोग के आलोचक दावा करते हैं कि संघर्षो और समस्याओं के चरित्र में और लोगों के दृष्टिकोण में आए बदलाव के बाद आज असहयोग का हथियार अपनी धार खो चुका है।

ये तर्क प्रभावित भी करते हैं, क्योंकि समय और दृष्टिकोण वाकई बदल चुके हैं। लेकिन हम क्या यह भूल सकते कि समय और दृष्टिकोण भी गतिशील हैं, और अपनी जनता के लिए न्याय और लोकतन्त्र की लड़ाई जीतने के लिए अहिंसा और असहयोग का सफल इस्तेमाल (गाँधी से पहले) समाज सुधारकों और मार्टिन लूथर किंग जूनियर और नेलसन मंडेला द्वारा हो चुका है।

गाँधीवादी नजरिए में असहयोग सत्य का अनुसरण यानी सत्याग्रह है, और सामाजिक न्याय व आजादी हासिल करने का एक सीधा-सरल साधन। आज की दुनिया में झगड़ों व विवादों को नियन्त्रित करने, व सत्ता के दुरुपयोग व उत्पीड़न को रोकने के लिए बहिष्कार और प्रतिबन्ध जैसे अन्य उपाय भी कारगर हो रहे हैं, बशर्ते वे ईमानदारी और सतर्कता के साथ इस्तेमाल किए जाएँ।

आज दुनिया में देशों की अन्तर्निर्भरता काफी बढ़ गई है। संयुक्त राष्ट संघ (यूएनओ) जैसी संस्थाएँ अपने व्यवहार के जरिए नियत मानकों का उल्लंघन करने वाले सदस्य देशों पर पाबन्दियों के जरिए संघर्षों को रोकने की कोशिश कर रही हैं।

गाँधी के अहिंसक असहयोग का मकसद औपनिवेशिक राज के उत्पीड़न, तानाशाही और निर्ममता से भारत को आजाद कराना था। इस दौरान उन्होंने जनता की आपसी एकता और परस्पर सहयोग के विचारों पर भी बल दिया था। असहयोग की तकनीक इस तरह बुनी गई थी कि निराशावादी पक्षों और ध्वंसक प्रवृत्तियों पर जीत हासिल हो और संघर्षों को सहयोग में बदला जा सके।

स्वमूल्यांकित प्रश्न 1

अभ्यास: सही या गलत

क. गाँधी ने कहा था कि अच्छाई से सहयोग करने की तरह बुराई से असहयोग करना हमारा कर्तव्य है।

ख. असहयोग की सफलता लोगों की कष्ट सहने और आत्मबलिदान की शक्ति पर निर्भर करती है

ग. मार्टिन लूथर किंग जूनियर गाँधीवादी विचारों से प्रभावित थे।

घ. नेलसन मंडेला गाँधीवादी सिद्धान्तों से प्रभावित नहीं थे।

3.4 सविनय अवज्ञा

गाँधी ने अपने राजनीतिक व्यवहार को ही अपना राजनीतिक विचार बना दिया था। लेकिन, अन्याय के खिलाफ प्रतिरोध और क्रान्तिकारी कार्यवाही से अहिंसा को जोड़ देना राजनीतिक चिन्तन में उनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान है। वे हेनरी डेविड थोरो (1817-1862) से प्रभावित थे और सविनय अवज्ञा सम्बन्धी उनके विचारों के विकास में थोरो के विचारों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। थोरो इमर्सन के राजनीतिक दर्शन से प्रभावित थे और खुद इमर्सन के विचारों पर हिन्दू धार्मिक परम्पराओं की छाप थी। थोरो के लेखन में भी भागवत गीता द्वारा व्याख्यायित हिन्दू धर्म की आध्यात्मिकता दिखती है। सरलता वह शब्द है, जो गाँधी और थोरो, दोनों के ही दर्शन को संक्षेप में अभिव्यक्त कर देता है। असहयोग की अवधारणा के लिए किसी नियमन, खासकर कानूनी नियमन की अवज्ञा जरूरी है, और इस अवज्ञा की परिणति किसी न किसी दन्ड के स्वरूप में होती है। अवज्ञा का स्वरूप सक्रिय या निष्क्रिय हो सकता है, लेकिन यह सक्रियता या निष्क्रियता सार्वजनिक तौर पर की जाए तभी वह सविनय अवज्ञा होती है। गुप्त अवज्ञा अपर्याप्त है। सविनय अवज्ञा की जानकारी सत्ता के प्रतिनिधियों को जरूर दी जानी चाहिए, ताकि उठाए गए व्यापक मुद्दों पर उनके विचार और रवैए प्रभावित करने की कोशिश सफल हो सके।

गाँधी ने अपने ऊपर थोरो के असर के बारे में यह लिखा थाः

''मैंने सविनय अवज्ञा का विचार थोरो से लिया है ऐसे दावों में कोई सच्चाई नहीं है। दक्षिण अफ्रीकी सत्ता के खिलाफ प्रतिरोध शुरू होने के बाद सविनय अवज्ञा पर थोरो के लिखे निबन्ध से मेरा परिचय हुआ था। लेकिन तब आन्दोलन को हम निष्क्रिय प्रतिरोध कहा करते थे। इस शब्दावली के निहितार्थ मुझे पर्याप्त नहीं लगते थे, इसलिए गुजराती पाठकों के लिए मैंने सत्याग्रह शब्द इस्तेमाल किया। बाद में, थोरो के महत्वपूर्ण लेख का शीर्षक देखकर अंग्रेजी पाठकों को अपनी लड़ाई समझाने के लिए मैंने उसका इस्तेमाल किया। लेकिन मैंने देखा कि हमारी लड़ाई का सम्पूर्ण निहितार्थ सविनय अवज्ञा के मुहावरे से व्यक्त नहीं होता इसलिए मैंने 'सविनय प्रतिरोध' शब्द का चुनाव किया था।'' (हरपिन्दर कौर की पुस्तक में उद्धृत)

दिसम्बर 1921 के यंग इन्डिया में गाँधी कहते हैं कि अगर अहिंसक चरित्र का ईमानदारी से पालन किया जाए तो सविनय अवज्ञा संवैधानिक आन्दोलन का शुद्धतम रूप बन जाएगा। जनवरी 1922 के यंग इन्डिया में गाँधी सविनय और आपराधिक अवज्ञा के फर्क को भी स्पष्ट तौर पर रेखांकित करते हैं। पहला, सविनय अवज्ञा के बाद किसी कीमत में अराजकता नहीं होनी चाहिए

जबकि आपराधिक अवज्ञा के बाद ऐसी संभावना रहती है। दूसरा, कोई भी सत्ता खुद के अस्तित्व के लिए आपराधिक अवज्ञा का बलपूर्वक दमन अवश्य करेगी, जबकि सविनय अवज्ञा के दमन की कोशिश विवेक को जेल में डालने वाली होगी। तीसरा, सविनय प्रतिरोधकर्ता के अहिंसक होने के कारण जनमत के प्रति किसी न किसी रूप में संवेदनशील सत्ता उसको अपने लिए कोई खतरा नहीं देखती। हाँ, वह तानाशाह सत्ता के लिए अवश्य खतरा होता है। लेकिन जब सत्ता तानाशाह हो जाए तो अहिंसक अवज्ञाकारी को उसे स्वेच्छाचारी मानने का हक मिल जाता है। ऐसी सत्ता के साथ वास्ता रखने पर एक नागरिक भी सत्ता की स्वच्छाचारिता का भागीदार हो जाता है।

सविनय अवज्ञा के लिए ऐसे हरेक कानून का अन्तर्मन से कर्तव्यनिष्ठ पालन की पूर्वशर्त जरूरी है जो नैतिक या व्यक्तिगत आदर्शों के विरोधी न हों। सविनय अवज्ञा अराजकता नहीं है, और इसके लिए कानून पालन करने वाली भावना और आत्मनियन्त्रण का मेल जरूरी है।

गाँधी चाहते थे कि 'अवज्ञा' की तुलना में सविनय शब्द पर अधिक जोर दिया जाए। फरवरी 1922 में यंग इन्डिया में उन्होंने कहा था कि शिष्टाचार, अनुशासन, विवेक और अहिंसा के बगैर अवज्ञा एक निश्चित विनाश है।

सविनय अवज्ञा में व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा के लिए कष्ट सहने का निर्णय करता है। यह अहिंसक कष्ट है। गाँधी कहते हैं कि सविनय अवज्ञा अहिंसक दिखनी चाहिए, यहाँ तक कि विरोधी को भी। विरोधी को यही एहसास होना चाहिए कि प्रतिरोध का मकसद उसे नुकसान पहुँचाना नहीं है। गाँधी मानते थे कि अन्तरात्मा से विरोध करने वाले या सविनय प्रतिरोधी की ईमानदारी एक तानाशाह सत्ता को भी को दिखेगी और वह उसकी इज्जत करेगी, भले उसके प्रति वह कोई नरमी न दिखाए। प्रतिरोधी अगर सच्चा सत्याग्रही है तो वह सिर्फ अपने लिए कष्ट चुनता है, और उसे नरमी की जरूरत ही नहीं होती।

सितम्बर 1919 के यंग इन्डिया में गाँधी आक्रामक और रक्षात्मक सविनय अवज्ञा की तुलना करते हैं। आक्रामक या अपमानजनक सविनय अवज्ञा बाहर से अहिंसक होकर भी उच्छृंखल हो सकती है। खासकर तब, अगर उसके कानून पालन में नैतिक शक्ति न हो, और उसकी तरफ से अवज्ञा की कार्यवाही राजसत्ता के खिलाफ महज विद्रोह का लक्षण हो। रक्षात्मक सविनय अवज्ञा ऐसे कानूनों की स्वाभाविक अहिंसक अवज्ञा है जो स्वयं बुरे हैं, और इनका पालन व्यक्ति के आत्म सम्मान और मानवीय गरिमा दोनों के खिलाफ होगा। जब कोई कानूनी नियम झूठा हो, तो हमारा कर्तव्य बनता है कि हम उसकी अवज्ञा करें।

सविनय अवज्ञा के बारे में गाँधी का चिन्तन दो विचारों का मेल था- पहला, अपनी अन्तरात्मा के अनुसार प्रतिरोध में, जरूरी पड़ने पर किसी बाह्य सत्ता या बाधा के खिलाफ, कार्यवाही करने का हरेक मनुष्य का प्राकृतिक हक या सार्वभौमिक जिम्मेदारी; और दूसरा, राजसत्ता

के कानूनों के पालन की शर्त पूरा करने वाले नागरिक की असामान्य मौकों पर किसी अन्यायपूर्ण कानून की अवज्ञा या अन्यायपूर्ण व्यवस्था से टकराने की जिम्मेदारी, और राजसत्ता के कानूनी प्रावधानों के तहत अपनी अवज्ञा के परिणामों को स्वीकार करने की सहर्ष सहमति।

जन सविनय अवज्ञा शान्त चित्त से की जानी चाहिए। चित्त की यह शान्ति शक्ति से निकलनी चाहिए, न कि ज्ञान की कमजोरी या अज्ञान से। दूसरी बात यह है कि, व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा परहित में हो सकती है, बल्कि अकसर होती है, जबकि जन सविनय अवज्ञा स्वार्थसाधने वाली हो सकती है, क्योंकि लोग अवज्ञा की कार्यवाही से व्यक्तिगत फायदे का हिसाब लगा रहे होते हैं, बल्कि अकसर लगाते हैं। उदाहरण देते हुए गाँधी बताते हैं कि दक्षिण अफ्रीका में कालेनबक और पोल्का की सविनय अवज्ञा में निजी फायदे का कोई ख्याल न था, जबकि जिन अन्य लोगों ने अवज्ञा में भाग लिया था वे गिरमिटिया मजदूरों पर पशु जनगणना कर वापस लिए जाने के संभावित फायदे का हिसाब लगा रहे थे। गाँधी मानते थे कि जन सविनय अवज्ञा में प्रतिरोधी को इस सिद्धान्त की क्रियाशीलता की जानकारी होनी चाहिए। लोग अपने उन दावों के लिए सविनय अवज्ञा के अपने प्राकृतिक और कानूनी अधिकार का इस्तेमाल करते हैं, जिन्हें एक नागरिक के बतौर वे अपना हक समझते हैं। जहाँ तक व्यक्तिगत सविनय अवज्ञाकारियों का सवाल है, तो वे महज अपना वह कर्तव्य कर रहे होते हैं जिसे वे अपनी अन्तरात्मा के दबाव के कारण करने पर बाध्य हैं।

अवज्ञा की सजा भुगतने की सहजता और प्रतिरोध आन्दोलन अहिंसा के जरिए चलाकर परिणाम हासिल करने का दृढ़ निश्चय दोनों तरह की अवज्ञा का समान तत्व है। मार्च 1930 के यंग इन्डिया में गाँधी कहते हैं कि सविनय अवज्ञा की परिकल्पना इस तरह की गई है कि वह हिंसा को शान्त करे और अन्ततः उसे पूरी तरह प्रतिस्थापित करते हुए अहिंसा को प्रतिष्ठापित करे, घृणा को प्यार से बदल दे, और वैमनस्य को सामन्जस्य से प्रतिस्थापित करे।

गाँधी व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और जन सविनय अवज्ञा की तुलना करते हुए कहते हैं कि व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा में हरेक आदमी एक पूर्ण व स्वतन्त्र इकाई है, वहाँ किसी का पतन दूसरे पर असर नहीं डालता, हरेक प्रतिरोधी स्वयं अपना नेता होता है, असफलता असंभाव्य है और सत्ता सविनय अवज्ञा से नहीं निपट सकती। दूसरी ओर, जन सविनय अवज्ञा में किसी एक का भी पतन दूसरों पर असर डालता है, आमतौर पर नकारात्मक असर पड़ता है, वहाँ नेतृत्व का होना जरूरी है, असफल होने की संभावना रहती है और सत्ता उससे निपट सकती है।

3.5 रामराज

गाँधी अपने आदर्श समाज को समझाने के लिए रामराज शब्द का इस्तेमाल अकसर किया करते थे। महात्मा गाँधी राम के भक्त थे, जिन्हें कुछ लोग विष्णु का अवतार बताते हैं, और उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम यानी सामाजिक सीमाओं में सर्वोत्तम सम्भव मनुष्य भी कहने का चलन है। वे एक

आज्ञाकारी पुत्र, स्नेहिल भ्राता, निष्ठावान पति, और ईमानदार, सच्चे व न्यायप्रिय राजा थे। इसलिए रामराज एक ऐसी आदर्श व्यवस्था की छवि जगाती थी जो वर्ग विभेद, दुख, अभाव, लैंगिक विभेद, बीमारी से मुक्त है और जहाँ लोगों में भय, घृणा और जलन नहीं पाई जाती।

गाँधी के रामराज की अवधारणा के प्रति एक विभ्रम आम तौर पर मिलता हैः समझा जाता है कि रामराज से गाँधी अयोध्या के राजा राम के राज की बात कर रहे हैं। गाँधी ने साफ तौर पर कहा था कि उनका राम न तो अयोध्या का राजा राम है और न उनका रामराज दशरथ के बेटे राम के राज का पर्याय है। वे राम शब्द से ईश्वर की बस व्याख्या करते थे- वह ईश्वर जो 'शाश्वत, अजन्मा, और सिर्फ एक' है। गाँधी को ही ईश्वर मानते थे और रामराज शब्द का इस्तेमाल धरती पर ईश्वर के राज के लिए करते थे। धरती पर ईश्वर के राज को वे 'भविष्य के किसी स्वर्ग' में नहीं बल्कि वर्तमान समय में लोगों के लिए बनाना चाहते थे। 2 जनवरी 1937 को उन्होंने हरिजन में लिखा थाः

''राजनीतिक आजादी का अर्थ मैं ब्रिटेन के हाउस ऑफ कॉमन्स, रूस में सोवियत-शासन या इटली में फासीवादियों या जर्मनी में नाज़ियों के शासन की नकल नहीं समझता। इन लोगों ने अपनी मेधा के अनुरूप अपनी व्यवस्था बनाई। हमें अपने लिए ऐसी व्यवस्था चाहिए जो हमारे अनुकूल हो। इस व्यवस्था का मैं जो भी वर्णन पेश करूँ वह व्यवहार में उससे व्यापक होगी। मैं उसे रामराज यानी शुद्ध नैतिक सत्ता पर आधारित जनता की सम्प्रभुता कहता हूँ।''

ऐसा अहिंसक समाज जो लोगों को आजादी, समानता और सामाजिक न्याय का सर्वोच्च स्वरूप उपलब्ध कराए, गाँधी का आदर्श समाज है। इस समाज की बुनियाद अहिंसा और सत्य के व्यवहार पर टिकी नैतिक कानून से बनेगी। राजसत्ता के बारे में भी गाँधी की अवधारणा लोकतान्त्रिक है। गाँधी के रामराज में जनता ही सम्प्रभु है, और वह अपने इस अधिकार को कुछ समय के लिए ही अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों को देती है। दरअसल, जनता के बगैर संसद का कोई अस्तित्व या उसकी कोई सत्ता नहीं है। गाँधी राजसत्ता को मनुष्य की सेवा का एक साधन मानते थे। वे राजसत्ता की संचित ताकत से चिंतित थे, और थोरो के इस विचार का समर्थन करते हुए कहते थे कि सर्वोत्तम राज वही जहाँ राज न्यूनतम हो। गाँधीवादी सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना में मनुष्य सच्चे प्यार और त्याग की भावना रखने के कारण एक दूसरे के स्वाभाविक मददगार होते हैं। इस तरह राजसत्ता की गाँधीवादी धारणा यूटोपियन या काल्पनिक है।

गाँधी कल्पना करते थे कि उनके रामराज में आदर्श लोकतन्त्र रहेगा, और सम्पत्ति और सम्पत्तिविहीनता के अलावा नस्ल, लिंग और रंग आधारित असमानताएँ खत्म हो जाएँगी। उनके रामराज में सत्ता सभी मनुष्यों की ''अधिकतम भलाई'' करेगी। गाँधी के स्वप्न के अनुसार उनके रामराज की स्थापना से भारतीय समाज के सुविधाहीन, गरीब और दबे-कुचलों के सपने पूरे होंगे । वे कहते थे कि उनका रामराज मनुष्यों द्वारा निर्मित किसी भी सामाजिक व्यवस्था से बेहतर होगा।

गाँधी भगवान के मानवीय स्वरूप पर बल देते थे और अपनी इस धारणा के अनुरूप उन्होंने इस भजन को लोकप्रिय बनाया थाः रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीताराम। नाथूराम गोड़से की गोली से मरने के पहले गाँधी ने अन्तिम शब्द के रूप में हे राम उच्चरित किया था। दिल्ली स्थित गाँधी की समाधि में फूलों के साथ यही दो शब्द खुदे दिखते हैं।

धरती पर गाँधी के उस रामराज की स्थापना, जिसके केन्द्र में धरती पर नेकी के राज की स्थापना का विचार था, वर्तमान दुनिया में एक दूर की कौड़ी लगती है। आज की दुनिया में ऐसा समाज इसलिए कोरी कल्पना है, क्योंकि यहाँ गरीबी, बदहाली, शोषण, अपराध, गलाकाट प्रतियोगिता, बीमारियाँ, वर्ग संघर्ष, उपभोक्तावादी लालच और संगी मनुष्यों, पशुओं और प्रकृति के प्रति असंवेदनशीलता सर्वत्र व्याप्त है।

इस सवाल पर कुछ विद्वानों ने गाँधी की आलोचना की है, और कहा है कि उनके लेखन में रामराज का जिक्र होने के बावजूद उसके निहितार्थों की कोई सटीक व्याख्या या परिभाषा नहीं मिलती। इस खास मुद्दे पर असंगतता के आरोप भी गाँधी पर लगे हैं। बहरहाल, गाँधी के लेखन में मौजूद रामराज की इन अवधारणात्मक कमजारियों, असंगतताओं और अस्पष्टताओं और उनकी आलोचनाओं के बाबजूद, कुछ विचार उनकी रामराज या एक आदर्श व्यवस्था की परिकल्पना में साफ तौर पर देखे जा सकते हैं-

- गाँधी ने राम शब्द का प्रयोग ईश्वर के लिए किया था
- गाँधी के लिए सत्य ही ईश्वर था, और वे रामराज का प्रयोग धरती पर ईश्वर के राज के लिए करते थे
- गाँधी के रामराज का मतलब शुद्ध नैतिक शक्ति पर आधारित जनता की सम्प्रभुता थी।
- गाँधी के रामराज में आदर्श लोकतन्त्र और समानता की कल्पना की गई थी।
- रामराज सभी मनुष्यों की सर्वोत्तम भलाई सुनिश्चित करेगा।
- आज के समाज की बुराइयों के मद्देनजर गाँधी का रामराज यूटोपियन या काल्पनिक लगता है।

अभ्यासः सही या गलत

1. गाँधी का रामराज आदर्श समाज का चित्रण था।

2. गाँधी का रामराज यूटोपियन यानी काल्पनिक था।

3. गाँधी ने रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम भजन को लोकप्रिय बनाया था।

4. रामराज की अवधारणा को लेकर गाँधी पर असंगत और अस्पष्ट होने के आरोप लगे हैं।

3.6 खादी/सूती

खादी तकनीकी तौर पर हाथ से कते और बुने कपड़े को कहते हैं। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के गाँधीवादी दौर में कपड़ा बुनने से ज्यादा महत्व चरखे पर सूत कातने को मिला और खादी औपनिवेशिक राज के खिलाफ भारतीय आजादी का प्रतीक बन गई। इसके अलावा, खादी स्वदेशी की भावना जगाकर साम्राज्यवादियों की दैत्याकार शक्ति को चुनौती देने, और इस तरह भारतीय गाँवों का पुनर्जीवित करने का एक गाँधीवादी तरीका भी था।

खादी का गाँधीवादी कार्यक्रम स्वदेशी उत्पादन के जरिए आत्मनिर्भरता हासिल करने, और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में हरेक व्यक्ति की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित करने का एक औजार था। खादी अंग्रेज सत्ता के खिलाफ भारतीय एकता का प्रतीक भी थी, और कठिन व चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भारतीय आत्मनिर्भरता और गरिमापूर्ण जीवन का ताकतवर सन्देश थी।

गाँधी यह जानते थे कि अंग्रेजी व्यापार व व्यवसाय को बढ़ाने के लिए भारत के ग्रामीण उद्योगों को नष्ट किया गया है। ब्रिटेन से आयातित कपड़े ने भारत का विऔद्योगीकरण कर दिया था, जिससे भारतीय दस्तकारों को सांघातिक चोट पहुँची थी। सस्ते विदेशी कपड़े भारतीय दस्तकारों की व्यथा बढ़ा रहे थे। गाँधी मानते थे कि हाथ की कताई-बुनाई भारत के आर्थिक और नैतिक पुनर्जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। खेती के अलावा एक सम्पूरक कार्य के बतौर कताई भारत के ग्रामीणों को भुखमरी और दरिद्रता से बचाने के भी काम आ सकती है। भारतीय गरीबी और दरिद्रता से वे इतना व्यथित थे कि उन्होंने अपना पहनावा भी पूरी तरह बदल दिया था। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्बहाली के लिए पारम्परिक उद्यमों को पुनर्जीवित करना गाँधी जरूरी समझते थे।

खादी के जरिए आर्थिक पुनर्जीवन के इस कार्यक्रम में स्वदेशी की भावना पर काफी बल था। खादी, दरअसल, राष्ट्रवाद का प्रतीक बन गई। ग्रामीण जनता की आय बढ़ाकर खादी आर्थिक भूमिका निभाने के अलावा राष्ट्रवाद को बढ़ाकर राजनीतिक भूमिका, काम की गरिमा को स्थापित करके सामाजिक भूमिका व स्वयं कष्ट सहन करने की भावना के जरिए नैतिक उन्नयन की भूमिका भी निभा रही थी। गाँधी के लिए अगर स्वदेशी एक सैद्धान्तिक धारणा थी, तो खादी उसका मूर्त रूप।

गाँधीवादी दर्शन में हाथ की कताई और खादी राष्ट्रीय पुनर्जीवन के अभिन्न औजार माने गए हैं। इसका समर्थन वे निम्न कारणों से करते थेः

- इसे आसानी से सीखा जा सकता है
- जिनके पास समय है और आय की जरूरत है, उनके लिए यह सबसे सुलभ रोजगार है।

- इसको शुरू करने के लिए धन या पूंजी की जरूरत नहीं है।
- यह गाँवों में लोगों का निठल्लापन दूर करती है।
- अकाल और अभाव के दौर में यह तात्कालिक राहत दे सकती है।
- इसके जरिए विदेशी कपड़ों की खरीद से होने वाली राष्ट्रीय धन की विदेश निकासी को रोका जा सकता है।
- जनता में इसके प्रति नापसन्दगी नहीं है।
- जनता में आपसी सहयोग बढ़ाने का यह सबसे शक्तिशाली औजार है।

इस तरह, खादी लोगों की शिक्षित करने के लिए एक बहुउपयोगी औजार थी; गाँधी के लिए चरखा स्थानीय स्तर पर गाँवों के पुनर्जीवन का, राष्ट्रीय स्तर पर स्वराज का और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना का औजार थी। खादी का विकास गावों की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकृत विकास का भी रास्ता खोलती थी। औपनिवेशिक राज की परिस्थितियाँ स्वदेशी उद्यमों और दस्तकारी को हर जरूरी मदद में बाधा पहुँचा रही थीं। जाहिर है कि इन प्रतिकूल परिस्थितयों में खादी और चरखे का गाँधीवादी आह्वान एक शक्तिशाली विकल्प था। इसके अलावा, खादी और ग्रामीण उद्योग की गाँधीवादी धारणा राष्ट्रीय आन्दोलन के एक कार्यनीतिक औजार के बतौर इतनी व्यापक थी कि वह सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक व नैतिक सिद्धान्तों को भी समाहित कर लेती थी।

गाँधी खादी को अहिंसा की बुनियाद और उसका प्रतिफलन मानते थे। उन्होंने कहा था कि सच्चा खादीवाला झूठ नहीं बोलता और हिंसा भी नहीं करता। इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में खादी महज कपड़ा नही रह गई थी, बल्कि विशिष्ट आदर्शो और मूल्यों का प्रचार करने वाली आजादी की पोशाक का रूप ले चुकी थी। खादी की स्वीकृति और उसकी नैतिक पहचान ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में खादी कार्यक्रम चलाए जाने का आधार प्रदान किया था। इसके अलावा, देशभक्ति में रंगी सादगी, सरलता और ईमानदारी की उन दिनों काफी साख थी। गाँधी की लोकप्रियता और करिश्मा भी खादी को स्वीकार्य बनाने और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का समर्थन जुटाने वाला महत्वपूर्ण स्रोत थी।

अरबिन्दो घोष खादी और चरखा के विचारों के लिए गाँधी की आलोचना किया करते थे। वे इसे ऊर्जा और समय की भारी बरबादी कहते थे। 1940 में, विश्वयुद्ध के दौरान, अरबिन्दो ने गाँधी से यह भी पूछा था कि क्या वे चरखा के जरिए सैनिक टुकड़ियों का मुकाबला करेंगे। एम.ए.जिन्ना ने भी चरखे के बल पर स्वराज जीत लेने के गाँधी के दृष्टिकोण की आलोचना की थी। बाद के दिनों में तो नेहरू भी गाँधी के इस विचार पर एक आलोचनात्मक रवैया रखने लगे थे। खादी या हाथ की बुनाई की सैद्धान्तिक आलोचना यह थी कि इससे न सिर्फ सूती मिलें बल्कि सभी मशीनें भी बन्द

होंगी, और यह व्याख्या बहुतों को परेशान करती थी क्योंकि यह सूरत उन्हें 'आदिम व्यक्तिवाद' की ओर ले जाने वाली लगती थी।

खादी जितना हाथ के कते-बुने कपड़े के निर्माण और इस्तेमाल के बारे में थी, उतना ही वह उपभोक्तावाद और विकास की एक नैतिक आलोचना थी। यह एक राजनीतिक घोषणा के अलावा एक परोपकारी व्यवसाय भी था। हालाँकि गाँधी के दमदार समर्थन के कारण ही खादी को पहचान और प्रसिद्धि मिली। गाँधी खादी में भारतीय लोगों की एकता और उनकी आर्थिक आजादी व समानता का प्रतीक देखते थे।

3.8 राष्ट्रीय एकता

भारत भाषा, साहित्य, पहनावे, धार्मिक समुदायों, त्योहारों, खानपान, चिन्तन के तौर-तरीकों और जीने के ढंग के मामलों में भारी विविधताओं वाला देश है। औपनिवेशिक दौर से ही कहा जाता रहा है कि भारत एक देश नहीं है। जाहिर है कि यह विचार साम्राज्यवादियों के लिए बेहद मुफीद था, क्योकि यह विचार उनके लिए भारतीय समाज में मौजूद मतभेदों को रेखांकित करते हुए एक समुदाय को दूसरे से लड़ाने का खेल खेलना आसान कर देता था। अंग्रेज कुछ मिथकों को गढ़ने के जरिए प्रचारित करते थे कि कोई खास समुदाय किसी विशेष पेशे के लिए ही बना है, मसलन सिखों को लड़ाका कौम बताया गया था, तो एंग्लो इन्डियन समुदाय को रेल, डाक व तार विभागों के लिए मुफीद बताया गया था, और कुछ को तो प्राकृतिक तौर पर आपराधिक बताते हुए उन्हें 'अपराधी समुदाय' घोषित कर दिया गया था। भारत पहले एक देश नहीं था और उसे एक देश बनने में अभी सैकड़ों बरस लगेंगे, इस तरह के विचार वर टिप्पणी करते हुए गाँधी ने कहा था कि अंग्रेजों द्वारा पोषित इस विचार में कोई सच्चाई नहीं है।

गाँधी को इस बात का एहसास था कि सम्पूर्ण राष्ट्रीय एकता के लिए अमीरों और गरीबों के बीच की खाई को पाटना जरूरी है। इस परिपेक्ष्य में गाँधी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त महत्वपूर्ण है। यह गाँधी की सर्वोदय यानी सबकी अधिकतम भलाई वाली धारणा में भी अन्तर्निहित है। गाँधी हर तरह के शोषण को खत्म करने और समाज के सबसे निचले पायदान पर स्थित लोगों तक आर्थिक फायदा पहुँचाने की वकालत करते हैं। वे कहते थे कि भौतिक सम्पदा के उत्पादकों को 'ट्रस्टियों' की तरह व्यवहार करते हुए देश के भले के लिए संसाधनों का इस्तेमाल करना चाहिए। आर्थिक निर्भरता के अपने कार्यक्रम के जरिए गाँधी हरेक व्यक्ति का आर्थिक उन्नयन करने की मंशा रखते थे। ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की वकालत करने के लिए यह कहकर गाँधी की आलोचना की गई है कि उनका यह विचार एक तरह से पूंजीपति वर्ग का ही पक्षपोषण करता है।

देश में अनेक भाषाएँ होने के कारण कभी-कभार भाषा का सवाल जनता में संघर्ष का कारण बन जाता है और इस आधार पर क्षेत्रीय उग्रराष्ट्रवाद सिर उठाने लगता है। भाषा के सवाल में

निहित विभाजनकारी प्रवृत्तियों को गाँधी ने पहचाना था। उन्हें लगता था कि जनता के आम इस्तेमाल के लिए भारत में एक साझी भाषा का विकास किया जाना चाहिए। गाँधी की खुद की मातृभाषा गुजराती थी, फिर भी वे बलपूर्वक कहते थे कि अगर भारत को एक राष्ट्र बनाना है तो केवल हिन्दी को ही राष्ट्रीय भाषा बनाया जा सकता है।

10 सितम्बर 1938 को हरिजन में गाँधी ने कहा था कि सर्वभारतीय राष्ट्रवाद का केन्द्र विकसित करने के लिए हमें प्रान्तीयतावाद के बन्द खोल तोड़ने होंगे। उन्होंने सवाल किया था कि ''क्या भारत एक देश और एक राष्ट्र है या वह अनेक देश और अनेक राष्ट्र है?' गाँधी की समझ अंग्रेजी शिक्षित और अंग्रेजी समर्थक विशिष्ट भारतीयों और आम जनता के बीच बढ़ती खाई पर बार-बार जा टिकती थी। अंग्रेजी भाषा प्रतिष्ठा का प्रतीक थी। हालाँकि गाँधी अंग्रेजी भाषा के विरोधी नहीं थे, लेकिन वे उसके इस्तेमाल के प्रति अधिक व्यावहारिक समझ रखते थे।

1 फरवरी 1948 के हरिजन में गाँधी ने लिखा था कि बाहरी विश्व हमें तमिल, मराठी और गुजराती के रूप में नहीं बल्कि केवल भारतीय के रूप में जानता है। इसलिए गाँधी ऐसे प्रान्तीयतावाद के खिलाफ थे जो भारतीय एकता के लिए खतरा पेश करे। गाँधी यह समझ गए थे कि सत्ता हथियाने वाले प्रान्त और भाषा के नाम पर अलगाव भड़का सकते हैं, इसलिए वे त्रिभाषा फार्मूले जैसे सन्तुलित दृष्टिकोण की वकालत करते थे।

गाँधी की अपील उनके द्वारा उत्पीड़ित और वंचित जनता के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेने में निहित थी। उनके रचनात्मक कार्यक्रम, छुआछूत निर्मूलन के उपाय और हिन्दू-मुस्लिम एकता की कोशिशें राष्ट्रीय एकता के उनके दृष्टिकोण को उजागर करते हैं। वे औपनिवेशिक शासकों द्वारा अपने स्वार्थ के लिए देश में आपसी झगड़े भड़काने वाली 'बाँटो और राज करो' नीति के प्रतिकूल वातावरण के बीच राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदारी कर रहे विभिन्न तबकों के साझा हितों को पहचानने के प्रबल समर्थक थे।

गाँधी कानून या किसी बाह्य ताकत के जोर पर एकता के पैरोकार नहीं थे। वे एकता की अन्दरूनी ताकत बढ़ाने के लिए नैतिक ताकत और मूल्यों पर जोर देते थे। अल्पसंख्यकों के साथ गाँधी ने अपना तादात्म्य विचार और व्यवहार दोनो ही स्तर पर हासिलि किया था। वैसे भी, विश्वास, कर्म, विचार और व्यवहार के बीच सन्तुलन गाँधीवादी दर्शन की विशिष्टता थी।

वे एक समुदाय को दूसरे से अलग करने वाली साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक प्रवृत्तियों के खिलाफ थे। वे देश के सभी अल्पसंख्यकों के साथ तादात्म्य स्थापित कर सके थे और राष्ट्रीय एकता पर लगातार बल देते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े विभिन्न तबकों के फर्क की अनदेखी करने के लिए गाँधी की आलोचना की जाती है। लेकिन यह ध्यान देने की बात है कि विभिन्न हितों वाले इतने विविधतापूर्ण समुदायों को साथ लेकर चलना एक दुस्साध्य कार्यभार था। गौरतलब है कि

आधुनिक इतिहास में (सत्य और अहिंसा पर एकांतिक जोर देने वाला) कोई जननेता ऐसा नहीं हुआ जिसके प्रभाव में इतने ज्यादा लोग इतने ज्यादा समय तक साथ-साथ चले हैं।

अनीमा बोस (1989) कहती हैं कि अलग-अलग धर्म, अलग-अलग भाषा, और अलग-अलग जातीय समूहों के अस्तित्व के कारण कोई देश एक राष्ट्र के रूप में खत्म नहीं हो जाता। बल्कि, जैसा गाँधी मानते थे, कोई देश एक राष्ट्र महज तब बनता है जब वहाँ विविधतापूर्ण स्थितियाँ मौजूद हों।

प्रश्न 1 अभ्यास: सही या गलत

क. गाँधी ने त्रिभाषा फार्मूला की वकालत की थी।

ख. गाँधी जनता के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सफल रहे थे।

ग. गाँधी हिन्दी/हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के पक्ष में थे।

घ. गाँधी साम्प्रदायिकता के खिलाफ थे।

3.9 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

3.3.1 के उत्तर: क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. गलत।

3.5 के उत्तर: 1 . सही, 2 . सही, 3 . सही, 4 . सही।

3.8 के उत्तर: क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही।

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. बक्शी, एस.आर. (1987) गाँधी एन्ड आइडियोलॉजी ऑफ स्वदेशी, रिलायंस पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2. बजाज, प्रेम नाथ (1980), द शैडो ऑफ रामराज्य ओवर इन्डिया, स्पार्क पब्लिशर्स, दिल्ली
3. बौरी, हिमांशु (2004), गान्धियन फिलासफी एन्ड द न्यू वर्ल्ड आर्डर, अभिजीत पब्लिकेशन, दिल्ली
4. बोस, अनीमा (1989), अ गान्धियन पर्सपेक्टिव आन नेशनल इन्टीग्रेशन, वीटी पाटिल इत्यादि, न्यू डाइमेन्शन एन्ड पर्सपेक्टिव्स इन गान्धिज्म, इन्टर इन्डिया पब्लिकेशन, दिल्ली
5. गाँधी, एम.के. (प्रथम प्रकाशन 1947), इन्डिया ऑफ माई ड्रीम्स, (आर.के. प्रभु द्वारा संकलित), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद
6. गाँधी, एम.के. (1938), सेन्ट पर्सेन्ट स्वदेशी, नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद

7. आयर, राघवन एन.(2000), द मॉरल एन्ड पोलिटिकल थाट आफ महात्मा गाँधी, ओयूपी, दिल्ली
8. कौर, हरपिन्दर, (1989), गान्धीज कन्सेप्ट आफ सिविल डिसओबीडिएन्सः अ स्टडी विद अ स्पेशल रेफरेन्स टु थोरोज इन्फ्लुएन्स आन गान्धी, इन्टेलेक्चुअल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
9. कुमार, रवीन्द्र (2009), नॉन कोआपरेशन, वर्ल्ड पीस मूवमेन्ट ट्रस्ट, मेरठ
10. पारिख, गीतान्जलि (2011), हिस्ट्री आफ खादी, एनबीटी, दिल्ली
11. पृथी, आ.के. और चतुर्वेदी, अर्चना (2009), सोशल फिलासफी आफ महात्मा गाँधी, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स, दिल्ली
12. पृथी, आ.के. और चतुर्वेदी, अर्चना (2009), पर्सपेक्टिव्स आन गान्धियन थाट्स, कॉमनवेल्थ, दिल्ली
13. रामागुन्डन, राहुल (2008) गान्धीज खादी, अ हिस्ट्री आफ कन्टेन्शन एन्ड कन्शीलिएशन, ओरिएन्ट लान्गमैन प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली
14. यंग इन्डिया, नवम्बर 13, 1924 यंग इन्डिया इंग्लिश वीकली, नवजीवन, अहमदाबाद

3.11 सहायक ग्रन्थ सूची

1. गाँधी, एम.के., माई एक्सपेरीमेन्ट्स विद ट्रुथ (चौथा संस्करण, 1983), नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद
2. गाँधी, एम.के., हिन्द स्वराज या इन्डियन होम रूल (1996, प्रथम संस्करण 1909) नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. गाँधीवादी असहयोग की अवधारणा को स्पष्ट करें

प्रश्न 2. सविनय अवज्ञा की अवधारणा को स्पष्ट करें।

प्रश्न 3. व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा और जन सविनय अवज्ञा के फर्क को स्पष्ट करें।

प्रश्न 4. रामराज की अवधारणा पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

प्रश्न 5. गाँधी ने खादी और हाथ की कताई का समर्थन क्यों किया था।

प्रश्न 6. राष्ट्रीय आन्दोलन के गाँधीवादी दौर में खादी किस चीज का प्रतीक थी।

प्रश्न 7. व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता की अवधारणा को स्पष्ट करें।

विभाजन, साम्प्रदायिकता, संविधान, रैडक्लिफ रेखा, रेखा, गणतन्त्र, लोकतन्त्र

4.1 भूमिका
4.2 उद्देश्य
4.3 साम्प्रदायिकता
    4.3.1 साम्प्रदायिकता और उसका तन्त्र
    4.3.2 साम्प्रदायिकता से जुड़े मिथक
4.4 संविधान
    4.4.1 संविधानों के वर्गीकरण
    4.4.2 भारतीय संविधान की निर्माण प्रक्रिया
    4.4.3 संविधान का लागू होना
    4.4.4 भारतीय संविधान का चरित्र
    4.4.5 भारतीय संविधान किस हद तक संघीय है
    4.4.6 भारतीय संविधान का आमुख
4.5 विभाजन
    4.5.1 विभाजन के गुनहगार कारक
    4.5.2 विभाजन- साहित्य और सिनेमा
4.6 रैडक्लिफ रेखा
4.7 गणतन्त्र
    4.7.1लोकतन्त्र का व्यावहारिक अनुभव
4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर
4.9 ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक ग्रंथ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 भूमिका

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको उन अवधारणाओं से परिचित कराना है जो आजादी और उसके बाद के दौर में महत्वपूर्ण रही हैं। हमने कोशिश की है कि इन अवधारणाओं के अलावा उनके ऐतिहासिक प्रसंग से भी आप परिचित हो सकें।

पिछली इकाइयों का आपका अध्ययन मौजूदा इकाई की जानकारियों को ठोस ढंग से आत्मसात करने में सहायक होगा। इन अवधारणाओं की चर्चा के बाद ऐतिहासिक घटनाओं की अपनी पुरानी समझ को आप एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे।

छात्रों से अपेक्षा है कि इन अवधारणाओं को वे वर्तमान सन्दर्भ से भी जोड़कर देखेंगे, क्योंकि अधिकांश अवधारणाएँ ऐसे मुद्दों से जुड़ी हैं जो समसामयिक राजनीति, समाज और संस्कृति के लिए आज भी प्रासंगिक हैं।

4.2 उद्देश्य

- साम्प्रदायिकता की अवधारणा और भारत-विभाजन से उसके जुड़ाव की जानकारी देना।
- संविधान के महत्व पर चर्चा और उसके उन बुनियादी तत्वों की व्याख्या करना जो संविधान का बुनियादी ढाँचा निर्मित करते हैं।
- गणतन्त्र और लोकतन्त्र की अवधारणाओं के महत्व को जानना
- रैडक्लिफ रेखा के निर्माण और उसके सम्पूर्ण प्रसंग को समझना

4.3 साम्प्रदायिकता

साम्प्रदायिकता शब्द हम अकसर सुनते हैं। सुनने में यह शब्द काफी सीधा सा लगता है लेकिन दरअसल काफी विरोधाभाषी है। 20वीं सदी की यह एक मुख्य विभाजनकारी परिघटना बन चुकी है, और 1947 में भारत-विभाजन के लिए भी जिम्मेदार है। बिपन चन्द्र इसकी विस्तार से चर्चा करते हैं, और बताते हैं कि साम्प्रदायिकता एक विश्वास या विचारधारा है, जिसकी क्रियाशीलता में तीन बुनियादी अवस्थाएँ दिखती हैं।

क. साम्प्रदायिकता की पहली अवस्था इस प्रचार से क्रियाशील होती है कि किसी एक धर्म के अनुयायियों के हित एक समान होते हैं। दूसरे शब्दों में, किसी एक धार्मिक समुदाय के लोगों के सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक हित भी समान होंगे। मसलन, दावा किया गया कि हिन्दू जमींदार और एक हिन्दू भूमिहीन मजदूर के हित इसलिए समान हैं क्योंकि दोनों हिन्दू

(या मुसलमान अथवा सिख) हैं। इस तरह, यह सामाजिक-राजनीतिक समुदाय को धर्म के आधार पर देखने, परिभाषित करने के विचार पर बल देता है।

ख. साम्प्रदायिक विचारधारा की दूसरी अवस्था इस प्रचार के साथ क्रियाशील होती है कि किसी धार्मिक समुदाय के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित किसी दूसरे धार्मिक समुदाय के हितों से अलग हैं। मसलन, सभी मुसलमानों के हित सभी हिन्दुओं से अलग हैं और, इसका उलट सभी हिन्दुओं के हित भी सभी मुसलमानों से भिन्न हैं।

ग. साम्प्रदायिक विचारधारा की क्रियाशीलता विकास की एक तीसरी और चरम अवस्था में तब पहुँचती है जब विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के लौकिक हितों को परस्पर असंगत और विरोधी होने का दावा किया जाने लगता है। अब, साम्प्रदायिक तत्व दावा करते हैं कि हिन्दू और मुसलमान सामन्जस्य के साथ रह ही नहीं सकते क्योंकि उनके लौकिक हित परस्पर विरोधी हैं। इस तरह, धर्म को किसी समुदाय या धार्मिक समूह के लौकिक हितों का निर्णायक आधार बता दिया जाता है। धर्म को व्यक्ति की पहचान का सर्वप्रमुख निर्धारक बताय जाता है। असल दुनिया में व्यक्ति बहु-पहचान वाला है, लेकिन साम्प्रदायिक प्रचार में इस हकीकत को नकारा जाता है, और उसके धर्म को ही उसके हितों और पहचान का एकमात्र प्रतीक बना दिया जाता है। हालाँकि, व्यक्ति अपनी जाति, क्षेत्र, महाद्वीप इत्यादि के आधार पर भी पहचाना जाता है। मसलन, राजस्थान के किसी ब्राह्मण को राजस्थान में ब्राह्मण के बतौर पहचाना जाता है, राजस्थान के बाहर उसे राजस्थानी कहा जाता है, एशिया में जाने पर वही व्यक्ति भारतीय कहलाता है और यूरोप या अमरीका में उसे एशियाई कहा जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि स्थान बदलने से भी इंसान की पहचान बदल जाती है।

यह कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक विचारधारा के विकास और क्रियाशीलता की तीनों अवस्थाएँ लोगों के लौकिक हितों के आधार की एक गलत व्याख्या पर टिकी हैं, और हकीकत से कोसों दूर हैं। साम्प्रदायिक व्यक्ति के चश्मे से चीजों को देखने पर व्यक्ति की केवल धार्मिक पहचान दिखती है और उसकी दूसरी तमाम पहचान ढक दी जाती है। ऐसा होते ही साम्प्रदायिकता का तान्डव शुरू हो जाता है।

भारत में साम्प्रदायिकता धार्मिक सवाल के बजाय एक राजनीतिक सवाल के बतौर उभरी। उपनिवेशवाद ने इस दैत्य को उर्वर जमीन मुहैयया कराई। अंग्रेजों की 'बाँटो और राज करो' की नीति के बल पर ही साम्प्रदायिकता देश में ताकतवर बनकर उभरी। 1857 के विद्रोह ने अंग्रेजों को एहसास करा दिया था कि अपनी रोटी सेंकने के लिए हिन्दू-मुसलमान के संयुक्त मोर्चे को तोड़ना जरूरी है। इसलिए, विद्रोह के बाद उन्होंने पहले हिन्दुओं को और बाद में मुसलमानों को अपना संरक्षण देने की चाल चली, और दोनों समुदायों के बीच खाई खोदने का काम शुरू किया। उन्होंने

'फूट करो और राज करो' की साम्राज्यवादी नीति का कारगर इस्तेमाल किया, ताकि उनके खिलाफ 1857 जैसा कोई दूसरा विद्रोह संगठित न किया जा सके।

बिपन चन्द्रा (1993) कहते हैं कि साम्प्रदायिक विचारधारा ऊपर बताई गई पहली विचारधारात्मक अवस्था से अपनी यात्रा शुरू करती है। विचारधारा की इस अवस्था में वे खुद को राष्ट्रवादी न कहकर राष्ट्रवादी हिन्दू या राष्ट्रवादी मुसलमान कहना शुरू करते हैं, और इस मुगालते में रहते हैं कि साम्प्रदायिक विचारधारा की दूसरी या उसकी चरम अवस्था से उनका कुछ लेना देना नहीं है। साम्प्रदायिक विचारधारा की दूसरी अवस्था में, जिसे उदार या नरम साम्प्रदायिकता का दौर कहा जा सकता है, व्यक्ति साम्प्रदायिकता में विश्वास और अमल करने के साथ-साथ कुछ लोकतान्त्रिक, राष्ट्रवादी, उदारपंथी और मानवीय मूल्यों का भी समर्थन करता है। धर्म के आधार पर समुदायों के अलगाव पर भरोसा करते हुए भी व्यक्ति मानता और सार्वजनिक तौर पर स्वीकार करता है कि समुदायों के विरोधी हितों में धीरे-धीरे सामन्जस्य लाते हुए व्यापक राष्ट्रीय हितों व भारत के राष्ट्रीय ढाँचे में उनका समावेश करना संभव है। 1937 के पहले की मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा, 1925 के बाद अली भाई, मदन मोहन मालवीय, मोहम्मद अली जिन्ना, लाला लाजपत राय और 1922 के बाद एन.सी. केलकर, यानी साम्प्रदायिक विचारधारा वाले अधिकांश व्यक्ति व संगठन, इसी उदार साम्प्रदायिकता वैचारिक ढाँचे के तहत कार्य कर रहे थे।

तीसरी यानी क्रियाशीलता की अपनी चरम अवस्था में साम्प्रदायिक विचारधारा भय और घृणा बोने लगती है, और राजनीतिक विरोधियों के प्रति आक्रामक और शत्रुता की भाषा का खुला इस्तेमाल करती है। विभाजन के पहले साम्प्रदायिकता की इस अवस्था में साम्प्रदायिक तत्वों ने घोषित कर दिया कि हिन्दू व उनकी संस्कृति, पहचान, धर्म, इज्जत, और मुसलमान व उनकी संस्कृति, इस्लाम और पहचान पराए धर्म से कत्ल हो जाने का खतरा झेल रहे हैं। यही नहीं, साम्प्रदायिक तत्व यह भी कहने लगे कि हिन्दू और मुसलमान दो अलग राष्ट्र हैं (द्विराष्ट्र का सिद्धान्त), और उनकी आपसी शत्रुता असमाधेय है और अब अलग-अलग राष्ट्रों में रहना ही उनकी नियति है। 1937 के बाद मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा इसी दृष्टिकोण को अपना चुके थे।

4.3.1 साम्प्रदायिकता और उसका तन्त्र

एक विचारधारा के बतौर साम्प्रदायिकता भावनाएँ और तनाव भड़काती है, और कुछ मौकों पर साम्प्रदायिक राजनीति का सहारा पाकर वह साम्प्रदायिक हिंसा में बदल जाती है। इसलिए, एक हथियार के बतौर साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल करते हुए वे देखे गए हैं जिन्हें इसका फायदा मिला, साम्प्रदायिकता के सुलगने से जिनके हित सधे और जिन्होंने इसके जरिए अपने राजनीतिक मकसद हासिल किए।

साम्प्रदायिकता उनके लिए एक मूल्य में बदल गई जिन्होंने इस पर भरोसा किया, और इसके आदर्शों को आत्मसात करते हुए उन्हें अपने जीवन का अंग बनाया। ऐसे लोग साम्प्रदायिक विचारधारा और प्रचार पर अपनी गहरी आस्था के कारण लाभ हासिल नहीं कर सके, बल्कि उन साम्प्रदायिक तत्वों द्वारा शिकार बना लिए गए जो अपने निहित स्वार्थों के लिए उनका इस्तेमाल कर रहे थे।

एक इलाके के सभी समुदायों के लोगों के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित एक थे। दूसरी तरफ, भाषा, सामाजिक हैसियत, वर्ग, क्षेत्र, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं, और खानपान व पहनावे के मामले में वे स्पष्ट तौर पर अपने धर्मावलम्बियों से भिन्न और दूसरे धार्मिक समुदायों के साथ समान थे। एक उच्च वर्गीय हिन्दू और उच्च वर्गीय मुसलमान अपने धर्म के निम्नवर्गीय व्यक्ति की तुलना में सांस्कृतिक तौर पर अधिक समान थे। गुजराती हिन्दू की तुलना में एक पंजाबी हिन्दू पंजाबी मुसलमान से ज्यादा सांस्कृतिक समानता रखता था, और इसी तरह पंजाबी हिन्दू की तुलना में गुजराती मुसलमान भी गुजराती हिन्दू के साथ ज्यादा समानता रखता था।

4.3.2 साम्प्रदायिकता से जुड़े मिथक

विरोधाभाषी होने के कारण साम्प्रदायिकता के साथ अनेक मिथक जुड़ गए हैं:

क. साम्प्रदायिकता कोई धार्मिक मुद्दा नहीं है। साम्प्रदायिकता धार्मिक भिन्नता का भी परिणाम नहीं है। मध्यकाल में भी हिन्दू और मुसलमान धर्म के मामले में भिन्न थे, लेकिन इस भिन्नता को साम्प्रदायिक रंग औपनिवेशिक समय में ही दिया गया है।

ख. साम्प्रदायिकता भारतीय समाज का अन्तर्निहित गुण नहीं थी। वह आधुनिक काल की विशिष्ट परिस्थिति और सामाजिक शक्तियों के संयोजन का परिणाम थी। यह साम्राज्यवादी मानसिकता और विचारधारा का भी नतीजा थी जो औपनिवेशिक राज की राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियों का लाभ उठाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रही थी। दूसरे शब्दों में, यह अनेक कारकों के एक विशिष्ट संयोजन का परिणाम थी, जिसके कारण यह नमूदार हुई और सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे द्वारा पोषित की जाने लगी।

प्रश्न 1 अभ्यास: सही या गलत

क. साम्प्रदायिकता आधुनिक दौर की कुछ खास परिस्थितियों और ताकतों का परिणाम थी।

ख. साम्प्रदायिकता एक धार्मिक मामला नहीं है।

ग. अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति वह आधार थी जिसका सहारा लेकर साम्प्रदायिकता आगे बढ़ी।

घ. एक इलाके के सभी समुदायों के सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक हित समान होते हैं।

4.4 संविधान

संविधान देश के आदर्शों और आकांक्षाओं को सँजोने वाला वह दस्तावेज है जिसे विशिष्ट कानूनी प्राधिकार हासिल रहता है। देश के शासन के लिए यह एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है, बल्कि उसके प्रशासन के लिए अपरिहार्य है। यह प्रशासन एवं अन्य मसलों के लिए एक सामान्य निर्देशक रूपरेखा मुहैय्या कराता है। संविधान के प्राधिकार का स्रोत स्वयं देश की जनता है। उदाहरण के लिए, भारतीय दन्ड संहिता और भारतीय संविदा अधिनियम विधायिका ने बनाए हैं, लेकिन स्वयं विधायिका का गठन सविधान के तहत होता है।

4.4.1 संविधानों के वर्गीकरण

संविधान कई तरह के हैं, जिनमें कुछ ऐसे हैं:

क. क्रमिक तौर पर विकसित और अधिनियमितः क्रमिक तौर पर विकसित संविधान किसी खास समय में विहित नहीं होते, जबकि अधिनियमित संविधान किसी खास तिथि में अंगीकृत और अधिनियमित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान 26 नवम्बर 1949 को अंगीकृत किया गया और 26 नवम्बर 1950 को लागू हुआ।

ख. लिखित और अलिखितः लिखित संविधान वह है जिसके प्रावधान एक कानूनी दस्तावेज के रूप में संहिताबद्ध हैं। दूसरी तरफ, एक अलिखित संविधान के प्रावधान लिखित होते हुए भी किसी एकल कानूनी दस्तावेज में संहिताबद्ध नहीं मिलते। इंगलैन्ड और न्यूजीलैन्ड के संविधान इसके उदाहरण हैं। लिखित संविधान राज्य के सभी अंगों, मसलन कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका का गठन अपने तहत करता है, जबकि अलिखित संविधान विधायिका द्वारा निर्मित होता है।

ग. लचीला और जड़ः एक लचीला संविधान अपने प्रावधानों में संशोधन की व्यवस्था करता है जबकि जड़ संविधान के प्रावधानों को बदलना काफी कठिन होता है। सभी अलिखित संविधान लचीले हैं, जबकि लिखित संविधान लचीले और जड़ दोनों किस्म के होते हैं।

घ. एकात्मक या संघीयः एकात्मक संविधान में केवल एक सरकार यानी सम्प्रभु सरकार होती है, जबकि संघीय संविधान वाली व्यवस्था में दोहरी यानी केन्द्रीय और संघीय सरकारों की

व्यवस्था होती है। आम तौर पर सभी अलिखित संविधानों में एकात्मक सरकार का प्रावधान है जबकि लिखित संविधान केन्द्रीय या संघीय सरकारों की व्यवस्था में किसी का भी चयन कर सकते हैं।

4.4.2 भारतीय संविधान की निर्माण प्रक्रिया

6 दिसम्बर 1946 को संविधान सभा गठित की गई थी। डा. राजेन्द्र प्रसाद इसके सभापति चुने गए थे। कैबिनेट मिशन (1946) के प्रस्तावों में संविधान सभा की व्यवस्था शामिल की गई थी। इस संविधान सभा ने कई समितियों का गठन किया, जिनमें कुछ इस प्रकार थीं:

- ❖ संघीय संविधान की समिति
- ❖ मसौदा समिति
- मूलभूत अधिकारों की समिति
- अल्पसंख्यकों के विशेष प्रावधानों के लिए समिति
- उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय की समिति
- संघीय शक्तियों की समिति

मसौदा समिति में सात सदस्य शामिल किए गए थे। डा. बी.आर. अम्बेडकर इस समिति के सभापति थे। इसका कार्यभार विभिन्न समितियों का समन्वय करना था। इस समिति ने संविधान को संयोजित और व्यवस्थित किया।

4.4.3 संविधान का लागू होना

पूर्ण स्वराज प्रस्ताव की बीसवीं वर्षगाँठ 26 जनवरी 1950 के दिन संविधान को लागू किया गया। हालाँकि संविधान के कुछ अंश 26 नवम्बर 1949 को ही लागू हो गए थे। इनके उदाहरण निम्नवत हैं:

- नागरिकता
- राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी प्रावधान
- देश की अन्तरिम संसद यानी संसद मान ली गई संविधान सभा सम्बन्धी प्रावधान।

4.4.4 भारतीय संविधान का चरित्र

भारतीय संविधान अर्धसंघीय है, यानी वह ऐसा संविधान है जो संघीय लगते हुए भी पूरी तरह संघीय नहीं है। संघ के होने का मतलब केन्द्र व राज्य सरकारों के रूप में सरकार के दोहरे स्वरूप की

मौजूदगी है। यहाँ राज्य और केन्द्र सरकार एक दूसरे की अधीनता में काम नहीं करतीं, बल्कि परस्पर सहयोग करते हुए भी स्वतन्त्र हैं। किसी संघ में इन बुनियादी तत्वों का होना अनिवार्य हैः

क. केन्द्र और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का बँटवाराः यानी केन्द्र और राज्य की सूचियाँ। संविधान की 7वीं अनुसूची में ये सूचियाँ दी गई हैं।

ख. संविधान की सर्वोच्चताः संविधान के प्रावधान केन्द्र और राज्य सरकारों पर बाध्यकारी है। ऐसा न होने पर संविधान का बुनियादी ढाँचा टूट सकता है और संघ भी खत्म हो जा सकता है।

ग. लिखित संविधानः क्योंकि इसके बगैर राज्य और केन्द्र की शक्तियों का बँटवारा मुमकिन नहीं है।

घ. संविधान का स्थायित्वः संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन आसान नहीं है। उसकी यह जड़ता और संविधान की सर्वोच्चता आपस में जुड़े हैं। जड़ता का मतलब है कि केन्द्र और राज्य दोनों से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों को बदलना अपेक्षाकृत कठिन है। हालाँकि दूसरे लिहाज से इसमें लचीलापन मौजूद है।

च. न्यायालयों का प्राधिकारः उच्चतम न्यायालय केन्द्र और राज्य के मतभेदों का निपटारा करता हैं। न्यायालय द्वारा संविधान की सर्वोच्चता को बनाए रखने का प्राधिकार यह भी तय कर देता है कि केन्द्र और राज्य एक दूसरे के कार्यक्षेत्र का उल्लंघन न करें।

4.4.5 भारतीय संविधान किस हद तक संघीय है

दुनिया के किन्हीं दो देशों के संविधान एक समान नहीं हो सकते। क्योंकि संविधान वह गतिशील और जीवन्त दस्तावेज है, जो देश के उस लक्ष्य और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करता है, जिसकी जड़ें देश की सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में रहती हैं।

- एक सविधानः यानी एकल कानूनी दस्तावेज में संहिताबद्ध
- एकल नागरिकताः यह अपने नागरिकों को एकल नागरिकता प्रदान करती है।
- राज्यों को अपनी सीमाओं की अनुल्लंघनीयता का हक नहीं। संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद किसी राज्य का नाम, सीमा या क्षेत्र परिवर्तित करने का अधिकार रखता है। केन्द्र की अनुमति के बगैर भारत में राज्य अपना अस्तित्व बरकरार नहीं रख सकते।
- शक्तियों का वितरणः केन्द्र के पक्ष में एकपक्षीय है। सभी महत्वपूर्ण कराधिकार केन्द्रीय सूची में हैं (केवल बिक्री कर राज्य सूची में है)। राज्य अपने वित्तपोषण के लिए केन्द्र पर

निर्भर हैं। अन्य विषयों की सूची केन्द्र के अधीन है। आम तौर पर राज्य सूची के विषय राज्य के अधीन रहते हैं लेकिन असाधारण परिस्थितियाँ हों तो केन्द्र इन विषयों में भी दखल कर सकता है। उदाहरण के तौर पर धारा 352 के तहत आपातकाल लागू होने या धारा 356 के तहत राष्ट्रपति शासन होने पर राज्य के सभी विषय केन्द्र के पास चले जाते हैं।

4.4.6 भारतीय संविधान का आमुख

यह संविधान की भूमिका है, और संविधान का सारांश भी। यह भारतीय जनता के आदर्शों व आकांक्षाओं और संविधान की विषयवस्तु और उसके दर्शन को व्यक्त करता है, इसलिए यह संविधान का सार व उसका आइना है। संविधान का दर्शन दरअसल स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों के आदर्शों को ही अभिव्यक्त करता है। उच्चतम न्यायालय ने इसे 'संविधान निर्माताओं के मष्तिष्क को उजागर करने वाली चाबी' कहा है। संविधान के आमुख में कहा गया हैः

''हम भारत के लोग भारत को एक सम्प्रभु समाजवादी धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बनाने के लिए और उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, आस्था और उपासना की आजादी; प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्राप्त कराने के लिए और व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए; दृढसंकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर 1949 को एतद्द्वारा अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

संविधान का आमुख भारतीय जनता के आदर्शों व आकांक्षाएँ को अभिव्यक्त करता है- आदर्श सम्प्रभुता, समाजवाद, लोकतन्त्र और गणतन्त्र हैं, जबकि न्याय, समानता, आजादी और बन्धुत्व आकांक्षाएँ या चार राजनीतिक मूल्य हैं। इसमें अधिनियमन की धारा यानी 26 नवम्बर 1949 का जिक्र है। यह घोषित करता है कि सम्प्रभुता लोगों में निहित है और संविधान की सारी शक्ति और प्राधिकार का स्रोत जनता है। मूलभूत अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्व इन मूलभूत सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के विस्तृत प्रावधानों का जिक्र करते हैं। संविधान नागरिकों के मूलभूत कर्तव्यों का भी उल्लेख करता है। वह संसद, उच्चतम व उच्च न्यायालयों की शक्तियों व कार्यों का भी ब्योरा देता है।

अभ्यासः सही या गलत

क. मसौदा समिति ने संविधान सभा की विभिन्न समितियों के कार्यों का संयोजन किया था।

ख. संविधान का आमुख जनता के आदर्शों और आकाक्षाओं को अभिव्यक्त करता है।

ग. भारतीय संविधान एक अलिखित संविधान है।

घ. भारतीय संविधान दोहरी नागरिकता का प्रावधान करता है।

4.5 विभाजन

1947 का विभाजन भारत के आधुनिक इतिहास को बदल देने वाली घटना है। और उसके आधुनिक इतिहास की सर्वाधिक दुखद घटना भी। दो अलग-अलग राष्ट्रों, भारत और पाकिस्तान, का बनना कोई मामूली भौगोलिक विभाजन न था, इसने लोगों के दिलों के बीच खाई खोदी और जनता की साझा संस्कृति का बँटवारा कर दिया।

4.5.1 विभाजन के गुनहगार कारक

- अंग्रेजों की 'बाँटों और राज करो' की नीति
- धार्मिक सुधार आन्दोलन और उसके साम्प्रदायिक निहितार्थ
- साम्प्रदायिकता को भड़काने के लिए सरकारी सेवाओं का तिकड़मी प्रश्रय
- शिमला मिशन (1 अक्टूबर, 1906) और साम्प्रदायिक निर्वाचक मंडलों को मान्यता
- मुस्लिम लीग की स्थापना (30 दिसम्बर, 1906) व उसकी साम्प्रदायिक राजनीति
- हिन्दू महासभा और उसकी साम्प्रदायिक राजनीति
- द्विराष्ट्र का सिद्धान्त

भारत के विभाजन पर इतिहासकार और समाज विज्ञानी बहस करते रहे हैं। विभाजन से जुड़े अनेक मुद्दे भी अकसर न खत्म होने वाली बहस का सबब बनते रहे हैं। पहले, अकादमिक हलकों में विभाजन की अनिवार्यता बहस का सर्वप्रमुख मुद्दा हुआ करता था। लेकिन आजकल अकादमिक हलकों में विभाजन को एक घटना के बजाय प्रक्रिया के रूप में समझने पर जोर बढ़ गया है।

मुशीरुल हसल बताते हैं कि द्विराष्ट्र का सिद्धान्त विभाजन को हिन्दुओं और मुसलमानों की असमाधेय शत्रुता का समाधान करने वाला एक तार्किक और अपरिहार्य परिणाम मानता था। विभाजन को साम्राज्यवादी शासकों की ''बाँटो और राज करो'' नीति के नतीजे के रूप में भी देखा गया है। इसके अलावा, इसे विभाजनकारी राजनीति और साझा मूल्यों व प्रतीकों पर 'सामुदायिक पहचान थोपने वाली' भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग की राजनीति का परिणाम भी माना गया है।

बलात्कार, अपहरण और हत्या की घटनाएँ भारतीय विभाजन के दौर में नासूर की तरह उगी दिखती हैं। उस दौर में, जबकि धर्मान्धता का दैत्य धरती को रौंद रहा था, मानवीय घृणा और पाशविक भावों का ऐसा खूंखार मंजर दिखा, जो मानवता के इतिहास पर एक अमिट कलंक है। धर्म और देशभक्ति के नाम पर की गई सम्पत्ति की लूट और विनाश, अपहरण और औरतों के बलात्कार, अकथनीय व अवर्णनीय उत्पीड़न और अमानवीयता, मानव इतिहास में बर्बरता और नृशंसता के पुराने इतिहास को भी शर्मसार करती थी। महिलाओं पर मँडराता खतरे का साया, लोगों का विस्थापन और बेघर होना, लोगों के पुनर्वास की दिक्कतें, शारीरिक हिंसा झेले लोगों का दर्द, शरणार्थी की पीड़ा जैसे बेसुमार जख्म विभाजन के मारे लोगों के भावनात्मक जगत में स्थाई तौर पर चस्पा हो गए थे।

उजड़ना और विस्थापित किया जाना कोई मामूली भौगोलिक दर्द नहीं होता। आर्थिक दरिद्रता और शारीरिक आघातों के अलावा भी, अपनी ही धरती पर विस्थापित कहलाने के दर्द जैसे अन्य भावनात्मक पहलू भी होते हैं, जिन्हें आज स्मृतियों के इतिहास के अन्तर्गत गहराई से जाँचा जा रहा है। पेन्डेरल मून के अनुसार 45 लाख हिन्दू और 60 लाख मुसलमान मार्च 1948 तक शरणार्थी बन गए थे। स्वतन्त्र भारत के हिन्दू-मुसलमानों के आपसी सम्बन्धों पर विभाजन का घना साया आज भी छाया है।

विभाजन के दर्द से जुड़ा एक मामला उन महिलाओं को बचाने और पुनर्वासित करने का था, जिनका उस दौर में अपहरण किया गया था। अपनी किताब मूल सुत उखड़े में उर्वशी बुटालिया ने इस दर्द को अभिव्यक्त किया है। विभाजन के दौरान अपहरित महिलाओं को खोजने के सामाजिक काम से जुड़ी कमलाबेन पटेल के अनुसार विभाजन के दौरान लगभग 75 हजार महिलाओं का अपहरण और बलात्कार किया गया था।

4.5.2 विभाजन- साहित्य और सिनेमा

आजकल जोर विभाजन को एक घटना के बजाय एक प्रक्रिया की तरह अध्ययन करने पर है। अभिलेखीय स्रोतों की जगह वैकल्पिक स्रोतों पर जोर दिया जा रहा है। यह पद्धति विभाजन के अध्ययन के लिए निजी डायरियों, पत्रों, पर्चों, संस्मरणों और साक्षात्कार जैसे वाचिक स्रोतों का इस्तेमाल करती है। इतिहास लेखन में साहित्य को भी स्रोत बनाया जा रहा है। दूसरी तरफ, हिन्दी सिनेमा भी विभाजन के अनुभवों के चित्रण के लिए साहित्य का इस्तेमाल कर रहा है। गरम हवा फिल्म इस्मत चुगताई की कहानी, तमस भीष्म साहनी के उपन्यास, पिन्जर अमृता प्रीतम के उपन्यास, 1947 अर्थ बापसी सिधवा के उपन्यास आइस कैन्डी मैन और ट्रेन टु पाकिस्तान खुशवन्त सिंह के उपन्यास पर आधारित हैं। विभाजन के विभिन्न पहलुओं पर इन फिल्मों द्वारा पेश सिने चित्र विभाजन के अनुभवों की जटिलता को समझने में काफी मददगार हैं।

आजादी के बाद के शुरुआती वर्षों में इन विषयों पर अधिक फिल्में नहीं बनी थीं। छिन्नमूल (1948), लाहौर (1949), कश्मीर हमारा है (1950) और कश्मीर (1950) जैसी फिल्में ही इसका अपवाद हैं। विभाजन का पहला संजीदा चित्रण पेश करने की कोशिश एम.एस. सथ्यू द्वारा उनकी फिल्म गरम हवा (1973) में की गई थी। फिल्म इस्मत चुगताई की कहानी पर आधारित थी और इप्टा के साथ करीबी रिश्ते रखने वाले कैफी आजमी ने स्वयं इसकी पटकथा लिखी थी। कैफी आजमी एक मशहूर शायर और लेखक होने के अलावा 1943 में बनाए गए उस इन्डियन पीपुल थिएटर्स एशासिएशन यानी इप्टा से जुड़े थे, जिसका मकसद ऐसे थिएटर को स्थापित करना था, जो न सिर्फ लोगों के लिए बल्कि लोगों के द्वारा भी मंचित किया गया हो। इप्टा ने कुछेक फिल्मों के निर्माण और वितरण की भी कोशिशें की थीं। गरम हवा विभाजन और उसके बाद के दौर में आगरा के एक मुसलमान परिवार की दुश्वारियों का चित्रण करती है, वह देश छोड़कर पाकिस्तान जाने को लेकर उसकी दुविधा व कशमकश और अन्ततः भारत में बने रहने के उसके निर्णय को सामने लाती है। गोविन्द निहलानी की तमस एक टीवी सीरियल है जिसमें हिंसा, निजी तकलीफों, नुकसान और अपनी जमीन से उजड़ने के दर्द का चित्रण है।

1984 के दंगे और भारत के विभिन्न हिस्सों में सिखों के जनसंहार, 1990 के दशक की शुरुआत में बम्बई के दंगे, 2002 के गुजरात दंगे, 2005 में उत्तर प्रदेश के मऊ के दंगे ऐसी गम्भीर घटनाएँ हैं जो विभाजन की याद दिलाती हैं। बाम्बे (1995), फिज़ा (2002), देव (2003) कुछ फिल्में हैं जो उस साम्प्रदायिक कत्लेआम से हमें रूबरू कराती हैं जिसे हम विभाजन कहते हैं। हिंसा व शारीरिक चोटें और दिलों की भयावह पीड़ा इन फसादों के भुक्तभोगियों या गवाहों की जिन्दगी में न भुलाई जा सकने वाली यादों के रूप में हमेशा जिन्दा रहता है।

लैंगिकता और लैंगिक रिश्ते आज के चर्चित विषय हैं। विभाजन के समय महिलाओं द्वारा झेला गया दर्द भी अध्ययन का महत्वपूर्ण विषय है। आजकल हिंसा और खूनखराबे के बीच महिलाओं पर बरसने वाले खतरों का विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है। उर्वशी बुटालिया (1988) ने यह तथ्य उजागर किया है कि कैसे साम्प्रदायिकता के दौर में महिला देह विजेताओं की कीमती जायदाद बना दी जाती है और समुदायों के बीच लड़ाई महिलाओं की देह पर लड़ी जाती है। सुवीर कौल (2001) बताते हैं कि भारत-पाकिस्तान के क्रिकेट मैचों के दौरान प्रदर्शित कट्टरता को देखने से लगता है मानो विभाजन का 'अधूरा काम' अब पूरा किया जा रहा है। ऐसी अनेक घटनाओं का जिक्र मिलता है जहाँ विधर्मियों और अन्य समुदायों के लोगों के हाथ अपनी इज्जत गँवाने के बजाय कुएँ में कूद कर महिलाएँ अपनी जान गँवाना पसन्द करती हैं। तमस (1987) में इस तरह का दृष्य देखने के बाद यह बात 'प्रतिष्ठा का प्रतीक' बना दी गई। खामोश पानी (2003) में भी इज्जत के लिए कुएँ में कूदने का दृष्य है। यही नहीं, हमलावरों से इज्जत बचाने के नाम पर पुरुषों ने अपने परिवार और समुदाय की महिलाओं की खुद ही हत्या कर डाली है। बलात धर्मान्तरण और विवाह के जरिए भी हिंसा की यह दास्तान आगे बढ़ाई गई है।

अध्ययन का एक और महत्वपूर्ण मुद्दा दिल-दिमाग का वह दर्द है, जिसे अपने अन्तर्मन में ढोते हुए हिंसा और खूनखराबे की गवाह एक समूची पीढ़ी जीने के लिए अभिशप्त है। वयस्क होने के बाद इस पीढ़ी के लोग साम्प्रदायिक सवालों पर अधिक संवेदनशील दिखते हैं। इनमें कुछ लोगों ने लेखन या सिनेमा के जरिए अपने अनुभवों को सार्वजनिक तौर पर अभिव्यक्त भी किया है। उनके इस सृजन से लोग विभाजन की एक बेहतर समझ बना पाए हैं। सिनेमा के क्षेत्र में साम्प्रदायिक हिंसा के सीधे शिकार और बाद में अपने काम से चर्चित होने वाले लोगों ने विभाजन के बारे में अपनी समझ और अन्तर्दृष्टि से लोगों की समझ बढ़ाने में बहुमूल्य योगदान दिया है। इनमें गोविन्द निहलानी, श्याम बेनेगल, ऋत्विक घटक, गुलज़ार, भीष्म साहनी जैसी चर्चित शख्सियतों से सारे लोग परिचित हैं। (गोविन्द निहलानी की तमस और श्याम बेनेगल की मम्मो विभाजन के दर्द को अभिव्यक्त करती है, जबकि बेनेगल की जुबैदा भी विभाजन की पृष्ठभूमि में बनाई गई है)।

हम देख सकते हैं कि निजी डायरियों, पत्रों, पर्चों, संस्मरणों और साक्षात्कारों के मौखिक स्रोत ने विभाजन की नई दृष्टियाँ विकसित करके इतिहास को समृद्ध किया है। विभाजन पर रचे गए भारतीय साहित्य ने विभिन्न भाषाओं में विभाजन के दर्द को स्वर दिया है। सादत हसन मन्टो, राजिन्दर सिंह बेदी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम, भीष्म साहनी जैसे लेखकों ने विभाजन की पीड़ा से सबको परिचित कराया है। इसके अलावा, समाज के संवेदनशील तबकों पर की गई हिंसा, नुकसान, बेघर होने का दर्द, बलात निर्वासन, आर्थिक दुश्वारियाँ, धर्म के नाम पर की गई तमाम अमानवीयताओं का हिन्दी सिनेमा द्वारा किया गया चित्रण उस पीड़ा को सबकी पीड़ा बनाने में सहायक रहा है।

अभ्यास: सही या गलत

क. अंग्रेजों की बाँटो और राज करो की नीति विभाजन के लिए जिम्मेदार थी।

ख. साम्प्रदायिकता के उभार ने देश को विभाजन की ओर नहीं धकेला।

ग. इन्डियन पीपुल थिएटर्स एसोशिएशन (इप्टा) का गठन 1947 में हुआ था।

घ. तमस नाम का टीवी सीरियल भीष्म साहनी के इसी नाम वाले उपन्यास पर आधारित था।

4.6 रैडक्लिफ रेखा

रैडक्लिफ रेखा की घोषणा 17 अगस्त 1947 को हुई थी। यह औपिनिवेशिक शासन से मुक्ति और विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान की सीमा रेखा बनने वाली थी। इस सीमा रेखा का नाम उसे बनाने वाले सीमा आयोग के चेयरमैन सर सीरिल रैडक्लिफ के नाम पर रखा गया था। सीमा निर्धारण का काम सँभालने वाले सर सीरिल रैडक्लिफ एक अंग्रेज वकील थे, जो सीमा निर्धारण के लिए गठित दोनों आयोगों के प्रमुख बनाए गए थे।

आयोग ने सीमा का निर्धारण बेहद हड़बड़ी में किया, और इस काम में स्थानीय पस्थितियों को आम तौर पर नजरअन्दाज किया। वैसे भी, रैडक्लिफ भारतीय परिस्थितियों या भूगोल से अपरिचित थे। सुमित सरकार (1983) बताते हैं कि साम्प्रदायिक दृष्टि में कुछ रणनीतिक और आर्थिक चिन्ताओं के घालमेल से बनी रणनीति के कारण भारी गड़बड़ियाँ पैदा हुईं। पंजाब में मुस्लिम बहुल गुरदासपुर, बंगाल में मुर्शिदाबाद और नदिया (और कलकत्ता भी) के छूटने से मुसलमान असन्तुष्ट हुए, तो, दूसरी ओर, लाहौर, खुलना की नहर कॉलोनी, बौद्ध बहुल चटगाँव पहाड़ियों के छूटने से हिन्दू गमज़दा हुए।

विभाजन की संभावना को देखते हुए 3 जून 1947 की माउंटबेटेन योजना में एक सीमा आयोग के गठन का प्रावधान शामिल किया गया था। देश के सभी दलों ने इसे स्वीकार किया। बंगाल और पंजाब दोनों प्रान्तों के लिए एक-एक सीमा आयोग बनाया गया। भारत पाकिस्तान के सीमा निर्धारण के लिए रैडक्लिफ को छह सप्ताह का समय दिया गया था।

यही नहीं, गवर्नर जनरल और वायसराय लार्ड माउन्टबेटेन द्वारा सीमा आयोग के फैसले की घोषणा रोके रहने से विभाजन और कष्टकारी बन गया। सीमा आयोग का फैसला 12 अगस्त 1947 को ही तैयार हो गया था, लेकिन भविष्य की जटिलताओं के मद्देनजर माउन्टबेटेन ने इसकी घोषणा टाल रखी थी। उनके इस कदम से अधिकारियों और नागरिकों में भ्रम बढा। अमृतसर और लाहौर के बीच रहने वाले लोगों ने अपने इस भरोसे के कारण घर नहीं छोडा़ कि वे भावी सीमा के अन्दर रहेंगे। बाद में लोगों के विस्थापन से भ्रम बढ़ा और वह हत्याओं, जनसंहार और बलात्कार की घटनाओं में तब्दील हो गया।

अधिकारी स्वयं अपने स्थानान्तरण के चक्कर में उलझे थे और कानून और व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पा रहे थे। 15 अगस्त से 3 दिसम्बर 1947 के दरमियान भारतीय सेना के कमान्डर इन चीफ का पद संभालने वाले लैकहार्ट ने यह स्वयं स्वीकार किया था कि सिविल और सैनिक सेवाओं के हरेक पद पर अधिकारियों की तैनाती दोनों देशों में अगर स्वतन्त्रता की घोषणा के पहले कर दी जाती तो शायद इतनी हिंसा और खूनखराबे से बचा जा सकता था।

प्रश्न 1, अभ्यास: सही या गलत

क. 3 जून 1947 की माउन्टबैटेन योजना में सीमा आयोग के गठन का प्रावधान किया गया था।

ख. लैकहार्ट 15 अगस्त 1947 से 3 दिसम्बर 1947 के बीच भारतीय सेना के कमान्डर इन चीफ थे।

ग. रैडक्लिफ रेखा भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमा रेखा है।

घ. अंग्रेज वकील सर सीरिल रैडक्लिफ पंजाब और बंगाल के बँटवारे की सीमा निर्धारण करने वाले आयोग के मुखिया थे।

4.7 गणतन्त्र

गणतन्त्र उस सरकार को कहते हैं जहाँ राज्य के क्रियाकलाप शासकों की निजी पसन्द से तय नहीं किए जाते बल्कि वे सार्वजनिक मामले होते हैं। यहाँ सार्वजनिक पदाधिकारी वंशानुगत न होकर निर्वाचित या नियुक्त किए जाते हैं।

शास्त्रीय युग में राजाओं और सम्राटों के शासन काल के बीच स्थापित रोम गणतन्त्र को ही गणतन्त्र का आदर्श प्रतीक माना गया था। बाद में, मान्टेस्क्यू ने लोकतन्त्र (जहाँ शासन नागरिक भागीदारी से चलता है) और कुलीनतन्त्र (जहाँ चन्द लोग राज करते हैं) को भी गणतन्त्र जैसा शासन बताया था।गणतन्त्रों में कार्यपालिका की वैधता के लिए संविधान और सार्वजनिक मताधिकार की व्यवस्था रहती है। गणतन्त्र आम तौर पर एक सम्प्रभुता सम्पन्न राज्य होता है।

आजादी के लड़ाके औपनिवेशिक राज से मुक्ति के लिए ही तो लड़ रहे थे। संविधान ने भारत को एक लोकतान्त्रिक देश घोषित किया। आज भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्र है। यहाँ ऐसी सरकार है जहाँ नागरिकों के निर्वाचित प्रतिनिधि ही देश का शासन चलाते हैं, जहाँ जनता ही सर्वोच्च व सम्प्रभु है। निर्वाचन करने की आजादी लोकतन्त्र का मूल गुण है।

लोकतन्त्र इन परिस्थितियों की मौजूदगी पर निर्भर करता हैः **क.** भिन्न धारणाओं और दलों का सहअस्तित्व; **ख.** सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार; **ग.** बहस और विचारविमर्श की स्वतन्त्रता का हक; **घ.** स्वतन्त्र व निष्पक्ष चुनावों की नियमित प्रणाली; **च.** नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की गारन्टी।

भारतीय संविधान ने लोकतन्त्र के एक नए दौर का आगाज़ किया। भारत एक सम्प्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक गणतन्त्र बना- न्याय, आजादी, समानता और बन्धुत्व की भावना से प्रेरित। संविधान का आमुख, राज्य के नीति निर्धारक तत्व, मूलभूत अधिकारों की घोषणा और सार्वभौमिक मताधिकार की व्यवस्था संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं और आदर्शों को प्रतिबिम्बित करते हैं। सार्वभौमिक मताधिकार के आधार पर देश में चुनाव होते हैं, जिनमें 18 साल या उससे ज्यादा का हरेक नागरिक, जाति, वर्ग, लिंग, नस्ल या धर्म की भिन्नता के बावजूद मतदान करने का समान अधिकारी माना जाता है।

4.7.1लोकतन्त्र का व्यावहारिक अनुभव

वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों वाली सरकार का ढाँचा भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का लोकतंन्त्रीकरण करने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहल थी। भारतीय राजनीति बहुदलीय प्रणाली पर आधारित व्यवस्था है। यहाँ अनेक दल चुनावी प्रतिद्वन्द्विता में उतरते हैं। 'सर्वाधिक मत वाले की जीत' की व्यवस्था के आधार पर राजनीतिक प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं। 'सर्वाधिक मत वाले की जीत' वह व्यवस्था है जो सर्वाधिक मत पाने वाले उम्मीदवाद को विजयी घोषित करती है। दूसरे शब्दों में, किसी भी निर्वाचन क्षेत्र में सर्वाधिक मत पाने वाला उम्मीदवार विजयी होगा, और उसकी जीत में उसे मिलने वाला मत-प्रतिशत मायने नहीं रखता। हालाँकि, धीरे-धीरे, राजनीतिक दलों के कुछ हिस्से भ्रष्टाचार और अवसरवाद अपनाने लगे हैं, और नतीजतन राजनीति का अपराधीकरण हुआ है। इसलिए, कानून और व्यवस्था चलाने का काम भी दूभर हो रहा है, क्योंकि कानून तोड़ने वाले संसद और विधानसभाओं का चुनाव लड़ते हैं, चुनाव जीतते हैं, जिसके कारण प्रशासन कमजोर होता है और राजनीति का स्तर गिरता है।

सैद्धान्तिक तौर पर तो भारत में हरेक व्यक्ति को अधिकार व विशेषाधिकार हासिल हैं, लेकिन व्यवहारिक दुनिया का सच इससे अलग है, जहाँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में भारी असमानता व्याप्त है। समाज में असमानता का एक बड़ा कारण अशिक्षा भी है। बहरहाल, धनी और निर्धनों के बीच की खाई यहाँ काफी चौड़ी है। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण, निजीकरण और ग्लोबलाइजेशन ने देश की जनता में व्याप्त आर्थिक असमानता को और गम्भीर बनाया है। धनिकों द्वारा गरीबों का शोषण देश की हकीकत है, और सबके साथ समान व्यवहार की घोषणा के आदर्श पर चलने वाले एक समावेशी लोकतन्त्र के हित में इसे दुरुस्त करने की जरूरत है।

आजादी के कई दशकों के बीतने के बाद गरीबी, बेरोजगारी, शुद्ध पेय जल की असमान उपलब्धता, सफाई या स्वास्थ्य-सुविधाओं की कमी जनजीवन के बुनियादी सवाल बने हुए हैं। वोट बैंक बढ़ाने के लिए जाति का राजनीतिक इस्तेमाल भी एक आम बात बन चुकी है। 21वीं सदी के भारत में दलितों का उत्पीड़न गम्भीरता के साथ विद्यमान है। आतंकवादी हिंसा देश के लिए खतरनाक हो गई है और इन आतंकवादी हमलों में होने वाली मौतें हमारे लिए चुनौती बन चुकी हैं।

इस तरह की गम्भीर कमियों के बावजूद कई मायनों में भारत द्वारा की गई प्रगति उल्लेखनीय है। हरित क्रान्ति के जरिए खाद्यान्नों के मामले में देश आत्मनिर्भर हुआ है। हालाँकि, इस प्रयास में कीटनाशकों और पानी का अत्यधिक इस्तेमाल भी हुआ है, जिसके कारण मिट्टी की लवणता बढ़ी है, भूजल-स्तर गिरा है, और धनी व गरीब किसानों के बीच असमानता बढ़ी है। लोग चुनावों में अपनी भागीदारी बढ़ाकर सरकारों के चुनाव में अपनी ताकत का एहसास करा रहे हैं। पिछले दशकों में अर्थव्यवस्था भी तेज रफ्तार से आगे बढ़ी है। हालाँकि आर्थिक विकास की रफ्तार को मानवीय साक्षरता, स्वास्थ्य, और स्वच्छता सम्बन्धी मानवीय सूचकांकों के विकास के साथ

सन्तुलित किए जाने की जरूरत भी उभरकर सामने आई है। इसके अलावा, आज पर्यावरणीय चिन्ताओं पर भी ठीक से ध्यान देने की जरूरत है ताकि हम अपने पर्यावरणीय क्षरण को कम कर सकें। बेशक, भविष्य को निगाह में रखने वाले टिकाऊ विकास के माडल को हमें आज अपनाने की जरूरत है।

साम्प्रदायिकता, जातिवाद, अलगाववाद, आतंकवाद एवं अन्य विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ लोकतान्त्रिक परम्पराओं के लिए खतरा हैं, और लोकतन्त्र के स्वप्न को जिन्दा रखने के लिए हमें इन पर नियन्त्रण कायम करना होगा। सरकार, गैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) और नागरिकों को देश के समग्र विकास की खातिर मिलकर काम करना होगा। हम देश में जरूरी इस रूपान्तरण को शान्तिपूर्ण, लोकतान्त्रिक और कानूनी तरीकों से हकीकत में बदल सकते हैं।

प्रश्न अभ्यास: सही या गलत

क. अब्राहम लिंकन ने लोकतन्त्र को जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए सरकार बताया था।

ख. भारतीय राजनीतिक व्यवस्था द्विदलीय व्यवस्था है।

ग. संसद और विधानसभाओं के प्रतिनिधि 'सर्वाधिक मत विजयी' प्रणाली के जरिए निर्वाचित किए जाते हैं।

घ. श्वेत क्रान्ति के जरिए भारत ने खाद्यान्नों के मामले में आत्मनिर्भरता हासिल की है।

उत्तरः

4.8 स्वमूल्यांकित प्रश्नों के उत्तर

4.3.2 के उत्तर - क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही।

4.4.6 के उत्तर - क. सही, ख. सही, ग. गलत, घ. गलत

4.5.2 के उत्तर - क. सही, ख. गलत, ग. गलत, घ. सही।

4.6 के उत्तर - क. सही, ख. सही, ग. सही, घ. सही।

4.7.1 के उत्तर - क. सही, ख. गलत, ग. सही, घ.गलत।

4.9 ग्रन्थ सूची

1. बसु, दुर्गादास (2012, 20वाँ संस्करण), इन्ट्रोडक्शन टु द कान्स्टीट्यूशन आफ इन्डिया, लेक्सिस नेक्सिस, दिल्ली
2. बुटालिया, उर्वशी (1998), द अदर साइड आफ साइलेन्सः वॉइसेज फ्रॉम द पार्टीशन आफ इन्डिया, पेन्गुइन इन्डिया, दिल्ली
3. चन्द्रा, बिपन एवं अन्य (1993), इन्डियाज स्ट्रगल फार इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली
4. ग्रोवर बीएल, और ग्रोवर एस. (1998, 16वाँ संस्करण), एन इन्ट्रोडक्शन टु माडर्न इन्डिया, एस चन्द एन्ड कम्पनी, दिल्ली
5. हसन, मुशीरुल, संपादक, (1993), इन्डियाज पार्टीशन प्रोसेस स्ट्रैटजी एन्ड मॉबिलाइजेशन, आक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, दिल्ली
6. इग्नू पाठ्य संसाधन, आधुनिक भारतीय इतिहास (1999)
7. कौल, सुवीर संपादन, (2001), द पार्टीशन्स आफ मेमोरी,: द आफ्टर लाइफ आफ द डिवीजन आफ इन्डिया, पर्मानेन्ट ब्लैक, दिल्ली
8. मून, पेन्डरल (1961), डिवाइड एन्ड क्विट, लंदन
9. सरकार, सुमित (1983), माडर्न इन्डिया 1885-1947, मैक्मिलन इन्डिया लिमिटेड, मद्रास

4.9 सहायक ग्रंथ सूची

10. चन्द्रा, बिपन एवं अन्य (1999), इन्डिया आफ्टर इन्डेपेन्डेन्स, पेन्गुइन बुक्स, दिल्ली
11. जोशी, ललित मोहन संपादन, (2004), साउथ एशिएन सिनेमा, अंक 5-6, लंदन

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. 'साम्प्रदायिकता' की व्याख्या कीजिए

प्रश्न 2. भारतीय संविधान के चरित्र की चर्चा कीजिए

प्रश्न 3. भारतीय संविधान के आमुख पर एक टिप्पणी लिखिए

प्रश्न 4. फिल्मों ने भारत के विभाजन को किस तरह से चित्रित किया है? चर्चा कीजिए

प्रश्न 5. भारत के विभाजन के दौरान महिलाओं को किस तरह की त्रासदी से गुजरना पड़ा

प्रश्न 6. रैडक्लिफ रेखा पर एक टिप्पणी लिखें

प्रश्न 7. आप लोकतन्त्र और भारत में इसकी कार्यपद्धति से क्या समझते हैं?